माइखेल नैस्तुर्ख

मानव की उत्पत्ति
और
क्रमिक विकास

अनुवादक
रमेश सिनहा

1963

आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली-6

MANAV KI UTPATTI AUR KRAMIK VIKAS

(Hindi Version of 'The Origin of Man')

by

Mikhail Nesturkh

Translated by

Ramesh Sinha

Rs. 15.00

प्रकाशक
रामलाल पुरी संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट दिल्ली-6

शाखाएं
हौज खास नई दिल्ली
माई हीरा गेट जालन्धर
विश्वविद्यालय क्षेत्र चण्डीगढ़
महानगर लखनऊ-6
चौड़ा रास्ता जयपुर
बेगमपुल रोड मेरठ

प्रथम संस्करण 1963
मूल्य पन्द्रह रुपए

मुद्रक
[illegible]
दिल्ली

प्रस्तावना

मानव-जाति की उत्पत्ति की समस्या के समाधान की सहस्रों वर्षों से प्रतीक्षा की जा रही है। धर्म ने इसकी एक ग़लत व्याख्या की थी और पिछली शताब्दी तक जब तक जीव-शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान अधिक विस्तृत नहीं हो गया था और जीव जगत् के विकास के सम्बन्ध में डारविन ने एक भौतिकवादी सिद्धान्त की स्थापना नहीं कर दी थी यह समस्या एक रहस्य ही बनी रही थी।

इस सिद्धान्त के तार्किक परिणामस्वरूप यह सिद्ध हो गया कि मनुष्य और पशुओं की उत्पत्ति एक ही प्रकार से हुई है। डारविन ने वृहद् मात्रा में ऐसी आधार-सामग्री इकट्ठी की जिसने मनुष्य की प्राकृतिक उत्पत्ति की धारणा को सही प्रमाणित कर दिया तथा समस्त सन्देहों से परे इस बात की स्थापना कर दी कि अत्यन्त उच्च रूप से विकसित दो पैरों से ज़मीन पर चलने वाले वानरों की एक जाति ही, जो अब लुप्त हो चुकी है, मानव की निकटतम पूर्वज थी।

वानर से मनुष्य की उत्पत्ति का सिद्धान्त मानव-उत्पत्ति-शास्त्र की बुनियाद बन गया। अब यह मानव-शास्त्र की आधार-शिला है।

मनुष्य की उत्पत्ति का भौतिकवादी सिद्धान्त 'प्रथम मानवों' की दैवी सृष्टि की भाववादी धार्मिक धारणा के एकदम विरुद्ध है। परन्तु मानव जनन की प्रक्रिया की सम्पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करने में जीव-शास्त्र और मानव-शास्त्र असमर्थ है क्योंकि मानव जाति के विकास में सामाजिक तथा जीव-शास्त्रीय कारकों ने भी अपनी भूमिका अदा की है।

यह बात मानव के अंग-विन्यास के उस अन्तिम चरण के सम्बन्ध में खासतौर से सही है जिसमें उसके शरीर ने अपना वर्तमान संरचनात्मक स्वरूप प्राप्त किया था और होमो सेपियन्सों (मेधावी मानव) की जाति भिन्न-भिन्न नस्लों में विभाजित हो गई थी।

मानव जनन की प्रक्रिया उच्चतर पृष्ठ-वंशियों की किसी भी जाति के यहाँ तक कि वानरों के आत्मविकास से अत्यन्त भिन्न है। इसलिए इस समस्या का समाधान एक कठिन काम है जिसके लिए मार्क्सवादी दर्शन पर आधारित सामाजिक विज्ञानों द्वारा प्रस्थापित की गई आधार-सामग्री का उपयोग करना आवश्यक होता है।

जिस समस्या पर विचार किया जा रहा है उसका पूर्ण समाधान केवल द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद के दृष्टिकोण से किया जा सकता है मार्क्सवाद-लेनिनवाद

ने मानव-शास्त्रियों को इस स्थिति में पहुँचा दिया है कि मानव-उत्पत्ति शास्त्र के एकदम आधारिक तत्त्व का वे गम्भीरता से तथा वास्तव में वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण कर सकें। मानव की उत्पत्ति की भाववादी धारणाओं के विरुद्ध संघर्ष में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद—जिसकी पद्धति का इस लेखक ने अपनी रचना में इस्तेमाल करने का प्रयास किया है—एक अत्यन्त शक्तिशाली अस्त्र है।

इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य यह है कि आधुनिक जीव-शास्त्र के आधार पर ऐसे ठोस तथ्य पाठकों के सामने प्रस्तुत कर दिये जाएँ जिससे मानव उत्पत्ति शास्त्र का भौतिकवादी सिद्धान्त प्रमाणित हो जाए। इन तथ्यों में जीवित मानव-सम वानरों के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जानकारी भी शामिल है—क्योंकि उनके लुप्त हो गए पूर्वजों के जीवाश्म अवशेषों का सही-सही अध्ययन करने उनके बीच मानव के निकटतम पूर्वगामियों का पता लगाने तथा उनके पुराजीव-शास्त्र (palaeobiology) के मुख्य लक्षणों को खोज निकालने के लिए यह आवश्यक है।

दूसरा काम जो लेखक ने अपने सम्मुख रखा है वह है जीवाश्म मानव के विकास की अधिक महत्त्वपूर्ण मंजिलों की रूप रेखा को प्रस्तुत कर देना।

तीसरा कार्य यह है कि जीवाश्म मानव के विकास के सम्बन्ध में मानव-उत्पत्ति शास्त्र के मूल सिद्धान्त का इस्तेमाल करते हुए, मानव-शास्त्रीय दृष्टिकोण की व्याख्या की जाए और साथ ही-साथ मानव तथा मनुष्य जाति की नस्लों की रचना के सम्बन्ध में भाववादी धारणाओं की आलोचना की जाय।

इस कार्य के सम्बन्ध में लेखक ने मानव-शास्त्रियों, मानव-शरीर के ढाँचे का अध्ययन करने वाले शरीर विज्ञों तथा दैहिकी विज्ञों के अनुसन्धानों का तथा पुरातत्त्ववादियों और जनवृत्तशास्त्रियों के कार्यों का व्यापक उपयोग किया है। उसने अपने ग्रन्थ मानव और उसके पूर्वज (1934) तथा अपनी अन्य रचनाओं से भी सामग्री ली है।

—एम० एफ० नेस्तुर्ख

मानव शास्त्र संस्थान तथा संग्रहालय
राजकीय विश्वविद्यालय
मास्को

अनुक्रम

भाग एक

मानव-जन्म के सम्बन्ध में डारविन तथा अन्य लोगों की परिकल्पनाएँ

भाग एक

मानव-जन्म के सम्बन्ध में डारविन तथा अन्य लोगों की परिकल्पनाएँ

1

मानव-उत्पत्ति के सम्बन्ध में डारविन के विचार

1 डारविन से पूर्व मानव उत्पत्ति-शास्त्र की स्थिति

किसी देवता द्वारा प्रथम मानव की अलौकिक सृष्टि के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न देशों के लोगों ने प्रारम्भिक काल से ही तरह-तरह की कहानियों की रचना की है। इन कल्पित कथाओं में उस प्राकृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिवेश के प्रभाव को हम देख सकते हैं जिसमें वे लोग रहते थे जिन्होंने उनकी रचना की थी। उदाहरण के लिए बाइबिल (इञ्जील) में यह पौराणिक कथा पाती है कि प्रथम मानव की सृष्टि ईश्वर ने की थी। उसकी रचना करने के बाद ईश्वर ने उसके अन्दर स्वयं अपनी जीवात्मा का कुछ अंश फूंक दिया था और उसे उसकी अमर आत्मा प्रदान कर दी थी। यह कथा स्पष्ट रूप से कुम्हार की कारीगरी तथा मूर्ति-निर्माण की कला का प्रतिबिम्ब है। जिस समय इस कथा का जन्म हुआ था ये दोनों ही चीजें एसीरिया, बैबीलोन, मिस्र, जूडिया तथा दूसरे देशों में बहुत प्रचलित थीं।

सृष्टि के सम्बन्ध में मुसलमानों की पौराणिक कथा भी बाइबिल की कथा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। वह तमाम चीजें बनाने में सर्वोत्तम था। उसने पहले मिट्टी का आदमी बनाया, फिर मामूली तरल पदार्थ की एक बूंद से उसके बच्चों को पैदा किया। उसे उसने सांचे में ढाला और उसके अन्दर अपनी जीवात्मा फूंक दी।

इसके बावजूद, अनादिकाल से लोग मानव तथा अन्य पशुओं की जबर्दस्त समानता को भी देखते आए हैं। इससे उनके अन्दर यह विचार पैदा हुआ कि मानव की उत्पत्ति अलौकिक के बजाय प्राकृतिक कारणों से हुई है। इस विचार को सबसे पहले प्राचीन काल में लुक्रीटियस (95-51 ई० पू०) ने अपनी भौतिकवादी कविता वस्तुओं की प्रकृति के सम्बन्ध में (De Rerum Natura) में व्यक्त किया था। लुक्रीटियस (Lucretius) का विचार था कि प्रथम मानव जीव-जाति पृथ्वी से उस समय पैदा हुए थे जिस समय उसकी उर्वरता अत्यन्त प्रबल थी, तमाम प्रकार की वनस्पति से ढके

पाने के बाद पशुओं चिड़ियों तथा अन्य जीवित प्राणियों को पृथ्वी ने जन्म दिया था।

यद्यपि जानवरों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लुक्रीटियस की यह धारणा कि बच्चों के रूप में वे पृथ्वी के गर्भाशयों से पैदा हुए थे बिलकुल भ्रान्तिपूर्ण है। फिर भी यह बात महत्त्वपूर्ण है कि मनुष्य को जड़ बनानेवाले धर्म के प्रभाव के विरुद्ध उसने विद्रोह कर दिया था। उसकी कविता में मनुष्य पृथ्वी के गर्भ से प्राकृतिक रूप से पैदा हुआ था।

लुक्रीटियस की कविता की अनीश्वरवादी भावना को उसकी निम्न विलक्षण पंक्तियों से परखा जा सकता है

Humana ante oculos foede cum vita iaceret
In terris opressa gravi sub religione
Quae caput a caeli regionibus ostendebat
Horribili super aspectu mortalibus instans
Primum Graius homo mortalis tollere contra
Est oculos ausus primusque obsistere contra [1]

आगे लुक्रीटियस कहते हैं

Principium cuius hinc nobis exordia sumet
Nullam rem ex nilo gigni divinitus unquam [2]

लुक्रीटियस ने अद्भुत अन्तर्दृष्टि के साथ आदिम मनुष्य के जीवन उसके कार्य तथा उसकी स्पष्ट भावों की शुरुआत की तस्वीर खींच दी थी। लुक्रीटियस की कविता महान् यूनानी अनीश्वरवादी लेखक एपीक्यूरस (जन्म ई॰ पू॰ 324 या 341 में और मृत्यु 270 ई॰ पू॰ में हुई थी) के भौतिकवादी विचारों के अनुरूप है। वह इस बात में महत्त्वपूर्ण है कि पृथ्वी के ऊपर मानव के आविर्भाव को दैवी सृष्टि का चमत्कार न मानकर एक प्राकृतिक घटना प्रवाह के रूप में चित्रित करने के प्रथम प्रयासों में से एक थी।

अपनी कविता में लुक्रीटियस ने पिछली शताब्दियों के विचारकों और विद्वानों की उपलब्धियों का इस्तेमाल किया था। प्राचीन काल के महान् मनीषियों ने मानव शरीर तथा उसके अंगों की मुख्य विशिष्टताओं का विश्लेषण किया था और इस महत्त्वपूर्ण बात की स्थापना कर दी थी कि हाथ सार्वलौकिक रूप से उपयोगी काम की इन्द्रिय है। यह उपयोगी विचार दार्शनिकों—एनेक्सागोरस (500–428 ई॰ पू॰) तथा सुकरात

---

1 जिस समय कि मनुष्य का जीवन हमारी आंखों के सामने गर्हित रूप में नष्ट पड़ा था धर्म के भार से वह कुचला जा रहा था जो स्वर्गलोक के छोरों से अपना सिर दिखलाता हुआ, मर्त्य मानवों पर भयंकर दृष्टि से प्रहार कर रहा था उस समय यूनान का एक आदमी ही वह पहला व्यक्ति था जिसने अपनी मर्त्य आंखों को उसके विरुद्ध उठाने का साहस किया था, और वही सबसे पहला आदमी था जो उसके विरुद्ध खड़ा हुआ था।

2. अर्थ, और प्रकृति का अनुसन्धान इसके आधार पर हमारा प्रथम सिद्धान्त आरम्भ से यह होगा कि शून्य से कभी कोई चीज़ दिव्य शक्ति द्वारा नहीं पैदा की जाती।

(आसपास 469—आसपास 399 ई० पू०) की रचनाओं में मिलता है। एनेक्सीमेंडर (छठी शताब्दी ई० पू०) और एम्पीडोक्लीज़ (490-430 ई० पू०) ने मनुष्य के प्राकृतिक विकास की बात कही थी।

अरस्तू (384-322 ई० पू०), हिप्पाक्रेटीज़ (आसपास 460—आसपास 377 ई० पू०) तथा प्राचीन दुनिया के दूसरे महान् प्राणिशास्त्रियों तथा चिकित्सकों की रचनाओं में हमें कुछ ऐसी वैज्ञानिक सामग्री मिलती है जिसके आधार पर मानव तथा अन्य स्तनधारी प्राणियों के बीच के अन्तर तथा उनकी समानता के बिन्दुओं की जाँच पड़ताल की जा सकती है तथा उनका विवरण पेश किया जा सकता है। इन बिन्दुओं का सम्बन्ध शरीर की रचना, उसके विकास तथा उसके कार्यों से भी है। ऊपर जिन लोगों का उल्लेख किया गया है उनमें से सबसे महान् देन अरस्तू की है। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मानव-शरीर का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया था और बताया था कि पशु जगत् में मानव का क्या स्थान है। मानव तथा दूसरे पशुओं के इन मुख्य भेदों को भी उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि मनुष्य का आसन (अंग-विन्यास) और चाल सीधी होती है, उसका मस्तिष्क बड़ा होता है, उसमें बोलने की शक्ति और बुद्धि होती है। उन्होंने इन विशेषताओं का विश्लेषण भी किया था।

कुछ काल बाद रोम के चिकित्सक तथा शरीर-विज्ञ क्लाडियस गैलन (आसपास 130-आसपास 200 ई० पू०) ने मानव और बन्दरों के शरीर के बीच की जबर्दस्त समानता प्रमाणित कर दी और इनके तथा दूसरे पशुओं के बीच समानता तथा अन्तर के जो बिन्दु थे उन्हें लिपिबद्ध कर दिया। अरस्तू की ही तरह गैलन को भी अपनी रचनाओं से महान् प्रतिष्ठा तथा प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी जो सदियों तक कायम रही। मानव-समाज की उत्पादक शक्तियाँ जैसे जैसे विकसित होती गईं वैसे-ही-वैसे मानव और पशु जगत् का ज्ञान भी क्रमशः बढ़ता गया।

अपर्याप्त ठीक-ठीक ज्ञान तथा अनिश्चित अभिधारणाओं के पुंज के आधार पर धीरे धीरे मनुष्य की शरीर रचना तथा दैहिकी की तस्वीर तैयार की गई। मुख्यतया एण्ड्रियास विसालियस (1514-1564) तथा विलियम हार्वे (1578-1657) के काम के कारण जब शोधकार्य के तरीकों में सुधार हो गया तो वैज्ञानिकों को मानव शरीर का वास्तविक ज्ञान प्राप्त होने लगा। मानव शरीर की रचना के सम्बन्ध में तब तक जो भ्रम था उस सब के बहुत-कुछ [illegible]। मानव अस्तित्व के सम्बन्ध में विद्वानों की मंडली में एक भौतिकवादी दृष्टिकोण प्रतिष्ठित होने लगा।

ईसाइयों की दमनकारी मजहबी अदालतों (inquisition) के घोर [illegible] के दिनों में भी आगे बढ़े हुए विद्वानों ने मानव की उत्पत्ति के सम्बन्ध में [illegible] विचार की स्थापना की थी और मानव की अलौकिक [illegible] किया था। ऐसे विद्वानों में से उदाहरण के लिए, एक [illegible] (15[illegible]-1619) थे। इन्होंने मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्ध में [illegible]

रखने के अपराध में ईसाइयों की धार्मिक अदालत द्वारा सजा दी गई थी और खम्भे से बाँधकर जला दिया गया था।

विज्ञान के इतिहास में मानव-उत्पत्ति-शास्त्र के लिए, बन्दरों के खासतौर से मानव-सम पशुओं के सम्बन्ध में बढ़ते हुए ज्ञान का विशेष महत्त्व था। चिम्पैन्ज़ी को यूरोप में सबसे पहले सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लाया गया था। 1660 में एक अंग्रेज शरीर-विज्ञ (anatomist) एडवर्ड टाइसन (Edward Tyson) ने अपने एक विशेष निबन्ध में इस वानर की शरीर रचना का पूरा विवरण प्रकाशित किया था। उनके निबन्ध का शीर्षक था Ourang-Outang Sive Homo-Sylvestris अथवा एक बन्दर, एक वानर और एक मानव की तुलना में एक बौने की शरीर रचना।

अठारहवीं शताब्दी में स्वीडन के प्रसिद्ध विज्ञान कार्ल लिनायस (1707 1778) ने प्राणि जगत् (animal kingdom) के अपने वर्गीकरण में मानव को भी शामिल कर लिया और उसे एक विशेष प्रजाति (जनस) होमो (homo-मानव) की श्रेणी में रखा। होमो सेपियन्स (homo sapiens = मेधावी मानवों) की श्रेणी को उन्होंने मानव-सम वानरों की श्रेणी के आगे रखा।

परन्तु लिनायस (Carl Linnaeus) के विचार एक सृष्टिवादी (creationist) के (विकासवाद के विरोधी के-अनु०) विचार थे। उनका विश्वास था कि बुद्धि मनुष्य के अन्दर दिव्य ज्ञान का एक अंश है।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में मनुष्य की प्राकृतिक उत्पत्ति का विचार जेम्स मौन बोड्डो (James Monboddo 1784) की उन रचनाओं में भी दिखाई देता है जिनमें उन्होंने स्पष्ट वाणी (articulate speech) की उत्पत्ति और विकास की समस्या पर विचार किया है। बाद में मौनबोड्डो की ही तरह जे ई डूर्निक (J E. Doornik 1808) ने भी जोर देकर कहा कि मानव-सम वानरों के ही कुल से मानव उत्पन्न हुआ था।

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के एक अत्यन्त विख्यात जीवशास्त्री जार्जेज बुफन (Georges Buffon 1707 1788) थे। एक रूपान्तरवादी (transformist) के रूप में अपनी रचनाओं में उन्होंने मनुष्य के तथा उन मानव-सम वानरों के सम्बन्ध में जिनका उन्होंने व्यक्तिगत रूप से निरीक्षण किया था काफी ध्यान से विचार किया था। परन्तु मनुष्य को पशु जगत् से बहुत दूर रखकर उन्होंने अलग बनाया था। इसका कारण वे मनुष्य के बौद्धिक गुणों को बताते थे। उनका विश्वास था कि वे गुण दैवी देन थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ काल तक अनेक देशों के लोगों तथा प्राणि तथा पादप जाति (fauna and flora) के सम्बन्ध में और भी बहुत काफी ज्ञान उपलब्ध हो गया था जैसा कि जार्जेज कूवियर (Georges Cuvier 1769-1832) तथा चार्ल्स लियेल (Charles Lyell 1797-1875) की रचनाओं में देखा जा सकता है। जीवाश्म पशुओं (animal fossils) तथा पृथ्वी के इतिहास के सम्बन्ध में भी तब तक काफी

अधिक जानकारी प्राप्त हो चुकी थी। प्राणिशास्त्र (zoology) तथा पुरा भूगर्भशास्त्र (palaeontology) के अलावा ज्ञान की दूसरी शाखाओं का भी व्यापक विकास हो गया था। पशुओं तथा पौधों की जातियों (species) की अपरिवर्तनशीलता (immutability) की धारणा जिसका लिनायस के बाद अधिकांश विद्वानों ने समर्थन किया था धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगी। अकसे-भुवन जीवशास्त्री जैव जगत् (organic world) में विकास के निश्चित लक्षणों को अधिक स्पष्टता से देखने लगे।

रूपान्तरवाद (transformism) के विचारों को जिन सबसे पहले रूसी विद्वानों ने व्यक्त किया था उनमें से एक अफानासी कावेर्जनेव (Afanasy Kaverznev) थे (इनका जन्म 1748 में हुआ था मृत्यु की तारीख अज्ञात है)। प्राणियों का रूपान्तरण नामक उनका प्रबन्ध 1775 में प्रकाशित हुआ था। अपने ग्रन्थ में इस प्रगतिशील विद्वान ने जातियों की प्राकृतिक उत्पत्ति तथा उनके भाग रूपान्तरण के सम्बन्ध में अपने मत के समर्थन में अनेक तथ्य उद्धृत किये। अपने मत को मनुष्य के विकास के विषय में लागू करने में भी वे नहीं हिचकिचाये। कावर्जनेव ने मनुष्य और वानरों को एक ही वर्ग में रखा और अधिकारपूर्वक कहा था कि उनके तथा दूसरे पशुओं के बीच समानताएँ हैं और वे एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। " न सिर्फ बिल्ली शेर और चीता बल्कि मनुष्य बन्दर और दूसरे जानवर भी एक ही परिवार के सदस्य हैं। (प्राणियों का रूपान्तरण पृष्ठ 50")

कुछ समय बाद मनुष्य और उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में भौतिकवादी विचारों को अपने समय के एक अत्यन्त प्रमुख सार्वजनिक नेता और विचारक ए० रादिश्चेव (A Radishchev 1749 1802) की रचनाओं में व्यक्त होते हम देखते हैं। अपने ग्रन्थ मनुष्य उसकी नश्वरता और अनश्वरता में उन्होंने यह मत व्यक्त किया है कि मानव का विकास सबसे महत्त्वपूर्ण है बुनियादी है।

इसी ग्रन्थ में इस बात का प्रमाण प्रस्तुत किया गया है कि "तर्क तक पहुँचने में हाथ ही मनुष्य के पथ-प्रदर्शक थे।"

यह एकदम सही विचार उन्नीसवीं शताब्दी के रूसी क्रान्तिकारी जनवादी और विचारक एन० जी० चेर्नीशेव्स्की (N G Chernyshevsky 1828 1889) की रचनाओं में अनेक बार मिलता है। जगत् में मनुष्य के स्थान मनुष्य की प्रकृति तथा प्रकृति के स्वाभाविक-ऐतिहासिक विकास के परिणामस्वरूप मनुष्य की उत्पत्ति जैसी परम महत्त्व की समस्याओं का उन्होंने अत्यन्त गम्भीरता से विश्लेषण किया था।

अपने निबन्ध दर्शन में मानव-शास्त्रीय सिद्धान्त में इस भौतिकवादी दार्शनिक की हैसियत से चेर्नीशेव्स्की मानिक्त करते हैं कि मनुष्य के शरीर तथा उसकी आत्मा में एकता है। इस बुनियादी स्थापना की सचाई बाद में आई० एम० सेचेनोव (I. M Sechenov 1829-1905) तथा आई० पी० पैवलाव (I P Pavlov, 1849 1936) की खोजों से भी प्रमाणित हो गई थी। आई० एम० सेचेनोव और आई० पी०

देकर्लोव ने रूस की भौतिकवादी दैहिकी (physiology) की नींव डाली थी। चर्निशेव्स्की ने अपने निबन्ध में कहा " मनुष्य को एक ऐसी अविभक्त सत्ता माना जाना चाहिए जिसकी केवल एक ही प्रकृति है। मानव-जीवन को ऐसे दो भागों में नहीं बाँटा जाना चाहिए जिनमें से प्रत्येक की एक अलग प्रकृति है मनुष्य की क्रियाशीलता के प्रत्येक पक्ष को उसके सम्पूर्ण सिर से पैर तक के शरीर की क्रियाशीलता माना जाना चाहिए, अथवा यदि हम मानव-शरीर के किसी खास अंग के विशेष कार्य पर विचार कर रहे हैं तो उस अंग को सम्पूर्ण शरीर के साथ उसके स्वाभाविक सम्बन्ध के अन्तर्गत देखा जाना चाहिए।"[1]

दूसरे देशों में जीवशास्त्र के क्षेत्र में डारविन के सबसे बड़े अग्रज थे लामार्क (Jean Lamarck 1744-1830) थे। अपनी रचना प्राणिशास्त्र का दर्शन (1809) में उन्होंने इस बात के प्रमाण दिए थे कि प्राणि तथा वनस्पति जगत् में विकास होता है। इस प्रकार उनके समय में जो अधिभूतवादी धारणाएँ व्यापक रूप से फैली हुई थीं उनका उन्होंने विरोध किया था।

लामार्क ने कहा था कि तमाम आधुनिक जीव विकास के माध्यम से प्राचीन रूपों में से ही उत्पन्न हुए हैं। उन्होंने कहा था कि यह सम्भव है कि कालान्तर में मनुष्य स्वयं किसी प्रकार के वानर वंश से निकल आया हो। जंगलों के कम हो जाने पर प्राचीन मानव सम वानर को पेड़ों के अपने जीवन को तिलांजलि देने तथा दो पैरों पर जमीन पर चलने के जीवन को अपनाने के लिए मजबूर हो जाना पड़ा था। उसकी सीधी चाल ने उसकी रीढ़ मांस-पेशियां पैरों हाथों जबड़ों दाँतों तथा मस्तिष्क में परिवर्तन उत्पन्न कर दिये। सामाजिक जीवन के परिणामस्वरूप शीघ्र ही स्पष्ट वाणी का विकास हो गया। मनुष्य के प्राकृतिक रूप से विकसित होने के सम्भाव्य मार्ग के सम्बन्ध में अपने सिद्धान्त में लामार्क ने अनेक सही विचार व्यक्त किए थे।

याद होगा कि विकासवाद के सम्बन्ध में लामार्क की रचना के विषय में एंगेल्स की बहुत ऊँची धारणा थी। प्रकृति के विकास के सम्बन्ध में भाववादी धारणाओं की अपनी आलोचना में उन्होंने लिखा था "अवकाश (space) के अन्दर, परन्तु काल के बाहर—जबकि काल तमाम विकास की बुनियादी शर्त है—विकास की यह असंगत बात प्रकृति के ऊपर हीगल ठीक ऐसे समय पर जबर्दस्ती लादते हैं जिस समय कि भूगर्भशास्त्र भ्रूण विज्ञान पौधों और पशुओं की दैहिकी तथा कार्बनिक रसायनशास्त्र का निर्माण हो रहा था और, जिस समय कि इन विज्ञानों के आधार पर, विकासवाद के भावी के सिद्धान्त के सम्बन्ध में हर जगह उज्ज्वल पूर्वाभास दिखलाई दे रहे थे (उदाहरण के लिए गेटे और लामार्क)।"[2]

---

1 एन जी चर्निशेव्स्की, "चुने हुए दार्शनिक निबन्ध मास्को 1953।

2 फ्रेडरिक एंगेल्स लुडविग फायरबाख तथा क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त देखिए, कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स 'संकलित रचनाएँ, फोरेन लैंग्वेजेज पब्लिशिंग हाउस मास्को, 1958, पृष्ठ 374।

और, जीवों की गुप्त परिवर्तनशीलता (mutability) तथा उनके अधिकाधिक पूर्ण बनते जाने की अपनी धारणा के प्रकाश लामार्क ने वास्तव में इस सिद्धान्त की स्थापना की कि जीव अपने परिवेश तथा शिक्षा से प्रभावित होता है। उन्होंने अपने इस मत का भी निरूपण किया कि व्यक्तिगत रूप से प्राप्त की गई विशेषताएँ आनुवंशिक रूप से (by heredity) आगे की पीढ़ियों में भी चली जाती हैं। उस समय तक प्रकृति में जीवों के विकास के तथा मनुष्य की प्राकृतिक उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपर्याप्त प्रमाण ही प्राप्त थे। लामार्क ने विकास से सम्बन्धित अन्य महत्त्वपूर्ण कारकों पर विचार नहीं किया जिसके कारण विकास का उनका सिद्धान्त एकपक्षीय ही रह गया और जातियों की अपरिवर्तनशीलता के पुराने सिद्धान्त को वे पराजित न कर पाए।

लामार्क के समय में एतीन ज्योफराय सेंट हिलेयर (Etienne Jeoffroy Saint Hilaire 1772-1844)-जैसे दूसरे विकास वादियों के पास भी विकास के सिद्धान्त का समर्थन करने के लिए काफी आधार-सामग्री नहीं थी। जो लोग इस सिद्धान्त का समर्थन करते थे कि संसार की रचना के बाद से जीव-जातियों में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता उनमें जार्ज कूवियर (Georges Cuvier 1769-1832) सबसे महत्त्वपूर्ण थे। इसके बावजूद वे फ्रांस के एक महानतम प्रकृति-विज्ञ तथा पुराभूगर्भशास्त्री थे। उन्होंने अंग-विद्या (anatomy) के तुलनात्मक अध्ययन के सम्बन्ध में भी काम किया था। 1830 में पृष्ठवंशियों (vertebrates) और अपृष्ठवंशियों (invertebrates) की एक ही प्रकार की अंग-रचना के प्रश्न को लेकर पेरिस की विज्ञान अकादेमी में कूवियर तथा सेंट हिलेयर के बीच जो बहस हुई थी उसमें विकासवादी हार गए थे (एमलिन्स्की 1755)।

लामार्क की पुस्तक प्राणिशास्त्र का दर्शन के प्रकाशन के आधी शताब्दी के भीतर ही प्रकृति के सम्बन्ध में मनुष्य के ज्ञान के क्षेत्र में महान् प्रगति हो गई। चार्ल्स लियल की रचनाओं ने खासतौर से भूगर्भशास्त्र के क्षेत्र में मानव-ज्ञान को बहुत आगे बढ़ा दिया। पृथ्वी की पपड़ी (crust) की तहों के अन्दर तथा उनमें जो जीवाश्म प्राणी तथा पौधे हैं उनके अन्दर जो परिवर्तन हो रहे हैं उनके बारे में अधिक स्पष्ट समझदारी पैदा हो गई।

मनुष्य के परिवेश (environment) में विकास के विचार पर और अधिक वैज्ञानिक चिन्तन होने लगा। आखिरकार, एक ऐसे महान् प्रकृति-विज्ञ का प्रादुर्भाव हुआ जिसने जीवित और निर्जीव दुनियाओं के विकास के नियमों के आधार पर उन तमाम तथ्यों के भण्डार को जो इकट्ठे हो गए थे एक पूर्ण इकाई के रूप में जोड़कर सम्बद्ध कर दिया। इस व्यक्ति का नाम चार्ल्स डारविन था। उनकी रचनाओं की गणना आज सर्वकालों के महानतम वैज्ञानिकों की रचनाओं में की जाती है।

2 प्राणि जगत् के विकास के सम्बन्ध में डारविन के विचार

चार्ल्स डारविन का जन्म इंगलिस्तान के श्रियूसबरी (Shrewsbury) नाम के

कस्त में 1809 में हुआ था। अपनी नौजवानी के दिनों में बीगल (Beagle) नाम के एक जहाज पर एक प्रकृति-विज्ञ के रूप में पाँच वर्ष तक पूरी दुनिया की उन्होंने यात्रा की थी और प्राणिशास्त्र वनस्पतिशास्त्र पुराभूगर्भशास्त्र तथा भूगर्भशास्त्र के सम्बन्ध में अपरिमित सामग्री इकट्ठी की थी। इसी सामग्री ने उनके अन्दर जातियों की परिवर्तनशीलता (mutability of species) का विचार पैदा किया था तथा दूसरी तरह से भी उनके ग्रहणशील मस्तिष्क के ऊपर गहरा प्रभाव डाला था। इंगलिस्तान लौटने पर डारविन डाउन (Down) नाम के गाँव में जो लन्दन से दूर नहीं है बस गए। अपने ग्रन्थों की रचना उन्होंने वहीं पर की। 1882 में उनकी मृत्यु हुई।

विज्ञान को डारविन की महान् देन कृत्रिम वरण (artificial selection) के सिद्धान्त की स्थापना थी। मुख्यतया इसी सिद्धान्त के अनुसार पशुओं और पौधों की जातियों में परिवर्तन होता है। परन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण डारविन की खोज प्राकृतिक वरण (natural selection) की थी जो प्रकृति के अन्दर प्राणियों और पौधों की जातियों को जन्म देता है। प्राकृतिक वरण का यह सिद्धान्त गुणपरिवर्तन (mutation) तथा आनुवंशिकता (heredity) के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है।

हमें इस बात का भी उल्लेख करना चाहिए कि अपने ग्रन्थ—प्राकृतिक वरण के द्वारा जातियों की उत्पत्ति के बाद के संस्करणों में उन्होंने लिखा था कि प्राप्त किये गए तथा किसी लाभदायक उद्देश्य के लिए सदियों तक निरन्तर प्रयोग में लाए गए, परिवर्तनों के सम्बन्ध में इस बात की अत्यधिक सम्भावना है कि वे स्थायी हो जाएँ और आनुवंशिकता के द्वारा आनेवाली पीढ़ियों में भी पहुँच जाएँ।

एंगेल्स प्राकृतिक वरण को इतना सार्वभौमिक महत्त्व तो नहीं देते थे जितना डारविन किन्तु परिवेश गुणपरिवर्तनशीलता तथा आनुवंशिकता के प्रभाव के महत्त्व पर उन्होंने भी जोर दिया था। एंगेल्स ने लिखा था

"साधारण कोशिका (cell) से लेकर आगे तक विकासवाद का सिद्धान्त यह दिखलाता है कि एक तरफ तो सबसे अंतिम पौधे तक तथा दूसरी तरफ मानव तक हुई प्रत्येक प्रगति किस प्रकार आनुवंशिकता तथा अनुकूलन (adaptation) के बीच चलने वाले अनवरत संघर्ष से प्रभावित होती है।[1]

डारविन के विकासवाद के सिद्धान्त ने जातियों की अपरिवर्तनशीलता की धारणा पर जो उनके आने से पहले चारों तरफ छायी थी जबर्दस्त प्रहार किया। डारविनवाद एक ऐसा सिद्धान्त था जिसने समस्त जीव-विज्ञान में क्रान्ति ला दी। इसके बाद विकासवाद का विचार और भी तीव्रता से प्रकृति के इतिहास की विभिन्न शाखाओं में प्रवेश करने लगा और वहाँ अपने सही होने के प्रमाण पाने लगा। डारविन के समकालीनों ने उनके सिद्धान्त की तुलना एक ऐसे बम से की थी जिसे उस महान् वैज्ञानिक ने पादरियों के शिविर में उछाल दिया था।

1 फ्रेडरिक एंगेल्स 'प्रकृति में द्वन्द्ववाद' मास्को 1954 पृष्ठ 280।

प्राकृतिक वरण के सिद्धान्त का डारविन के समकालीनों पर जो असर पड़ा था उसे डी॰ आई॰ पिसारेव (D. I. Pisarev 1840-1868) निम्न शब्दों में बताते हैं—"प्रकृति विज्ञान की लगभग सभी शाखाओं में डारविन के विचारों ने पूर्ण क्रान्ति कर दी है वनस्पतिशास्त्र प्राणिशास्त्र मानवशास्त्र पुराभूगर्भशास्त्र तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र (anatomy) तथा देहिकी (physiology) और यहाँ तक कि प्रायोगिक मनोविज्ञान (experimental psychology) को भी उनकी खोजों में वह पथ-निर्देशक सिद्धान्त मिल गया है जो अब तक के अलगों प्रसिद्ध तथ्यों को एक-दूसरे से जोड़कर सम्बद्ध कर देगा और अन्वेषकों को नई तथा और भी अधिक फलदायी खोजों के मार्ग पर खड़ा कर देगा।[1]

पिसारेव ने विकासवाद के सिद्धान्त को मनुष्य के सम्बन्ध में लागू किये जाने की बात का खासतौर से स्वागत किया क्योंकि उन्हें विश्वास था कि 'सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों प्रकार की बुद्धि की अधिकतम संख्या का सम्बन्ध मनुष्य से ही होना चाहिए, क्योंकि प्रकृति में वही सबसे जटिल, सबसे कम ज्ञात तथा साथ ही साथ सबसे अधिक मनोरंजक प्राणी है।'[2]

मार्क्स और एंगेल्स ने डारविन के सिद्धान्त को अत्यन्त ऊँचा स्थान दिया था क्योंकि प्रयोजनवाद (teleology) पर उसने घातक प्रहार किया था और जीवित प्रकृति की प्रयोजनशीलता के अधिभूतवादी सिद्धान्त को छिन्न-भिन्न कर दिया था। 1859 में एंगेल्स ने मार्क्स को लिखा था—"इस क्षेत्र में प्रयोजनवाद का अन्त अभी तक नहीं कुचला जा सका था पर अब वह कुचल दिया गया।" दो वर्ष बाद इसी विषय में लासाल को मार्क्स ने लिखा था— डारविन की पुस्तक बहुत महत्वपूर्ण है और इतिहास में वर्ग संघर्ष के सम्बन्ध में मेरे लिए एक प्राकृतिक वैज्ञानिक आधार का काम देती है।[3]

साथ ही साथ मार्क्सवाद के संस्थापकों ने डारविन के सिद्धान्त में कुछ महत्वपूर्ण दोष भी देखे थे। सामाजिक नियमों को जीवशास्त्र के क्षेत्र में आँख मूँदकर लागू करने और इसके विपरीत सामाजिक घटना-प्रवाहों की तरफ जीवशास्त्रीय दृष्टिकोण अपनाने के सम्बन्ध में डारविन की भूलों को खासतौर से उन्होंने स्पष्ट किया था। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी पादरियों तथा अर्थशास्त्री टॉमस माल्थस की प्रतिक्रियावादी विचारों के सम्बन्ध में डारविन का दृष्टिकोण एकदम प्रशंसात्मक था। टॉमस माल्थस के अनुसार मानव-जाति भोजन की उपलब्धि की गति से कहीं अधिक तेजी से बढ़ती जाती है जिसका अनिवार्य परिणाम होगा सबका सबके विरुद्ध संघर्ष अर्थात् जाति के

---

1 दिमित्री पिसारेव, 'चुने हुए दार्शनिक, सामाजिक तथा राजनीतिक निबन्ध', मास्को, 1958, पृष्ठ 304।

2 वही, पृष्ठ 235।

3 मार्क्स एंगेल्स, 'चुना हुआ पत्र-व्यवहार', मास्को, 1955, संख्या 52, पृष्ठ 151।

सर्वमान्य पूर्वज से हुई है—हम सबको गलाकर एक ही कड़िया में रख दिया जा सकता है।[1]

विकासवाद के नये सिद्धान्त के सम्बन्ध में काम करने के साथ-साथ डारविन ने मनुष्य की उत्पत्ति के प्रश्न के विषय में भी काफी विचार किया था।

एक प्रकृति-विज्ञ के रूप में डारविन के लिए मनुष्य की उत्पत्ति की यह समस्या सबसे उदात्त और चित्ताकर्षक थी यद्यपि—जैसाकि 1857 में अर्थात् विकासवाद के सम्बन्ध में उनकी मूल पुस्तक के प्रकाशित होने से दो वर्ष पहले उन्होंने वैलेस (Wallace) को लिखा था—यह समस्या पूर्वग्रहों से घिरी हुई थी।

मानव-उत्पत्ति-शास्त्र पर अपनी रचना के मत-विरोधी महत्व से डारविन भली भाँति परिचित थे क्योंकि 1860 में उन्होंने स्वयं लिखा था कि यद्यपि इस बात में विश्वास करने का—कि मनुष्य की सृष्टि एक विशेष दैवी चमत्कार से हुई है—सबको अधिकार है परन्तु वे इस चीज को मानने की कोई आवश्यकता नहीं समझते और अपने इस मत को छिपाना बेईमानी समझते हैं। दस वर्ष बाद 1870 में एक निजी पत्र में उन्होंने कहा था कि उस वर्ष के पतझड़ में जिस पुस्तक का प्रकाशन वे करने जा रहे थे उसमें प्रामाणिक रूप से मनुष्य के बारे में विचार किया गया है और इसलिए उन्हें यकीन था कि बहुत-से लोग उसे अधार्मिक कहकर उसकी निन्दा करेंगे।

इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है क्योंकि मनुष्य के वंशानुक्रम के सम्बन्ध में उनकी पुस्तक में हम पढ़ते हैं "जो भी आदमी एक असंस्कृत व्यक्ति की तरह प्रकृति के घटना-प्रवाहों को एक-दूसरे से असम्बद्ध मानकर सन्तुष्ट नहीं हो जाता वह इस बात पर अब और अधिक विश्वास नहीं कर सकता कि मनुष्य विश्व-सृष्टि का एक पृथक् कार्य का फल है।"[2] इसके अलावा डारविन के और भी कई दूसरे ऐसे वक्तव्य हैं जिनमें उन्होंने कहा है कि अपनी पुस्तक के द्वारा दैवी सृष्टि की कृतियों के सम्बन्ध में अन्ध विश्वासों का खंडन करके वे मानव-जाति की भारी सेवा करने की आशा रखते हैं।

डारविन की पुस्तक मनुष्य की उत्पत्ति तथा लिंग सम्बन्धी वरण् 1871 में प्रकाशित हुई थी। यह एक प्रकार से उनके मूल ग्रन्थ जातियों की उत्पत्ति (On the Origin of Species 1859) के एक परन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण वाक्यांश मनुष्य की उत्पत्ति और उसके इतिहास के विषय में प्रकाश डाला जाएगा'[3] की विस्तीर्ण व्याख्या थी।

मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में डारविन की पुस्तक के प्रकाशन से जबर्दस्त दिलचस्पी और भयंकर घृणा दोनों का ही तूफान एक साथ उठ खड़ा हुआ। इसके विषय में

1 1837 की नटबुक, चार्ल्स डारविन की जीवनी और उनके पत्र' खंड 2, लन्दन 1887 पृष्ठ 6।

2 चार्ल्स डारविन 'मनुष्य की उत्पत्ति' न्यूयार्क, 1901 खंड 3 अध्याय 21 पृष्ठ 781।

3. चार्ल्स डारविन 'जातियों की उत्पत्ति (On the Origin of Species) लन्दन 1950 अध्याय 14 पृष्ठ 44।

विलिबरियावाद ने लिखा था 1871 में मनुष्य की उत्पत्ति प्रकाशित हुई, और वह समाज के विरुद्ध तमाम रंगों के पादरियों और प्रतिक्रियावादियों के आक्रोश के जैसे एक नये विस्फोट का कारण बन गई। और आम उन्होंने कहा विज्ञान इस विचार से कभी समझौता नहीं कर सकता था कि जिन क्षेत्रों में प्रवेश करने का उसे (विज्ञान का—अनु॰) अभी तक समय नहीं मिला है उनके सम्बन्ध में अन्धमतों और कल्पित कथाओं ने जो कानून जबरदस्ती बना रखे हैं उनके द्वारा किसी भी समय मनुष्य-जाति के विकास को रोक दिया जा सकता है।

विज्ञान की पिछली ऐतिहासिक मंजिला में काफी आधार-सामग्री यदि इकट्ठी न हो गई होती तो मानव-उत्पत्तिशास्त्र की समस्या के समाधान के सम्बन्ध में डारविन सही दृष्टिकोण न अपना पाते। डारविन के काल से कुछ समय पहले इसी समस्या पर टामस हक्सले (1825-1895) तथा अर्नेस्ट हैकिल की आधारभूत रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं। डारविन के लिए सर्वाधिक महत्त्व की वस्तु हक्सले (1864) का काम था। विकासवाद के विचार के लिए, विशेष तौर से मानव-उत्पत्ति-शास्त्र के क्षेत्र में उसके लागू किए जाने के लिए, जो संघर्ष कर रहे थे उसमें हक्सले उनके सच्चे सहयोगी थे।

लगभग इसी समय प्रमुख फ्रांसीसी शरीर रचनाशास्त्री और मानव-शास्त्री पॉल ब्रोका (Paul Broca 18*4-1880) की रचनाएँ प्रधानवर्ग (primates) की शरीर रचना के तुलनात्मक अध्ययन तथा मानव-उत्पत्तिशास्त्र के विषय में प्रकाशित हुई थीं।

3 डारविन द्वारा प्रस्तुत की गई मनुष्य की वंशावली

मनुष्य की प्राकृतिक उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने कुछ प्रमाण डारविन ने भूगर्भशास्त्र से लिये थे। पृथ्वी के इतिहास तथा जीवन के विकास के सम्बन्ध में उसके साक्ष्य का उन्होंने इस्तेमाल किया था। इस क्षेत्र में चार्ल्स लियल की रचनाओं का अत्यधिक महत्त्व था यद्यपि लियल ने मनुष्य की महान् प्राचीनता को बहुत दिनों तक स्वीकार नहीं किया था। जहाँ तक प्राचीन मानव का सम्बन्ध है उसके प्रमाण के रूप में डारविन के समय में ही मानव-शास्त्र के पास जीवाश्मों के कुछ अवशेष मौजूद थे। ये थे जिब्राल्टर में प्राप्त हुआ एक कपाल (1848) निअण्डरथल में मिला एक कर्पर (cranium 1856) तथा लाशार्नेट्री में हासिल एक अधोहन्वस्थि (mandible 1866)। इन जीवाश्मों की आकृति-सम्बन्धी (morphological) विशिष्टताओं से स्पष्ट था कि आदिम अंग-रचना (बनावट) के शरीरों वाले प्राचीन लोगों का एक विशेष वृन्द अस्तित्व में रह चुका था।

लगभग इसी समय पत्थर के औजारों की जो अनेक पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोजें हुईं थीं वे भी कम महत्त्व की न थीं। पत्थर के इन औजारों की परम प्राचीनता को फ्रांस में जैक्स बूशे द' पर्थेस (1788 1859) ने प्रमाणित कर दिया था। इन खोजों ने सृष्टिवादियों

की स्थिति को—जो यह मानने के लिए तैयार नहीं थे कि पृथ्वी पर मनुष्य का इतिहास 6 से 7 हजार वर्ष से अधिक लम्बा है—अत्यधिक कमजोर कर दिया था।

अन्य प्रमाण डारविन ने तुलनात्मक शरीर रचनाशास्त्र (anatomy) तथा तुलनात्मक दैहिकी (*physiology*) के क्षेत्र से लिये। जीवों के अंग प्रत्यंग-विन्यास कार्य तथा विकास के आधार पर उनकी समानताओं तथा भिन्नताओं के बिन्दुओं को समझने में इन प्रमाणों से वैज्ञानिकों को सहायता मिली। भ्रूण विज्ञान (embryology) से उन्हें कुछ महत्वपूर्ण तथ्य मिले जो मनुष्य और पशुओं की सादृश्यताओं को प्रकट करते थे। उन्होंने वर्गीकारिकी (systematics) की भी सहायता ली तमाम आधुनिक तथा जीवाश्म प्राणियों को सादृश्यता की मात्रा के अनुसार उन्होंने विभिन्न वर्गों में बाँट दिया और फिर यह निर्धारित किया कि विभिन्न समूहों के बीच कोई सम्बन्ध है या नहीं। यह अन्तिम कार्य सम्पन्न होता है पुरा भूगर्भशास्त्र की सहायता से यानी जीवाश्म प्राणी और पादप जीवन (animal and plant life) उसके वितरण तथा विकास के अध्ययन की सहायता से।

विज्ञान की इन शाखाओं ने जो तथ्य प्रस्तुत किए वे उनको प्राणिविज्ञान परजीवि विज्ञान (parasitology) व्याधि विज्ञान (pathology) तथा मनोविज्ञान से प्राप्त तथ्यों के साथ मिलाकर जब डारविन ने एक साथ रखा तो विश्वासपूर्वक इस बात को वे कह सके कि मनुष्य के उससे ठीक पहले के पूर्वज तृतीय काल (tertiory period) के वे जीवाश्म वानर थे जो पुरानी दुनिया के उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में रहते थे। डारविन ने लिखा है *सिमीदी फिर (Simiidae=मेप्यवानर) दो विशाल शाखाओं में विभाजित* हो गए थे—नई दुनिया और पुरानी दुनिया के बन्दरों की शाखाओं में और फिर, एक बहुत लम्बे काल के बाद पुरानी दुनिया के बन्दरों में से विश्व के आश्चर्य तथा गौरव मानव की उत्पत्ति हुई थी।[1]

डारविन के अनुसार हमारे प्राचीन पूर्वज आदिम बन्दर पेड़ों पर गोलों में साथ *साथ रहा करते थे। उनके कान नोकीले थे उनके शरीर बालों से ढके रहते थे और नर* तथा मादा दोनों के दाढ़ियाँ होती थीं। इसके बाद के हमारे पूर्वज डारविन ने बताया मानव-सम वानर थे। इनमें से जिनके बारे में वे जानते थे उनमें से उन्होंने वृक्ष मानव (dryopthicus=ड्रियोपिथिकस मानव) का उल्लेख किया है। उनके प्राकृतिक परिपार्श्व में परिवर्तन हो जाने के कारण मुख्यतया जंगलों के कम हो जाने के कारण हमारे इन पूर्वजों को लुप्त हो गए मानव-सम वानरों को अपने जीवन के तरीके को बदल देना पड़ा था उन्हें पेड़ों को छोड़ देना और भूमि पर घास के मैदानों में रहने के लिए बाध्य हो जाना पड़ा था। बाद में वे एकदम खुले प्रदेश में निवास करने लगे थे।

इन उग्र परिवर्तनों का प्रभाव उनके बसने के तरीकों पर पड़ना अनिवार्य था अर्थ

1 चार्ल्स डारविन मनुष्य की उत्पत्ति' खण्ड 2, अध्याय 6 न्यूयार्क 1909 पृष्ठ 220-221।

चतुष्पदीय अर्ध-द्विपदीय चाल का स्थान केवल द्विपदीय चलन ने ले लिया। स्वाभाविक है कि यह एक लंबी प्रक्रिया थी परन्तु इसका महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ था कि हाथ जो अभी तक जमीन पर चलते समय सारी शरीर को सहारा देने का काम करते थे मुक्त हो गए थे। मनुष्य केवल एक सीधे चलनेवाले एप प्राणी के वंश में ही उत्पन्न हो सकता था जिसके हाथ मुक्त थे और जिसका मस्तिष्क उच्च रूप में संगठित था। अपने विकास क्रम के द्वारा मनुष्य ने तमाम जीवित वस्तुओं के बीच प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया। डारविन ने बताया कि अपनी विशिष्ट मानसिक क्षमताओं के कारण हमारा पूर्वज औजारों को बनाने तथा स्पष्ट वाणी का प्रयोग करने का काम शुरू करने में सफल हुआ था। इस तरह प्रकृति के ऊपर उसने अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी।

बाद के वैज्ञानिक विकास ने डारविन के इस मत की सचाई को सिद्ध कर दिया कि मनुष्य की उत्पत्ति जीवाश्म मानव-सम वानरों के क्रम में हुई है। परन्तु ये मनुष्य के केवल ठीक पहले के पूर्वज थे। जितना ही पीछे और, और अधिक पीछे हम जाते हैं हम देखते हैं कि मनुष्य के पूर्वज थे निम्न श्रेणी के बन्दर, लेमूर (lemurs=निम्न-कपि) निम्न प्लेसेन्टेलिया (placentalia=जरायुस्तनिन) धानी-थैली युक्त प्राणी (marsupial animals) उरग (reptiles) जल-स्थल चर द्विपनोयन (dipnoan) अथवा फुफ्फुस मीन शल्काकार मीन (ganoid fish) प्रासिका (amphioxus lanceolatus) की तरह के रज्जुमान प्राणी और अन्त में प्रासिकाओं तथा जलोद्गारियों (lancelets and ascidians) के सामान्य पृष्ठवंशीय पूर्वज। प्राणि-जीवन की सीढ़ी पर एकदम नीचे सबसे पहले जीवित प्राणी आते हैं और, इसलिए, मनुष्य के विकास के ये ही प्रारम्भ-बिन्दु हैं। मानवी भ्रूण-कोशिका एक हद तक एकदम प्रारम्भिक काल की जाति-इतिहासीय अवस्था की संक्षेपावृत्ति है।

लगता है कि अपने वैयक्तिक चरित्र के विकास (ontogenic development) के दौरान में गर्भ में मनुष्य अपने पूर्वजों के इतिहास की पुनरावृत्ति करता है। बहुत पहले 1844 में ही व्यक्ति-इतिहास (ontogeny) तथा जाति-इतिहास (phylogeny) के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में डारविन ने कई अत्यन्त दीर्घ प्रश्न बातें कही थीं। मुलर-हैकेल नियम (Muller Haeckel law) का उनमें पहले से पूर्वाभास मिलता है।

पशुओं से मनुष्य की उत्पत्ति के प्रमाणों के चुनाव तथा मनुष्य की वंशावली के विस्तृत विवरण की दृष्टि से भ्रूण-विज्ञान द्वारा प्रस्तुत की गई आधार-सामग्री को डारविन बहुत महत्त्व देते थे। कंचुकों (tunicates) तथा जलोद्गारियों के भ्रौणिक विकास के सम्बन्ध में अपने प्रारम्भिक भ्रूण रज्जु के साथ सामिरज्जु-सत्त्व प्राणियों (hemichordata) के नव प्राप्त नमूनों की भ्रूण-रचना के सम्बन्ध में तथा निम्न वर्ग के रज्जुमान प्राणियों (प्रासिका) के भ्रौणिक विकास के सम्बन्ध में आ० ओ० कोवालेव्स्की (1840-1901) ने जो कार्य किया था उसके लिए डारविन ने उसको पूरा श्रेय दिया

था। इन लोगों ने रज्जुमान प्राणियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में तथा अपृष्ठवंशियों और पृष्ठवंशियों के परस्पर सम्बन्ध की समस्याओं के सम्बन्ध में प्रकाश डाला था।

व्यक्ति-चरित्र की जाति चरित्र के साथ सम्बन्ध की पुन ग्रहण और उनके प्रतिसारण (recapitulation and disruption) की जटिल समस्या पर विशेष तौर से डी० आई० पिसारेव ने विचार किया था। 1864 में इन घटना-प्रवाहों का उन्होंने यथार्थतम् विवरण पेश किया था। उसी वर्ष उसके तमाम आवश्यक ब्यौरे के साथ इसी समस्या का विश्लेषण जर्मन वैज्ञानिक फ्रिट्ज मुलर (1821 1897) ने किया था।

एक दूसरे जर्मन वैज्ञानिक तथा डारविन के प्रमुख अनुयायी अर्नेस्ट हैकिल ने इस समस्या पर और भी प्रकाश डाला तथा 1866 म एक सामान्य जीवन-जनन नियम (general biogenic law) के रूप म उसे उन्होंने सूत्रबद्ध कर दिया। हैकिल ने कहा व्यक्ति-चरित्र-आनुवंशिकता के दैहिक कार्यों (पुनरुत्पादन) तथा अनुकूलन (आहार पोषण) के कारण होनेवाली जाति-चरित्र की एक संक्षिप्त और वेगवती संक्षेपावृत्ति है। एक जीव रूप अपने विकास के संक्षिप्त और वेगवान क्रम के अन्दर, रूप के उन सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों की पुनरावृत्ति करता है जिनके अन्दर म उसके पूर्वज आनुवंशिकता तथा अनुकूलन के नियमों का पालन करते हुए अपने पुरामूगर्भशास्त्रीय विकास के धीम और लम्बे मार्ग स गुजरे थे।[1]

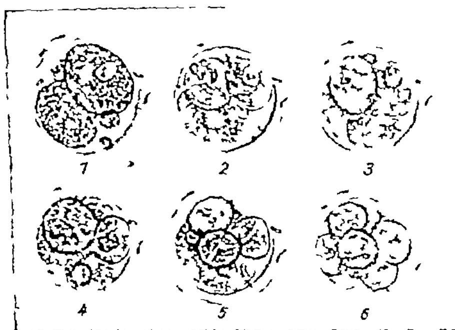
एक प्रमुख रूसी जीवशास्त्री ए० एन० सेवर्तसोव (1866-1936) ने दिखलाया है कि एक आधुनिक पृष्ठवंशी के भ्रूण का विकास इस बात को नहीं इतना स्पष्ट करता कि हमारे पृष्ठवंशी पूर्वजों के वयस्क रूप क्या थ जितना कि वह यह स्पष्ट करता है कि उनके भौणिक स्वरूप क्या थ —क्योंकि शरीर के ढाँचे में अनेक महत्त्वपूर्ण आनुवंशिक परिवर्तन भौणिक विकास के दौरान ही होते है। फिर ये परिवर्तन बाद की तमाम पीढ़ियों के वयस्क स्वरूपों की संरचना में प्रतिबिम्बित होते है।

लेकिन इसम सन्देह नहीं कि भौणिक स्वरूपों का अध्ययन अपने वयस्क पूर्वजों के स्वरूपों की संरचना की कई विशिष्टताओं का मूल्यांकन करने में भी हमारी सहायता करता है। ऐसा इसलिए खास तौर स होता है कि आकृति के लक्षणों का पुनरुत्पादन तथा प्रेषण भौणिक स्वरूपों में नहीं बल्कि वयस्क स्वरूपों मे ही होता है।

मानव शरीर का वैयक्तिक इतिहास मादा अण्डकोशिका से प्रारम्भ होता है। नर शुक्राणु द्वारा संसेचित तथा गर्भाशय की भित्तिका से चिपकी हुई यह अण्डकोशिका ही प्रारम्भिक मानव भ्रूण है। इसके अन्दर कोशिका के विभाजन की वह प्रक्रिया जिसका गर्भाशय का नाभि (fallopian tube) म (जिसम आम तौर से संसेचन की क्रिया घटती है) श्रीगणेश होता है जारी रहती है।

1 यह उद्धरण जर्मन हैकिल की रचना Generelle Morphologie der Organismen जिल्द 1866 पृष्ठ 300 से लिया गया है।

भौमिक विकास की प्रथम अवस्थाओं में कोशिका के विभाजन की जो प्रक्रिया होती है वह उस प्रक्रिया से मिलता जुलता है जिसके कारण सम्भवतः प्राग्जीव कल्प (proterozoic era) में एक-कोशीय से बहु-कोशीय जीव विकसित हुए थे। उस कल्प के अन्त के समीप (लगभग 60 00 00 000 वर्ष पूर्व) पृथ्वी की जो परिपाटी बनी थी उसकी तहों में कशेरुकियों या अपृष्ठवंशी प्राणियों के मुख्य वर्गों के अवशिष्ट प्राप्त हुए हैं।



चित्र 1 रीसस बन्दर (हिमालय बन्दर) के संसेचित अंडाणु (अण्डक) का विभाजन — दो (1) से लेकर स्तर (6) मौरुलावस्था (पुंजकस्था) तक। (के. गुन्त्ज 1932 के आधार पर।

मनुष्य की अपेक्षा बन्दरों के भौमिक विकास की प्रारम्भिक मंजिलें अधिक ज्ञात हैं। ल्युइस गुन्त्ज ने (1932 में) कपि भ्रूण को उसकी तब ऐसी अवस्था में पुनः निकाला था जबकि उसके अन्दर केवल कुछ ही कोशिकाएँ थीं। उसके बाद उनके भाजन को चार पुत्रीगत की अवस्था तक वे देखते रह सके थे (चित्र 1)।

मानव अण्ड-कोशिका के विभाजन की पहली मंजिलों की जानकारी हाल ही में प्राप्त हुई है। 1944 में हर्टिग रॉक तथा मिर्नामन (अमरीका) ने 2 12 68 और 60 पुत्रीगर्भ (blastomere) की चार अण्ड-कोशिकाओं का अध्ययन किया था।

मनुष्य के भ्रूण में पाँच या छ विभों के अन्दर ही मध्य-स्तर के खण्ड (mesodermal segments) उत्पन्न हो जाते हैं। मानवीय भ्रूण के पेशीतन्त्र के ढाँचे के अन्दर खण्डीय भवन का होना मात्र रज्जुमान प्राणियों की उस मंजिल का प्रमाण है जिससे उदाहरण के लिए पृष्ठ रज्जु वृक्क (kidney) के मात्र चिह्न (प्रति-पृष्ठ वृक्क) तथा पृष्ठीय आहार नाल के चिह्न विकसित हुए थे।

कुछ हफ्तों की अवस्था मे पहुँचकर मानव तथा दूसरे स्तन-धारियों के भ्रूण कुछ-कुछ मछली से मिलते-जुलते प्रतीत होते हैं। सिर तथा गर्दन के प्रदेशों के बाजुओं में गलफड़ों के चीर उत्पन्न हो जाते हैं। उसका संवहनीय तन्त्र (vascular system) ठेठ मछली के तन्त्र से मिलता-जुलता होता है हृदय के दो कक्ष होते हैं एक पृष्ठीय धमनी होती है और महाधमनी की छ चापों के रूप में रुधिर-वाहिकाएँ होती हैं जो गलफड़ों की चापों में जाती हैं। इसी मे भ्रौणिक शरीर की सामान्य आकृति—पूँछ गलफड़ के चीर तथा पृष्ठ-रज्जुओं के खानों को भी जोड़ दिया जाना चाहिए।

यह सब यह जाहिर करता है कि मनुष्य तथा दूसरे उच्चतर स्तनधारियों के सबसे आरम्भिक पूर्वजों में मछलियाँ भी थीं। विकास की 'मछली अवस्था' की कुछ खास विशिष्टताएँ मनुष्य में विपर्ययन (atavisms) की तरह रह सकती हैं—जैसे कि उसके स्वर-यन्त्र के साथ सम्बद्ध गले की नाल।

इस प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य के मस्तिष्क की बनावट बहुत आदिम होती है किन्तु तमाम स्तन-धारियों के मस्तिष्कों की तरह इसमें भी तीन भाग कोप—आगे का मध्य का और पीछे का—होते हैं।

आगे के कोप से घ्राण पिण्ड (olfactory lobes) बनते हैं और उनके पीछे अपने दो प्रमस्तिष्कीय अर्द्ध-गोलों (cerebral hemispheres) के साथ अग्र मस्तिष्क होता है। इन अर्द्ध-गोलों में से हरेक में एक-एक गुहा—पहला और दूसरा निलय—होती है और इनसे भी पीछे, एक गुहा तीसरे निलय तथा प्रपिच सिर और पीयकाय (epiphysis and hypophysis) के साथ मध्य-मस्तिष्क (diencephalon) होता है।

चतुर्गामी शरीरों में उसके ऊपरी तल पर मध्यकोप मध्य-मस्तिष्क (mesencephalon) मे विकसित हो जाता है। मध्य मस्तिष्क के अन्दर का माग प्रमस्तिष्कीय मार्ग पीछे के मस्तिष्कके अन्दर बन चौथे निलय (ventricle) के साथ तथा मस्तिष्क-पुच्छ (medulla oblongata) के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। मध्य कोप के निम्न भाग से प्रमस्तिष्क की ग्रीवाएँ निकलती है। अपने अर्द्ध-गोलों के साथ-साथ आगे और मध्य के कक्षों से विकसित होकर प्रमस्तिष्क बाहर निकल आता है। पीछे का कोप उन सेतुओं अनुमस्तिष्क तथा मस्तिष्क पुच्छों (जिनके अन्दर चौथा निलय है) को प्रस्तुत करता है जिनसे मिलकर पीछे के मस्तिष्क (rhombencephalon) का निर्माण होता है। मस्तिष्क पुच्छ, अथवा मीएमेस्सर्फमन उतल मेरु-रज्जु के साथ रहता है और चोथा निलय उतल मस्तिष्क-मेरु कुल्या (cerebrospinal canal) के साथ।

किसी भी अन्य जीवित पृष्ठवंशी की अपेक्षा मछली के मस्तिष्क की रचना अधिक आदिम-कालीन है। उसके मस्तिष्कीय अर्द्ध-गोले बहुत छोटे होते हैं और उनमें अति सूक्ष्म प्राण-पिण्ड होते हैं। उनके अर्द्ध-गोलों के बीच लगभग कोई जोड़-जोड़ नहीं होते। ये जोड़ उभयचरा (जल-स्थल चरा) वर्ग के तथा सरीसृपा (उरग) वर्ग के प्राणियों में होते हैं। और, ज्यों-ज्यों मस्तिष्क अधिक जटिल होता जाता है त्यों-त्यों वे अधिकाधिक स्तन धारी प्राणियों के अन्दर—जोकि सर्वाधिक उच्च रूप से सगठित पृष्ठवंशी हैं—पैदा होते जाते हैं।

मछली का मध्य मस्तिष्क मुख्यतया आँखों की एक जोड़ी (corpora bigemina) का बना होता है और वह उसके मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग (मस्तिष्कीय अर्द्ध गोलों के आकार से आठ या नौ गुना बड़ा) होता है। अग्रमस्तिष्क तथा मध्य-मस्तिष्क के बीच के अन्तर मस्तिष्क (diencephalon) के साथ दो आगे बढ़े हुए हिस्से होते हैं—ऊपर की ओर अस्थि सिर (epiphysis) और नाभ की ओर पोषकाय (hypophysis)।

अस्थि सिर एक ऐसा अंग है जो वैकासिक-इतिहास की दृष्टि से एक-दूसरे अंग पार्श्व की आँख (parietal eye) के साथ जुड़ा होता है। यह पार्श्व की आँख प्रकाश की किरणों में भेद कर सकती है और कुछेक पृष्ठवंशियों के अन्दर उसका एक अकेली इन्द्रिय के रूप में विकास हो जाता है। यह साइक्लो-स्टोमैटा (गोल मुखाकृतियों) के अन्दर तथा सरीसृपा (उरग) वर्ग में (स्फेनाडन फाइनोसिफैलिस तथा वारानस से) पाई जाती है। सबसे प्राचीन जीवाश्म मछलियों उभयचरा प्राणियों तथा उरगा के अधिकोश के कपालों में इस पार्श्व-नेत्र की जगह मिलती है। इससे हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उसका विकास हमारे दूर के पूर्वजों के अन्दर निम्न वर्ग के पृष्ठवंशियों के अन्दर हुआ था।

पोषकाय और भी अधिक दिलचस्पी की चीज है। गोल मुखाकृतियों (cyclostomata) में मिलनेवाली इस इन्द्रिय की बनावट के आधार पर रखने से (खास तौर से मीनकेथि-प्रजाति (myixne) के अन्दर मिलनेवाली उसकी उस बनावट के आधार पर रखने से जिसमें कि पोषकाय की नाल आँखों के सामने सिर में एक छिद्र के रूप में बाहर निकलती है और उसका दूसरा अन्दर का सिरा आहार-नली के साथ जुड़ा होता है) मालूम होता है कि इसकी उत्पत्ति भी बहुत प्राचीन है। पोषकाय आहार नाल (जिसमें कि मुँह भी शामिल है) तथा शकफड़ों के तंत्र के कपाल (cranial) भाग से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है उसका अग्र-भाग आद्य मुख की गुहा के एक भाग निकले हुए नाल मैडलस भाग है। पोषकाय के पीछे का भाग अन्तर-मस्तिष्क की नली के सिकुड़ने सकुचित सिर से बना है।

पोषकाय और अस्थिसिर की किसी समय अत्यन्त रहस्यपूर्ण अंगों में गिनती होती थी। अपने काल में डकार्ट का तो यहाँ तक विश्वास था कि अस्थिसिर में आत्मा निवास करती है। परन्तु उनके अन्दर रहस्य की कोई चीज नहीं है, व ऐसे अत्यन्त प्राचीन अंग

है जिसमें व्यापक परिवर्तन हो गया है और जो अब प्रन्थ-स्रावी ग्रन्थियाँ बन गए हैं। मनुष्य के अन्दर उसके विकास की जो विशिष्टताएँ मिलती हैं वे निम्नतम पृष्ठवंशियों के साथ उसके बन्धुत्व का प्रमाण हैं। कुछ वयस्कों में एक खुला हुआ पोषकाय प्रसिनी के शिखर की श्लेष्मिक झिल्ली (mucous membrane) तक जिसमें कभी-कभी मनुपूरक पोषकाय भी मिल जाते हैं, पहुँच जाता है। भ्रूण में से तीन से पाँच प्रतिशत के अन्दर, *कपाल की पार्श्व-अस्थि के भीतर के पोषकाय की डंडी के स्थान में एक प्राथमिक नली के रूप में एक कर्पर-प्रसिनी वाहिनी मिलती है* (विम्पैंजियों के कपालों में यह वाहिनी अधिक मिलती है)।

मानवी भ्रूण में अस्थिशिर (दूसरे आधुनिक पृष्ठवंशियों की ही तरह) पार्श्व के अंग के पीछे विकसित होता है उसके साथ उसका कुछ सम्बन्ध है जो अभी तक पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो सका है। रूसी प्राणिशास्त्री तथा शरीर रचनाविज्ञ बी० एस० श्मिकेविच का विचार था कि सम्भव है कि ये दोनों अंग हमारे दूर के पूर्वजों के अन्दर, निम्न वर्ग के पृष्ठवंशियों के अन्दर दृष्टि की इन्द्रियों के विकास से सम्बन्धित दो युग्म (जोड़) आँखों के अवशिष्ट चिह्न हों।

उभयचरा अवस्था में मनुष्य ने पैतृक-दाय (या विरसे) के रूप में क्या प्राप्त किया है ? कुछ विद्वानों का मत है कि मानवी भ्रूण की अँगुलियों के बीच के प्लावी जाल (natatorial web) का इसी अवस्था से सम्बन्ध है। पेट की भित्ति के निम्न भाग की ऋजु पेशियाँ (musculi recti) की कण्डराएँ (tendons) उभयचरा प्राणियों से ही विरसे में आई हैं।

मनुष्य की गृध्रसी-तन्त्रिका की धमनी (ischiadic artery) भी जो गौण नितम्ब रोहिणी का एक अंग है उभय-चरा प्राणियों से ही प्राप्त हुई है। वयस्क आदमी की कलाई के अस्थि-पंजर के अन्दर कभी-कभी जो एक मुक्त केन्द्रीय अस्थि पाई जाती है उसे सम्भवतः अपने उभयचरा पूर्वजों के शारीरिक ढाँचे की ओर हमारी आंशिक वापसी का एक उदाहरण माना जा सकता है।

मनुष्य के घ्राण-पिण्ड के अंग में उसके उभयचरा पूर्वजों से विरसे में (वंशागति में) मिली एक अन्य नली—जैकब्सन की इन्द्रिय होती है। नाक और मुँह की गुहाओं को जोड़ने वाली एक नली के रूप में यह पाँचवे महीने गर्भाशय में विकसित होता है। यद्यपि प्रसूति से पहले घटकर यह इन्द्रिय छोटी हो जाती है फिर भी वयस्क आदमी के अन्दर यह एक छोटी ऐसी अन्ध वाहिनी के रूप में मिलती है जिससे विशेष तन्त्रिकाओं के सिरे जुड़े रहते हैं। जुगाली करनेवाले पशुओं में (रोमन्थियों में) जैकब्सन की इन्द्रिय अत्यधिक विकसित रूप में दिखलायी देती है।

प्रसव में प्राचीन उभयचरा प्राणियों (amphibians) से विरसे में उनकी आँखों के ऊपर का (निमीलक) झिल्ली (nictitating membrane) भी एक शृंगिका (अर्ध शृंगिका) के रूप में आँख के समीप की त्वचा में एक पर्त के रूप में मानव न

प्राप्त की है। मनुष्य की आँख की यह पर्त आधुनिक उभयचरा प्राणियों उरगों पक्षियों तथा कुछ मछलियों में पाई जाने वाली आँखों के ऊपर की झिल्ली के अनुरूप है।

चित्र 2. मानव-गर्भ के प्रारम्भिक रोमों के समूहों का विन्यास-क्रम। चार महीने की अवस्था का चित्र दिया गया है। और रोमों के दिखाई पड़ रहे हैं। वास्तविक बड़े आकार में चित्र तैयार किया गया है। (एल और 1907 के 1936 से उद्धृत।)

अधिकांश स्तन धारियों में यह निमीलक झिल्ली घटकर बहुत छोटी रह गई है, खास तौर से ह्वेलों (cetacea) तथा अधिकांश प्रधानकों में। किन्तु दूसरों में उदाहरण के लिए, उरगों, बिल्लियों और किन्हीं बन्दरों में अब भी काफी विकसित रूप में वह मौजूद है। मनुष्य में मिलने वाली पर्त मूल वस्तु का एक अच्छा उदाहरण है।

अपने उरग (reptilian) पूर्वजों से भी कुछ विशेषताएँ मनुष्य ने उत्तराधिकार में पाई हैं। इन्हें गर्भाशय के अन्दर कुछ महीनों की अवस्था में सबसे आसानी से देखा जा सकता है। मस्तिष्क के विकास तथा शरीर के साथ अवयवों के सम्मिलन-योग (arti

culation) की बनावट और स्वरूप में ये विशेषताएँ देखी जा सकती हैं।

इसके अलावा भ्रूण में मकिल की उपास्थि (Mecke s cartilage) समझ की उस पहली चाप का अंग होती है। जो बाद में चलकर नीचे के जबड़े अथवा अधोहनु के रूप में विकसित हो जाती है दूसरे तमाम स्तनधारियों में जैसा होता है उसी तरह फिर यह उपास्थि दो श्रवणास्थियां (auditory bones) का अंग (मुग्दर) तथा निहाई (निघाति मस्तिष्क) का रूप ले लेती है। हमारे पूर्वजों में अस्थिकरण (हड्डी बनने) की एक क्रिया से वह गुजरी थी और अधोहनु अस्थि को कपाल के साथ जोड़नेवाली सूक्ष्म य ज रचनाओं में एक संयुक्त करनेवाली कड़ी बन गई थी—जैसा कि आधुनिक उरगों में दिखलाई देता है। तीसरी श्रवणास्थि पदाधान (stirrup) (पदाधानास्थिका) के समरूप भी द्विज (byoid) चाप से विकसित होती है। एक-न-एक रूप में यह उभय चरा प्राणियों तथा उरगों में पाई जाती है।

गर्भाशय के शरीर पर जिस भांति तीन-तीन और पांच-पांच के समूहों (चित्र 2) में बँधे हुए बाल मिलते हैं वे एक हद तक प्राचीन उरगों के—जो स्तनधारियों के पूर्वज थे—चमड़े के ऊपर के शल्कों (sca es) के विन्यास से सादृश्यता रखते हैं।

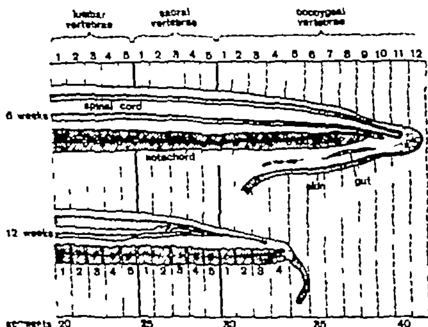
अन्त में नये-नये जन्मे बच्चों (तथा पांच वर्ष की आयु तक के शिशुओं) के शरीर के तापमान की नियामक व्यवस्था में एक दैहिकी-सम्बन्धी विशेषता मिलती है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि हमारे पूर्वज उरगों और स्तनधारियों के बीच के संक्रमणात्मक प्रकार के ऐसे प्राणियों से विकसित हुए हैं जिनमें केवल प्रारम्भिक रूप में एक ऐसा चेता वाहिकीय विन्यास (neurovascular mechanism) मौजूद था जो शरीर के ताप की ऊर्जा (तापोर्जा) के विस्तार और वितरण की व्यवस्था को नियन्त्रित करता था (स्लोनिम 1952)।

ऐसे बहुत-से तथ्य हैं जो यह साबित करते हैं कि मनुष्य के बाद के पूर्वज स्तनधारी थे जो लुप्त हो गए हैं। अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में मनुष्य के गर्भाशय के अमस्तिष्कीय सीताई चिकने (lissencephalic) होते हैं उसके मस्तिष्क का तल चिकना होता है और उसकी रचना निम्न श्रेणी के आधुनिक स्तनधारियों से मिलती जुलती आदिम होती है (यह विशेषता सम्भवतः मध्य-जीव काल (Mesozoic) से वंशावलि के रूप में मिली है)।

मनुष्य के व्यक्ति-वरित (ontogeny) में दूसरे भी ऐसे आदिम-कालीन लक्षण मिलते हैं जो इस बात के साक्षी हैं कि निम्न वर्ग के स्तनधारियों से उसका सम्बन्ध था। छः सप्ताह के मानव भ्रूण में स्तनकूट (mammaryridge) के मार्ग पर आदिम कालीन स्तन-ग्रन्थियों (mammary glands) के कई जोड़े होते हैं। हाथों की हथेलियों तथा पैरों के तलुओं को छोड़कर पूरा शरीर काफी घने परन्तु छोटे बाल के रोओं (भ्रूण-रोमों) से ढका रहता है। कोमल तालु (soft palate) के ऊपर स्पष्ट आकार के वैसे ही कटक (ridges) होते हैं जैसे विकसित रूप में आम तौर से

बन्दरों और सभी प्राणियों तथा अन्य स्तनधारियों में पाये जाते हैं।

छः और बारह हफ्तों के बीच भ्रूण में पुच्छीय प्रदेश (cauda region) अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है। आठ या नौ कशेरु-खण्डों (vertebrae) के साथ एक भ्रौणिक



चित्र 3 लम्बर ... प्रकार नली अनुत्रिक (कौक्सीजियल) प्रदेश तथा भ्रूण विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में उसका बदलना (6 से 12 सप्ताह तक) चित्र बहुत बड़े आकार में तैयार किया गया है। (फुलर्टन के आधार पर, ए० कीथ, 1933 से उद्धृत)।

रीढ़ (embryonal spine) के सिरे को उसमें देखा जा सकता है (चित्र 3)। इस अवधि के अन्त में पूँछ का बाहरी खण्ड छोटा हो जाता है और अन्दर की ओर सिमट जाता है। पुच्छीय प्रदेश के आन्तरिक भाग में दो से छः तक कशेरु-खण्ड गुदास्थिक (coccygeal) कशेरु-खण्ड बने रहते हैं। आमतौर से इन्हीं के मिलने से गुदास्थि (coccyx) बनती है जो आमतौर से नवयुवकों और नवयुवतियों में उनकी त्रिकास्थि (sacrum) में विलीन नहीं हो जाती।

ये तीन चिह्न लक्षण जो केवल अवशेष के रूप में अवशिष्ट रह गए हैं तथा कुछ व्यक्तियों में विकसित होते दीखते हैं तथा कई और लक्षण जो अपने पूर्वजों से विरसे में (वंशागति में) हमने पाये हैं केवल विपर्ययण (atavisms) (या पूर्वजों की आकृति के चिह्न) प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए उनमें से एक और ऐसा लक्षण यह है कि बहुतेरे मानव सदस्यों में श्रवण-पिण्ड (ear lobe) के कुण्डलाकार भाग (helix) पर

कोई पर्त (fold) नहीं होती। कुछ वयस्कों में कान का नुकीला आकार जिसे कोप मुखी (या बन्दर जैसा) कान (macacus-ear) कहा जाता है बना रहता है। क के पिण्डक का यह रूप मानव गर्भ में पाँच या छः महीने की अवस्था में मिलता है स्पष्ट है कि जीवाश्म निम्न वर्ग के ऐसे बन्दरों से जिनसे मे (वंशावलि में) हमें यह प्रा हुआ है जो कुछ बातों में कपि (macaque) से मिलते-जुलते हैं और हमारी वंशाव (genealogy) की एक प्राचीन-कड़ी है। कुण्डलाकार मंच पिण्डक के ऊपरी और बाह भागों पर जिन मनुष्यों में अपूर्ण होता है उनमें लगभग कुछ उठी हुई एक गाँठ का-सा प ले लेती है जिसे डारविन की गुटिका (Darwinian tubercle) के नाम से पुका जाता है।

स्तनधारी अवस्था से सम्बन्धित पुरखों की आकृति के जो शेष लक्षण मिलते हैं उन्ह हमें इन्हें भी शामिल कर लेना चाहिए। नरवानरों से विकसित कान की पेशियाँ जिन अपने कानों के पिण्डकों का हिलाना डुलाना मनुष्य के लिए सम्भव होता है एक सेन्ट मीटर से भी अधिक गहराई तक यथा के अन्दर कण्ठ के निलयों (laryngeal vent cles) का विस्तार अधिसंख्य (supernumery) स्तन ग्रन्थियाँ अथवा चूच (nipples) कई अतिरिक्त दाँतों के चिह्न शरीर और चेहरे पर बालों की अधिकत एक भौमिक पूँछ (रिमोरी 1936 मैस्टुर्स 1936)।

प्रत्येक मनुष्य में कृमिरूपी (vermiform) की एक परिशेषिका (appendi होती है यह प्रारम्भिक (rudimentary) अंग इस बात का अकाट्य साक्षी है कि मि स्तनधारी अवस्था में हमारे पूर्वजों के अन्दर एक काफी लम्बी उण्डुक (caecum अथवा अन्धी आँत होती थी। कुछ आधुनिक स्तनधारियों में उदाहरण के लिए कुन्त (rodents) तथा खुरिओं (ungulates) में उण्डुक के अन्दर पाचक क्रियाएँ ते से चलती दिखाई देती हैं।

कृमिपुच्छ की परिशेषिका मानव-शरीर के जो प्रारम्भिक अंग थे उनमें से को एक है। इस प्रारम्भिक अथवा अवशिष्ट अंग की विशेषता यह है कि रूप आकार त बनावट में एक बहुत बड़ी हद तक ये अलग-अलग होते हैं। मानव परिशेषिका की औ लम्बाई आठ या नौ सेन्टीमीटर होती है परन्तु कभी-कभी यह बीस या पच्चीस सेन मीटर तक लम्बी होती है, जैसी कि यह मानव-उमों में होती है। अत्यधिक घटकर या दो सेन्टीमीटर तक की भी यह रह जा सकती है। किन्हीं अत्यन्त विरल स्थितियों यह बिलकुल ही अनुपस्थित होती है।

मानव-पुच्छ परिशेषिका में लसीकोति ऊतक (lymphoid tissue) का बहुत प्रा होता है, खासतौर से युवा व्यक्तियों के अन्दर स्पष्टतया यह दूसरे ऐसे स्तनधारि की अन्धी आहार नली के किसी जगह की जगह पर बनी हुई है जिनके परिशेषिका होती सम्भव है कि यह कोई ऐसा कार्य सम्पन्न करती हो जो अभी तक अज्ञात है।

इस बात को हम मान सकते हैं कि विकास-क्रम में मनुष्य के पूर्वज पूर्व

अथवा आंशिक रूप से निम्न विशिष्टताओं को जो बैठ प गन्धबोध की तीव्र शक्ति को शरीर के ऊपर के बाल बाल आवरण का अधिकांश चर्मपेशियों (dermal muscles) पूंछ और परिग्राही पदों को प्राक मनी प्रकृति समस्त पयोहमुओं तथा आदिम रचना को अण्ड-कोषों को दो शृंगी गर्भाशय (uterus bicornis) का तथा कान के नुकीले सिरों को। मनुष्य के बाद पूर्वजों बन्दरों और लंगूरों (सिमा-कपियों) की माताओं की अधिकांश स्तनग्रन्थियां छोटी हो गई थीं क्योंकि वे कम बच्चे पैदा करने लगी थीं। डारविन का विश्वास था कि यह चीज इन पशुओं के नरों के अन्दर पारगमित हो गई थी।

जीवन के प्रारम्भिक दिनों में नये-नये जन्मे बच्चों के हाथ अत्यन्त परिग्राही (prehensile) होते हैं (चित्र 4)। यह इस बात का अत्यन्त प्रमाण है कि मनुष्य की उत्पत्ति वृक्षों पर रहने वाले किसी प्राणी से अर्थात् मानवी तथा कभी की बन्दर-वानरी (simian) अवस्था के किसी प्राणी से हुई है।



चित्र 4 नवजात शिशुओं के हाथों की पकड़ने की शक्ति।
(... 1891 के ... पर)

पशुओं के साथ मनुष्य के सम्बन्ध को सिद्ध करने के लिए तुलनात्मक व्याधि-विज्ञान (pathology) तथा परजीवि - विज्ञान (parasitology) से प्राप्त होने वाले प्रमाणों को डारविन अत्यधिक महत्त्व का मानते थे। आधुनिक परजीवि-विज्ञान द्वारा प्रस्तुत किए गए एक ऐसे प्रमाण को हम यहाँ दे रहे हैं जिससे डारविन के सिद्धान्त की पुष्टि होती है। पच्चीस इन प्रजीवाणुओं (protozoa) की जातियों में से जो बन्दरों के शरीर में परजीवी रूप से रहती हैं अठारह ऐसी हैं जो मनुष्य में भी पाई जाती हैं। दूसरे स्तनधारियों के सम्बन्ध में उनका कोई मेल नहीं तैयार किया गया है।

डारविन की पुस्तक के प्रकाशन से ठीक पहले लन्दन में बताया था कि इस बात

का बहुत भारी महत्त्व है कि मनुष्य तथा पशुओं की दैहिकी (physiology) के अध्ययन में प्रकृति के अन्दर मनुष्य के स्थान और उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में भौतिकवादी दृष्टिकोण की पुष्टि कर दी है। मार्क्स के नाम लिखे गए एक पत्र में उन्होंने कहा था

"इतनी बात निश्चित है अन्य प्राणियों से ऊपर उठाकर भाववादी ढंग से मनुष्य को उच्चासन पर बैठाने के प्रयत्नों को तुलनात्मक दैहिकी ने भयंकर तिरस्कार के साथ ठुकरा दिया है। हर कदम पर आदमी को दिखलाई देता है कि रचना की दृष्टि से शेष स्तनधारियों के साथ (मानव की) एकदम एकरूपता (सादृश्यता) है और मुख्य मुख्य विशिष्टताओं की दृष्टि से यह एकरूपता सभी पृष्ठवंशियों में और यहाँ तक कि—अधिक अस्पष्टता से—कीड़ों-मकोड़ों कठिनियों (crustaceans) फीता-कृमियों (tapeworms) आदि तक में दिखलाई देती है। परिमाणात्मक श्रेणी में गुणात्मक छलांग की हीगेलवादी बात भी यहाँ बहुत मजे में मौजूद है।"[1]

भावनाओं तथा उनको व्यक्त करने के साधनों के सम्बन्ध में जातीय इतिहास (phylogenic identity) द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले अभिन्नता के प्रमाण की ओर डारविन ने विशेष ध्यान दिया था। इस विषय पर उन्होंने एक विशेष प्रबन्ध लिखा था जो उनके मनुष्य की उत्पत्ति से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध था। जिस निबन्ध का मैं जिक्र कर रहा हूँ यानी मनुष्य और पशुओं में भावनाओं की अभिव्यक्ति (The Expression of the Emotions in Man and Animals) का जो 1872 में प्रकाशित हुआ था उसमें यह दिखलाने में वे सफल हुए थे कि यहाँ तक साधारण मानसिक क्रियाशीलता (psychic activity) की विशेषताओं का तथा भावनाओं को व्यक्त करने के साधनों का सम्बन्ध है जननिक अर्थ में genetically) अविच्छिन्न रूप से मनुष्य बन्दरों का सम्बन्धी है। डारविन का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह था कि मानव-जाति की नस्लों के दरम्यान किसी प्रकार के मानसिक भेद (psychic differences) नहीं है।

प्रारम्भिक तत्त्वों तथा प्राचीन रूपों (atavisms) के अध्ययन के साथ-साथ, इस तरह के तथ्यों के अध्ययन से डारविन को इस बात का पूरे तौर से विश्वास हो गया था कि मनुष्य की एक लम्बी वंशावली है जो इतिहास में बहुत पीछे पशु जगत् तक जाती है। इन चीज़ों ने इस बात का भी विश्वास उन्हें दिला दिया था कि प्रथम मानवों से पूर्व की आखिरी कड़ी थी यह जीवाश्म मानव-सभों की थी।

मनुष्य की वंशावली की प्राक्-मानवी (pre human) अवस्थाओं का निर्धारण करते समय डारविन के पास जीवाश्म स्तनधारियों की (जीवाश्म बन्दरों तक की) अस्थियों के केवल कुछ अल्प अवशेष ही थे। इसके बावजूद हमारे निकटतम पूर्वजों—शिशाकपियों तथा बन्दरों—के विकास की मुख्य अवस्थाओं की स्थापना उन्होंने काफी ठीक-

---

1 मार्क्स-एंगेल्स, 'चुना हुआ पत्र-व्यवहार' मास्को 1955 संख्या 44 पृष्ठ 182।

ठीक कर दी थी। मनुष्य के सीधे खड़े आसन (erect posture) के विकास की मुख्य विशेषताओं की रूपरेखा भी उन्होंने तैयार कर दी थी। यह आसन उन्हें उत्तर-मध्य काल के जीवाश्म वानरों (upper tertiaryfossil apes) में उनमें जो हमारे निकटतम पूर्वज थे—दिखलाई दिया था।

सीधे चलने के तरीके के शुरू होने के कारणों पर विचार करते समय डारविन का अनुमान था कि इस सम्बन्ध में भोजन में हुए परिवर्तनों का अत्यधिक महत्त्व था। ये परिवर्तन तब हुए थे जब खाने की तलाश में हमारे पूर्वजों ने जमीन पर अधिक समय बिताना शुरू कर दिया था। परन्तु डारविन कहते हैं कि सम्भवतः और दूसरे भी कारण रहे होंगे जिन्होंने पेड़ों के जीवन को जमीन पर के जीवन से बदलने के लिए तथा खुले मैदानों में दो परों से चलना शुरू करने के लिए उन्हें प्रेरित किया होगा।

डारविन ने कहा था कि वानर से मनुष्य का विकास कई विशिष्ट कारणों से आसान बन गया था। उच्च रूप से विकसित मस्तिष्क तथा अलग अलग हो गए (विभिन्नित) आगे और पीछे के हाथ और पैर (*घास की मुलाएं तो पेड़ों से लटकने तथा फलों और अन्य वस्तुओं को पकड़ने के काम के कारण पहले से ही उन अंगों में परिवर्तन हो चुकी थी*) और पोषण के पर मुख्यतया सहारे का काम देते थे) ऐसे ही विशिष्ट कारण थे। औजारों के आविष्कार में स्पष्ट वाणी के अर्पणाम में तथा आग जलाने के तरीकों को खोज निकालने के सिलसिले में सीधी खड़ी चाल उच्च-मानसिक विकास तथा गोलों में रहने की सहज प्रवृत्ति ने बहुत सहायता पहुँचाई थी और फिर, इन तमाम चीजों ने उनके आगे के विकास क्रम में मनुष्य को दूसरे प्राणियों से बहुत ऊपर उठा दिया था।

डारविन का विश्वास था कि हमारे पूर्वज जीवन-सकट के कारण पेड़ों से जमीन पर उतर आए थे और इस बात के लिए मजबूर हो गए थे कि या तो चार पैरों पर चलें (जैसा कि बैबूनों (दव-वानर) के पूर्वज चलते थे) अथवा दो परों पर चलें। इस विषय में सर आर्थर कीथ का मत मनोरंजक है—उनका विचार है कि सम्भवतः पेड़ों पर रहनेवाले हमारे पूर्वजों ने चलने की इस प्रकार की पद्धति विकसित कर ली थी जिसमें अपने पैरों के तलुए उन्हें पेड़ की घनी सीधी-साधी (क्षैतिज) फैली हुई बीच की शाखों पर रखने पड़ते थे और अपने हाथों से उन्हें ऊपर की शाखों को पकड़े रहना पड़ता था। चलने का यह तरीका उनके जमीन पर उतर आने पर हमारे पूर्वजों को द्विपदीय प्राणियों में बदल दे सकता था। कीथ के सुझाव पर, शाखों के ऊपर चलने के तरीके को ब्रूशिएशन (crutation) का नाम दे दिया गया था।

डारविन ने लिखा था कि केवल मनुष्य ही द्विपदी बन सका। बहुत काफी मात्रा में इसका श्रेय उसके पूर्वजों के यानी वानरों के हाथों और पैरों को है जिन्हें पेड़ों पर रहने समय ही विभिन्न दिशाओं में उन्होंने विकसित कर लिया था। सीधे खड़े होकर चलने का अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि भेदीकरण (defferentiation) की क्रिया तेज हो गई वानर का पैर—जो प्रारम्भिक रूप से पकड़ने का और प्रारम्भिक रूप से सहारा देने

का काम करता था—मानव-पैर में बदल गया जिसका केवल सहारे के रूप में इस्तेमाल होता है।

वे जीवशास्त्रीय कारक (biological factors) क्या थे जिन्होंने वानर के मनुष्य में संक्रमण में सहायता पहुँचाई थी? डारविन के मतानुसार वे मुख्य कारक ये थे प्राकृतिक वरण उपयोग और अनुपयोग का प्रभाव लैंगिक वरण। इनमें उन्होंने गुण परिवर्तन (mutation) परिवार-सम्बन्धी प्रभावों पुनरुत्पादन आनुवंशिकता अन्यो न्याश्रित परिवर्तन (correlative changes) तथा दूसरे ऐसे कारकों को जोड़ दिया था जिनकी तब तक खोज नहीं हुई थी। एक जीवशास्त्री की हैसियत से डारविन मनुष्य की उत्पत्ति की व्याख्या जीवशास्त्रीय नियमों के दृष्टिकोण से ही सर्वोत्तम रूप में कर सकते थे इसलिए इन नियमों की भूमिका और महत्त्व को उन्होंने जरूरत से ज्यादा बढ़ाकर बताया था। यह सही है कि उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया था कि मनुष्य और मानव-सम प्राणियों तक के बीच विशाल अन्तर है। फिर भी मानव-प्रजनन (anthropogenesis) की उस प्रक्रिया की यथार्थ धारणा व नहीं प्रस्तुत कर सके जो वानरों तथा समस्त अन्य प्राणियों के जीवशास्त्रीय विकास की प्रक्रिया से इतने तीव्र रूप में भिन्न है। इस प्रक्रिया को वानर के क्रमश मनुष्य में परिवर्तन की क्रिया के रूप में डारविन ने चित्रित किया था प्राचीन वानर तथा उस प्रथम मानव के बीच पर्याप्त रूप से तीव्र विभाजन-रेखा उन्होंने नहीं खींची थी जिसके उद्भव के साथ काम के एकदम प्रारम्भिक रूपों का आविर्भाव जुड़ा हुआ है।

मनुष्य के विकास की व्याख्या के सम्बन्ध में डारविन ने सामाजिक किस्म के प्रश्नों को भी बीच में लाने की कोशिश की थी। उदाहरण के लिए, नैतिक गुणों कर्त्तव्य भावना की अनुभूति तथा मनुष्य को विशिष्ट बनाने वाली अन्य बहुतेरी विशेषताओं के विकास के सम्बन्ध में मनुष्य को सामाजिक आदतों का जो प्रभाव पड़ता है उसके विश्लेषण कार्य को उन्होंने प्रमुख स्थान दिया था। परन्तु सामाजिक विकास की पूँजीवादी धारणा के कारण डारविन का दृष्टिकोण व्यापक न बन सका था और सामाजिक कारकों के प्रभाव का सही-सही मूल्यांकन वे न कर सके थे। मानव-प्रजनन के श्रम सिद्धान्त से तो वे बहुत ही दूर थे। मानव प्रजनन की समस्या के सम्बन्ध में डारविन ने जो समाधान प्रस्तुत किया है उसमें अपनी दोषों के बावजूद इस विषय में उनके द्वारा लिखी गई दो शास्त्रीय पुस्तकों के महान् महत्त्व में जरा भी कमी नहीं होती।

मनुष्य की प्राणविक सम्बन्धी वंशावली की जिसकी अन्तिम कड़ी उत्तर-मध्य-काल (upper tertiary period) के उच्च रूप से विकसित मानव-सम वानरों के जीवाश्म थे एक आम तस्वीर ही डारविन ने प्रस्तुत की थी। उनके वर्तमान-कालीन सम्बन्धियों के साथ परिचय प्राप्त करने से इन जीवाश्म वानरों का हम मानसिक चित्र बना सकेंगे और उनकी संरचना तथा जीवशास्त्रीय विशिष्टताओं के बारे में तथा उनकी जीवन-पद्धति उनके भोजन तथा उनके प्रचलन तरीके के सम्बन्ध में एक आम धारणा

प्राप्त कर सकेंगे। इस तरह से इस बात का निर्णय करना आसान होगा कि मनुष्य के निकटतम पूर्वज कौन थे। साथ ही साथ इससे इस प्रश्न का भी उत्तर मिल सकता है कि मानव-सम बानरों की केवल एक ही जाति से क्यों मनुष्य विकसित हो सका था जबकि सैकड़ों दूसरी जातियाँ मनुष्य का रूप ग्रहण करने में असमर्थ रही थीं।

2

मानव-सम वानर और उनकी उत्पत्ति

1 जीवित मानव-सम प्राणी

अपनी शरीर-रचना की दृष्टि से मनुष्य स्तनधारियों के वर्ग में आता है। स्तनधारियों के वर्ग में लगभग 3 750 जातियाँ हैं। तमाम स्तनधारियों की मुख्य विशेषताएँ जैसे कि स्तन-ग्रन्थियाँ, बालों का आवरण और शरीर के ताप की स्थिरशीलता मनुष्य में मिलती हैं।

स्तनधारी वर्ग तीन उपवर्गों में बँटा हुआ है (1) अण्डज (platypus, echidna) (2) मारसूपियल (शिशुधानी-कंगारू मुग्माशय) और (3) जरायुज (कुत्ता घोड़ा चूहा छछूंदर, हाथी बन्दर)। तीसरे उपवर्ग में जो तीनों वर्गों में सबसे बड़ा है ऐसे स्तनधारी होते हैं जिनकी मादाएं प्रसूति के समय जन्मी हुई जीव को बाहर निकाल देती हैं नाभि-नाल (umbilical cord) तथा उल्बीय (amnion) और रस प्रद (chorion=गर्भवेष्ठ) कोषों के साथ उसमें पूरा गर्भवेष्ठन होता है। मनुष्य *इस जरायुज उपवर्ग का प्राणी है और उसकी गणना प्रधानकों (Primates) में* होती है। प्रधानकों की श्रेणी को लिनायस ने 1735 में निर्धारित किया था और आज उसमें मानव पुरानी दुनिया और नई दुनिया के बन्दर टार्सीयर (पक्ष-मर्कट) तथा लेम्यूर (prosimians) आते हैं। कुछ प्राणिविदों तथा मानवशास्त्रियों की राय है कि तरु छछूंदरों (tupaiae) को भी प्रधानों की श्रेणी में शामिल किया जाना चाहिए और कीटाहारियों (इन्सेक्टीवोरा) की श्रेणी में से निकाल दिया जाना चाहिए।

अधिकांश प्रधानकों की विशिष्ट विशेषताएँ निम्न होती हैं—बड़े-बड़े कनपटी पिण्डों के साथ सापेक्ष रूप से एक बड़ा मस्तिष्क घ्राण के अपेक्षाकृत कम तथा दृष्टि के अधिक उन्नत पिण्ड और कई विशेष नालियाँ (उदाहरण के लिए, पशुकपाल पिण्ड के अन्दर की चूर्णमय दरार) पकड़ने के उपयुक्त हाथों और पैरों में पाँच अँगुलियाँ जिनमें पंजों की जगह नाखून होते हैं और हाथ-पैरों के अँगूठे दूसरी अँगुलियों का सामना कर सकते





चित्र 5 [illegible]

1 [illegible] ([illegible])।

2. [illegible] ([illegible])।

([illegible] (1) [illegible]
[illegible] 1931 (2) [illegible])





चित्र 6 नई दुनिया के बन्दर

1 सफ़ेद-मुख वाला कैरिकन (भिक्षु कपि) निवास-स्थान—निकारैगुआ कोस्टा रिका कोलम्बिया पेरू, ब्राज़ील।

2. साधारण मार्मोसेट (नखर-कपि) निवास-स्थान—पूर्वी ब्राज़ील।

(ग. हर्बिन 1812 के आधार पर)।

(opposable) हैं; एक मस्तक; बाहुओं और मेरु कॉलम का रक्षा करती हुई अर्द्ध गोलाकार अस्थियाँ; विभिन्न प्रकार के दांत; सरल स्वरूप का पेट; वक्ष में स्तन-ग्रन्थियों की केवल एक जोड़ी। प्रवानरों के एक ही बच्चा होता है (दो या तीन विरले ही होते



चित्र 7 गिब्बन (लम्ब-बानर)

1 श्याम की माता गिब्बन, अपने बच्चे आरसी के साथ। आरसी का जन्म अमरीका के सान डियागो पार्क्स (उद्यान) में 1938 में हुआ था।

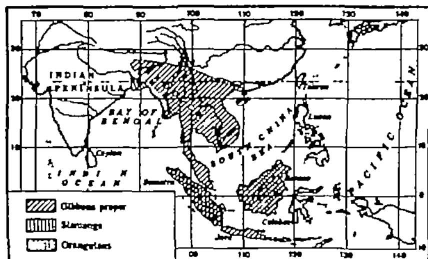
2 आपशुक्त पैर की अंगुलियों वाला गिब्बन अथवा श्यामांग सियामंग—सुमात्रा। (डी केम्पन 1944 (1) तथा मार मार ए० मस्स 1934 के आधार पर।)

हैं)। वे अधिकांशतया पेड़ों पर रहते हैं और उनके प्रचलन का तरीका है पेड़ों पर चढ़ना दौड़ना और शाखों पर कूदना-फाँदना। उनका भोजन मुख्यतया वनस्पति होता है, यद्यपि





चित्र 8 ओरंग उटैन (वन-मानुष)
1 नर, 2 मादा अपने बच्चों को साथ निवास-स्थान—सुमात्रा और बोर्नियो ।
(एस० जुकरमैन, 1933 (1) तथा आर और ए यर्क्स, 1934 (2) के आधार पर)



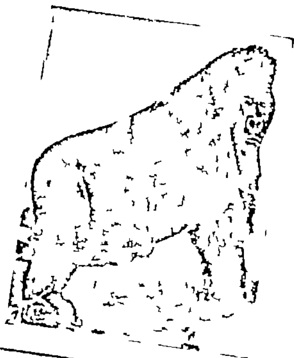
चित्र 9 गिब्बनों (शाखा-बानरों) तथा ओरंग-उटैनों (वन-मानुषों) के मिलने के स्थान का नक्शा
(ए० मेयू, 1920 के आधार पर। लेखक ने इसमें थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया है)

उनमें से बहुतेरे अपने भोजन में कीड़ों-मकोड़ों तथा दूसरे छोटे प्राणियों को भी शामिल कर लेते हैं। अपने को पेड़ों में जीवन के अनुकूल बनाने की प्रक्रिया के कारण प्रधानकों में वे शारीरिक विशेषताएँ पैदा हो गई है जो उनकी विशिष्टता है।

प्रधानकों का वर्गीकरण यदि मनुष्य के साथ उनसे सामीप्य की मात्रा के अनुसार किया जाए तो सबसे पहले मानव-सम आते हैं निम्न वर्ग के संकीर्णनासा (catarrhines) दूसरे स्थान में (चित्र 5) आते हैं अमरीकी बन्दर तीसरे स्थान में (चित्र 6) टार्सियर (पत्र-मर्कट) चौथे में लेमूर (निशाकपि) पाँचवें में तथा तरुक्षुप-वर्गी (tupaiidae) अन्तिम स्थान में। मानव और पुरानी दुनिया के बन्दरों की एक सादृश्यता उनकी नासा-पटी (nasal septum) अथवा विभाजन-रेखा का नई दुनिया के उन बन्दरों की तुलना में संकरापन है, जिन्हें यूरोप अमरीका और एशिया के संकीर्णनासा अथवा संकरी नाकवाले बन्दरों से अलग करने के लिए कभी-कभी विपिटनासा अथवा चौड़ी नाकवाला कहा जाता है। ऐसी विशेषताओं का एक संश्लिष्ट समूह है जो केवल मनुष्य में पाई जाती है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है—बहुत बड़ा और उच्च रूप से विकसित मस्तिष्क सबसे रूप से विकसित तथा पूरे तौर से (अँगुलियों का) सामना करने योग्य अँगूठे के साथ हाथ दो पैरों पर खड़ा होने और चलने की क्षमता जमीन पर मजबूती से टिकनेवाला प्रपादतलवी (अधकबार) लम्बी चाप के साथ पैर जिसका अँगूठा विकसित तो अच्छी तरह होता है परन्तु दूसरी अँगुलियों का सामना नहीं कर सकता। मानव-सम वानरों के परिवार में गोरिल्ला (भीम-वानर) चिम्पजी (मेघ्य वानर) औरंग-उटॅन (वन-मानुष) तथा गिब्बन (शाखा-वानर) सम्मिलित हैं (चित्र 7-9)। अफ्रीका के गोरिल्ला तथा चिम्पजी मनुष्य के साथ सबसे अधिक सादृश्यता रखते हैं। एशियाई मानव-सम खास तौर से गिब्बन अथवा 'कम वानर' उससे और अधिक दूर है। गिब्बनों को निम्न श्रेणी के सरकोपिथे क्वायड (पुच्छ-कपि की एक प्रजाति) की किस्म के बन्दरों से उच्चतर प्रकार के मानव-समों की ओर संक्रमण की एक अवस्था की तरह माना जाता है (वैबर 1936 नैस्तुख 1941)।

गिनोन (guenon) मकाक बैबून (श्व-वानर) तथा पर्ण-वानरों (leaf monkeys) जैसे पुरानी दुनिया के निम्न श्रेणी के बन्दरों से तमाम मानव-सम कई बातों में भिन्न होते हैं उनके पूँछ नहीं होती आसनकिण (ischial callosities) नहीं होती (सिवा गिब्बनों के) तथा गालों की थैलियाँ (cheek pouches) नहीं होतीं। निम्न श्रेणी के कुछ बन्दरों के रोए होते हैं और उनके बाल अक्सर उच्चतर प्रकार के वानरों की अपेक्षा अधिक मोटे होते हैं। गिब्बनों के न पूँछ होती है न गालों की थैलियाँ परन्तु उनके बाल बहुत घने होते हैं और उनके आसनकिण होती है।

दूसरे मानव-समों की अपेक्षा आकार, भार तथा मस्तिष्क के विकास में गिब्बन बहुत पीछे होते हैं। सबसे बड़े गिब्बनों तक का शरीर लम्बाई में एक मीटर से अधिक नहीं होता और उनका भार 18 किलोग्राम से कम ही होता है। उनके मस्तिष्क का



चित्र 10 गोरिल्ला (भीम-वानर)
1 पहाड़ों पर गोरिल्ला, मौंमा अमरीका के सान डियागो चिड़ियाघर में।
2. कुमारी पहाड़ी मादा गोरिल्ला, कुमारी काँगो (प्रायमटो) के जीव-विज्ञान की प्रयोगशाला फ्लोरिडा।
(वी. बेम्ले 1944 (1) तथा यार्क और य. यर्क्स 1934 (2) के आधार पर)

वजन केवल 100 से 115 ग्राम होता है जबकि गोरिल्ला के मस्तिष्क का वजन 500 से 600 ग्राम तक होता है और, अपवादिक उदाहरणों में 650 से 685 ग्राम तक होता है जो चिम्पैंजी अथवा औरंग-उटैंग के मस्तिष्क के वजन से अधिक है। गोरिल्ला का शरीर (चित्र 10) दूसरे मानव-समों की अपेक्षा लम्बा होता है। नर गोरिल्लों का कद 180 सेन्टीमीटर तक कुछ अपवादिक उदाहरणों में 2 मीटर तक भी ऊँचा होता है और उनका वजन 200 और 300 किलोग्राम के बीच होता है।

मादा गोरिल्ला छोटी और हल्की होती है—मादा औरंग उटैंग की तरह नर औरंग-उटैंग 150 सेन्टीमीटर तक लम्बे होते हैं और उनका वजन 100 से 150 किलोग्राम तक अपवादिक उदाहरणों में 200 किलोग्राम से भी ऊपर तक होता है नर चिम्पैंजी हल्के होते हैं और यद्यपि वे लम्बे 150 सेन्टीमीटर तक के होते हैं पर उनका वजन 60 या 70 किलोग्राम से अधिक नहीं होता (मादाओं का वजन 5 से 10 किलोग्राम और कम होता है)।

इन जानकारियों के आधार पर, बड़े मानव-समों अथवा उन बड़े बानरों से—जो ऊँचाई और वजन में मनुष्य के साथ काफी हद तक सादृश्यता रखते हैं—भेद करने के लिए गिब्बनों को हम कम या छोटे बानर कह सकते हैं। मनुष्य की औसत ऊँचाई को यदि हम 165 और 170 सेन्टीमीटर के बीच और उनके वजन को 65 और 70 किलोग्राम के बीच मान लें तो स्पष्ट है कि मनुष्य गिब्बनों की अपेक्षा चिम्पैंजी (चित्र 11 और 12) अथवा गोरिल्ला की किस्म के मानव-समों के अधिक समीप है। इसके अलावा दोनों लिंगों के गिब्बनों की ऊँचाई और वजन में मुश्किल से ही कोई फर्क है जबकि औरतें औसतन मर्दों से 10 सेन्टीमीटर छोटी होती हैं और लगभग 10 किलोग्राम हल्की होती हैं।

मानव-समों की आन्तरिक रचना की एक विशिष्टता स्वर-यन्त्र कोषों की जोड़ी (paired laryngeal sacs) है जो (कुछ गिब्बनों को छोड़कर शेष में) अत्यधिक विकसित होती है। ये कोष (sacs) स्वर-यंत्र (larynx) द्वारा उत्पन्न की जानेवाली ध्वनियों के अनुनादकों (resonators) के रूप में कार्य करते हैं। मानव-समों की भाषाओं की शक्ति के सम्बन्ध में उष्णकटिबन्धीय जंगलों के चिम्पैंजियों अथवा गिब्बनों के झुंडों द्वारा पैदा की जानेवाली कान-फाड़ने वाली चिल्लाहटों के सम्बन्ध में अनेक यात्रियों ने लिखा है। गोरिल्ला तथा औरंग-उटैंग भी गड़गड़ाहट भरी भयंकर गर्जना करते हैं।

मानव-समों के स्वर-यन्त्र सम्बन्धी कोष (laryngeal sacs) मनुष्य के उन स्वर यंत्रीय निलयों (ventricles) के अनुरूप होते हैं जो उसके गले में स्वर-रज्जुओं (vocal chords) के ठीक ऊपर स्थित होते हैं ये छोटे-छोटे भाग निकले हुए अब प्राथमिक स्वर-यंत्रीय कोष हैं जो लुप्त हो गए मानव-समों में अस्तित्व हुआ करते थे—वे मनुष्य की वंशावली का एक और प्रमाण हैं। निम्न श्रेणी के अधोनासा (catarrhine) बन्दरों में

के कोष नहीं मिलते—उनमें भिन्न उत्पत्ति के अयुग्मित (unpaired) कोष होते हैं।

आन्तरिक रचना की एक दूसरी विशेषता उण्डुक (caecum) की कृमि रूप आन्त्र पुच्छिका (vermiform appendix) है यह तमाम मानव-समों में मिलती है और मनुष्य की कृमिरूप आन्त्रपुच्छिका से लम्बी होती है। हाल की गवेषणाओं से पता



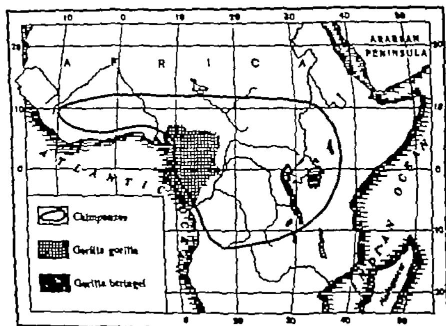
चित्र 11 गिनी का साधारण चिम्पैंजी (मिश्र-वानर)
1 नर (न्यूयार्क का चिड़िया घर), जे. हर्निकट, 1912 के आधार पर।
2 बलवक मादा (बन्दा मादा) का चित्र (फोटो) निवास-स्थल—भू-मध्यवर्ती अफ्रीका।

चलता है कि निम्न स्तर के बन्दरों में यह पुच्छिका (appendix) नहीं होती। यहाँ पर फिर हम देखते हैं कि मानव-सम वानरों से मनुष्य घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है।

मनुष्य और मानव-सम वानरों की बाह्य तथा आन्तरिक शरीर रचना सम्बन्धी स्पष्ट तथा बहुधा विस्मयकारी सादृश्यताओं के अतिरिक्त उनके बीच कई बहुत स्पष्ट अन्तर भी होते हैं जो बहुत बड़ी मात्रा में बसने के भिन्न-भिन्न तरीकों, आवास के स्वरूपों तथा जीवन के विभिन्न ढंगों का परिणाम हैं।

संक्षेप में, मानव-सम उच्चरूप से विकसित वानर हैं जो अपने उच्च कटिबन्धीय

जंगलों के जीवन के अनुकूल बन गए हैं। वहां पर वे शाखा-शाखा और पेड़-पेड़ घूमते चलते हैं अक्सर, केवल अपनी भुजाओं का इस्तेमाल करके और पैरों को अपने शरीर के नीचे सिकोड़े हुए एक-एक अङ्ग के सहारे झूलते हुए (brachiatung) वे आगे चलते हैं। जमीन पर ये वानर अधिकांशतया चारों हाथों-पैरों पर चलते हैं जिससे उनका शरीर एक अर्द्ध-खड़ी अवस्था में रहता है उनके आगे के अंग अथवा उनकी भुजाएं पीछे के अंगों अथवा पैरों की अपेक्षा अधिक लम्बी होती हैं, क्योंकि पेड़ों पर चलने के साधन के रूप में उनका इस्तेमाल वे अधिक फुर्ती से करते हैं।



चित्र 12 पान सैटिरस चिम्पैंजी (चिम्प वानर) गोरिल्ला गोरिल्ला (भीम-वानर) गोरिल्ला बेरिन्गेई अफ्रीका के मानव-सभों—चिम्पैंजियों तथा गोरिल्ला के निवास-क्षेत्र
(क्रमशः ए. श्वार्ज 1920 तथा एच. कूलिज 1929 के आधार पर। अन्त में लेखक ने भी कुछ चीजें जोड़ दी हैं)

मानव-सभों में केवल गोरिल्ला ही अधिकतर जमीन पर रहता है किन्तु पेड़ वासी उसकी कुछ आदतें अभी नहीं छूटी हैं खतरा होने पर गोरिल्ला पेड़ों पर चढ़ जाता है और सूर्यास्त होने पर दो शाखों के बीच एक नया घोंसला बनाता है और रात आराम से बिताने के लिए, उसे मुलायम पत्तियों घास और हरिता (moss) से सब ढक देता है।

चिम्पांजी और ओरांग-उटन भी घोंसले बनाते हैं। चिम्पैंजी दिन में कुछ घंटे आराम करने के लिए उन्हें जमीन पर बनाते हैं। दूसरे वानरों के विपरीत गिब्बन घोंसले नहीं

बनाते। मनुष्य के पूर्वजों में पेड़ों में घोंसले बनाने की प्रवृत्ति अथवा, चिम्पैंज़ी की तरह, दिन के लिए ज़मीन पर विश्राम-शय्या बनाने की प्रवृत्ति यदि पहले कभी थी तो आधुनिक मानव में उसका एक भी चिह्न शेष नहीं रह गया है। उसके प्रारम्भिक शैशव काल में भी उसका कोई लक्षण नहीं दिखलाई देता।

बड़े मानव-सम फूल-फल पत्तियों कोंपलों तथा पौधों के दूसरे भागों को खाते हैं। गिब्बन भी वनस्पति भोजन को अधिक पसन्द करते हैं, परन्तु तितली या चिड़िया को उसके पंख से पकड़ने में भी कभी-कभी सफल हो जाते हैं और चिड़ियों के घोंसलों में से उनके अण्डों और बच्चों को चुराकर खाने में उन्हें मज़ा आता है। बड़े वानर बड़े से-बड़े फलों को भी अपने सबल दाँतों से काट सकते हैं। उनके जबड़े बहुत मज़बूत होते हैं और, छोटे चिम्पैंज़ियों की तुलना में गोरिल्ला तथा औरंग-उटैन के जबड़े अधिक भारी भरकम तथा शक्तिशाली होते हैं।

मनुष्य और मानव-समों की शरीर रचना में जो व्यापक अन्तर हैं वे काफ़ी दूर तक उन अनेक सादृश्यताओं के नीचे दब जाते हैं जो वानरों के साथ मनुष्य की रिश्तेदारी का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। इस चीज़ की सच्चाई के सम्बन्ध में क़ायल होने के लिए इतना ही काफ़ी होगा कि रुधिर और उसके गुणों का प्रजनन (propagation) की ख़ास विशेषताओं का तथा व्यक्ति के विकास-क्रम का इत्मीनान अध्ययन कर लें। चिम्पैंज़ी और गोरिल्ला के रुधिर में पाई जाने वाली श्वेत रुधिर-कणिकाएँ (leukocytes) मनुष्य की श्वेत रुधिर-कणिकाओं से अत्यधिक मिलती हैं—उनके क्लीव रंगों तथा उपसी रंगों (neutrophils and eosinophils) का न्यष्टि विभाजन (nuclear segmentation) एक ही प्रकार का है उनमें बहुत कम खण्ड (segments) होते हैं, निम्न स्तर के बन्दरों में उनकी संख्या अपेक्षाकृत काफ़ी अधिक होती है।

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण मनुष्य और मानव-समों के रुधिर का जीव-रासायनिक सम्बन्ध (biochemical affinity) है। इस सम्बन्ध के उदाहरण ये हैं—उनके सरिम (सती) के साथ किए जाने वाले प्रयोगों में श्वित्ति (अण्डे की सफ़ेदी = albumin) का लगभग बराबर निस्सारण (precipitation) होता है तथा उनके रुधिर वर्गों ((blood-groups) में सादृश्यता है। अनेक अन्य अधिकांशतया गौण, स-जातिकीय कारकों (iso-serological factors) के अतिरिक्त, मानव प्राणियों में मुख्य तौर से चार रुधिर वर्ग मिलते हैं 1 (अथवा शून्य) 2 [अथवा 'ए' (A)] 3 [अथवा 'बी' (B)] और 4 [अथवा 'ए' 'बी' (A B)]। ये सब एक ही सम-सारिणी (uniform system) के हैं। प्रयोगों के अन्दर ये रुधिर वर्ग केवल मानव-समों में मिलते हैं यद्यपि इसी प्रकार के वर्ग पुरानी दुनिया के निम्न स्तर के कुछ बन्दरों में भी पाये गए हैं (तालिका 1)।

बनाते। मनुष्य के पूर्वजों में पेड़ों में घोंसले बनाने की प्रवृत्ति अथवा चिम्पैंजी की तरह, दिन के लिए जमीन पर विश्राम-शय्या बनाने की प्रवृत्ति यदि पहले कभी थी तो आधुनिक मानव में उसका एक भी चिह्न शेष नहीं रह गया है। उसके प्रारम्भिक शैशव काल में भी उसका कोई लक्षण नहीं दिखाई देता।

बड़े मानव-सम फूल-फल पत्तियों कोंपलों तथा पौधों के दूसरे भागों को खाते हैं। गिब्बन भी वनस्पति भोजन को अधिक पसन्द करते हैं, परन्तु तितली या चिड़िया को उसके पंख से पकड़ने में भी कभी-कभी सफल हो जाते हैं और चिड़ियों के घोंसलों में से उनके अण्डा और बच्चों को चुराकर खाने में उन्हें मजा आता है। बड़े वानर बड़े-से-बड़े फलों को भी अपने सबल दाँतों से काट सकते हैं। उनके जबड़े बहुत मजबूत होते हैं और, छोटे चिम्पजियों की तुलना में गोरिल्ला तथा ओरंग-उटैन के जबड़े अधिक भारी भरकम तथा शक्तिशाली होते हैं।

मनुष्य और मानव-समों की शरीर-रचना में जो व्यापक अन्तर है वे काफी हद तक उन अनेक सादृश्यताओं के नीचे दब जाते हैं जो वानरों के साथ मनुष्य की रिश्तेदारी का प्रमाण प्रस्तुत करती है। इस चीज की सच्चाई के सम्बन्ध में कायल होने के लिए इतना ही काफी होगा कि रुधिर और उसके गुणों का प्रजनन (*propagation*) की खास विशेषताओं का तथा स्मृति के विकास क्रम का ध्यान पूर्वक अध्ययन कर लें। चिम्पैंजी और गोरिल्ला के रुधिर में पाई जाने वाली श्वेत रुधिर-कणिकाएँ (*leukocytes*) मनुष्य की श्वेत रुधिर-कणिकाओं से अत्यधिक मिलती है—उनके क्लीव रज्यों तथा उपसी रज्यों (neutrophils and eosinophils) का न्यष्टि विभाजन (nuclear segmentation) एक ही प्रकार का है उनमें बहुत कम खण्ड (segments) होते हैं निम्न स्तर के बन्दरों में उनकी संख्या अपेक्षाकृत काफी अधिक होती है।

इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण मनुष्य और मानव-समों के रुधिर का जीव-रासायनिक सम्बन्ध (biochemical affinity) है। इस सम्बन्ध के उदाहरण ये हैं—उनके सरिम (मस्तु) के साथ किए जाने वाले प्रयोगों में स्थिति (अण्डे की सफेदी = albumin) का लगभग बराबर निस्सादन (precipitation) होता है तथा उनके रुधिर वर्गों ((blood-groups) में सादृश्यता है। अनेक अन्य अधिकांशतया गौण स-आविषीय कारकों (iso-serological factors) के अतिरिक्त, मानव प्राणियों में मुख्य तौर से चार रुधिर वर्ग मिलते हैं 1 (अथवा शून्य) 2 [अथवा 'ए' (A)] 3 [अथवा 'बी' (B)] और 4 [अथवा 'ए' 'बी' (A B)]। ये सब एक ही सम-सारिणी (*uniform system*) के हैं। प्रयोगकों के अन्तर से रुधिर वर्ग केवल मानव-समों में मिलते हैं, यद्यपि इसी प्रकार के वर्ग पुरानी दुनिया के निम्न स्तर के कुछ बन्दरों में भी पाये गए हैं (तालिका 1)।

सारिका 1
मनुष्य वानरों और बन्दरों के रुधिर वर्ग
(मोरेण्ट के अनुसार, 1954)

प्रधानक	0	ए	बी	ए बी
मनुष्य	+	+	+	+
चिम्पैंज़ी	+(13)	+(110)	—	—
गोरिल्ला गोरिल्ला	—	+ (13)	—	—
गोरिल्ला बैरिंगेया	—	—	+ (2)	—
औरंग-उटेन	—	+ (7)	+ (8)	+ (4)
गिब्बन	—	+ (1)	+ (6)	+ (1)
रीसस बन्दर(हिमालय कपि) (शाह में मिलनेवाले वर्ग)	+	+	+	+

(कोष्ठकों के अन्दर दिये गए अंक जितने व्यक्तियों की परीक्षा की गई है उनकी संख्या प्रदर्श है।

प्रो॰ ट्रौमसिमर (1931) ने वर्ग 2 (ए) के रुधिर वाले विभिन्न चिम्पैंज़ियों से उसी रुधिर वर्ग के मनुष्यों के अन्दर बहुत-से रुधिर संक्रमण (blood transfusions) कराए थे—वे सफल रहे थे और उनका कोई विपरीत असर नहीं पड़ा था। इससे बहुत पहले 1900 म मानव रुधिर को एक चिम्पैंज़ी के रक्तवाहिनीतंत्र (vascular system) के अन्दर इन्जैक्शन के द्वारा पहुँचाने के हांस-फ्रीडन्थल (Hans Friedenthal) द्वारा किए गए प्रयोग भी उतने ही सफल रहे थे। उनके मूत्र के साथ से रंग को देखते हुए, निम्न स्तर के बन्दरों पर किये गए प्रयोगों से ऐसा मालूम होता था कि बन्दरों के रुधिर में मानवी रक्तकोषों (erythrocytes) का घोलोपन (haemolysis) हो गया था इस लिए मानवी रुधिर उन पशुओं के विपरीत पड़ता था। इस चीज़ की उस समय पुष्टि हो गई जिस समय एक बैबून के पूरे रुधिर को मानवी रुधिर के सीरम (लसी) के साथ मिला दिया गया इससे बैबून के रुधिर के रक्तकोष (erythrocytes) नष्ट हो गए थे। इसी तरह का प्रयोग चिम्पैंज़ी के रुधिर के साथ जब किया गया तो उसके रक्तकोषों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

मनुष्य और मानव-समों की प्रजनन-क्रिया (propagation) में भी विस्मयकारी समानताएँ हैं। चिम्पैंज़ियों या गोरिल्लों के अण्डाणुओं (ovum) तथा शुक्राणुओं (spermatozoid) और मनुष्य के अण्डाणुओं और शुक्राणुओं में आकार अथवा रूप की दृष्टि से फर्क करना लगभग असम्भव है। मानव-सम वानर (चित्र 13) का गर्भ (foetus) दूसरे बन्दरों के गर्भों की अपेक्षा मानवी गर्भ के साथ कहीं अधिक सादृश्य रखता है, (हार्म्स, 1956 स्टार्क 1956)।

चिम्पैंज़ी की गर्भावस्था का काल (period of gestation) 210 से 252 दिन तक

का होता है औसतन यह लगभग 235 दिन होता है ओरंग-उटैन का यह काल लगभग 275 दिन होता है और मनुष्य में यह काल लगभग 263 से 280 दिन तक का होता है (सम्भवतः गोरिल्ला की गर्भावधि भी लगभग इतनी ही होती है)। इस दृष्टि से



चित्र 13 मानवों तथा मानव-सम के गर्भ
1 गोरिल्ला (भीम-वानर) 2. मनुष्य 3 चिम्पैंजी (शिम्प-वानर)
(एच० स्ट्रास 1915 (1) एल संकम्प 1905 (2) तथा ए शुल्त्स 1929
(3) के आधार पर)।

चिम्पैंजी निम्न स्तर के बन्दरों के ज्यादा नजदीक है क्योंकि उनकी मादा 210 दिन से अधिक गर्भवती नहीं रहती।

30 वर्षों में (आविभक्त) मेडिकल साइन्सेज अकादमी के सुखुमी में स्थित मेडिको बायोलाजिकल केन्द्र में लगभग 1 000 (एक हजार) निम्न श्रेणी के बन्दर पैदा हुए हैं जहाँ अनेकों प्रयोग किए गए हैं (बोरोनिन लापकोर मार्किम स्मिथ 1948 सोवियत संघ की मेडिकल साइन्सेज अकादमी के सुखुमी मेडिको-बायोलोजिकल केन्द्र की कार्यवाही खण्ड 1 1949 मासिस 1952 उटकिन 0131 एमी गुम्बाद्रानिसी 1933)। इस पूरे काल में तीन जोड़ जुड़वाँ पैदा हुए है, दो हमाड्रियास बेबूनों (hamadryas baboons) के जोड़ और एक रीसस बन्दर (rhesus monkey) का जोड़ा। मानव-सम वानर बन्दी दशा में बहुत ही कम बच्चे देते हैं। कोलम्बस ओहियो अमरीका में 22 दिसम्बर, 1956 को गोरिल्ला का एक बच्चा पैदा हुआ था। चिम्पैंजियों की गर्भावधि और प्रसूति के समय का 1915 से प्रेक्षण किया जा रहा है। बन्दी दशा में चिम्पैंजियों द्वारा बच्चे देने के लगभग 75 उदाहरण मिलते हैं इनमें दो बार जुड़वें बच्चे पैदा हुए थे (चित्र 14)। डाक्टरों और वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि गर्भावस्था तथा प्रसूति की दृष्टि से मानवों और





चित्र 14 नवजात चिम्पैंजी के जुड़वां बच्चे नर (दाहिनी तरफ) तथा मादा (बायीं तरफ) (नाग्को का चिड़ियाघर 1939)। मानव-शास्त्र के मानव संस्थान तथा संग्रहालय में प्रदर्शित।



चित्र 15. नवजात चिम्पैंजी (मिश्र-वानर) (मार तथा प मर्से, 1934 के आधार पर)

चिम्पैंजियों में बहुत समानता है। एक वयस्क चिम्पैंजी और वयस्क मनुष्य के मुकाबले में सिर पर बालों वाले चिम्पैंजी के एक नवजात बच्चे का नंगा शरीर मनुष्य के बच्चे के शरीर से कहीं अधिक मिलता है।

गौण अस्थिकरण (secondary ossification) के आधार पर देखने से पता चलता है कि गर्भाशय काल में मानव-सम के कंकाल का विकास निम्न स्तर के बन्दरों की अपेक्षा धीमा होता है और नवजात मानव शिशु के विकास से अधिक मिलता-जुलता है (शोल्केम 1949)। इस चीज का सम्बन्ध इस बात से हम जोड़ सकते हैं कि उदाहरण के लिए, गिनान (guenon) का बच्चा 2 या 3 महीनों से अधिक समय तक असहायावस्था में नहीं रहता परन्तु चिम्पैंजी का बच्चा इससे कहीं लम्बे काल तक 5 से 6 महीनों तक असहायावस्था में ही बना रहता है। चिम्पैंजी का बच्चा स्वतन्त्र रूप से घूमना-फिरना तभी शुरू करता है जब वह 6 महीने का हो जाता है (चित्र (16-18) और लगभग 3 वर्ष तक वह अपनी माँ से चिपका रहता है या उसके पास ही रहता है वह उसको दूध पिलाती है और वह उसके साथ एक ही घोंसले में सोता है।



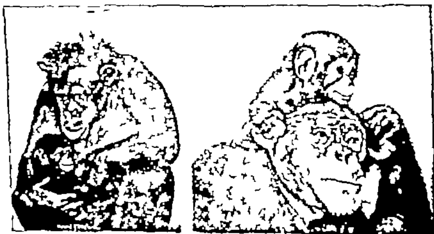
चित्र 16 बच्चा चिम्पैंजी (बायीं तरफ) तथा गोरिल्ला (बौना-वानर)
(एल. मरफीन्स 1954 के आधार पर)

चिम्पैंजी के बच्चे के दूध के (deciduous) बीस दाँतों के अन्तिम दाँत लगभग 12 महीने की अवस्था में निकलते हैं एक निश्चित काल (जो मानव-शिशु के पाँच वर्ष के काल से कम होता है) के बाद उनकी जगह स्थायी दाँत आ जाते हैं उसके सारे बत्तीसों दाँत दस वर्ष से कुछ ही अधिक समय के अन्दर निकल आते हैं। चिम्पैंजी के बच्चे का

वजन लगभग उसी तरह उम्र के साथ बढ़ता जाता है जिस तरह मानव-शिशु का (गुल्ड्स 1958)।

आठ से दस वर्ष की अवस्था में चिम्पैंजी की मादा रजोदर्शन (यौवनारम्भ) की अवस्था में पहुँच जाती है। नर लगभग 12 वर्ष की अवस्था में इस अवस्था में पहुँच जाता है। नर गोरिल्ला यौवनारम्भ (puberty) की अवस्था में चौदह वर्ष का होने पर या इसके भी बाद पहुँचता है। चिम्पैंजी का ऋतुचक्र (*menstrual cycle*) लगभग 30 दिन का होता है कुछ मादाओं में इसका काल इससे भी अधिक 40 दिन तक का होता है।

मादा चिम्पैंजी (तथा गोरिल्ला) मानव प्राणियों से इस बात में स्पष्ट रूप से भिन्न हैं कि ऋतुचक्र के दिनों में उनके "लैंगिक चर्म" (sexual skin) में जिसे ऋतुस्राव तल्प (menstrual cushions) कहते हैं अस्वास्थ्यकर सूजन आ जाती है। यही चीज



चित्र 17 मादा चिम्पैंजी अपने बच्चे जुरिलों के साथ 14 दिन और तीन महीने की अवस्था में (अमरीका के चिड़ियाघर में)।
(एम. जुकरमैन 1933 के आधार पर)

निम्न स्तर के बन्दरों बैबूनों (श्वा-वानरों) मैकाको (macaques) तथा मंगाबेयों (mangabeys) के मादाओं में भी देखी जाती है (नैस्तुक 1946 मसफ्लीयका तथा नैस्तुर्क 1958)। ओरंग-उटैनों तथा गिब्बनों में ऐसी कोई सूजन नहीं पैदा होती यद्यपि गर्भवती ओरंग-उटैन के चर्म पर उसी तरह की अन्य कोई चीज पैदा हो जाती है।

वानर-जीवन की अवधि (*span of life*) ठीक-ठीक रूप से नहीं मालूम है क्योंकि वन्य स्थिति में वानरों के जीवन की लम्बाई के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी मौजूद

है। याद रखना चाहिए कि वानर बीमारी के कारण, अधिकांशतया आहार-नाल (alimentary canal) तथा श्वसन अंगों (respiratory organs) की बीमारी के कारण अकाल ही मर जाते हैं। इस बात की एक रिपोर्ट मौजूद है कि एक मादा चिम्पांजी 60 वर्ष की अवस्था तक जीवित रही थी (आर० और ए० यर्क्स 1934 पृष्ठ 250)। अफ्रीका से लाए गए एक नर चिम्पांजी के बारे में भी विश्वस्त सूचना मौजूद है कि बन्दी दशा में वह 30 वर्ष तक जीवित रहा था और बहुत-से बच्चे छोड़ गया था (आर० यर्क्स 1945)। बन्दी दशा में गोरिल्ले 20 वर्ष से अधिक मुश्किल से ही जिन्दा रहे हैं। दो ओरंग-उटंग 35 वर्ष तक जिन्दा रहे थे और एक गिब्बन भी लगभग इतने ही लम्बे काल तक जिया था। इस गिब्बन के बारे में ज्ञात है कि जिस समय उसे पकड़ा गया था उस समय वह वयस्क था और 20 वर्ष तक पिंजड़े में रहने के बाद भी उसकी पेशियाँ उतनी ही मजबूत, उसके दाँत उतने ही तेज और उसका स्वभाव उतना ही दुर्दान्त बना रहा था जितना कि वह उस दिन था जिस दिन वह लाया गया था। बैबून बन्दी अवस्था में पचास वर्ष से अधिक तक जिन्दा रहे हैं। लेमूर भी दीर्घ-जीवी होते हैं और 25 वर्ष तक बन्दी-अवस्था में रखे गए हैं (हिल 1953)।



चित्र 18 वयस्क चिम्पांजी मादा (अपनी शिशुता का चित्रित पर, अमरीका। (रा० केल्न 1944 के आधार पर)

जो कुछ कहा गया है उससे हम तीन निष्कर्ष निकाल सकते हैं। एक, अधिकांश दूसरे स्तनधारियों (हाथियों और ह्वेलों को छोड़कर) की तुलना में प्राइमेट अधिक दीर्घजीवी होते हैं। दूसरे, प्राकृतिक परिस्थितियों में बड़े मानव-सम स्पष्टतया कई दशकों तक जीवित रहते हैं और गोरिल्ला तथा ओरंग-उटंग जैसे महाकाय जीव तो सम्भवतः 50 या 60 वर्ष तक या इससे भी अधिक लम्बे समय तक जीवित रहते हैं। तीसरे, मनुष्य की वर्तमान दीर्घायु की व्याख्या इस सुदृढ़ अनुमान के आधार पर की जा सकती है कि उसके निकटतम पूर्वज—उत्तर मध्य काल के जीवाश्म मानव-सम (upper tertiary fossil anthropoids) दीर्घजीवी हुआ करते थे। स्पष्ट है कि सामाजिक जीवन की अधिक अनुकूल परिस्थितियों के फलस्वरूप मनुष्य के जीवन की अवधि बढ़ गई है और अब मानव-सम की जीवन-अवधि से वह बहुत अधिक है—कभी कभी 100-130

वर्षों तक और इससे भी अधिक लम्बे काल तक वह पहुंच जाती है।

उपर्युक्त तथ्य जाहिर करते हैं कि टॉमस हक्सले का यह मत अब भी सही है कि शारीरिक दृष्टि से (anatomically) वानरों से मनुष्य जितने घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं उतने घनिष्ठ रूप से निम्न स्तर के चार पैरों वाले बन्दरों से वानर नहीं सम्बन्धित हैं।

चूंकि मनुष्य तथा उच्चतर वानरों के बीच जो घनिष्ठ सम्बन्ध है वह पुनरुत्पादन की इन्द्रियों (organs of reproduction) पर भी लागू होता है इसलिए बहुत दिनों से लोगों के दिमागों में यह विचार चक्कर काटता रहा है कि मनुष्य तथा उच्चतर प्रवानरों की अण्ड-कोशिकाओं (egg cells) तथा शुक्राणुओं (spermatozoid) को कृत्रिम वीर्यसेचन (artificial insemination) के द्वारा एक साथ लाकर शिशु उत्पन्न किया जाए।

मनुष्य और वानरों के रुधिर के सादृश्य से सम्बन्धित अपने प्रयोगों के आधार पर, हान्स फ्रीडेन्थल ने इस विचार को 30 वर्ष पहले ही रखा था। स्तनधारियों के बीच अन्तर्जातीय (interspecific) संकरण (crossing) के और इससे भी अधिक दूर स्थित प्राणियों के संकरण के अनेकों ज्ञात उदाहरण मौजूद हैं। बन्दी अवस्था में प्रवानरों के संकरण के उदाहरण काफी बड़ी संख्या में देखे गए हैं। इनके परिणाम स्वरूप न केवल अन्तर्जातीय (intespecific) बल्कि अन्तःप्रजातीय (intergeneric) संकरण भी पैदा हुए हैं। इस तरह के उदाहरण मैकाकों और पुरानी तथा नई दुनिया के बन्दरों में देखे गए हैं।

अन्तःप्रजातीय संकरण का एक उल्लेखनीय उदाहरण 1940 के आरम्भ में सुखुमी के मेडिको-बायोलोजिकल केन्द्र में देखने में आया था। एक मादा अबीसीनियाई बैबून के एक नर मकाक से एक मादा बच्ची ग्राइमा उत्पन्न हुई थी। यह मकाक स्वयं एक छोटी पूंछ वाले मकाक ('लापुन्दर') का एक मकाक रीसस के साथ संकरण कराकर पैदा किया गया एक वर्णसंकर था। ग्राइमा में अपने मां और बाप दोनों की स्पष्ट विशेषताएं मौजूद हैं। इन्हीं मां-बाप से जल्दी ही एक दूसरी वर्णसंकर सन्तान भी पैदा हुई थी—यह भी एक मादा थी जिसका नाम मार्तनिया था।

उक्त केन्द्र के बन्दरों के बीच अन्तर्जातीय तथा और अधिक दूर के संकरण से लगभग 60 वर्णसंकर सन्तानें पैदा हुई हैं (इस केन्द्र को अब प्रयोगात्मक व्याधि-विज्ञान तथा चिकित्सा का संस्थान कहा जाता है)। इनकी आनुवंशिक विशिष्टताओं (hereditary peculiarities) का तथा उनके आकृति-तत्त्व (morphology), दैहिकी (physiology) और व्याधिकी (pathology) का उक्त संस्थान के अन्दर अध्ययन किया जा रहा है।

सैद्धान्तिक रूप से इस बात को मान लिया जा सकता है कि मानव-वंशियों (hominids) का मानव-सम (anthropoids) के साथ उदाहरण के लिए, एक मादा चिम्पांजी के साथ संकरण कराया जा सकता है।

स्वाभाविक रूप से इस तरह के प्रयोग अत्यन्त कठिनाईपूर्ण होते हैं। इसके बिना भी जैसाकि प्रासंगिक रूप से हम देख चुके हैं, पशु जगत् से मनुष्य की प्राकृतिक उत्पत्ति के डारविनवादी सिद्धान्त की पुष्टि करने वाले विस्तृत न्यास (data) मानवशास्त्र के पास मौजूद हैं। इस सास्त्र में तृतीय और चतुर्थ कालों के वानरों और बन्दरों के उन बहुसंख्यक जीवाश्म अवशेषों को भी जोड़ दिया जाना चाहिए जिनका पता चल चुका है।

2 लुप्त हो गए मानव-सम

माना जाता है कि पुरानी दुनिया के बन्दर पूर्व-नर-मानुषों (prosimians) की स्थानीय किस्मों से मध्यकाल के पूर्वार्द्ध में पैदा हुए थे। यह समय प्राय तौर से पाँच कालों (युगान्तरों) में बाँटा जाता है। पहले के तीन काल पूर्व जीवकाल (palaeocene) आदि जीवकाल (eocene) तथा अल्प जीवकाल (oligocene) क्रमश लगभग 80 लाख 1 करोड़ 20 लाख तथा 1 करोड़ 20 लाख वर्ष लम्बे थे। इन सबके मिलने से तृतीयक काल (palaeogenic epoch) बनता है। अन्तिम दोनों काल मध्यकाल (miocene) तथा अतिनूतन जीव काल (pliocene) लगभग 1 करोड़ 60 लाख तथा 1 करोड़ 10 लाख वर्ष लम्बे थे तथा इनके मिलने से पश्चतृतीयक काल (neogenic) बनता है।

इसलिए तृतीय काल (tertiary period) लगभग 6 करोड़ वर्षों तक चला था। इस लम्बे काल में पूर्व-नर-मानुषों (prosimians) अथवा अर्द्ध-बन्दरों से बन्दर पैदा हुए और फिर उनका और आगे विकास हुआ। प्रवानरों के इस विकास के दौरान में पेड़ों पर रहनेवाले मानव-समों की कई जातियाँ पैदा हुईं इन वानरों की भूमि पर विचरण करनेवाली जातियाँ जिनमे मनुष्य के निकटतम पूर्वज भी थे बाद म आविर्भूत हुईं।

वानरों के विकास का अध्ययन करने के लिए हमारे पास केवल जीवाश्म अस्थियाँ (fossil bones) हैं और, दुर्भाग्य स ये अधिकांशतया जबड़ों तथा दाँतों की ही हैं कपालों तथा अन्य विभिन्न अस्थियों के जीवाश्म बहुत ही विरल हैं पूरे कंकालों की तो बात ही क्या करना है। इसमें केवल एक अपवाद है—ओरियोपिथकस बैम्बोली (Oreopithecus bambolii) का कंकाल जो बिलकुल हाल में इटली में मिला है (हुर्ज़ेलर, 1958)। परन्तु, जो जीवाश्म सामग्री मौजूद है वह हमें इस बात की थाह समझाने देने के लिए काफी है कि उच्चतर स्तर के बन्दर तथा वानर तृतीय काल और बाद म चतुर्थ काल में किस प्रकार विकसित हुए थे। इस सम्बन्ध में चर्वण दन्त (molar teeth) की असल बनावट और आकार अत्यधिक महत्त्व रखते हैं।

वानर के चर्वण दन्त बन्दर के चर्वण दन्तों स किस प्रकार भिन्न होते हैं ? चर्वण दन्तों की अच्छी तरह परीक्षा करने से पता चलेगा कि बन्दरों के विभिन्न वर्गों के दाँतों

के ऊपर के भाग भिन्न-भिन्न प्रकार से मस्तूर-सम्बन्धित होते हैं। उदाहरण के लिए, पुरानी दुनिया के निम्न स्तर के बन्दरों के नीचे के चबाने दन्तों के मुख्य चार कोने जोड़ों में [अधोमध्यशंकु (protoconid) अध-परशंकु (metaconid) के साथ आगे की तरफ और अधोनिशंकु (hypoconid) अधोन्तशंकु (entoconid) के साथ पीछे की तरफ] इस तरह जुड़े रहते हैं कि उनसे दाँतों के ऊपर इनामल की दो ऊँची मेड़ें (कटकें) बन जाती हैं। इस तरह की मेड़ें (कटकें) उच्चतर वानरों के चर्वणों के ऊपर नहीं मिलतीं उनके चर्वणों के ऊपर केवल एक ही अकेली नीची मेड़ (कटक) होती है जो दाँतों पर से तिरछी-तिरछी (diagonally=कोणाकोणि) जाती है। (देखिए पृष्ठ 33-34)

मनुष्य के दाँतों के ऊपर के कोनों की बनावट स्पष्ट रूप से यह बताती है कि वह मानव-सम किस्म के प्राणियों का रिश्तेदार है यद्यपि उनके मानवी रूप की कुछ अपनी खास विशेषताएँ भी हैं जो उत्तर तृतीय काल (upper tertiary) में विशाल वानरों की मुख्य शाखा से मनुष्य के अलग हो जाने के बाद विकसित हुई थीं। आधुनिक मानव के नीचे के चर्वणों के चार मुख्य अर्द्ध-चन्द्राग्र (cusp) अब में लगभग बराबर होते हैं और उनके बीच की दरारें क्रमानुसार साफ-साफ एक सलीब (cross) + चिह्न जैसी आकृति बनाती हैं।

एक दूसरा रूप कभी-कभी कुछ आधुनिक मानवी चर्वणों के ऊपर मिलता है जिसमें निम्न चर्वण दन्त का पहला आभ्यंतरिक अर्द्ध-चन्द्राग्र दूसरे की अपेक्षा अधिक अन्त में फँसा हुआ होता है। इस असमान बढ़ाव के कारण इन अर्द्ध चन्द्राग्रों के बीच की दरार (furrow) दाँत के पीछे उस दरार से आगे तक जाती है जो दोनों मुख्य बाहरी अर्द्ध चन्द्राग्रों अधोमध्यशंकु (protoconid) तथा अधोनिशंकु (hypoconid) के बीच से जाती है।

इस तरह की आकृति जीवित तथा लुप्त हो गए दोनों प्रकार के वानरों में एक समान मिलती है और फौरन यह जाहिर कर देती है कि मनुष्य के दाँतों की रचना में एक बर्बर वानरी आधार मौजूद है। दाँतों के अर्द्ध-चन्द्राग्रों की यह आकृति सबसे पहले ड्रायोपिथेकस (dryopithecus) में देखी गई थी। ड्रायोपिथेकस मनुष्य की वंशावली की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इस आकृति को ड्रायोपिथेकस आकृति का नाम दे दिया गया है। चूँकि वह मानवी दाँतों में पाई जाती है इसलिए इस बात का वह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाण है कि मनुष्य की उत्पत्ति वानरों के वंश से हुई है।

मनुष्य तथा पुरानी दुनिया के तमाम बन्दरों के दन्त-क्रम में 32 स्थायी दाँत होते हैं। जबड़े के हर आधे भाग में दो कृन्तक (incisors) एक रद-दन्त (canine) दो अग्रचर्वण दन्त (premolars) और तीन चर्वण दन्त (molars) होते हैं। मनुष्य के दाँत बहुत करीब-करीब एक साथ जुड़े हुए होते हैं ऊपर के रद-दन्तों तथा कृन्तकों के बीच और नीचे के उन रद-दन्तों तथा अग्रचर्वणों के बीच जो तमाम बन्दरों और वानरों की खास पहचान होते हैं—किसी प्रकार का विच्छेद (hiatus) अथवा दन्तावकाश (diastem) नहीं होता।

मनुष्य में इन रम्नाकारों की अनुपस्थिति का कारण यह है कि उसके रद-दन्त इतने छोटे हो गए हैं कि दूसरे दाँतों से ये आगे नहीं निकलते। परन्तु, रद-दन्तों की जड़ें लम्बी होती हैं। स्पष्टतया इसका कारण यह है कि हमारे पूर्वजों के रद-दन्तों के शिखर (crown) अपेक्षाकृत बहुत बड़े होते थे जिससे दूसरे दाँतों से वे आगे निकल जाते थे जैसाकि आधुनिक वानरों में दिखलाई देता है।

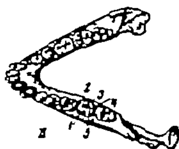
अंतिम तीसरे चर्वण दन्त अथवा अक्ल की दाढ़ें (wisdom teeth) मनुष्यों में बहुत नहीं बढ़ पाती और दूसरे दन्तों की अपेक्षा वे बहुत बाद में निकलती हैं। पहले और दूसरे चर्वण दन्तों की तुलना में इनकी बनावट कम साफ होती है, एक बड़ी हद तक वे अल्प-विकसित (केवल बीज रूप में) होती हैं। कुछ लोगों की अक्ल की एक या दो दाढ़ें कभी नहीं निकलती और विरले उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनमें कि उनमें से तीन या यहाँ तक कि चारों ही दाढ़ें नहीं निकलतीं।

वानर की किसी जाति से मनुष्य की उत्पत्ति का एक और प्रमाण दूध के दाँतों (milk teeth) के अध्ययन से मिलता है। मनुष्य के और पुरानी दुनिया के तमाम वानरों के दूध के दाँत केवल बीस होते हैं, जबड़े के हर आधे भाग में दो छेदक एक रद-दन्त और दो चर्वण दन्त होते हैं। दूध के दाँतों के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान देने की हैं: तमाम बच्चों के दूध के दाँतों में उनके चर्वण दन्तों के ऊपर के अर्द्ध-चन्द्राग्रों के बीच सिकुड़ी दरारें होती हैं ठीक उसी तरह की जैसी कि चिम्पेंज़ियों के अर्द्ध-चन्द्राग्रों के बीच होती हैं और नीचे के प्रथम चर्वणों में पीछे की तरफ स्थित एक विशेष अर्द्ध-चन्द्राग्र (paraconid) होता है। यह मनुष्य के बहुत दूर के पूर्वजों प्रारम्भिक मध्यकाल के बर्बर-वानरों (early tertiary prosimians) से विरसे में मिला है।

जीवाश्म वानरों में एक सबसे आदिम नमूना-था पैरापिथेकस (parapithecus) है। इस छोटे-से वानर का केवल नीचे का जबड़ा (हनु) तथा दाँत मिले हैं। इसका पता मिस्र में फ़ायूम के समीप एक कुछ अधिक बड़े वानर, प्रौपिलियोपिथेकस (propliopithecus) की हनु के साथ मैक्स श्लोसर को 1911 में मिला था (चित्र 19 और 20)। पैरापिथेकस का आकार यदि बिल्ली के बराबर था तो प्रौपिलियोपिथेकस के शरीर की तुलना एक छोटे कुत्ते के शरीर के साथ की जा सकती है।

उसके हनु (जबड़े) तथा दाँतों की बनावट तथा अन्य विशिष्टताओं को देखने से मालूम होता है कि पैरापिथेकस अधिक प्राचीन था और प्रौपिलियोपिथेकस अधिक विकसित था। इसके बावजूद उसके नीचे के चर्वणों के ऊपर के अर्द्ध-चन्द्राग्रों की शक्ल उसी तरह की है जिस तरह की बाद के मानव-सभों की है। इसमें वर्तमान काल के मानव सम भी शामिल हैं। इसका अर्थ हुआ कि उसकी शक्ल (pattern) प्रायोपिथेकस की शक्ल (आकृति) के समान है।

पैरापिथेकस की प्राकृतिक बनावट अपेक्षाकृत अधिक आदिम है—यह बात खास-तौर से इस चीज से मालूम होती है कि उसका रद-दन्त इतना प्रमुख नहीं होता। इसके





चित्र 19. पैरापिथेकस फ्रासी श्लोसर की मध्यओलिगोसीन जो फायूम, मिस्र के उत्तर अल्पनूतन स्तर में मिला था।
I और II—दाहिने पार्श्विक तथा ऊपर के दृश्य I—पश्चाग्रदंतक, 2—मध्य पश्चदंतक, 3—अग्रदंतक, 4—मध्य निम्नकूपक, 5—अधरनिम्नांक।
(प्राकृतिक आकार का $\frac{4}{5}$। एम० श्लोसर के आधार पर ओ० एबेल 1931 से उद्धृत)।





चित्र 20. प्रोप्लियोपिथेकस हेकेली श्लोसर की अधोओलिगोसीन जो फायूम, मिस्र के उत्तर अल्प-नूतन स्तर में मिला था।
दाहिना पार्श्विक पक्ष आंशिक रूप से इसको मूल की तरह बना दिया गया है। ऊपर के दन्त-श्रेणी (चर्वणक) से दीखते पश्च दन्त तक। मध्यओलिगोसीन—स्वाभाविक आकार। दन्त स्वाभाविक आकार का $\frac{4}{3}$
(एम० श्लोसर के आधार पर, ओ० एबेल 1931 से उद्धृत)

कारण पहले के उस दांत का जो दूसरे दांतों से प्रायः एक बड़ा हुआ रहता है स्वयं श्लोसर ने एक दन्त-दन्त समभ्रम का भूल की थी। इसीलिए, श्लोसर ने निम्न दन्त-सूत्र (dental formula) प्रस्तुत किया था—1 1 3. 3। इसकी वजह से पैरापिथेकस को उसने एक निम्न वर्ग के प्रधानक के टार्सियर के समीप रक्खा था। टार्सियर के साथ पैरापिथेकस एक और रूप में मिलता है उसके हनु (जबड़े) के दाहिने और बाएं अर्ध भागों के साथ एक काफ़ी बड़ा कोण (33) होता है। बाद में तुलनात्मक शरीर विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान तथा मानव-शास्त्री गुस्ताव श्वाल्बे द्वारा किए गए हनु के अध्ययन ने स्पष्ट कर दिया था कि फायूम बन्दर का दन्त-सूत्र भी वही था जो पुरानी दुनिया के तमाम बन्दरों का था—2. 1 2. 3। उच्चतर प्रधानकों के आदिम स्वरूपों में हाल में एक नया प्राणी जुड़ गया है। यह है नया खोजा गया आल्मोगेवर (Almogaver) 'वानर जो पहाड़ों से उतरता है'। यह पाइरेनीज (फ्रांस और स्पेन के बीच की पर्वत

मासा) के दक्षिण इलाकों के प्रादिजीवी (eocene) स्तरों मे मिला है। इसके नीचे के जबड़े (हनु) के एक भाग का उसके दाँतों के साथ क्रूसाफोन्ट (crusafont) तथा विल्लाल्टा (Villalta) ने अध्ययन किया है और उसका वर्णन प्रस्तुत किया है (1954)। एम्फ़ीपिथेकस (amphipithecus) का पता कुछ पहले (कोलबर्ट 1937) प्रादिजीवी स्तरों में बर्मा के मोगौग नाम के कस्बे से 60 किलोमीटर के फासले पर स्थित एक स्थान में मिला था। बन्दरो और वानरो के वंश को समझने मे इस स्वरूप से बहुत सहायता मिलती है।

जीवाश्म मानव-सर्मों के विकास की नई अवस्था का प्रतिनिधित्व प्रोपलियोपिथेकस करता है। यह गिब्बन से कुछ-कुछ मिलता है परन्तु इसका शरीर उससे छोटा है। कुछ विद्वानो का विश्वास है कि मानव-सम वानरो और मनुष्य के विकास क्रम में प्रोपलियोपिथेकस एक गिब्बन-सम अवस्था का द्योतक है। जो भी हो इस बात को स्वीकार करने में विद्वज्जन बहुत कुछ एक राय हैं कि प्रोपलियोपिथेकस आधुनिक मानव-समो और मनुष्य का एक दूर का सामान्य पूर्वज है। विकास की विभिन्न दिशाओं में जीवाश्म मानव-सर्मों का उद्भव उन वर्गों से हुआ था जिनका प्रतिनिधित्व पैरापिथेकस तथा प्रोपलियोपिथेकस करते थे।

प्रोपलियोपिथेकस से आधुनिक गिब्बन के विकास क्रम मे ही बीच में यह प्लियोपिथेकस आता है जिसके हनु का पता सबसे पहले फ्रांस मे मिला था (लार्टेट 1837)। जीवाश्म मानव-सम की यह सबसे पहली खोज थी और उसे ढूंढ निकालने का सम्मान फ्रांसीसी मानवशास्त्री एडुअर्ड लार्टेट को प्राप्त है। दूसरे मानव-समों की ठुड्डी की ही तरह प्लियोपिथेकस की ठुड्डी काफी पीछे हटी रहती है। उसके दन्त-वल्क प्रोपलियोपिथेकस के दन्त-वल्कों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होते हैं। आमतौर से उसका हनु गिब्बनों के हनु से स्पष्टतया इतना सादृश्य रखता है कि अब इसमें सन्देह नहीं रह गया कि इन छोटे-छोटे मानव-समों की वंश-शृंखला की प्लियोपिथेकस एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। प्लियोपिथेकस के बारे मे अब फ्रांस जर्मनी स्विट्जरलैण्ड और मगोलिया में प्राप्त हनुओं तथा दाँतों से जानकारी प्राप्त हो चुकी है।

प्रोपलियोपिथेकस और प्लियोपिथेकस उन घने और विपुल उष्णकटिबन्धीय जगलो में रहते थे जो करोड़ो वर्ष पहले यूरोप एशिया और अफ्रीका के विशाल भू-भागों पर फैले हुए थे। खाद्य वस्तुओं की प्रचुरता होने तथा पेड़ो के ऊपर माँस भक्षी प्राणियों की संख्या के अपेक्षाकृत कम होने की वजह से निम्न तथा उच्च वर्गों के बन्दरो के जीव शास्त्रीय विकास मे सहायता मिली थी (दक्षिण अमरीका के बन्दरो का भी इसी काल में प्रगतिपूर्ण विकास हुआ था)।

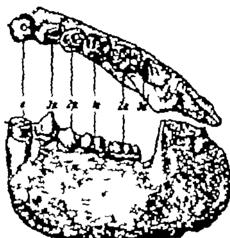
हम मान लेते हैं कि इस काल मे उच्च वर्ग के बन्दरों ने जो प्रगति की थी उसमें निम्न चीजें भी शामिल थीं (1) बाहुओं से लटककर चलने और झूमते हुए चलने की तरह के प्रचलन के नये तरीकों का स्वामीकरण (2) दृष्टि तथा स्पर्श की इन्द्रियों का

(स्पर्श की इन्द्रियों का मुख्यतया हाथों की हथेलियों पर) विकास (3) अधिक प्रजनन (procreation) (4) समूहों में रहने की जीवन-पद्धति का विकास (5) महाद्वीपों के विशाल क्षेत्रों पर भारी संख्या में अभिष्ठान (6) नई जीव जातियों का उदय (7) निरन्तर परिवर्तित होनेवाली प्राकृतिक परिस्थितियों में अनुकूलता की नई क्षमताओं का प्रादुर्भाव तथा पूर्णता की ओर उनका अधिकाधिक विकास। मानव-समों में यह प्रगति सम्भवतः निम्न चीजों में व्यक्त हुई थी—(1) परिवेश-सम्बन्धी प्रभावों के कारण अधिक गत परिवर्तन (mutation) (2) शरीर के आकार की अधिक वृद्धि (3) मस्तिष्क का विकास (4) तन्त्रिका-तन्त्र (nervous activity) की उच्चतर क्रियाशीलता का विकास (5) मातृत्व-जात सम्बन्धी अन्तःप्रवृत्ति के अधिक जटिल स्वरूपों का विकास (6) घोंसला बनाने की प्रवृत्ति (बड़े मानव-समों के अन्दर) का उदय।

मध्य नूतन युग के स्तरों में पाये गए मानव-समों के जीवाश्म अवशेष जिनकी अवस्था 2 करोड़ 0 लाख वर्ष से लेकर 1 करोड़ 20 लाख वर्ष है उनके शरीर पर बढ़ते हुए आकार के साक्षी हैं। इन जीवाश्म अवशेषों में सबसे पहले और सबसे प्रमुख ड्रायोपिथेकस है इसके अधोहनु, दाँत तथा अंस-फलक (shoulder blade) का एक अंश हमारे पास मौजूद है।

ड्रायोपिथेकस का पहला अधोहनु (चित्र 21) 1856 में फ्रांस में मिला था। उसका वर्णन ल्यूवर्ड लार्टेट ने किया था। यह प्लियोपिथेकस के अधोहनु से अधिक बड़ा अधिक भारी भरकम और अधिक ऊँचा है उसके रद-दन्त आधुनिक मानव-समों के रद-दन्तों की ही तरह एक शक्तिशाली अस्त्र का काम देते हैं। चर्वणों के ऊपर अग्र-चर्वणों की वही शक्ल (आकृति) है जो प्राय ड्रायोपिथेकसों के वंशजों में अर्थात् मुख्यतया आधुनिक महा वानरों में पाई जाती है (चित्र 23)।

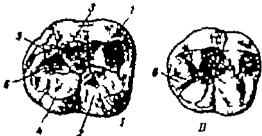
इस शक्ल (चित्राकृति) का उल्लेख हमने इसलिए किया है कि यह न केवल वर्तमान काल के मानव समों में बल्कि कभी-कभी मनुष्य में भी पाई जाती है।



चित्र 31 ड्रायोपिथेकस फोन्टानी लार्टे की अधोहन्वस्थि—1 बायाँ पार्श्व रूप 2—ऊपरी रूप आकार असल का 7/8 है।
(जो एबिल 1931 के आधार पर)

हम दोहराते हैं कि दूसरी शक्ल स्वस्तिक रूप की शक्ल (cruciform) मनुष्य में इसलिए विशेष रूप से मिलती है कि उसकी बनावटी आमतौर से

और चर्वण दन्त खासतौर से छोटे हो गए हैं। उसके चारों अर्धचन्द्राग लगभग बराबर-बराबर स्थान लेते हैं और उनके बीच लम्बी सीधी (अनुदैर्ध्य तथा तिरछी तिरछी अनुप्रस्थ) दरारें होती हैं। मानव-सभों में आगे का आन्तरिक अर्ध-चन्द्राग (अग्र पराभ्रंकु = metaconid) पीछे के अर्ध-चन्द्राग (अधान्त भ्रंकु = entoconid) से बड़ा होता है जिसके कारण उनके बीच की दरार उस दरार के सामने नहीं होती जो दोनों बाहरी अर्ध-चन्द्रागों को (आगे के और पीछे के अर्थात् अधोमध्यभ्रंकु तथा अधो निम्नभ्रंकु को) एक-दूसरे से अलग करती है। ब्योरे की यह सूक्ष्म-सी लगनेवाली चीज प्रमाणकों के विकास तथा सर्वोत्तम प्रमाणक—यानी मनुष्य के विकास की धारणा का निर्माण करने के सम्बन्ध में अत्यधिक महत्त्व की सिद्ध हुई है।



चित्र 22 नीचे के चर्वणों का चेवण तल—
I. ड्रायोपिथेकस फ़िओर्मेन्सिस किस्म के तीसरे निम्न चर्वण का ड्रायोपिथेकस की विन्यासी, II आधुनिक मानव में पाए जानेवाली स्वस्तिका की आकृति।
(1) अग्रोमध्यभ्रंकु (2) अग्र-पराभ्रंकु, (3) अधो-निम्नभ्रंकु, (4) अधोन्तभ्रंकु (5) अधो निम्नतृतीय भ्रंकु, (6) अग्र अर्ध चन्द्राग।
आधार सत्य का है (ग्रेगरी के आधार पर तैयार किया गया।—[illegible] एबिस 1931 से [illegible]।)

उत्पत्ति की दृष्टि से आधुनिक वानरों में से किससे सबसे अधिक घनिष्ठ रूप से मनुष्य सम्बन्धित है? गिब्बनों और, खासतौर से ओरंग-उटंगों को हम शुरू से ही छोड़ दे सकते हैं, क्योंकि उनके कई गुण ऐसे हैं जो उनके अतिशय विशेषीकरण को व्यक्त करते हैं। इन दोनों मानव-सभों में पेड़ों के जीवन के साथ अनुकूलता कायम करने की क्रिया अति तक पहुँच गई है और अब चलन के उस तरीके पर पहुँच गए हैं जिसे बाहुचलन (brachiation) कहते हैं इसमें केवल बाहुओं का उपयोग करते हुए (पेड़ों पर) चढ़ने झूलने और शाखा से शाखा पर तथा वृक्ष से वृक्ष पर कूदकर जाने की क्रिया शामिल होती है। ऐसे वानरों को कभी-कभी ब्रेकियेटर (brachiators) भी कहा जाता है।

गिब्बन तेज किस्म के ब्रेकियेटर होते हैं। पेड़ों के बीच से एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर तीर उड़ते जैसे वे वर्षों तक झूलते हुए आगे बढ़ते जा सकते हैं। ऐसे समय असाधारण चपलता तथा अतिशय चारुता से युक्त गति का दृश्य वे उपस्थित करते हैं।

भारी शरीरों और लम्बी कड़क (भुरभुरी) अस्थियों वाले ओरंग-उटंग धीमी किस्म के ब्रेकियेटर होते हैं। किसी शाख पर झूलने से पहले वे उसका अच्छी तरह अध्ययन करते हैं। ओरंग-उटंग एक शाख से दूसरी शाख पर झूलते हुए जाने के

स्वाम उस पर चढ़कर जाना पसन्द करते हैं।

धीरे-धीरे चलनेवाला औरंग-उटेन स्पष्ट रूप से मानव-समों में सबसे अलग नज़र आता है। उसकी भूरदरी मालों लिए बालदार चमड़ी मोटे-मोटे गाल मझाल महत्व की उरोग्रन्थियाँ (sternal glands) उसके अल्पविकसित पैरों के अँगूठों व नाखूनों की अनुपस्थिति तथा विशिष्टीकरण की अन्य चीज़ें मानव-समों के बीच उसे एक अलग दर्जा दे देती हैं। स्पष्ट है कि औरंग-उटेन उस किस्म से अलग है जिसने विकास की गिब्बन चिम्पांज़ी तथा गोरिल्ला के विकास से भिन्न दिशा अपनायी है और जिस दिशा पर चलकर मनुष्य का प्रादुर्भाव हुआ है उससे तो वह और भी दूर है।

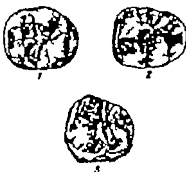
औरंग-उटेन के चर्वण दन्त गोरिल्ला या चिम्पांज़ी के चर्वणों से स्पष्ट रूप से भिन्न हैं उसके अर्द्ध-चन्द्राय अधिक नीचे है कई और अतिरिक्त अद्ध-चन्द्राय हैं तथा उसके पेषण तल (grinding surface) पर जो झुर्रियाँ हैं वे बहुत उथली हैं। चिम्पांज़ी के चर्वणों पर बहुत-सी झुर्रियाँ होती हैं और वे औसत गहराई की होती हैं गोरिल्ला के बहुत कम झुर्रियाँ होती हैं और व बहुत गहरी होती हैं। आधुनिक वानरों के विशेष रूप से गिब्बनों के दाँतों को प्रमाणक-विज्ञान के विद्वान सरलता से पहचान ले सकते हैं। जीवाश्म मानव समों के दाँत भी भिन्न होते हैं और पहचाने जा सकते हैं यद्यपि उनके अत्यधिक व्यक्तिगत गुणपरिवर्तनों (mutations) के कारण यह काम काफ़ी मुश्किल होता है। इसके अलावा जीवित वानरों की जितनी जातियाँ और प्रजातियाँ हैं उनकी इनसे भी अधिक जातियाँ और प्रजातियाँ हैं।

दाँतों और हनु की रचना की सादृश्यता के मात्रा की आधार पर देखने से मालूम होता है कि औरंग-उटेन के पूर्वजों के सबसे अच्छे प्रतिनिधि वो जीवाश्म मानव-सम—पैलियो- सीमिया (palaeosimia) तथा शिवापिथेकस (sivapithecus) हैं। पैलियोसीमिया का ऊपर का दाहिनी तरफ़ का तीसरा चर्वण सन् 1915 में हिमालय की शिवालिक पर्वत श्रेणी के तल पर चिमला के समीप मिला था। वहाँ पर मध्य-जीव युग (miocene) तथा उत्तर-जीव युग (pliocene) के स्तरों में लुप्त बन्दरों की अस्थियों तथा दाँतों का एक प्रचुर ढेर मिला था। इस दाँत का पषणी-तल (grinding surface) सुगमता से पहचानी जा सकनेवाली छोटी-छोटी झुर्रियों से ढका हुआ है जिससे कि इस वानर का नाम 'झुर्रियादार दाँतवाला पलियोसीमिया' पड़ गया है। 1879 से भिन्न-भिन्न प्रकार के शिवापिथकसों के कई हनु शिवालिक पर्वत माला के मध्य-जीव युग के स्तरों में मिले हैं, परन्तु उनकी दन्तचापों (dental arches) की रूपरेखा का निर्माण करने में 1938 में *ही मिला हैलमैन सफल हुए थे (ग्रेगरी हैलमैन और लेविस 1938)।* जीवाश्म औरंग-उटेनों के दाँतों की अनेक खोजें चूँकि एशिया के भू भाग पर दक्षिण चीन में हुई हैं जहाँ चतुर्थ काल में व रहते थे इसलिए मान लिया जा सकता है कि औरंग उटेन उसी प्रदेश का रहनेवाला था।

औरंग-उटेन तथा गिब्बनों की तुलना में चिम्पांज़ी और गोरिल्ला, जो ड्रायोपिथेकसों

के वर्ग से मध्य-तृतीय काल में उत्पन्न हुए थे मनुष्य के अधिक समीप मालूम पड़ते हैं। मनुष्य के और पास के पूर्वज भी उसी वर्ग से निकले थे।

यह बात स्वीकार कर ली जानी चाहिए कि दुर्भाग्य से अभी भी ड्रायोपिथेकस के शरीर का सही-सही चित्र बनाने में हम असमर्थ हैं। यह सही है कि कई दर्जन दाँतों के साथ-साथ नीचे के हनु के लगभग एक दर्जन अंश हमारे पास मौजूद हैं परन्तु ऊपर के दाँतों की जानकारी का आधार केवल कुछ छिट-पुट नमूने हैं। ऊपर की हनु-अस्थि (मैक्सिला) का पता नहीं मिला है यही बात कपाल के बारे में सही है। कपाल के नाम पर जो मिला है वह केवल एक प्रगण्डिका (ह्यूमरस) है और वह भी प्रगण्डिका का केवल एक भाग।



चित्र 23 ड्रायोपिथेकसों के नीचे के चर्वण दन्त 1 ड्रा. जर्मेनिकस एबिल का दाईं तरफ का द्वितीय चर्वण दन्त, जो स्वाबेन के ड्राइब्सफिंगेन में ऊपरी मीन काल के स्तर में मिला था। 2 ड्रा. पंजाबिकस पिलग्रिम का दाहिना तरफ का चर्वण दन्त इसकी प्राप्ति भारत में शिमला के पास शिवालिक पर्वतमाला के मध्य मीन-काल के स्तर में हुई थी। 3 ड्रा. डारविनी एबिल का दाईं तरफ का अन्तिम चर्वण दन्त जो वियना के समीप न्यूडोर्फ में मध्य मीन-काल के बीच के स्तर में प्राप्त हुआ था। स्वाभाविक आकार का 1½ ... (जो एबिल 1931 के आधार पर।)

इसके बावजूद दाँतों की बहुत सी तथा ड्रायोपिथेकस की अन्य विशिष्टताओं के आधार पर, यह सिद्ध करने में विज्ञान सफल हो गए हैं कि ड्रायोपिथेकस जर्मेनिकस एबिल (जर्मनी) चिम्पैंजी का पूर्वज हो सकता था और ड्रायोपिथेकस फौण्टानी गार्टेट (फ्रांस) अथवा ड्रायोपिथेकस पंजाबिकस पिलग्रिम (भारत) गोरिल्ला का पूर्वज। ड्रायोपिथेकस डारविनी एबिल (आस्ट्रिया) मनुष्य के पूर्वजों की श्रेणी में आता है (चित्र 23)। परन्तु दूसरे जीवाश्म मानव-सम भी ऐसे हैं जो क्रमोन्नत शाखा से चिम्पैंजी गोरिल्ला और मनुष्य के पूर्वजों की शृंखला में फिट हो जाते हैं।

1933 में पूर्वी अफ्रीका में एक स्वस्थ तथा समस्त चर्वणों के साथ एक मैक्सिला (ऊपर की हनु अस्थि) का एक अंश अच्छी हालत में मिला था यह एक ऐसे मानव-सम वानर का है जो मध्य मीन युग (miocene epoch) के प्रारम्भ में लगभग 2 50 00 000 वर्ष पहले रहता था। अधोहनु का भी एक अंश मिला था। लन्दन के जुआलोजिकल गार्डेन (चिड़िया अजायबघर) के कोन्सल नाम के एक चिम्पैंजी के नाम पर इस वानर को प्रोकोन्सल (Proconsul) का नाम दे दिया गया था।

विक्टोरिया न्यान्ज़ा में स्थित रुसिंगा द्वीप पर बाद में जीवाश्म अस्थियों के जो

अवशेष मिले थे उनमें एक कपाल भी था। ये अवशेष जाहिर करते हैं कि इस बन्दर का स्थान आदिम-कार्मान पुच्छ-कपि प्रजाति (cercopithecoid) के किसी प्राणी तथा आज के मानव-समों के दरम्यान किसी जगह है। इस कपाल में ऐसी विशेषताएँ हैं जो निम्न और उच्च कम के अधोनासा बन्दरों के सामान्य पूर्वजों के वर्ग में प्राप्त अधोनासा बन्दरों के वर्ग में आमतौर से मिलती हैं। इन विशेषताओं में हैं—नीचे के हनु का समय (Symphysis) छोटा है नाक के छेदक दन्त (incisors) छोटे हैं और खड़े-खड़े रहते हैं ऊपर के हनु की अस्थियाँ (अन्तर-अस्थिमय अस्थियाँ) सकरी हैं नाक का छिद्र नासापाती की शक्ल का है और नेत्र-कोटरों के कोई अधि-भाग (अधिकूट) नहीं है उसके कपर का एक साँचा बतलाता है कि उसकी बीच की अथवा रोलण्डिक (tolandic) दरार (सीता) अधिक धाम तक बढ़ी है मस्तिष्क कोष के विकास (eucephalic evolution) का स्तर ऊँचा नहीं है क्योंकि मस्तिष्क का आकार छोटा है ऊपर के चबणों का अन्तर-पश्च-मध्य चन्द्राग्र (hypocone = अधोनिर्दंकु) अधोमध्यधकु (protocone) में स निकला है—इलायस की मवता में स नहीं।

कुछ विद्वान रामापिथकस (ramapithecus) का मनुष्य के पूर्वजों की श्रेणी में रखते हैं। 1934 और 1935 में शिवालिक पर्वत-माला के उत्तर-जीव युग के निम्न स्तरों में दो अलग-अलग व्यक्तियों के एक ऊपर और एक नीचे के हनु के दो टुकड़े (चित्र 24) मिले थे। गौर करने की महत्त्वपूर्ण चीज यह है कि ऊपर के हनु में रद-दन्त की गतिकाओं (Sockets) तथा प्रथम अग्रचर्वण दन्त के बीच ऐसा कोई दन्तावकाश (diastem) नहीं है जिसमें हनुओं के बन्द किए जाने पर नाच का रद-दन्त घुस सके यह। चीज रामापिथकस को मनुष्य के पूर्वजों की श्रेणी में शामिल न करने का प्रमाण न होने के बजाय उसे उसमें शामिल करने का प्रमाण है।



चित्र 24 रामापिथकस ब्रैविरौस्ट्रस लविस के हनुओं के टुकड़े
1 अधोहनु का दाहिनी तरफ का टुकड़ा
2 ऊपरी हनु का दाहिनी तरफ का टुकड़ा।
स्वाभाविक आकार (जी लविस 1934 के आधार पर)

उन प्रचण्ड प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप जिनके कारण महाद्वीपों का रूपान्तर हो

रहा था मध्य-नौव युग तथा उत्तर-नौव युग में जीवाश्म मानव-समों तथा अनेक दूसरे प्राणियों के जीवन के तरीके में महान् परिवर्तन हुए थे। इन करोड़ों वर्षों के दौरान पुरानी दुनिया की महाकाय पर्वत-पंक्तियां उठ खड़ी हुईं, अनेक स्थानों में जलवायु अधिक सूखी तथा अधिक महाद्वीपीय बन गई, उष्णकटिबन्धीय जंगलों का क्षेत्रफल शुरू में कम होने लगा और फिर वे बचे जंगल ही खत्म होने लगे।

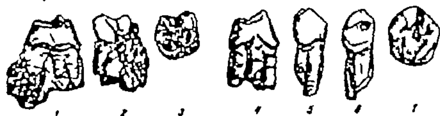
अन्य अनेक उष्णकटिबन्धीय प्राणियों की तरह बन्दर भी जंगलों के जीवन के पेड़ों पर रहने के आदी थे। जो विशाल घास मैदान बन उनकी नई परिस्थितियों के अनुकूल को सोच अपने को न बना सके वे अधिकांशतया मरकर मिट गए। उनमें से कुछ दक्षिण की ओर चले गए और केवल बैबूनों तथा मनुष्य के मानव-सम पूर्वजों जैसे कुछ प्राणी ही जमीन पर रहने के जीवन को पूर्णतया अपनाने में सफल हुए।

भूवैज्ञानिक क्रान्ति तथा उसके साथ-साथ महाद्वीपों के तल (surface) में होने वाले रूपान्तर के काल से उष्णकटिबन्धीय वनस्पति के जो मैदान बने आए हैं उनका विस्तार दक्षिण अमरीका की अपेक्षा पुरानी दुनिया में बहुत कम है। इसलिए, प्राचीन काल के निम्न और उच्च श्रेणी के बन्दरों का अधिकांश भाग अतिरिक्त भोजन की खोज में बहुधा जमीन पर भाग मारा करता था। यह बात मिसू-कपि (cebus) मलर कपि (hapale)तथा नई दुनिया के अन्य उन बन्दरों के बारे में नहीं कही जा सकती जो अमेजन के बाढ़ क्षेत्र तथा पास-पड़ोस के मध्य अमरीका तक के प्रदेशों के विस्तीर्ण जंगलों में केवल वृक्षों ही पर रहनेवाले बन रहे।

दक्षिण पूर्वी जार्जिया में सोवियत वैज्ञानिकों द्वारा प्राप्त किए गए एक जीवाश्म मानव-सम के अवशेष उन प्रचण्ड परिवर्तनों के साक्षी हैं जो उस काल में बन्दरों के जीवन में हुए थे। बाकू विश्वविद्यालय तथा जार्जियाई राजकीय संग्रहालय की ओर से 1939 में काखेतिया (Kakhetia) में गारेजी के ईसाई मठ के समीप उदाबानो (Udabano) में पुराभूगर्भशास्त्रीय खुदाई का कार्य कराया गया था। खुदाई का कार्य खत्म हो रहा था परन्तु दल की एक सदस्या ई० जी गबाशविली ने खोज कार्य को जारी रखा। अकस्मात् दल के बहुत नजदीक ही उन्हें एक जीवाश्म वानर के दो दांत मिल गए। यद्यपि वे बहुत गहराई में नहीं थे परन्तु उनका भू-वैज्ञानिक स्तर (geological stratum) बहुत प्राचीन मध्य नौव काल के अंतिम दिनों का अथवा उत्तर-नौव काल के प्रारम्भिक दिनों का था। इससे स्पष्ट हो गया था कि काखेतिया में ये मानव सम लगभग 1 करोड़ 20 लाख वर्ष पहले रहते रहे होंगे।

ई० जी गबाशविली तथा अभियान दल के एक दूसरे सदस्य एन० ओ० बुर्चक-अब्रामोविच ने इस दुर्लभ उपलब्धि का विस्तृत अध्ययन किया था। उसके परिणाम को उन्होंने 1945 और 1946 में प्रकाशित किया था। विज्ञान के लिए यह उपलब्धि अत्यधिक महत्त्व की थी क्योंकि 1939 तक जीवाश्म मानव-समों के कोई अवशेष सोवियत संघ के अन्दर नहीं मिले थे। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बसारबिया तथा

यूरोपीय सोवियत संघ के दक्षिण-पश्चिमी प्रदेशों में कुछ बन्दरों के दाँतों और कपालों की एक बहुत सीमित संख्या प्राप्त हुई थी—इसके अलावा कुछ नहीं (एफिमेन्स्की 1037)।



चित्र 25 उदाब्नोपिथेकस गारेज्वानिकस बुर्चाक अब्रामोविच तथा गबाशविली
1 3—प्रथम चर्वण दन्त और 4-7—द्वितीय चर्वण दन्त: 1 4—मुख पक्ष: 2 5—पार्श्व पक्ष—6: जिह्वा-पक्ष 3 7—चर्वण तल। वास्तविक आकार के [illegible] और 7 वास्तविक आकार का $\frac{1}{2}$ (बुर्चाक-अब्रामोविच तथा ई. गबाशविली 1845)

जाजिमा की खोज में जो चीज मिली थी उसमें ऊपर का दूसरा अग्रचर्वण दन्त तथा उसके पास का प्रथम चर्वण दन्त था (चित्र 25)। ये जब मिले तब एक अस्थि ऊतक से बँधे हुए थे इससे स्पष्ट था कि ये एक ही व्यक्ति के थे। चर्वण के पास का आन्तरिक मर्द-चन्द्राभ (प्रोटोकोनस) चीज के बाहरी मद्ध-चन्द्राभ (मेटाकोनस) से एक मेड़ (कटक) के द्वारा जुड़ा हुआ है। इससे मालूम होता है कि ये दाँत चूँकि चिम्पांजी के दाँतों की तरह बहुत बड़े नहीं हैं किसी छोटे शरीरवाले मानव-सम के हैं। अग्रचर्वण दन्त अपनी 3 जड़ों की वजह से दिलचस्प है, यह विलक्षण चीज वानरों में विरल ही देखने को मिलती है। ऊपर के अग्रचर्वण दन्त पर भी दो जड़ों का होना विरल ही होता है और नीचे के अग्रचर्वण पर केवल अपवाद के रूप में ही कभी दो जड़ें मिलती हैं।

जिस जीवाश्म वानर को उन्होंने ढूँढ़ निकाला था उसका नाम विद्वानों ने गारेजी उदाब्नोपिथेकस (gareji udabnopithecus) रख दिया। वानरों की यह ऐसी जाति थी जो काकेशियाई पर्वत-माला के बनने के बाद लुप्त हो गई थी। सम्भव है कि उस समय तक काकेशस के उष्ण-कटिबन्धीय जंगलों में उच्च और निम्न श्रेणी के बन्दर रहते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सोवियत संघ के विभिन्न भागों में यहाँ के तृतीय (मध्य) युग के स्तरों में बन्दरों तथा दूसरे प्राइमेटों की अस्थियाँ कपालों तथा दाँतों के अवशेष सुरक्षित अवस्था में मौजूद हैं।

जीवाश्म वानरों के बीच उदाब्नोपिथेकस के वास्तविक स्थान को अथवा आधुनिक वानरों (ग्रेमियात्स्की 1067) और मनुष्य की वंशावली के साथ उसके सम्बन्ध को निश्चित करना अब भी कठिन है। दक्षिण अफ्रीका के उत्तर उत्तरनूतन-काल (upper pliocene) तथा निम्न प्रातिनूतन जीवकाल (lower pleistocene) के स्तरों में मिले अनेक मानव-समों के सम्बन्ध में यह समस्या अपेक्षाकृत कम कठिन है। ये हैं आस्ट्रेलोपिथेकस



चित्र 26 आस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकानस बाल। दाहिना पक्ष।
अधोहनु की शाखा का बाहर का भाग प्लास्टर से जोड़ दिया गया था।
आकार—असल का $\frac{3}{4}$। (डार्ट के आधार पर निर्मित)





चित्र 27 आस्ट्रेलोपिथेकस के कपाल तथा सामान्य चिम्पैंजी के कपाल (दाहिनी तरफ) का
मॉडल। दोनों एक ही अवस्था के हैं।
आकार—असल का $\frac{1}{3}$। (श्रो र्विन 1931 के आधार पर)

दक्षिण अफ्रीका का प्रथम मानव-सम 1928 में बेचुआनालैंड के कालाहारी रेगिस्तान के पूर्वी भाग में मिला था। किम्बरली के उत्तर में टॉन्ग्स रेलवे स्टेशन के पास दो वयस्क बेबूना के कपाल और एक युवा मानव-सम वानर का कपाल चूने की एक खदान में मिले थे। शुरू में लोगों का ख्याल था कि भू-वैज्ञानिक दृष्टि से वे बहुत प्राचीन नहीं थे। सोचा गया कि उनका सम्बन्ध चतुर्थ काल के पूर्वार्द्ध से यहाँ तक कि उस काल के मध्य काल से था। इससे उनकी उम्र 5 00 000 और 8 00 000 वर्षों के बीच होती। परन्तु कुछ दिनों बाद कुछ विद्वानों को लगा कि खुदाई में जो चीजें मिली थीं वे कहीं अधिक पुरानी थीं। उदाहरण के लिए, उन्होंने इन्हें अतिनूतन-जीवयुग (pleistocene) के अन्त काल का और यहाँ तक कि उत्तर-जीवयुग (pliocene) के मध्य काल का बताया।

दक्षिण अफ्रीका के मानव-सम का अपूर्ण कपाल एक लगभग पाँच वर्ष की अवस्था के छोटे बच्चे का था (चित्र 26-29)। यह चीज दूध के दाँतों की उसकी पूरी दन्तावली से जाहिर होती है इस दन्तावली के पीछे स्थायी चर्वण दन्त निकलते हुए दिखलाई देते हैं। उसके कपाल के मुख और ललाट की अस्थियाँ अच्छी तरह सुरक्षित हैं। कपाल का एक भाग अपने अन्दर भरी खनिज राशि से मिलकर एक पूर्ण इकाई बन गया है।

कपाल को दक्षिण अफ्रीका के शरीर-विज्ञ तथा जीवाश्मशास्त्री डॉ० रेमण्ड ए० डार्ट के पास भेजा गया था। उन्होंने कपाल का अध्ययन किया और उसका एक संक्षिप्त विवरण प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने प्रस्ताव रखा कि नये-नये पाये गए मानव-सम को आस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकानस (australopithecus africanus) कहा जाए।

'टॉन्ग्स वानर' (taungs ape) की खोज ने अनेक विवाद उत्पन्न कर दिए। कुछ विद्वानों ने उदाहरण के लिए ओथेनियो एबिल ने (1931) उसे एक जीवाश्म गोरिल्ला के बच्चे का कपाल बताया। हान्स वाइनर्ट (1933)-जैसे दूसरे लोगों को उसमें चिम्पैंजी के कपाल से अधिक सादृश्य दिखलाई दिया। उन्होंने अपना मत खास तौर से उसके उत्तल पार्श्व दर्शन (convex profile) उसकी नाक की अस्थियों तथा उसके नेत्र-कोटरों के स्वरूप के आधार पर कायम किया था।

एक तीसरे दल का जिसमें डार्ट विलियम ग्रेगरी तथा मिलो हेलमैन (1938) थे विचार था कि आस्ट्रेलोपिथेकस ड्रायोपिथेकस तथा मनुष्य से अधिक समानता रखते हैं। उनके बीच के दाँतों के ऊपर की अर्द्ध-चन्द्राकार गढ़न (आकृति) ड्रायोपिथेकस के चर्वणों की गढ़न से बहुत कम भिन्न है।

कपाल के नेत्र-कोटरों की अक्षि-मेड़ (अक्षि-कूट) अल्पविकसित हैं श्व-दन्त मुश्किल से ही दूसरे दाँतों से आगे जाते हैं और चेहरा ग्रेगरी के मत में आश्चर्यजनक रूप से प्राय: मानवीय है।

विद्वानों के एक चौथे दल ने जिसमें वाल्फगैंग एबिल-जैसे लोग हैं विलोपीकरण के उस विशेषता की तरफ ध्यान दिलाया जिसके कारण आस्ट्रेलोपिथेकस मानवी दन्तावली से अलग छिटक गया है। उदाहरण के लिए आस्ट्रेलोपिथेकस के प्रथम स्थायी चर्वण दन्त

मानवी दाँतों से इस बात में भिन्न हैं कि उनका पिछला मध्य भाग अधिक चौड़ा है।

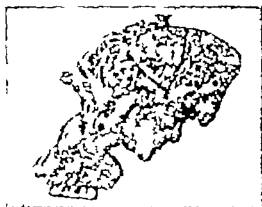
अब हम आस्ट्रेलोपिथेकस के कपर (कपाल) के उस आकार का उल्लेख करें जिसका विवरण डार्ट ने दिया है। सोवियत के मानवशास्त्री वी० एम० यापकिन ने अपनी प्रस्तावित पद्धति का ही इस्तेमाल करते हुए (1937) कपर के आकार के सम्बन्ध में 420 घन सेण्टीमीटर का अंक प्राप्त किया था यह अंक वास्कपग गविस के अंक 300 घन सेण्टीमीटर से बहुत भिन्न नहीं है। डॉक्टर रेमण्ड डार्ट ने कपर का आयतन 520 घन सेण्टीमीटर बताया था परन्तु यह अंक असंदिग्ध रूप में अतिशयोक्तिपूर्ण है। कपाल के स्वामी की उम्र का ख्याल करते हुए मान लिया गया कि वयस्क आस्ट्रेलोपिथेकस के कपर का सम्भावित आयतन 500-600 घन सेण्टीमीटर होगा।

आस्ट्रेलोपिथेकस की जाति के सम्बन्ध में 1936 के बाद और भी गहरी समझदारी पैदा हुई थी। उस वर्ष ट्रान्सवाल में जीवाश्म वानर का एक और कपाल मिल गया था। यह स्टर्कफोण्टेन गाँव के समीप एक गुफा में मिला था। यह गाँव ट्रान्सवाल या प्रिटोरिया के दक्षिण-पश्चिम में 8 किलोमीटर के फासले पर है बहुत दूर नहीं है। कपाल एक वयस्क प्राणी का है और चिम्पैंजी के कपाल से बहुत मिलता-जुलता है। केवल उसके दाँत मनुष्य के दाँतों से अधिक सादृश्य रखते हैं। कपाल आकृति में लम्बा है—कपर 143 मिलीमीटर लम्बा और 96 मिलीमीटर चौड़ा है इसके कारण शीर्ष सूचिका (cephalic index) नीची है अर्थात् $96 \times 100 \div 143 = 40.2$ (अस्ट्रा डालिकोसिफैलिक) है।

दक्षिण अफ्रीका के पुरा भूमव शास्त्री डाक्टर रार्बट ब्रूम ने जो ट्रान्सवाल और उसके विकास के सम्बन्ध में लगभग आधी शताब्दी से दक्षिण अफ्रीका में काम-काज कर रहे थे स्टर्कफोण्टेन (Sterkfontein) के जीवाश्म वानर के कपाल का अध्ययन किया और घोषित किया कि यह एक नई जाति का आस्ट्रेलोपिथेकस ट्रान्सवालेनसिस (australopithecus transvaalensis) जाति का प्राणी है। उसी जगह पर नीचे का तीसरा चर्वण दन्त भी मिला था जो बहुत बड़ा था और आदमी के चर्वण दन्त से मिलता था। इसके अध्ययन से ब्रूम मजबूर हो गए कि एक नई प्रजाति (जनस) की प्लैसियान्थ्रपस (plesianthropus) की अर्थात् एक ऐसे वानर की प्रजाति की स्थापना करें जो मानव से और अधिक मिलता है। इस प्रकार स्टर्कफोण्टेन मानव-सम का नाम प्लैसियान्थ्रापस ट्रान्सवालेनसिस पड़ गया।

अफ्रीकाई जीवाश्म वानरों में तथा मानव उत्पत्तिशास्त्र की समस्या में ब्रूम की गहरी दिलचस्पी हो गई, और नमूनों (प्रतिरूपों) की तलाश में उन्होंने बहुत-सा समय और श्रम लगाया। 1936 और 1947 के बीच उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप प्लैसियान्थ्रापस के 10 अपूर्ण कपाल 150 अलग-अलग दन्त तथा कई कंकालीय अस्थियाँ प्राप्त हुईं। 1938 में ब्रूम के महान् सौभाग्य से उन्हें एक अद्भुत जीवाश्म कपाल (चित्र 30) मिल गया। इस अद्भुत जीवाश्म कपाल की कहानी निम्न प्रकार है। क्रामद्राई

ग्राम का एक स्कूली बच्चा अपने गाँव के समीप की पहाड़ी से एक वानर का कपाल खोद लाया था। तोड़कर उसने उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और खेलने के लिए उसके दाँत साथ ले लिए। किसी संयोग से इसकी खबर ब्रूम तक पहुँच गई। लड़के ने दाँत उन्हें दे दिए फिर उसकी मदद से उसी स्थान पर कपाल के कुछ टुकड़े उन्होंने ढूँढ़ निकाले। इस कपाल की भूवैज्ञानिक अवस्था स्पष्ट तथा मध्य-चतुर्थ काल (middle quaternary) है।



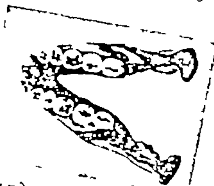
चित्र 30 पैरान्थ्रोपस की मीन्स बू्रम का कपाल।
आकार—लगभग 2/5 (ब्रूम के आधार पर एवं प्रकाशित 1953 में छपा)

ब्रूम ने कपाल के टुकड़ों को एक साथ रखा तो यह देखकर वे दंग रह गए कि उसकी शंख अस्थि (temporal bone) की आकृति उसकी श्रवण नालिका (meatus acusticus internus) की रचना तथा उसके पश्च कपाल रन्ध्र (occipital foramen) की स्थिति (जो जीवित मानव-सभों की तुलना में कपाल के अग्रो भाग के अधिक समीप है) मनुष्य की इन्हीं चीज़ों में कितनी अधिक समानता रखती है। दन्त चाप (dental arch) उसका चौड़ा था, रद-दन्त छोटे थे और दाँत एकदम मनुष्य के दाँतों जैसे थे।

अपनी खोज-पड़ताल की समाप्ति पर, क्रोमदाई के मानव-सम को ब्रूम ने पैरान्थ्रापस (paranthropos) का मनुष्य के समीप के एक वानर का नाम दे दिया। 1930 में पैरान्थ्रापस के कंकाल की कुछ अस्थियाँ मिली थीं जो प्लेसियान्थ्रोपस (plesianthropus) की अस्थियों से अत्यधिक मिलती-जुलती थीं। ये दोनों ही वानर आस्ट्रेलोपिथेकस से बहुत सादृश्य रखते हैं।

1948-50 में ब्रूम ने दक्षिण अफ्रीकी वानर-समों के सम्बन्ध में कई नई खोजें कीं। पैरान्थ्रापस क्रसीडेन्स (भारी-भारी दाँतों वाला) (चित्र 31) तथा (ऐसा वानर जो आग के इस्तेमाल को जानता था (चित्र 32) इन्हीं खोजों में से थे। इससे अनुमान होता है कि अन्य अब तक अज्ञात वानरों के बहुत-से और अवशेष अफ्रीका में मौजूद होंगे (मैलुर्स 1937 1938 मार्टीमाव 1960 1931)। यह धारणा इसलिए खासतौर में और मजबूत बन गई थी कि 1947 में पूर्वी अफ्रीका के कविरोण्डो प्रदेश में अंग्रेज मानव शास्त्री एस॰ लीक ने अफ्रीकी प्रोकान्सल का (जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है) कपाल ढूँढ़ निकाला था। यह प्रोकोन्सल कई बातों में चिम्पैंजी से मिलता है।





चित्र 31. पारन्थ्रोपस का मैण्डिबल
1. बाईं तरफ का पार्श्व पक्ष 2. ऊपर का पक्ष। आकार मूल का ½
(ब्रूम और रॉबिन्सन के आधार पर, 1953 में प्रकाशित)

जो कुछ कहा जा चुका है उससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अफ्रीका में चतुर्थ काल के पूर्वार्द्ध में अथवा तृतीय काल के अन्त के करीब उच्च रूप में विकसित मानव-सम वानरों की सम्भवतः अनेक भिन्न-भिन्न जातियों ने रूप ग्रहण कर लिया था। उनके मस्तिष्क का आयतन 500-600 घन से० मी० अथवा उससे भी अधिक (और भार 40-50 किलोग्राम) था। और उनके हनुओं तथा दन्तों की बनावट (आकृति) ठेठ मानव-सदृश जैसी थी परन्तु साथ ही-साथ मानवी दाँतों के साथ भी उनका काफी सादृश्य था।

अफ्रीका के कुछ जीवाश्म मानव-सम वानर पैरों पर भी चलते थे जैसाकि उनके प्राप्त कपाल की लम्बी अस्थियाँ तथा अन्य भागों की आकृति तथा रचना में देखा जा सकता है।



चित्र 32. आस्ट्रेलोपिथेकस प्रोमीथियस का अधो-हनु प्राप्ति-स्थान पर भरन का समय मूल आकार। आकार का ½
(डार्ट 1948 के आधार पर)

आस्ट्रलोपिथेकस प्रोमीथियस (1948) का श्रोणि प्रदेश (pelvis) अथवा प्लासियन्थ्रोपस (1947) की जाँघ की अस्थि और अन्तःअस्थिका इसके प्रमाण हैं। यह भी सम्भव है कि अस्त्रों के रूप में वे लकुटियाँ और पत्थरों का इस्तेमाल करते रहे हों। आस्ट्रलो

पिथेकस घास के मैदानों (savannahs) में अथवा सूखे अर्ध रेगिस्तानी प्रदेशों में रहते थे (चित्र 33)। खाने के लिए वे जानवरों को भी मारते थे और खरगोशों और बंदूरों का शिकार किया करते थे।

कुछ अफ्रीकी विद्वान् (ब्रूम तथा शेपर्स 1946 डार्ट 1949) कहते हैं कि आस्ट्रेलो-पिथेकस प्रोमीथियस की किस्म के जीवाश्म मानव-सम आग और पानी का उपयोग करने की क्षमता रखते थे। परन्तु इन अनुमानों के समर्थन में कोई तथ्य नहीं है। दक्षिण अफ्रीका के मानव-समों को सबसे पुराने मानव-वंशियों (hominids) के रूप में पेश करने की कोशिशों का भी कोई आधार नहीं है। यह सिद्ध करने के लिए भी पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं कि ये मानव-सम सम्पूर्ण मानव-जाति के अथवा उसके किसी भाग के पूर्वज थे। यही बात ओरियोपिथेकस (oreopithecus) के सम्बन्ध में लागू होती है। इसके अवशेष टस्कानी की अम्बोली नामक पहाड़ियों में इटली में प्राप्त हुए थे। उसके दांत हनु तथा माथे की भुजा के टुकड़े मध्य मध्य-जीव युग (middle miocene) तथा प्रारम्भिक उत्तर-जीव युग (early pliocene) के स्तरों में प्राप्त हुए थे। अस्थियों के ये अंश तथा हाल में मिला उसका एक पूर्ण कंकाल बतलाता है कि ओरियोपिथेकस



चित्र 33 आस्ट्रेलोपिथेकस। जेड्. ई० क ब्रीम
क्लाफ द्वारा निर्मित 1952।
(एम ऍवरिंग, 1953 के आधार पर)



चित्र 34 आस्ट्रेलोपिथेकस प्रोमीथियस का कपाल
जिसमें ... द्वारा किये गए
प्रहारों के चिह्न दिखलाये गए हैं।
आकार ... है
(एम ऍवरिंग 1953 के आधार पर)

सम्बोधी मानव-सभों के बहुत करीब है (ग्रेगरी 1949, 1934, 1958; प्रमियास्की 1958)।

आस्ट्रेलोपिथेकस तथा ओरियोपिथेकस को अधिक-से-अधिक 'प्रकृति के असफल प्रयासों' की श्रेणी में रखा जा सकता है, क्योंकि वे ऐसे वानर हैं जो लुप्त हो गए हैं। मनुष्य दक्षिण एशिया के उन वानरों में से किसी एक में से निकला था जो प्रारम्भिक उत्तर मीन युग के रामापिथेकस किस्म के मानव-सम वानरों में से उत्पन्न हुए थे।

दक्षिण अफ्रीकी मानव-सभों के आस्ट्रेलोपिथेकस वंश (चित्र 35) की खोज के बाद मनुष्य के पूर्वजों के मौलिक निवास-स्थान, मनुष्य के जन्म-स्थान के सम्भाव्य भौगोलिक क्षेत्र के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने नए सिरे से विचार करना शुरू कर दिया। डार्ट ने घोषित किया कि दक्षिण अफ्रीका ही मानव-जाति का पालना है। ब्रूम (1946) तथा कीथ (1950) ने उनके मत का समर्थन किया।

यह विचार कि अफ्रीका मानव-जाति का सम्भाव्य पालना है—नया नहीं है। चार्ल्स डारविन ने तो बहुत पहले 1871 में ही कहा था कि सम्भव है कि अफ्रीकी महाद्वीप ही वह स्थान हो जहाँ मनुष्य का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव हुआ था। उन्होंने इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात का उल्लेख किया था कि अफ्रीका में गोरिल्ला और चिम्पैंजी रहते हैं और ये मनुष्य के सबसे नजदीकी रिश्तेदार हैं। डारविन ने लिखा था कि हम जानते हैं कि आधुनिक स्तनधारी, जो एक विशाल क्षेत्र की सीमाओं के अन्दर रह रहे हैं, जाति-इतिहास की दृष्टि से उन लुप्त हो गए स्वरूपों के रिश्तेदार हैं जो इसी क्षेत्र में कभी रहते थे। परन्तु, हमें याद रखना चाहिए कि उत्तर-पूर्वी अफ्रीका में (मिस्र में) पैरापिथेकस तथा प्रोपलियोपिथेकस के—जो जीवित मानव-सभों के सामान्य पूर्वज थे—अवशेष मिले हैं। इसलिए मनुष्य के प्राचीन निवास-स्थान को दक्षिण अफ्रीका की जगह उत्तर-पूर्व में मानना अधिक तर्कपूर्ण होगा।

परन्तु अन्य आधार-सामग्री का कुल योग हमें बाध्य करता है कि प्रथम मानव के निवास-स्थान को अफ्रीका में नहीं बल्कि एशिया के दक्षिण भाग में हम ढूँढ़ें। मानव-सम तथा निम्न वर्ग के संकीर्णनासा बन्दरों के जीवाश्म अवशेष उत्तर भारत की शिवालिक पर्वत-माला में 1879 से प्राप्त हुए हैं। 1924 में मैक्स श्लोसर ने, जिन्होंने वानर को मनुष्य का पितामह कहा था, मंगोलिया में एक प्लिओपिथेकस पोस्थुमस (pliopithecus posthumus) का दाँत प्राप्त किया था। उदाब्नोपिथेकस दक्षिण एशिया के जीवाश्म मानव-सभों का सम्बन्ध यूरोप के प्लिओपिथेकसों तथा ड्रायोपिथेकसों के साथ जोड़ता है।

यह अत्यन्त लम्बा तथा काफी चौड़ा कटिबन्ध—जिसके अन्दर जीवाश्म वानरों के बहुत-से अवशेष मिले हैं—मध्य-मीन तथा उत्तर-मीन युगों में अटलांटिक महासागर के यूरोपीय तटों से लेकर दक्षिण-पूर्व दिशा में मलय द्वीप-पुंज तक (जिसका केन्द्र जावा था) फैला था। उपर्युक्त सीमाओं के अन्तर्गत ही मध्य तथा दक्षिण एशिया के विस्तृत

चित्र 35 वे स्थान जहाँ नरवानर प्रजातियों का पता मिला है।

प्रदेशों में भिन्न-भिन्न विद्वानों ने मनुष्य के प्राचीन निवास-स्थान का बताया है सम्भवतः इस क्रम में दक्षिण-पूर्वी एशिया को भी जोड़ दिया जाना चाहिए। यहाँ पर रूसी विद्वान पी० पी० सुश्किन (1928) के विचारों तथा प्रास्थान की परिकल्पना (1933) का हम स्मरण कर सकते हैं। सम्भवतः आदिम मनुष्य के निवास-स्थान के अन्तर्गत उत्तर पूर्वी अफ्रीका का भी एक भाग सम्मिलित था।

आदिम मनुष्य के जो अवशेष दक्षिण-पूर्वी एशिया में प्राप्त हुए हैं वे इस बात का अतिरिक्त प्रमाण हैं कि प्रथम मानव का निवास-स्थान एशिया में ही था। पिथेकैन्थ्रोपस (pithecanthropus) तथा सिनानथ्रोपस (sinanthropus) के दक्षिण अफ्रीका में उत्पन्न होने की परिकल्पना को ठोस आधार पर स्थित हम नहीं मानते। इस विचार को मंजूर करना कि एक छोटे-से काल के ही अन्दर प्रथम मानवों ने लगभग 13 000 किलोमीटर का फासला तय कर लिया था कठिन ही नहीं असम्भव भी है। दक्षिण अफ्रीका से शुरू होनेवाली प्रथम मानवों की इस लम्बी यात्रा का भारतीय महासागर के अत्यधिक कटे-फटे तटों तथा भूखे प्रदेशों से होते हुए जावा तक अथवा पूर्व की ओर दक्षिण एशिया में गुजरते हुए पेकिंग के समीप सिनानथ्रोपस के निवास-स्थान तक जाना होगा।

मनुष्य की उत्पत्ति उत्तरी एशिया में हुई थी—ऐसी भी परिकल्पनाएँ की गई हैं क्योंकि तृतीय काल में इस प्रदेश का उष्णकटिबन्धीय जंगल नष्ट हुए थे। मिलर की परिकल्पना के अनुसार घास बढ़ते हुए शीत प्रकोप ने मनुष्य के पूर्वजों को एशियाई महाद्वीप पर दक्षिण की ओर और फिर और दक्षिण की ओर हटने के लिए बाध्य कर दिया था। वानर से मनुष्य में संक्रमण इन्हीं में से किसी एक प्रदेश में हुआ था। परन्तु, एशियाई प्रवानरों के पुरा जीवाश्मविज्ञान में इस बात का कोई प्रमाण नहीं है इसलिए इस परिकल्पना को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता।

मनुष्य के प्रथम निवास-स्थान के यूरोप में होने की भी बहुत कम सम्भावना है क्योंकि यूरोप अभी भी यूरोपीय-एशियाई महाद्वीप के एक प्रायद्वीप से अधिक नहीं है। आस्ट्रेलिया में उनके शिशु-धानियों (marsupials) की प्राचीन भूमिका के अन्दर, प्रथम मानव की खोज (ओटो शोएटन्सैक 1908) तो एकदम ही सम्भावनाओं की सीमा से बाहर है इतनी ही असम्भाव्य फ्लोरेण्टिनो अमेगिनो की दक्षिण अमरीका सम्बन्धी (1934) परिकल्पना है, क्योंकि एशिया से उस महाद्वीप पर मनुष्य के पहले-पहल पहुँचने का समय सम्भवतः 25 000 या 30 000 वर्ष से अधिक नहीं है।

यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि वानर के विकास की दिशा उन विशाल भूविवर्तनिक प्रक्रियाओं (tectonic processes) के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है जिन्होंने मध्य तृतीय युग तथा उत्तर तृतीय युग में पृथ्वी के तल को बिलकुल बदल दिया था। यही वह समय था जब महान् पर्वतों के समान (तहें) बने व जलवायु भाग उष्णकटिबन्धीय से उपोष्ण कटिबन्धीय तथा शीतोष्ण जलवायु में और कहीं-कहीं शीत जलवायु में बदल गई थी और बहुत-से प्रदेश अधिक सूखे हो गए थे घास और वन हो गए थे तथा विशाल वन

एकदम अन्तर्धान हो गए थे। प्राणि जगत् का एक भाग नष्ट हो गया होगा एक भाग ने नई परिस्थितियों के अनुकूल अपने को बना लिया होगा और कुछ भाग दूसरे क्षेत्रों म चला गया होगा। पश्च-तृतीय काल (उत्तर-तृतीय काल) में स्तनधारियों के दूसरे प्रदेशों में जाने के संकेत उन असंख्य एशियाई पशुओं—जीवाश्म घोड़ों, हाथियों शुतुर्मुर्गों बन्दरों में मिलते हैं जो यूरोप और अफ्रीका तक पहुँच गए थे। देशान्तर-गमन करनेवाले इस प्राणि जगत् को 'पिकेरमी प्राणि-जगत्' (Pikermi fauna) का नाम दे दिया गया है, पिकेरमी यूनान में एक जगह थी जिसने देशान्तर-गमन के समय उनके ठहरने के स्थान का काम दिया था यह जगह अस्थियों के अवशेषों की दृष्टि से बहुत सम्पन्न है। अफ्रीका के वर्तमान प्राणि-जगत् में पिकेरमी के प्राणि-जगत् का काफी मिश्रण है।

मसोपिथेकस पटेलिसी (mesopithecus pentelici) पेंटेलीकाम एथेन्स के समीप पाया गया एक बन्दर जो मकर-कपि तथा गिब्बन (शाखा बानर) के बीच की स्थिति में होता है की तरह के कुछ बानर और आगे तक चले गए थे और, उडाब्नोपिथेकस गारे जीएन्सिस (udabnopithecus garejiensis) की तरह के दूसरे बानर मर गए थे और राह म ही लुप्त हो गए थे एक तीसरा वर्ग उनका जो एशिया म बचा रहा था प्राति नूतन युग के एशियाई बानरों के रूप में विकसित हो गया था और वही आधुनिक बानरों तथा मनुष्य का पूर्वज बना था। बाद में लुप्त हो जानेवाले बानरों के अधिकांश को बाध्य होकर आंशिक रूप से वृक्षों पर, आंशिक रूप से जमीन पर जीवन बिताने के तरीके को अपना लेना पड़ा था बैबूनों की तरह के उनमें से कुछ पूर्णतया भूमि पर ही रहते थे। मनुष्य के पूर्वजों को जमीन पर सीधे खड़े होकर चलने के ढंग को अपनाना पड़ा था—यह ढंग बैबूनों के हाथों के बल चलने के ढंग से भिन्न था मनुष्य के पूर्वज चार पर नहीं दो पैरों पर चलते थे। मनुष्य के आविर्भाव के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ तथा उसके आविष्कार की सम्भावना सर्वप्रथम और सर्वाधिक उत्तर-तृतीय काल के जीवाश्म बानरों की रचना की विशिष्टताओं तथा उस काल की पारिस्थितिकी के अन्दर मिलती हैं। चूँकि मनुष्य भी बानर के समान एक अधो-नासा प्राणी है, इसलिए यह सम्भव नहीं कि उसकी उत्पत्ति उन अमरीकी बन्दरों से हुई हो जो अनेक रूपों में पुरानी दुनिया के बन्दरों से अत्यधिक भिन्न हैं। उदाहरण के लिए सिर की स्थिति को ले लीजिए वलय-पुच्छ (ring tailed) की किस्मों के उच्च रूप से विकसित वृक्षचर बन्दरों के लिए सिर का नीचे की ओर रखना ही स्वाभाविक चीज है। यह आशा करना कि सबिडी (cebidae=कपि-वंश) की कोई भी किस्म दो पैरवाली (द्विपदीय) हो जाए और, साथ ही साथ अपनी दुम के बाहरी भाग को छोटा कर ले एकदम बेकार है। इसी तरह, यह मानना कि सामना कर सकने वाले अँगूठे तथा एक अत्यधिक संश्लिष्ट मस्तिष्कीय बाह्यक (cortex) का व विकास कर ले सकते हैं अथवा यह आशा करना कि वह तमाम पूर्व आवश्यक चीजों की पूरी शृंखला का वे विकास कर ले सकते हैं जो बानर के लिए मनुष्य बन जाने के वास्ते जरूरी हैं—एकदम बेकार है। मुरोमि-वंश (hapalidae) भी इसके

लिए इसमें कुछ अधिक उपयुक्त नहीं है। वे परिकल्पनाएँ जो अमरीकी बन्दरों से मनुष्य की उत्पत्ति की बात पर आधारित हैं कसौटी पर जरा भी पूरी नहीं उतरतीं।

शरीर रचना के सम्बन्ध में नई और पुरानी दुनिया के बन्दरों अथवा वानरों के बीच और इसीलिए उनके तथा मनुष्य के बीच भी काफी असादृश्य है उसको स्पष्ट कर देना ही पर्याप्त होगा। अमरीकी बन्दरों के दो के बजाय तीन चर्वण दन्त होते हैं उनकी बाह्य श्रवण वाहिनी (acoustic duct) लम्बी नहीं होती बल्कि छोटी होती है स्वर-यंत्र सम्बन्धी उनके कोष मोरगाग्नी के निलयों (Morgagni's ventricles) से नहीं निकलते हैं।

यह विचार तो और भी कम स्वीकार करने योग्य है कि मनुष्य की उत्पत्ति टार्सियर अथवा लमूर जैसे और भी निम्न प्रकार की शरीर रचना वाले किसी प्रभानक से हुई है। इसके बावजूद वैज्ञानिक साहित्य में ऐसी परिकल्पनाएँ मिलती हैं यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से वे डार्विनवाद के विरुद्ध हैं। अगले अध्याय में उस संघर्ष का जिक्र किया जाएगा जो मानव-प्रजनन की डार्विनवाद-विरोधी परिकल्पनाओं के विरुद्ध किया गया है।

3

मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उत्तर-कालीन परिकल्पनाओं की आलोचना

1 मानव उत्पत्ति की धार्मिक व्याख्याएँ

अब तक जो लिखा गया है उससे स्पष्ट है कि मनुष्य की उत्पत्ति तथा पृथ्वी-तल के अपेक्षाकृत अधिक समीप के उसके पूर्वजों के विषय में डारविन के मानव प्रजनन (anthropogenesis) सम्बन्धी सिद्धान्त की आधुनिक जीवशास्त्र ने पूर्णतया पुष्टि कर दी है। प्राणि जगत् के विकास से सम्बन्धित समस्याओं की अधिकाधिक गहराइयों में जाकर जीवशास्त्र अनुसन्धान का कार्य कर रहा है तथा जीवों के विकास-क्रम को निर्धारित करनेवाले कारकों की अधिकाधिक स्पष्ट तसवीर वह पेश करता जा रहा है।

धार्मिक धारणाओं के अनुसार, प्रकृति के अन्दर शाश्वत रूप से पूर्व-नियोजित सामंजस्य मौजूद रहता है अथवा जीवित तथा जीवन-हीन प्रकृति का विकास 'सृष्टि की दैवी योजना के अनुसार होता है। उसकी इस मिथ्या प्रयोजनवादी (teleological) धारणाओं के साथ-साथ धर्म पर भी डारविनवाद ने समूल-ध्वंसी प्रहार किया। ऐसे बहुत-से लोग आज भी मौजूद हैं जिनके दिमागों में यह विचार भरा हुआ है कि संसार में होनेवाले परिवर्तनों का आपस में एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अधिभूतवादी ढंग से सोचनेवाले लोगों का विश्वास है कि जगत् अपरिवर्तित रहता है और उसका संचालन वही दिव्य शक्ति करती है जिसने उसकी सृष्टि की थी। यह भाववादी अधिभूतवादी दर्शन जो धर्म का आधार है द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का जो एक सच्चा वैज्ञानिक दर्शन है एकदम विरोधी है। संसार के विषय में यह धार्मिक धारणा नये गुणों के उदय की बात का समर्थन के मार्ग में बाधक है। यह यह नहीं मानती कि परिमाण से गुण में परिवर्तन हो सकता है। इसीलिए अधिभूतवादी इस बात से इन्कार करते हैं कि मनुष्य की उत्पत्ति वानरों के वंश से हुई है।

जहाँ तक विश्वासों के मानव-शास्त्रियों का सम्बन्ध है वे अभी तक मानव उत्पत्ति की समस्या को श्रम द्वारा अदा की गई प्रमुख भूमिका के साथ जोड़कर नहीं देखते। मनुष्य के निर्माण की व्याख्यात्मक रूप से विशिष्ट क्रिया की भौतिकवादी व्याख्या के अनुसार ठीक इसी कारक को प्रथम स्थान दिया जाता है (प्रमियाल्को 1031 पृष्ठ 33-42)।

प्रकृति तथा समाज की विकास सम्बन्धी प्रक्रियाएँ द्वन्द्वात्मक होती हैं—इस चीज को पूँजीवादी व्यवस्था के कारण अनेक पूँजीवादी वैज्ञानिक सदा-सही नहीं समझ पाते। पूँजीवादी व्यवस्था बहुत बार उन्हें ऐसे निष्कर्ष निकालने के लिए मजबूर करती है जो जिन तथ्यों से वे निकाले गए हैं उनके एकदम विपरीत हैं। प्रमुख ब्रिटिश जीवशास्त्री तथा विकासवादी एल्फ्रेड वैलेस (1823-1913) इस वर्ग के वैज्ञानिकों के एक खास प्रतिनिधि हैं।

वे इस चीज को मंजूर नहीं कर सके कि मनुष्य के शरीर का विकास एक पशु-पूर्वज के शरीर से हुआ है जो वानर से मिलता-जुलता था। न वह इसी चीज को स्वीकार कर सके कि *मनुष्य के बड़े-से मस्तिष्क का विकास पूर्व-परिवर्तन* (mutation) तथा प्राकृतिक वरण (natural selection) जैसे विकासवादी कारकों के माध्यम से एक वानर के मस्तिष्क से हुआ था।

वैलेस इस चीज से खास तौर से सहमत नहीं हुए कि मनुष्य का मानस एक पशु के तंत्रिका तन्त्र की उच्चतर क्रियाशीलता के आधार पर विकसित हो गया था। वे इसे सम्भव नहीं मानते थे। "हमारे अन्दर ऐसी बौद्धिक तथा नैतिक शक्तियाँ हैं जो इस तरह से कदापि विकसित नहीं हो सकती थीं उनकी उत्पत्ति का स्रोत कोई और ही रहा होगा और इस उत्पत्ति का पर्याप्त कारण केवल आत्मा के अदृश्य जगत् में ही हम पा सकते हैं।"[1] इस सम्बन्ध में हम इस बात को भी याद कर सकते हैं कि लिनायस (Linnaeus) यद्यपि मनुष्य और वानरों के अत्यधिक सादृश्य की बात को मानता था परन्तु वह कहता नहीं था कि मानव आत्मा विश्व आत्मा का एक कण है।

वैलेस डार्विनवाद के एक सच्चे प्रतिनिधि के रूप में बात करता है। खुले तौर से उसने केवल उसी चीज को कह दिया था जिसके विषय में उसके समय के अनेक अन्य विकासवादी चुप्पी साधे हुए थे। डार्विन के सिद्धान्त को धर्म के साथ अधिक-से अधिक घनिष्ट रूप से जोड़ने के लिए उसने कहा था कि मनुष्य में उच्चतर बुद्धि के विकास को प्राकृतिक वरण के नियम के माध्यम से निर्देशित करने का एक अधिक उदात्त लक्ष्य *था स्पष्टतया उसका लक्ष्य यह था कि सबसे अधिक* उन्नत प्राणी के रूप में मनुष्य ईश्वर का ध्यान करे।

डार्विनवाद के विरुद्ध जो एक दूसरा भ्रमात्मक सिद्धान्त पेश किया गया था वह यह था कि वानर की शरीर-रचना मनुष्य के शरीर से हुई थी मनुष्य ही तमाम प्राणियों

1 अल्फ्रेड रसेल वैलेस, डार्विनवाद, लन्दन, 1889 पृष्ठ 478।

का मूल रूप है। उदाहरण के लिए जोहान रैंके (1807) का कहना था कि कपाल रचना का सर्वोच्च रूप मानी मनुष्य का कपाल ही स्तनधारियों के सम्पूर्ण परिवार के कपालों के विकास का सामान्य प्रारम्भिक बिन्दु था।

इसी तरह का एक दृष्टिकोण बाद में जोहान कोलमैन (1906) ने विकसित किया था। उसका विचार था कि मनुष्य तथा मानव-सम वानरों के सामान्य पूर्वज का कपाल अधिक उच्च रूप से विकसित था—आधुनिक वानरों के छोटे कपालों से भिन्न उसकी आकृति गोल थी। कोलमैन ने अपने विचारों को इस तथ्य के ऊपर आधारित किया था कि नवजात वानर के कपाल की आकृति वयस्क वानर के कपाल की आकृति की अपेक्षा वयस्क मनुष्य के कपाल की आकृति से अधिक साम्य रखती है।

रैंके तथा कोलमैन के सिद्धान्तों का कोई आधार नहीं है क्योंकि धर्मावस्था के अन्दर के विकास-काल में न केवल वानरों का बल्कि दूसरे स्तनधारियों का भी कपाल अधिक गोल तथा ऊँचा होता है। यह निष्कर्ष कि स्तनधारी मनुष्य से निकले हैं पुरा भूगर्भशास्त्र तथा जीवशास्त्र की अन्य शाखाओं के द्वारा प्रस्तुत किये गए तथ्यों से स्पष्टतया मेल नहीं खाता।

ई डाके (E. Dacque, 1935) तथा ओटो क्लीसमिद् (Otto Kleinschmidt, 1931) जैसे बीसवीं शताब्दी के कुछ लेखकों ने कोलमैन के विचारों को फिर विज्ञान के रूप में चित्रित करने की कोशिश की है। डाके ने तो यहाँ तक कोशिश की है कि मनुष्य की उत्पत्ति से सम्बन्धित वैज्ञानिक आधार-सामग्री का प्रथम मानव की *सृष्टि से सम्बन्धित बाइबिल की कल्पित कथा के साथ वह मेल करा दे।*

जहाँ तक क्लीसमिद् का सम्बन्ध है तमाम जीवाश्म मानवों तथा आस्ट्रेलोपिथेकसों को गलती से वह आधुनिक मानव-जाति की नस्लें मानता है इसके अलावा दूसरे मानव रूपों के विकास की दिशा को मानवी-विकास की दिशा से वह बहुत दूर रखता है और वानरों का सम्बन्ध ऐसे प्राणियों से जोड़ता है जो मनुष्य से बिलकुल अलग है।

विकासवाद के विरोधी एम॰ वेस्टनहॉफर (1935) ने यह दिखलाने की कोशिश की थी कि वानर अवस्था से बिना गुजरे हुए, सीधे ही मनुष्य निम्न वर्ग के स्तनधारियों के वंश से निकल आया है। इस परिकल्पना के समर्थन में उसने यह प्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयास किया था कि मनुष्य के वृक्कों (kidneys) की रचना जटिल होती है और उसमें अधिकतर एक दर्जन वृक्कीय स्तूप (*renal pyramids*) होते हैं। परन्तु, वास्तव में यह तो उन सबसे बड़े अन्तरों में से एक है जो संरचनात्मक दृष्टि से मनुष्य को वानरों बन्दरों तथा अन्य प्रमाणकों से विशिष्ट बनाता है।

मानव-सम वानरों में जहाँ तक इस विशेषता की उपस्थिति की बात है तो यह ज्ञात है कि चिम्पैंजियों में से कुछ के अन्दर सात स्तूप (pyramids) तक गिने गए हैं। गोरिल्ला के एक स्तूप होता है और गिब्बन के चार तक। औरंग-उटैन के अन्दर चारों स्तूप एक साथ विकसित होते हैं और एक सामान्य चूचक (*nipple*) के माध्यम से

वृक्कीय नालिको (renal duct) के अन्दर खुलते हैं। अमर-कपियों (marmosets) मेकाकों (macaques) बैबूनों तथा पुरानी दुनिया के अन्य सर्कोपिथेकसों में से हरेक के अन्दर एक स्तूप होता है। नई दुनिया के बन्दरों में भी एक स्तूप के साथ वृक्क होते हैं, यद्यपि उनमें से कुछ के अन्दर उनका रूप संश्लिष्ट होता है क्योंकि उनकी उत्पत्ति चार से छः स्तूपों से हुई होती है।

वेस्टनहोफ़र की परिकल्पना का खण्डन करने के लिए मनुष्य के अन्दर पाए जाने वाले वृक्कीय स्तूपों (renal pyramids) की संख्या की परम विविधता का उल्लेख कर देना ही काफ़ी है। उसके अन्दर तीन से लेकर बीस तक वृक्कीय स्तूप मिलते हैं। गर्भाशय की अवस्था में ही वृक्क स्पष्ट रूप से विभक्त हो जाता है। संश्लिष्ट स्तूपीय रचना बन्दरों में भी मिलती है। यद्यपि वृक्कों का विभाजन मनुष्य के अन्दर बहुत प्रमुख दिखलाई देता है फिर भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि उनका विकास मानव-सम रूप से हुआ है।

वेस्टनहोफ़र प्रसिद्ध विरखोव का यानी व्याधि-विज्ञान के उस जर्मनशास्त्री का अनुयायी है जिसने डारविन के सिद्धान्त का विरोध किया था और इस धारणा को मानने से इन्कार किया था कि पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) ही प्रथम प्रारम्भिक मानव है। इसलिए वेस्टनहोफ़र स्वयं भी मानव-उत्पत्तिशास्त्र से सम्बन्धित अपने विचारों में भीषण डारविनवाद-विरोधी है। वह कहता है कि मानव-प्रजनन की प्रक्रिया का तत्त्व समझने में वैज्ञानिक ज्ञान की अपेक्षा 'काव्यात्मक-अन्तर्भूत भावना' में उसकी अधिक श्रद्धा है (ग्रेमियात्स्की 1932 पृष्ठ 162 161 1937 पृष्ठ 136-137)।

मानव-उत्पत्ति की व्याख्या करते समय विज्ञान और धर्म को विकासवाद तथा अलौकिक कृपा को यांत्रिक रूप से मिला देने की घटनाएँ बताती हैं कि प्राकृतिक-विज्ञान तथा धर्म के बीच मेल कराने के प्रयासों में प्रतिक्रियावादी जीव शास्त्री किस प्रकार विफल सिद्ध हुए हैं, यद्यपि इस प्रकार के प्रयास अतीत काल में अनेक बार किये गए हैं और आज भी किए जा रहे हैं।

उदाहरण के लिए, प्रतिक्रियावादी वैज्ञानिक आर्थर कीथ (1929) कहता है कि, डारविनवाद शुद्ध विज्ञान की एक समस्या है अर्थात्, वह बाह्य जगत् की एक समस्या है और हमारे आन्तरिक जगत् की समस्याओं के साथ धर्म अथवा धार्मिक विश्वास के प्रश्नों के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल अज्ञान अथवा असहिष्णुता ही निस्संकोच भाव से डारविनवाद को भौतिकवाद अथवा अनीश्वरवाद के साथ जोड़ दे सकती है।

एस० एल० साबाल ने चार्ल्स डारविन की पूरी आत्मकथा अभी हाल में ही (1957) प्रकाशित की थी। यह महान् वैज्ञानिक अपने भौतिकवादी तथा अनीश्वरवादी विचारों को इस पुस्तक में बिलकुल स्पष्ट कर देता है। डारविन के सिद्धान्त से स्पष्ट है कि अच्छा हो यदि अज्ञान और असहिष्णुता को तमाम काम भौतिकवाद के शिविर में न करके स्वयं अपने अन्दर तथा अपने सम्प्रदाय के साथियों के अन्दर ही करें।

काम की इस तरह के वक्तव्य वो वैबनिक (1033) तथा एस॰ बार्नर्ड (1032) ने दिए थे। इनकी राय थी कि उत्पत्ति के प्रश्न का नैतिकता तथा धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।

परन्तु, यह सब विषय-सम्बन्धी दो प्रति-धुरी (परस्पर-विरोधी) धारणाओं को भाववादी तथा भौतिकवादी धारणाओं को मिलाने के प्रयत्न से अधिक कुछ नहीं है। धर्म ईश्वर में जगत् के सृष्टा में विश्वास पर आधारित है। वैज्ञानिक पद्धति आधारित है प्रकृति तथा समाज के ज्ञान पर उनके नियमों के अध्ययन तथा विकास पर।

पूँजीपति वर्ग धर्म को बढ़ावा देता है। शासक वर्ग के आदेशों को कार्यान्वित करते हुए विज्ञान द्वारा उस पर किये गए प्रहारों से धर्म को बचाने में प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी वैज्ञानिक पादरियों की मदद करते हैं। लेनिन ने अनेक बार बताया था कि शोषक वर्गों को धर्म के सामाजिक आधारों की आवश्यकता अपने प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए होती है।

मानव की उत्पत्ति का प्रश्न निरपेक्ष विज्ञान का कोई ऐसा प्रश्न नहीं है जो केवल वैज्ञानिक के अध्ययन-कक्ष के अन्दर शुद्ध रूप से सैद्धांतिक विवादों को खड़ा करता है। इसके विपरीत इस प्रश्न को लेकर जो लड़ाइयाँ लड़ी गई हैं वे वर्ग-संघर्ष की मुठभेड़ें हैं। इस सम्बन्ध में अमरीका के स्कोप्स के मुकदमे की याद दिला देना ही काफी होगा।

1925 में टैनिसी के अन्दर डेटन में एक नौजवान शिक्षक जॉन स्कोप्स के ऊपर यह अभियोग लगाया गया था और इसी बात के लिए उस पर मुकदमा चलाया गया था कि इस विषय में सम्बन्धित कानून को भंग करके स्कूल के बच्चों को डार्विन के सिद्धान्तों तथा बानरों के बारे में मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में उनकी परिकल्पना के बारे में उसने बताया था।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका के कम-से-कम पन्द्रह राज्यों में ऐसे राज्य क़ानून हैं जो विकासवादी सिद्धान्तों के पढ़ाए जाने की मनाही करते हैं। 23 मार्च 1925 को टैनिसी राज्य के गवर्नर ने निम्न कानून को अपनी स्वीकृति दी थी "टैनिसी राज्य की आम सभा यह कानून बनाती है कि राज्य के ऐसे किसी भी विश्वविद्यालय नॉर्मल तथा अन्य तमाम सार्वजनिक स्कूलों में जिनको राज्य के सार्वजनिक स्कूल कोष से पूर्ण अथवा आंशिक सहायता मिलती है किसी भी शिक्षक के लिए एसे किसी भी सिद्धान्त का पढ़ाना ग़ैर क़ानूनी होगा जो बाइबिल (इंजील) द्वारा सिखाई जाने वाली इस कहानी को अस्वीकार करता है कि मनुष्य की सृष्टि ईश्वर ने की थी और उसके बदले यह सिखाता है कि मनुष्य की उत्पत्ति प्राणियों के एक निम्न वर्ग से हुई है। इस क़ानून की अवधि के ख़त्म हो जाने के बाद (1934 में) राज्य की आम सभा ने उस पर फिर विचार किया था तथा सदस्यों के बहुमत के निर्णय से उसकी अवधि को उसने और बढ़ा दिया था।

स्कोप्स का मुकदमा एक भारी भीड़ के सामने हुआ था। स्थानीय नागरिकों के अलावा अनेक बाहरी लोग भी उसमें मौजूद थे। मुख्य सरकारी वकील विलियम जेनिंग्स ब्रायन था जो पहले राज्य मंत्री रह चुका था और अमरीका के प्रेसीडेण्ट पद के लिए नाम

नष्ट हुआ था। डार्विन को हाथ में लेकर वह गरजा था यही 'जीवन का आधार' है।

परन्तु बाइबिल उसकी बहुत सहायता न कर सकी थी। उस ह्वेल (whale) के बारे में जिसके कहा जाता है कि योना को निगल लिया था, उस जोशुआ के बारे में जिसने सूरज को ठहर जाने का हुक्म दिया था—इन तथा ऐसी ही चीजों के बारे में स्कोप्स के वकील ने व्यंग्यपूर्ण प्रश्नों की जब झड़ी लगा दी थी तो उनका उत्तर देने के प्रयासों के दौरान प्रकृति-विज्ञान तथा इतिहास और, साथ ही साथ स्वयं बाइबिल के भी सम्बन्ध में अपने पूर्ण अज्ञान को सार्वजनिक रूप में ब्रायन ने प्रदर्शित कर दिया था।

प्रमुख ब्रिटिश साहित्यकार बर्नार्ड शा के शब्दों में बन्दर के इस मुकदमे ने सारे सभ्य जगत् में अमरीकी महाद्वीप को एक उपहास की चीज बना दिया था। पर इस सबके बावजूद पूंजीपतियों की बन-अदालत ने स्कोप्स को अपराधी करार दिया था और सौ डालरों का उस पर जुर्माना किया था। धर्म अब भी पूंजीवाद का वफादार सहायक बना हुआ है। पूंजीवादी राज्य धर्म को हर प्रकार की सहायता देते हैं तथा अपने प्रभुत्व को बनाए रखने के एक साधन के रूप में प्रतिक्रियावादी दर्शन का वे पालन करते हैं। परन्तु वह दुनिया जो समाजवाद का निर्माण कर रही है अपने कार्यों को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के दर्शन पर, जो धर्म का जानी दुश्मन है, आधारित करती है।

द्वन्द्वात्मक तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद मानव-समाज के रूपान्तरण के सबल अस्त्र हैं। समाजवाद और फिर साम्यवाद (कम्युनिज्म) के निर्माण के साथ-साथ समाज का सामाजिक तथा आर्थिक आधार मूलभूत रूप से बदलता जा रहा है, श्रमजीवी जनता के विश्व-सम्बन्धी दृष्टिकोण में अगाध परिवर्तन होता जा रहा है और धर्म की बेड़ियों तथा जगत् के सम्बन्ध में पुरातन अधिभूतवादी भाववादी दृष्टिकोण से अपने को वह मुक्त करती जा रही है। प्रकृति तथा समाज के घटना प्रवाहों के सम्बन्ध में विशेष रूप से मानव उत्पत्ति की प्रक्रिया के सम्बन्ध में सही समझदारी के प्रसार के परिणाम स्वरूप दर्शन में होनेवाला यह परिवर्तन और भी तेज हो जाएगा।

2 टार्सियर (पक्ष-मर्कट) सम्बन्धी परिकल्पना

कुछ वैज्ञानिकों ने इस बात के प्रयत्न किए हैं कि एक जीवाश्म मानव-सम वानर से मनुष्य के विकसित होने की डार्विन तथा एंगेल्स द्वारा प्रस्तुत की गई धारणा के स्थान में अन्य प्रमाणकों से उसकी उत्पत्ति के विचारों की प्रतिष्ठा कर दें। अंग्रेज जीव शास्त्री तथा शरीर-विज्ञ फ्रेडरिक वुड जोन्स इन्हीं वैज्ञानिकों में से एक हैं जिसने एक विस्तृत परिकल्पना सामने रखकर यह दिखाने की चेष्टा की है कि मनुष्य की उत्पत्ति सीधे-सीधे प्राचीन आदि-तृतीय काल के एक टार्सियर से हुई थी।

टार्सियरों के एकमात्र जीवित प्रतिनिधि वे नन्हे-नन्हे प्राणी हैं (चित्र 30) जो ईस्ट इण्डीज तथा मलाया के क्षेत्र में रहते हैं। स्थानीय प्राणि-जगत् की वे वहाँ एक ठेठ विशेषता हैं। बाहरी तौर से टार्सियर जरबोआ (jerboa=चपमाक्, एक प्रकार के

पूंछ) से मिलते-जुलते हैं। रात के जानवरों की तरह उनकी आँखें बहुत बड़ी-बड़ी होती हैं, पीछे के उनके अग (पैर) बहुत लम्बे और सामने के अग (हाथ) बहुत छोटे होते हैं। उनके एक लम्बी दुम होती है जिसका शाख से शाख पर चपल गति से कूदते समय में केवल एक पतवार तथा सतुलन बनाए रखने के एक साधन के रूप में वे इस्ते माल करते हैं बल्कि विश्राम करते समय एक सहारे के रूप में भी उसका उपयोग करते हैं। अपने पीछे के अगों (पैरों) की सहायता से टार्सियर कमोबेश सीधी खड़ी स्थिति में इधर से उधर आता-जाता है। उसके पैर की मनुस्क (calcaneus) तथा नौकाभ (nevicular) अस्थियाँ अत्यधिक लम्बी हैं। टार्सियर का अपना नाम उन इसी से मिला है।



चित्र 36 टार्सियस स्पेक्ट्रम व्यार
(ए बोलेसर, 1936 के अध्ययन से)

टार्सियर सम्बन्धी परिकल्पना का नामकरण भी इन्हीं विशिष्टताओं से हुआ था। वुड जोन्स के कथनानुसार मानव-सभा में मनुष्य जितना मिलता है उससे कहीं अधिक टार्सियर मनुष्य से मिलता है। उसका कहना है कि टार्सियर की सीधी खड़ी चाल ही मनुष्य के पूर्वजों की खड़ी स्थिति के विकास की शुरुआत थी।

इस दावे में सत्य का एकमात्र अंश यह है कि लमूरों की अपेक्षा टार्सियर बन्दरों से अधिक मिलते हैं और बहुत-से विद्वान हैं जिनका विश्वास है कि पुरानी और नई दुनिया के टार्सियर ही बन्दरों के जुदा-जुदा वर्गों के पूर्वज थे। उदाहरण के लिए, टार्सियरों के नेत्र-कोटर तथा कनपटी की (शंखीय) उपकुल्याओं (fossae) के बीच एक विभाजन (partition) होता है जबकि लमूरों के अन्दर तक जाने वाला एक चौड़ा छिद्र (orifice) होता है जो चारों ओर से अस्थि के एक वलय से घिरा होता है (चित्र 10-3)।

उसकी अन्य विशेषताएँ जाहिर करती हैं कि लेम्यूरों की अपेक्षा टार्सियर अधिक आदिम-कालीन है और कीटाहारियों के साथ अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ सादृश्य रखता है। इन विशेषताओं में से कुछ ये हैं: दन्त-विन्यास (नीचे के जबड़ों पर भाग की ओर एक अर्ध चन्द्राम उपोपमकु (paraconid) जो दूसरे प्रधानकों में प्रारम्भिक-तृतीयकाल से ही अनुपस्थित पाया जा रहा है) तथा अत्यन्त सरल स्वरूप की एक बड़ी आहार-नली (gut)। प्रधानकों के जाति-इतिहास के अन्दर टार्सियरों के स्थान का प्रश्न इस प्रकार एक प्रकार से एक जटिल प्रश्न है।

आज टार्सियरों की दो या तीन जातियाँ (species) जीवित हैं। वे उस एक विस्तृत रूप से फैले हुए वंश की विशेषीकृत वंशज (specialised descendants) हैं जो तृतीय काल के प्रारम्भिक युग में यूरोप, एशिया तथा उत्तरी अमरीका के विशाल क्षेत्रों में रहता था। तृतीय काल के एकदम प्रारम्भ में पुरा-नूतन युग (palaeocene epoch) में जो टार्सियर थे उनमें से बहुत-से शरीर की रचना की दृष्टि से लेम्यूरों के अधिक करीब थे। कीटाणुओं को खाने वाले उत्तर खटी युग (upper cretaceous) के स्तनधारियों (कीटाहारियों) के रूप में उनके एक ही पूर्वज थे। आदि नूतन युग (eocene epoch) के कुछ आदिम टार्सियर पुरानी और नई दुनिया के बन्दरों के पूर्वज थे (अभिमात्स्की 1933)। जो पेड़ पर नहीं जमीन पर रहने वाले उच्च रूप में विकसित वानरों के रूप में मनुष्य के सबसे नजदीकी पूर्वजों में बन्दरों के पुरानी दुनियावाले वंश में ही तृतीय काल के अंतिम युग में अपना स्वरूप ग्रहण किया था। परन्तु, इस तथ्य से हम यह परिणाम नहीं निकालना चाहिए कि मनुष्य सीधे-सीधे टार्सियरों से विकसित हुआ था जैसा कि वुड जोन्स कहता था।

अपनी परिकल्पना को सर्वप्रथम 1916 में वुड जोन्स ने सामने रखा था (देखिए वशिंग 1912 पृष्ठ 174-182)। लेकिन इस परिकल्पना को विद्वानों के बीच समर्थन न मिल सका। 1929 में वुड जोन्स का दूसरा प्रबन्ध प्रकाशित हुआ। इसमें उसने अपने प्रमाणों के तमाम भण्डार को उंडेलकर यह सिद्ध करने की कोशिश की कि मनुष्य बन्दरों के वंश से नहीं बल्कि टार्सियरों के वंश से पैदा हुआ है। अपने इस प्रबन्ध में टार्सियर की शरीर-रचना की विशिष्ट प्रकृति की वुड जोन्स ने ब्योरेवार व्याख्या की और मनुष्य तथा दूसरे प्रधानकों की शरीर रचना के साथ उसकी तुलना की। विशेष रूप से यह दिखलाने की उसने कोशिश की कि मनुष्य और वानरों के बीच की समस्त सादृश्यताएँ उनके रुधिर सम्बन्ध की नहीं—जैसा कि मानव शास्त्रियों तथा अन्य वैज्ञानिकों का बहुमत का विश्वास है—बल्कि उनके समानान्तर विकास की परिणाम हैं। उसका कहना है कि निम्न वर्ग के बन्दरों से मनुष्य की अपेक्षा वानर अधिक मिलते हैं।

वुड जोन्स का एक महत्वपूर्ण तर्क यह है कि मानवी शरीर के अनुपात (छोटी भुजाएँ और लम्बे पैर) उनसे भिन्न हैं जो तमाम वानरों में मिलते हैं (लम्बी भुजाएँ और छोटे पैर) जबकि कहा यह जाता है टार्सियर के शरीर के अनुपात मनुष्य की ज्यादा याद

दिखाते हैं। इन तर्कों में जोन्स दूसरी विशिष्टताओं को भी जोड़ता है—बालोंवाला आवरण (विशेष तौर से शरीर के ऊपर बालों का वितरण) कपाल का छोटा चेहरे वाला भाग शिश्न तथा स्त्री-शिश्न (clitoris) म अस्थियों की अनुपस्थिति मादा की बाह्य जनन-इन्द्रियाँ तथा मनुष्य स मिलने-जुलनेवाली अन्य स्पष्ट चीजें।

वुड जोन्स का दावा है कि मानव-शरीर की कुछ आदिम विशेषताएँ ऐसी हैं जो बताती हैं कि जिन स्तनधारियों ने उसके पूर्वजों का काम किया था उनका विकास बहुत दूर की किसी अवस्था म हुआ होगा। ये विशेषताए हैं अक्षक (collar bone) की विचित्र बनावट तथा कुछ पेशियाँ जो मनुष्य क अलावा केवल प्लेटीपस (platypus= कारण्ड चञ्चु) जैसे अण्डज (oviparous) स्तन धारियों में ही मिलती हैं मनुष्य के हाथों की बनावट स्पष्ट रूप से पुरा कल्प (palaezoic) के अंगार युग (carboniferous) क उभय-चरो (amphibians) प्राचीन प्राणियों की याद दिलाती है।

जोन्स की परिकल्पना की स्वयं उसके देश म तथा बाहर तीव्र आलोचना की गई थी। वुड जोन्स ने जो आधार-सामग्री प्रस्तुत की थी उसम से कुछ तो तथ्यों के अनुरूप नहीं है और अंश स दूसरे परिणाम निकाल जा सकते है। उदाहरण के लिए, वुड जोन्स मानवी अग्रचर्वण दन्तों (अग्र चर्वणको=premolars) की जड़ों के रूप-आकार पर बहुत जोर देता है। यह बात सबको मालूम है कि मानवी अग्रचर्वण दन्तों (अग्रचर्वणकों) की दो के बजाय—जैसाकि अधोनासा बन्दरों में देखने को मिलती है—एक ही जड़ होती है। अधोनासी बन्दरों के अग्रचर्वण दन्तों की जड़ दन्त-पाप के बराबर-बराबर, एक-दूसरे क अगल बगल में रहती है परन्तु जब मानवी अग्रचर्वण दन्त क दो जड होती हैं तो उनम स एक दाँत के गाल की तरफ रहती है और दूसरी जीभ की तरफ।

अधोनासा (catarrhine) बन्दरों के ऊपर के अग्रचवण दन्तों (अग्र-चर्वणको) के साधारण तौर म तीन जड़ होती हैं परन्तु मनुष्य के ऊपर के अग्रचर्वण दन्तो क एक या दो हा जड़ें होती है अथवा एसी एक जड़ होती है जो पूरे तौर स दो में नहीं बँटी होती। जब यह जड़ पूरे तोर स दो भागो म विभक्त नहीं हुई रहती तो वह गाल और दाँत की जगह पर होती है जैसाकि वुड जोन्स खास तौर स जोर देकर कहता है। इस बात को वह सम्भव मान लेता है कि मनुष्य के ऊपर के अग्रचर्वण दन्तों की जड़ों की स्थिति महा वानरों के दन्त-तन्त्र म विकसित हो जा सकती थी क्योंकि इन वानरों के ऊपर के अग्रचवण दन्तों की तीन म स दो जड़ें गाल और जीभ की जगह पर होती है। फिर भी मनुष्य के नीचे अग्रचर्वण दन्तो की सन्तोषप्रद व्याख्या नहीं प्रस्तुत की गई है क्योंकि वुड जोन्स इस बात पर कायम है कि अधोनासा बन्दर के नीचे के अग्रचर्वण दन्त कभी एस नहीं थ कि उनकी दोहरी या तिहरी जड़ें गाल-जीभ की स्थिति म उसी तरह रही हो जिस तरह कभी-कभी मनुष्य के अन्दर व देखन को मिलती है।

इस मामले म जोन्स गलती म है क्योंकि जड़ो का ऐसा क्रम उच्च वर्ग के कुछ अधोनासा बन्दरों में भी देखा गया है।

तीन जबड़ों के साथ साथ के प्रथम दन्ता का ब्योरा एक चिम्पजी के सम्बन्ध में मौजूद
वैज्ञानिक साहित्य में मिलता है। एस० सा० वेनजियम (1936) ने इस प्रथम दन्ता के
साथ एक चिम्पजी के जबड़े के हनु का विवरण तथा उसकी तस्वीरें प्रकाशित की थीं।
फ्रज वाइडनरीख (1937) ने सिनानथ्रापस (Sinanthropus) के प्रथम दन्तों
तथा उनकी जड़ों की बनावट का अध्ययन किया था और निश्चयात्मक रूप में कहा था
कि वे जीवाश्म मानव-सम वानरों (fossil anthropoid apes) में पाए जानेवाले
प्रथम दन्ता जैसी चीज में विकसित हुए हैं। प्रमरो ने (1934) मनुष्य के प्रथम दन्ता
की जड़ों की स्थिति में हुए परिवर्तनों की व्याख्या करते हुए बताया है कि उनका कारण
मानव प्रजनन के क्रम (anthropogenesis) में हनु का छोटा होता जाना है।
मानव-शास्त्र के मास्को संस्थान तथा संग्रहालय (Moscow Institute and
Museum of Anthropology) में मागो तथा मानव-सम वानरों के अध्ययन में एक
और भी व्याख्या की सम्भावना कुछ दिखलाई दी है मनुष्य के पूर्वजों में पाई जाने
वाली तीन जड़ों में से आगे की जड़ लुप्त हो गई है और पीछे की दो जड़ें आपस में मिलकर
स्थिर हो गई हैं। यह सम्भावना भी वान्स की परिकल्पना के खिलाफ जाती है।
और भी अनेक ऐसे तथ्य हैं जो टार्सियरवादी परिकल्पना को गलत सिद्ध करते हैं।
वड वान्स के दावे के विपरीत टार्सियर का रुधिर मनुष्य के रुधिर से सम्बन्धित नहीं है।
मनुष्य के रुधिर तथा चिम्पजी और दूसरे वानरों के रुधिर में सारी समानता यहाँ तक
कि एकरूपता (identity) तक देखी गई है। फ्रेडरिक टिल्नी (1928) ने अवक्षेपण
(precipitation) प्रक्रिया के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट में कहा था कि टार्सियर का रुधिर,
मैकाक तथा अमरीकी बन्दरों की अपेक्षा मनुष्य ओरंग-उटान तथा गिब्बन के रुधिर के
अधिक समीप है। यह एक स्पष्ट भूल थी। ग्रोस स्माक (1924) द्वारा प्रस्तुत की गई
आधार-सामग्री के अनुसार मानवी रुधिर के साथ उनकी समानता की जाँच करने के
लिए किए गए अवक्षेपण प्रयोगों में टार्सियर तथा लोरिस (loris = सरवानुक) के
रुधिर में नकारात्मक परिणाम निकले थे—न कोई अवक्षेपण (precipitation) हुआ
था और न धुँधलापन (clouding) पाया था न वृत्त (rings) ही बने थे।
निम्न क्रम के अधोनासा बन्दरों (catarrhine monkeys) तथा मानव-सम के
बीच सादृश्य की उन बातों की जो मनुष्य से उन्हें जुदा करती हैं, वड वान्स ने निम्न
सूची दी है

1 उनकी नासास्थियाँ (nasal bones) कम अवस्था में ही एक साथ पैदा
होती हैं

2 वानर की ललाटकोष (frontal) और कनपटी (शंखीय = temporal) की उनकी
अस्थियाँ आम तौर से गोरिल्ले और चिम्पजी[1] में एक-दूसरे के अधिक नजदीक होती हैं

1 ललाटकोष (frontal) तथा कनपटी की (शंखीय = temporal) अस्थियों के एक सिरे
पर तथा संधि-सीवन (sutures) आपस में बने सम्पर्क-स्थल को ललाटशंख-सम्पर्क

3 ऊपर के उनके प्रचर्वण दन्तों की तीन जड़ होती हैं

4 उनके दोनों लिंगों के श्व-दन्तों (भेदक दन्त = Canines) के आकार में स्पष्ट अन्तर होते हैं

5 उनके एक लम्बी अस्थिमय बाह्य श्रवण-नाल (auditory canal) होती है (केवल औरंग-उटॅन में वह छोटी होती है)

6 इन तमाम बन्दरों में महाधमनी (aorta) की चाप से केवल दो मुख्य धमनियाँ (arteries) निकलती हैं (गोरिल्ला और चिम्पैंज़ी में मनुष्य की धमनियों का विन्यास रूप भी पाया जाता है)

7 उनके एक ऊपरी बाहुकीय धमनी (brachial artery) होती है

8 उनके पीछे के उन अंगों (पैरों) में एक बड़ी सफिन धमनी (saphenous artery) होती है

9 उनके अन्दर उच्च रूप में विकसित वायु-कोष (air sacs) होते हैं (अधिकांश गिब्बनों में ये विकसित नहीं होते)

10 अधिकाधतर वृक्कों (kidneys) में एक ही स्तूप (pyramid) होता है

11 प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्थ भाग (cerebral cortex) के कनपटीय-पश्चकपालीय (temporal-occipital) प्रदेश में बन्द मानुषी परिखा (sulcus) अपेक्षाकृत विकसित होती है।

इन सब चीज़ों के साथ इस चीज़ को भी जोड़ा जा सकता था कि उदाहरण के लिए, चिम्पैंज़ी और औरंग-उटॅन की लसीकिली ग्रन्थियों का तन्त्र (System of lymphatic glands) मनुष्य की अपेक्षा काफ़ी कम विकसित होता है। थामस सान्तटाम के कथनानुसार (1933) चिम्पैंज़ी में लसीकिली ग्रन्थियों के इक्कीस दल होते हैं औरंग उटॅन में बीस और मनुष्य में अड़तालीस। वाहिनीय तन्त्र (vascular system) में एक और अन्तर होता है जिसका उल्लेख किया जा सकता है। मनुष्य की अक्षकाधर धमनी (sub-

(टेरीस) पक्ष-बिन्दु (pterion) कहते हैं। एक और दूसरी तरह पक्ष बिन्दु होता है, जो लेमूरों तथा दक्षिण अमरीकी बन्दरों गिब्बनों औरंग-उटॅनों तथा मनुष्यों का खास विशेषण है। इसमें मुख्य अग्रकं पार्श्विक अस्थि (parietal bone) के पास में तथा शंखीय अस्थि के बीच होता है—यह अनुकपाल पार्श्विक पक्ष-बिन्दु (allisphenoid parietal pterion) कहलाता है। इसका शक्ल बड़े हुए अंग्रेज़ी के अक्षर एच (H) की तरह का होता है सीधे खड़े हुए एच (H) की तरह का नहीं जैसा कि इस क्षेत्र का सम्बन्ध-कनपटीय सूचे-स्वरूप में होता है। (बन्दर अमरीकी बन्दरों में गण्डास्थियाँ (zygomatic bones) भी पक्ष-बिन्दु (pterion) का काम करती हैं। जिसे कि वह गण्डानुक पक्ष भित्ति-कनपटीक (zygomatic alisphenoid temporal) कहलाता है)। कुछ विद्वान पक्ष-बिन्दु के क्षेत्र के स्वरूप का सम्बन्ध प्राइमेटों के शंखीय पिण्ड (temporal lobe) के विकास के साथ जोड़ते हैं और कहते हैं कि वह प्रमस्तिष्कीय गोलार्धों का यह क्षेत्र है जो उनकी खास विशेषता है। जो कुछ भी हो पक्ष बिन्दु का प्राइमेटों के भिन्न अन्य वर्गों को एक-दूसरे से अलग करता है और वर्गीकरण के काम में यह उपयोगी होता है।

clavian artery) जब ऊपर के भ्रन्ताम म प्रवेश करती है तो उसे कक्ष धमनी (axillary artery) कहा जाता है। सबसे बड़ी तन्त्रिका मध्यिका (median) से भी अधिक गहरे तक वह स्कन्ध (shoulder) के अन्दर जाती है। निम्न वर्ग के बन्दरों तथा वानरों म एक ऐसी कक्ष धमनी होती है जो तन्त्रिका स अधिक भ्रन्ठ है। इसकी व्याख्या निम्न प्रकार की जाती है भ्रूण के स्कन्ध म रुधिर की दो वाहिकाएं बनती हैं, एक मध्यिका तन्त्रिका से ऊपर और दूसरी उससे अधिक गहराई म। मानवी गर्भ ज्यों-ज्यों विकसित होता जाता है त्यों-त्यों वह श्रेष्ठ धमनी निर्जीव होती जाती है (atrophies) और ज्यों ज्यों बन्दर का विकास होता जाता है त्यों-त्यों वह हीनतर धमनी बलवान होती जाती है।

परन्तु, निम्न वर्ग के बन्दरों और वानरों के बीच सादृश्य की ये बातें मनुष्य और वानरों की रचना की सामान्य विशेषताओं के सम्बन्ध म टॉमस हक्सले द्वारा स्थापित की गई बातों से बहुत पीछे हैं। मनुष्य और वानरों की शरीर-रचना सम्बन्धी इन सामान्य विशेषताओं को टॉमस हक्सले ने इस विषय के अपने प्रसिद्ध अन्वेष-प्रबन्ध म संक्षेप में व्यक्त किया था। हक्सले ने यह निष्कर्ष निकाला था कि निम्न वर्ग के बन्दरों की अपेक्षा वानर मनुष्य के साथ अधिक सादृश्य रखते हैं। उसने कहा था "इस प्रकार अंगों के चाहे जिस क्रम का अध्ययन किया जाए, वानर शृंखला के अन्दर हुए परिवर्तनों की तुलना केवल एक ही नतीजे पर पहुंचाती है—कि मानव को गोरिल्ला और चिम्पजी स जुदा करनेवाले शरीर-रचना सम्बन्धी अन्तर इतने बड़े नहीं हैं जितने कि व अन्तर जो निम्न वर्ग के वानरों स गोरिल्ला को अलग करते हैं।[1]

निम्न स्तर के अधोनामा बन्दर बहुत ही विशेषित प्राणी हैं उनके आसन-किण (ischial callosities) तथा कपोल धान (cheek pouches) होते हैं उनके चर्मपत्रों के ऊपर के चारों प्रग्र-भ्रग्राग खास प्रकार की तिरछी नसों द्वारा दो-दो म जुड़े रहते हैं। बन्दरों के मस्तिष्क की रचना अधिक आदिम होती है तथा उनके मस्तिष्क का संवहनीय तन्त्र (vascular system) मानव तथा वानरों के संवहनीय तंत्र से भिन्न होता है। तथाकथित बन्दर की किस्म के मस्तिष्क के संवहनीय तन्त्र म केवल एक ही अग्र प्रमस्तिष्कीय धमनी (anterior cerebral artery) होती है जो बाह्य रूप म आधार धमनी (basilar artery) से मिलती जुलती होती है। मानव तथा मानव-सम वानरों म अधिकांश स्तनधारियों की ही तरह दो अग्र प्रमस्तिष्कीय धमनियाँ होती हैं जो एक अग्र संपर्क धमनी के द्वारा जुड़ी रहती हैं। (बी॰ के॰ सिंह उसे तथा ए॰ एन॰ फेवा तोवा 1032 पृष्ठ 10-112) निम्न और उच्च वर्ग के वानरों के बीच अधिक सादृश्य के बिन्दुओं की उपस्थिति का कारण उनकी पूर्वज वंश-परम्परा है। मानव-सम वानरों तथा मानव के बीच सादृश्य के जो बहुसंख्यक बिन्दु मिलते हैं व इस बात का एक सबसे अच्छा प्रमाण हैं कि मनुष्य की उत्पत्ति जीवाश्म मानव-सम वानर की ही एक जाति से हुई है।

1 टॉमस हक्सले 'प्रकृति में मनुष्य के स्थान से सम्बन्धित साक्ष्य, लन्दन 1863 पृ 103।

ऊपर उद्धृत किये गए तथ्य डारविन की वन मानुषी परिकल्पना को सही सिद्ध करते हैं और वुड जान्स द्वारा प्रस्थापित की गई टार्सियर की परिकल्पना को ग़लत साबित करते हैं। टार्सियर के चेहरे के छोटेपन का प्रमुख कारण यह है कि उसकी दृष्टि की इन्द्रिय का सबल विकास हो गया है तथा घ्राणेन्द्रिय (olfactory organe) छोटी हो गई है। टार्सियर की देहशाखाओं के अनुपात मनुष्य की देहशाखाओं के अनुपातों से उतने नहीं मिलते जितने कि मनुष्य की देह-शाखाओं के अनुपात लेम्यूर अथवा बन्दर के अनुपातों से मिलते हैं। टार्सियर की लम्बी दुम—जो बैठी हुई स्थिति में उठाकर उसे ऊपर पहुँचा देने का काम करने के साथ-साथ और भी अनेक कार्य सम्पन्न करती है—टार्सियर सम्बन्धी परिकल्पना का समर्थन नहीं करती। टार्सियर एक चूहे से बड़ा नहीं होता इसलिए आकार की दृष्टि से बानरों से यह बहुत दूर है। टार्सियर के जो जीवाश्म-रूप विज्ञान को ज्ञात है उनमें मध्यम अथवा बड़े आकार भी नहीं है—विशालकाय टार्सियरों की तो बात ही क्या करना।

वुड जोन्स के सिद्धान्त को ग़लत प्रमाणित करनेवाला एक और तथ्य यह है कि टार्सियर खोखों में रहनेवाला प्राणी नहीं है। वे या तो अकेले रहते हैं या जोड़ों में। यूथों में उस तरह वे नहीं मिलते जिस तरह कि अनेक लेम्यूर तथा लगभग तमाम बन्दर मिलते हैं। यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात है क्योंकि सबसे पहले और सबसे अधिक मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जो औज़ारों को बनाता और उनका इस्तेमाल करता है।

वुड जान्स द्वारा प्रस्तुत की गई मानव-उत्पत्ति की टार्सियर सम्बन्धी परिकल्पना के विषय में उठाई गई ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आपत्तियाँ तथा तुलनात्मक शरीर-विज्ञान प्रधानक विज्ञान (primatology) पुरा-भूगर्भ शास्त्र तथा मानव-शास्त्र के मान जान अनेक तथ्यों से इस परिकल्पना का प्रत्यक्ष विरोध हम इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि यह परिकल्पना पूर्णतया आधारहीन है (देखिए, राजिन्स्की 1949)।

3 कुछ वन मानुषी (सिमियन) परिकल्पनाएं

कई विद्वानों (कार्ल वोग्ट, फ्लोरेन्टिनो अमेघिनो गिसिपी सर्गी) ने यह दिखलाने की चेष्टा की है कि मानव की उत्पत्ति अमरीकी बन्दरों के वंश में हुई है। दक्षिण अमरीका के विद्वान अमेघिनो की चिपिट-नासीय (platyrrhine) परिकल्पना को हम नज़दीक से देखें। दक्षिण अमरीका के मध्य-नूतन युग के (miocene) तथा उससे भी ऊपर के स्तरों में जीवाश्म प्रधानकों के तथा दूसरे स्तनधारियों के जिनमें प्राचीन मानव भी सम्मिलित हैं अवशेषों को उसने ढूँढ निकाला था। इन अवशेषों के अध्ययन के आधार पर अमेघिनो ने मनुष्य की एक नई वंशानुक्रमणिका (वंशावली) तैयार की थी। इसमें उसने मनुष्य के पूर्वजों की श्रेणी में उन कुछ जीवाश्म प्राणियों को भी शामिल कर लिया था जिनका उससे वास्ता भी था।

परन्तु अमघिनो के संग्रह के कपालों तथा अस्थियों को दूसरे वैज्ञानिकों ने खास तौर से हान्स अस्टलिसी (1013) ने आलोचनात्मक ढंग से अध्ययन किया तो उससे दूसरे ही परिणाम निकले। कुछ अवशेष जिन्हें अमघिनो ने प्रधानकों के वर्ग में रखा था दूसरे स्तनधारियों के निकले तथा पैटागोनियन होमनकुलस (Patagonian homunculus) जैसे जीवाश्म प्रधानकों के सच्चे प्रतिनिधियों के बारे में यह प्रमाणित हो गया कि बुनियादी तौर में वे किन्हीं आधुनिक अमरीकी बन्दरों से भिन्न न थे। अमेघिनो की परिकल्पना का पूर्ण रूप से खण्डन हो गया यद्यपि दक्षिण अमरीका के पुरा भूगर्भ शास्त्र के अन्य क्षेत्रों में अमघिनो की रचनाओं से बहुत सहायता मिली थी।

हेस्परोपिथेकस (Hesperopithecus) की खोज का भी कुछ अमरीकी विद्वानों की ऐसी ही 'खोजों' की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। हेस्पेरोपिथेकस के एक और केवल एक दांत का पता 1022 में व्योमिंग (अमरीका) के उत्तर-अभिनूतन (lower pliocene) स्तरों में हैरल्ड कुक को लगा था। इस खोज ने वैज्ञानिक जगत् में एक सनसनी पैदा कर दी थी। हैनरी ओसबोर्न विलियम ग्रेगरी और मीलो हेलमेन जैसे प्रमुख अमरीकी पुराजीवशास्त्रियों ने घोषणा कर दी कि यह दांत एक जीवाश्म मानव-सम वानर का दांत है। उन्होंने कहा कि अमरीकी महाद्वीप पर मिलनेवाला यह पहला ऐसा दांत है। हेस्पेरोपिथेकस पूर्वी की रिश्तेदारियों तथा देशान्तर-गमनों के सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी दूर की अटकलपच्चियाँ अखबारों में प्रकाशित हुई। उनका एक उदाहरण प्रसिद्ध ब्रिटिश जीवशास्त्री जे० एलियट स्मिथ का एक अंग्रेजी पत्रिका में प्रकाशित एक लेख था। इस पत्रिका के मुखपृष्ठ पर एक नर और एक मादा हेस्पेरोपिथेकस का चित्र बनाया गया था और लेख के अन्दर उन्हें 'मानव परिवार के आदिम सदस्य' कहा गया था। दन्त की (ग्रेगरी 1027) तथा दूसरी पाई गई चीजों की और भी अधिक अच्छी तरह से परीक्षा की गई तो पता चला कि जो चीजें मिली थी वे वानर की नहीं थी बल्कि प्रोस्थेनाप्स (prosthenops) प्रजाति के उत्तरी अमरीका के सूअर पेक्करी (peccary) के एक जीवाश्म स्वरूप की थी।

प्रतिक्रियावादी जर्मन वैज्ञानिक आर्थर कीथ ने जिसका हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, हेस्पेरोपिथेकस (hesperopithecus) की खोज का मौलिक उपयोग किया। एक प्रबन्ध में (1020 पृष्ठ 104) उसने एक विचित्र प्रकार की वंश-अनुक्रमणिका दी जिसमें हेस्पेरोपिथेकस को आधुनिक मानव के एक पूर्वज के रूप में दिखलाया गया था। कीथ के प्रबन्ध में चूँकि उत्तर यूरोपीय अथवा नौर्डिक (Nordic) जाति के लोगों को सर्वोत्तम किस्म के मानव के रूप में केन्द्रीय स्थान में रखा गया था इसलिए उत्तरी अमरीका के उस जीवाश्म सूअर को भी उसने अपने नौर्डिक मानव के पूर्वजों की श्रेणी में शामिल कर लिया।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी विद्वानों ने मानव उत्पत्तिशास्त्र के सम्बन्ध में इतनी प्रचुरता के साथ जो अनेक सिद्धान्त तथा परिकल्पनाएँ

प्रस्तुत की है उनकी परीक्षा करते समय अत्यधिक सावधानी बरती जानी चाहिए। निस्सन्देह उत्तरी अमरीका में मानव-सम-वानर के दाँत के मिलने की सम्भावना स्वयं बहुत कम है, क्योंकि मालूम होता है कि इस प्रकार के वानर वहाँ कभी हुए ही नहीं थे। इसके अलावा स्तनधारियों के वैज्ञानिक (mammalogists) जानते हैं कि वानरों और सूअरों के चर्वण दन्त रूप और रचना में कभी-कभी एक-दूसरे से बहुत मिलते हैं।[1]

इसलिए अमरीकी बन्दर मनुष्य के पूर्वजों में से नहीं हैं। विश्वास किया जाता है कि अमरीका के आदि निवासी अपेक्षाकृत हाल में ही वहाँ पहुँचे थे वहाँ उन्हें पहुँचे 25,000 वर्ष से अधिक नहीं बीते हैं। उनके पूर्वज सम्भवतः वहाँ उस स्थल-संयोजक (isthmus) के मार्ग से गए थे जो बाद में ग्लेशियरों (हिमनदों) के पिघल जाने के बाद बहरिंग जल-संधि (behring strait) बन गया था। रैड इंडियन उस मंगोल-सम जाति की एक प्राचीन शाखा है जो यूरोपियनों से हजारों वर्ष पहले एशिया में विकसित हो चुकी थी।

कुछ प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी वैज्ञानिकों ने इस बात के स्पष्ट रूप से सच प्रतीत होने वाले सबूतों की सृष्टि करने की कोशिश की है कि वे रैड इंडियन हेस्पेरोपिथेकस की किस्म के किसी स्थानीय मानव-सम के वंश से पैदा हुए हैं। यह चीज बहुजातिवाद (polygenesis) के समर्थकों के लिए—अर्थात् उन लोगों के लिए खास तौर से मूल्यवान होगी जो यह कहते हैं कि मनुष्य की उत्पत्ति कई भिन्न-भिन्न पूर्वजों के वंश से अर्थात् वानरों की विभिन्न जातियों से हुई है। विमोअर आर्लबुट तथा सिसिप्पी सर्गी जैसे मानव शास्त्रियों के विचार में मानव-जाति (Human race) एक जाति (species) नहीं है बल्कि बहुत-सी जातियों अथवा प्रजातियों तक से मिलकर बनी है। उदाहरण के लिए, सर्गी (1911) मुख्य मानव जातियों (Human races) को ऐसे वर्गों (genera) में रखता है जिनमें 11 विभिन्न जातियाँ (species) हैं तथा 40 से अधिक छोटे-छोटे सुव्यवस्थित दल हैं।

परन्तु, यह बात बहुत दिनों से ज्ञात है कि अपनी अतिशय विभिन्नता के बावजूद मानव जातियाँ घनिष्ठ रूप से परस्पर सम्बन्धित हैं। एक-दूसरे के साथ वे जो घनिष्ठ सादृश्य रखती हैं उसमें भी इस चीज को देखा जा सकता है। यूरोपीय-सम लोग (Europeoids) हब्शियों मंगोलों तथा हाटेनटाटों (Hottentots) के साथ विवाह कर सकते हैं जापानी मलयवासियों तथा पालीनेशियनों (Polynesians) के साथ विवाह करते हैं हब्शी मंगोलों के साथ शादियाँ करते हैं। इन विवाहों के बच्चे सामान्यतया स्वस्थ होते हैं जो बाद में स्वयं बच्चे पैदा कर सकते हैं। बहु-जातिवाद का सिद्धान्त समस्त

1 अमरीका के प्रमुख पुरा-स्तनधारी जीवविज्ञानी ग्रेगरी (1931) ने हस्पेरोपिथेकस के इस दाँत की विशेषताओं का विश्लेषण करते हुए मानवीय दाढ़ों तक को सुअरों के दांतों की श्रेणी में रख दिया है। सुअरों के चर्वण दन्तों के चबाने वाले तल (grinding surface) के ऊपर गोल-गोल गुम्बदाकार नुकीले उभार (conic cusps) होते हैं—अर्थात्, वे गुम्बदाकार उभारों (bundouts) वाले होते हैं।

है इसका य तथ्य सबसे महत्वपूर्ण प्रमाण है। मानव जातियाँ (नस्लें) एक-दूसरे से इतनी करीब है कि मस्तिष्क की रचना रुधिर के गुणों अथवा आन्तरिक स्राव की ग्रन्थियों (glands of internal secretion) के काम के सम्बन्ध में उनके बीच तक कोई बुनियादी अन्तर नहीं मिले हैं। यह चीज डारविन के उस एकजातिवादी सिद्धान्त (theory of monogenesis) की सत्यता को सिद्ध कर देती है जिसके अनुसार, मानव-जाति मानव सम वानर की एक जाति से—कई जातियों से नहीं पैदा हुई है।

अपने नस्ली सिद्धान्तों की रचना के लिए बहुजातिवादी लोग तमाम प्रकार की वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक सामग्री बटोरते हैं। उनकी परिकल्पनाएँ स्वयं उनके देश तथा औपनिवेशिक देशों की श्रमजीवी जनता के हर प्रकार के उत्पीड़न को उचित ठहराने का काम करती हैं। इन नस्लवादियों तथा बहुजातिवादियों का एक प्रमुख प्रतिनिधि प्रतिक्रियावादी जर्मन मानव-शास्त्री हर्मन क्लाटश (1022) था उसका कहना था कि आधुनिक विज्ञान-मानव जाति के प्रति उस झूठे प्रेम को अपना समर्थन नहीं दे सकता जो चाहता है कि तमाम निम्नतर इंसानी नस्लों को हमारे भाई और बहनों की श्रेणी में शुमार कर लिया जाए।

प्रतिक्रियावादी फ्रांसीसी मानवशास्त्री जॉर्ज मौन्टेण्डन (1033) की रचनाओं म एक विचित्र दृष्टिकोण मिलता है। जॉर्ज मोण्टेण्डन ने इटली के जीवशास्त्री डेनियल रोजा (1031) की पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति तथा विकास की परिकल्पना को और विकसित किया था तथा मनुष्य के ऊपर लागू किया था। रोजा का कहना है कि पृथ्वी के सम्पूर्ण धरातल पर जीवन का एक साथ श्रीगणेश हुआ था। अत्यधिक आदिम स्वरूप का असंख्य अति-सूक्ष्म एक-कोशीय जीवों (minute unicellular organisms) का बना था परन्तु ये सारे जीव एक ही जाति (species) के थे। प्राणि जगत् के वर्तमान कालीन बड़े और छोटे विभाजनों की उत्पत्ति स्वतन्त्र रूप म हुई है। इससे भी आगे रोजा का कहना है कि दुनिया के विभिन्न भागों म पैदा होनेवाले जीवित प्राणी दूसरे महाद्वीपों में भी स्वतन्त्र विकास के द्वारा ठीक इसी प्रकार के जीवों को पैदा कर सकते हैं।

रोजा अपने दुराग्रह में किस हद तक बह जाता है इसे उसके इस वक्तव्य से देखा जा सकता है कि सम्भव है कि एक ही गाँव तक के दो आदमियों म कोई समानता न मिले—न केवल मनुष्य के प्रादुर्भाव के समय से बल्कि पृथ्वी पर जीवन के उद्भव के समय तक से।

रोजा की परिकल्पना को मनुष्य के सम्बन्ध में लागू करते हुए मौण्टेण्डन ने कहा कि विभिन्न महाद्वीपों पर लोगों का प्रादुर्भाव एक-दूसरे से स्वतन्त्र रूप से हुआ था और इसलिए, उनके बीच किसी प्रकार की रिश्तेदारी के सम्बन्ध नहीं हैं। मौण्टेण्डन ने तो यहाँ तक सिद्ध करने की कोशिश की है कि अमरीका म मनुष्य की उत्पत्ति किसी अमरीकी मानव-सम वानर से हुई थी।

अपनी परिकल्पना के लिए मौण्टेण्डन जब प्रमाणों की तलाश कर रहा था तो उसके हाथ भूगर्भ-शास्त्री फ्रांसिस द लोयस की एक रिपोर्ट आ गई। इसमें एक मनोरंजक घटना

का जिक्र था। यह घटना 1920 में दक्षिण अमरीका में घटी थी। जिस समय डे लॉयस तथा उसके साथी वेनेजुएला और इक्वेडर के सीमान्तों के पास के विशाल उष्ण-कटिबन्धीय जंगलों के बीच से गुजर रहे थे उनके ऊपर दो महाकाय बन्दरों ने आक्रमण कर दिया।

डे लॉयस लिखता है कि यह घटना एक नदी के किनारे घटी थी। शोर की आवाज सुनकर पर्यटक लोग अपने शिविर से बाहर दौड़ आए थे। जोरों से चिल्लाते और रास्ते में पड़नेवाली शाखाओं को तोड़ते हुए, दो काफी बड़े बन्दर झपटकर शिविर की तरफ लपके। पर्यटकों ने उन्हें पास तक आ जाने दिया और फिर गोली चलाकर उनमें से एक को एक मादा को मार दिया (चित्र 37)। दूसरा बन्दर घायल हो गया था किन्तु वह भाग गया और घने जंगल में जा छिपा (डे लॉयस का विश्वास है कि वह नर था)। मरे हुए बन्दर को एक बक्स के ऊपर रखा गया और उसकी तस्वीर खींच ली गई। यद्यपि डे लॉयस कहता है कि इस बन्दर के दुम नहीं थी परन्तु तस्वीर से पता नहीं चलता कि



चित्र 37 अमेरान्थ्रोपाइडीज लायसी मॉन्टेन्डन
(डे लॉयस 1931 के आधार पर)

यह बात सच है या नहीं। इसके अलावा तस्वीर को देखकर इस बात का विश्वास करना भी कठिन है कि डे लॉयस का यह दावा सही है कि वह मादा 160 सेंटीमीटर ऊँची थी।

अपने साथ उसके कपाल नीचे के हनु तथा उसकी त्वचा को लेकर डे लॉयस चला। परन्तु, दुर्भाग्य से उस लम्बे और कठिन अभियान के दौरान वह त्वचा खो गई और

उसका नीचे का हनु भी ग़ायब हो गया (इस हनु में उसके कथनानुसार 16 दाँत थे। मिशन का नेता होने की हैसियत से उसे डे लौयज ने अपने ही पास रखा था)। कपाल रसोइये के हाथ में पड़ गया था उसने उसमें नमक रख दिया था। सीलन भरी जलवायु में नमक की क्रिया के परिणामस्वरूप कपाल के टुकड़े-टुकड़े हो गए थे और उसे फेंक दिया गया था। परन्तु, जो एकमात्र दस्तावेज़ बच गई थी वह थी बन्दर की तस्वीर तथा डे लौयज द्वारा लिखा गया उसका विवरण।

डे लौयज की कहानी को मौण्टेण्डन ने विस्मृत चीज़ों के भण्डार से निकालकर उस स्व-उत्पत्तिवादी परिकल्पना की सच्चाई के प्रमाण के रूप में इस्तेमाल किया जो कहती है कि अमरीका में मानव की स्वतन्त्र रूप से उत्पत्ति हुई थी। इस बात पर बल दिया गया कि जिस मादा को पर्यटकों ने मारा था वह एक वास्तविक अमरीकी मानव-सम बानर थी। उसके शरीर के बड़े रूप-आकार, दुम की अनुपस्थिति तथा उसके चेहरे का मानवी विन्यास इन सब चीज़ों ने मौण्टेण्डन के लिए मज़बूत दलीलों का काम दिया।

मौण्टेण्डन ने इसके सम्बन्ध में पेरिस की अकादमी को सूचना भेजी। उसके बाद अमेरन्थ्रोपॉइडीज़ लायसी (Ameranthropoides loysi) के सम्बन्ध में कई पत्रिकाओं में लेख लिखे। स्व-उत्पत्तिवादी परिकल्पना के समर्थन में डे लौयज का भी एक लेख प्रकाशित हुआ। कई आलोचनात्मक लेख भी निकले। इस बात का परिणाम यह हुआ कि अमेरन्थ्रोपायड को केवल एक बड़ा मकड़ बन्दर (ateles = मर्कटिका) निर्धारित किया गया कहा गया कि यह भी सम्भव है कि वह उस पशु की एक नई जाति का प्रतिनिधि रहा हो। जो मादा मारी गई थी उसके प्रत्येक हाथ में केवल चार ही अँगुलियाँ थी और उसका अँगूठा मकड़ बन्दर के अँगूठे की तरह ही निर्जीव था उसका चेहरा भी मकड़ बन्दर के चेहरे से मिलता था। उसका माथा विभाजन अधिकांश अमरीकी बन्दरों की तरह चौड़ा है। शरीर तथा अंग पतले हैं। अधिक सम्भावना इसी बात की है कि उसके एक लम्बी परिग्राही दुम भी थी जो बक्से के पीछे छिप गई होगी। मौण्टेण्डन तथा डे लौयज के कथनानुसार बैठे होने पर उसकी ऊँचाई लगभग 70 सेंटीमीटर थी जोकि बैठे हुए मकड़-बन्दर की ऊँचाई (65 सेंटीमीटर तक) से ज़्यादा अधिक नहीं है (नैस्तुर्ख 1952)।

सारे प्रमाणों को देखने के बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि स्व-उत्पत्ति की परिकल्पना की इस उदाहरण के रूप में एक और पराजय हुई थी। स्व-उत्पत्ति के सिद्धान्त के समर्थन में मौण्टेण्डन द्वारा उद्धृत किए गए अन्य तथ्यों की सफ़ाई अन्य रूपों में दी जा सकती है (येमियास्की 1952 1954)।

रोज़ा की स्व उत्पत्तिवादी (ologenesis) परिकल्पना इस यान्त्रिक अनुमान के ऊपर आधारित है कि जातियों का स्वाभाविक विकास केवल उनके द्विभाजन के (dichotomy) द्वारा अर्थात् पहले की और बाद की दो शाखाओं में विभाजन के द्वारा ही हो सकता है। इन दो में से पहलेवाला भाग रोज़ा के कथनानुसार, आम तौर से

और विभाजित नहीं होता और अन्त में लुप्त हो जाता है। बादवाले भाग के लिए यह अवसर रहता है कि फिर द्विभाजन के द्वारा वह विकसित हो सके और वह बढ़ता है, विकसित होता है।

परन्तु द्विभाजन की धारणा निरी मनमानी धारणा है एक जाति से उपजातियों अथवा किस्मों की एक भारी संख्या की उत्पत्ति हो सकती है—केवल दो की ही नहीं। मौन्टेन्डन जिन चार आधुनिक नस्लों के नाम गिनाता है उनमें से उसकी राय में यूरोपियन मंगोल तथा इथ्यो नस्ल बादवाली हैं अर्थात् न और आगे विकास तथा पूर्णता की ओर अग्रसर हो सकती हैं। दूसरी सब नस्लों का सम्बन्ध पहलेवाली शाखाओं से है और वह कहता है उनका नष्ट हो जाना अनिवार्य है।

इस भांति स्व उत्पत्तिवादी परिकल्पना (ologenesis hypothesis) औपनिवेशिक उत्पीड़न का एक छिपा हुआ छद्म वैज्ञानिक बहाना है—इसके अलावा और कुछ नहीं। इस बात का यह एकदम स्पष्ट प्रमाण है कि प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी वैज्ञानिकों के काम में कुछ निश्चित प्रवृत्तियाँ रहती हैं। मौन्टेन्डन की परिकल्पना सोवियत वैज्ञानिकों को मूलतः अस्वीकार्य है।

मानव उत्पत्ति सम्बन्धी परिकल्पनाओं के दूसरे वर्ग में वे परिकल्पनाएँ आती हैं जो कहती हैं कि मनुष्य पुरानी दुनिया के बन्दरों के एक वर्ग में पैदा हुआ था। चिपिटनासा (platyrrhine) परिकल्पनाओं से अलग करने के लिए इन्हें अधोनासा नर-वानरी (catarrhine simian) परिकल्पनाएँ कहा गया है। इस बात का दावा करने वाले जीवशास्त्री बहुत कम हैं कि मनुष्य की उत्पत्ति चार पैरों से चलने वाले अथवा नीचे चलनेवाले भिन्न-भिन्न लम्बाई की दुमवाले तथा कपोल धानी (cheek pouches) और आसन-किणों (ischial callosities) वाले निम्न स्तर के बन्दरों के वर्ग से हुई है यद्यपि अभी एकदम हाल में प्रोकौन्सल (proconsul) को मनुष्य के पूर्वजों में शामिल कर लिया गया है।

नर मानुषी परिकल्पनाओं के प्रवर्तक जीवित मानव-सम वानरों का विश्लेषण आमतौर से केवल इसी बात का पता लगाने के लिए आरम्भ करते हैं कि मानव के साथ रिश्तेदारी के सबसे महत्वपूर्ण चिह्न उनमें से किसमें मिलते हैं। इसी दृष्टिकोण की वजह से गिब्बन-सम (gibbonoid) ओरंग-सम (orangoid) गोरिल्ला-सम (gorilloid) तथा चिम्पैंजी-सम (chimpanzoid) परिकल्पनाओं का तथा उन और कई परिकल्पनाओं का जन्म हुआ है जो इनमें से कई के मेल से बना है।

उदाहरण के लिए गिब्बन-सम परिकल्पना के समर्थक इस बात से शुरू करते हैं कि प्रोप्लियोपिथकस (propliopithecus) से जो एक ऐसी जाति है जिसका रूप-आकार स्पष्टतया गिब्बन-सम था प्लियोपिथकस (pliopithecus) पैदा किया था और उसके द्वारा फिर गिब्बनों को उत्पन्न किया गया। परन्तु प्रौपलियोपिथकस दो और भी दूसरे वानर-समों का सामान्य पूर्वज था और, इसलिए, मनुष्य का भी पूर्वज था (अर्थात्,

1933)। पुरा भूगर्भशास्त्री गाई पिलग्रिम (19_3) तथा मानव शास्त्री हाम्स बम (1928) न गिब्बन-समों के साथ मनुष्य के आनुवंशिक सम्बन्धी रिश्ता के विचार का भी प्रतिपादन किया है।

लेकिन मनुष्य के दो पर मे चलने के तरीके का विकास जिन परिस्थितियो म हुआ था वे उनस भिन्न थी जिनम गिब्बन विकसित हुआ था। अपनी लम्बी भुजाओं क साथ जमीन पर रहन के कारण गिब्बन सीधा होकर नही चलता है बल्कि ऐसा वह इसलिए करता है कि वृक्षों पर रहने की तथा हाथों से शाखाओ पर झूमने की उसकी आदतों न उसके शरीर को खड़ी स्थिति प्रदान कर दी है। गिब्बन की तरह मनुष्य अतिविशेषीकरण (super specialization) की अवस्था से नही गुजरा है, अगर वह उससे गुजरा होता तो विकास के गर्भ-स्थिति काल (uterine period) म तथा जीवन क बाद के कालों म उसक अगों के अनुपातों क ऊपर उस अवस्था का और अधिक स्पष्ट प्रभाव पड़ा होता।

गिब्बन-सम परिकल्पना के समर्थक (जिनमें विशेष रूप म अमरीका के जोन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय क शरीर-विज्ञों के स्कूल क कुछ प्रतिनिधि हैं) इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाते हैं कि कुछ बातों म दूसरे वानरों की अपेक्षा गिब्बन मनुष्य स कही अधिक सादृश्य रखता है। य बातें हैं आन्तरिक अगो (internal organs) की स्थिति ऐसा वक्ष (thorax) जिसका पृष्ठोप प्रतिपृष्ठ व्यास (dorso-ventral diameter) उसके तिरछे व्यास स छोटा है और जिसकी उरोस्थि (sternum) बहुत चौड़ी और छोटी है मजबूत रूप से विकसित पैर और हाथ के अंगूठे ऊपर का विकसा बाहर तल वर्तन रन्ध्रों की आकृति तथा नीचे के हनु की रचना। युक्तांगुल (syndactylian) गिब्बनों अथवा सियामांगों (siamangs) के हनुओं म ठोड़ी की आरम्भिक कटक के साथ एक सुविकसित ठोड़ी होती है।

परन्तु, गिब्बनों में शरीर का छोटा आकार अधिक आदिम मस्तिष्क ललाटकीय पुरास्थों की अनुपस्थिति कलाई म निर्मुक्त मध्य अस्थि की उपस्थिति आलनकिर्या की उपस्थिति जैसी विशिष्ट खासियतें होती हैं जो सब मिलकर अपरी तथा अन्य लोगो के कथनानुसार, यह जाहिर करती हैं कि मनुष्य की वंशावली के अध्ययन के लिए लुप्त गिब्बनों के वंश को आरम्भिक आधार नही बनाया जा सकता।

गिब्बनवादी परिकल्पना को एक विचित्र किस्म का आविष्कार एडोल्फ मुल्ट्ज (1936) न किया था। एडोल्फ मुल्ट्ज का विश्वास है कि कई महत्त्वपूर्ण बातों में मनुष्य और बड़े मानव-सम वानरों की अपेक्षा गिब्बनों और मनुष्यों में कही अधिक सादृश्य है। मुल्ट्ज कहता है कि होमीनिडा (मानव-वंशियों) तथा गिब्बनों के पूर्वज ओरंग-उटैन के पूर्वजों की अपेक्षा पहले ही मानव-सम उच्चतर प्रनामकों की मुख्य शाखा स अलग हो गए थे। ओरंग उटैन के पूर्वजों ने बड़े मानव-समो की मुख्य शाखा को गोरिल्ला तथा चिम्पैंजी के साथ-साथ बाद में छोड़ा था।

जीवित तथा जीवाश्म मानव-सभों के साथ मानव का अपेक्षाकृत सादृश्य तथा उनके साथ उसकी बन्धुता—शुरुस्ट्रज की निम्नवादी परिकल्पना का समाधान बना देती है।

कुछ विद्वानों ने यह परिकल्पना प्रतिपादित की है कि मनुष्य की उत्पत्ति ओरंग उटैन से हुई है। इमन क्लाट्स (1922) ने कहा था कि औरिग्नेशियन (aurignacian) मानव ओरंग-उटैन से निकला था तथा मानव निएन्डरथल (neanderthaler) गोरिल्ला से। कुछ समय बाद (1926) हास फीडेन्थल ने ओरंग उटैन के अपेक्षाकृत ऊँचे कपाल की ओर इशारा करके कहा था कि यह उस वानर के मंगोलाभ लोगों (Mongoliod) के साथ सादृश्य का प्रमाण है।

परन्तु, अभी भुलाया जाने ओरंग-उटैन का उसमें मिलनेवाले विशेषीकरण के अनेक चिह्नों के कारण मनुष्यों के निकटतम सम्बन्धियों की सूची से निकाल दिया जाना चाहिए। उसके विशेषीकरण के कुछ चिह्न ये हैं : नरों में कपोल-उपधान (cheek pads) होते हैं पैर के अँगूठे जिनमें नाखून नहीं होते छोटे होते हैं आसन किणों (ischial callosities) के स्थानों पर सख्त त्वचा के खाली टुकड़े होते हैं फेफड़े पिण्डकों (lobes) में नहीं बँटे होते लगभग सभी दाँतों के एनामल में गहरी लकीरें होती हैं मुलायम तालू के पीछे के भाग में कोई प्रतिजिह्वा (uvula) नहीं होती एक अवतल बुलडॉग (बुल डॉगकर) की किस्म का पार्श्वदृश्य (profile) होता है जिसे सिमोगनेथस (symognathous) कहते हैं—कुछ कम मात्रा में यह चिम्पैंजी में भी मिलता है। गोरिल्ला से ये बातें भिन्न होते हैं। गोरिल्ला का पार्श्व-दृश्य (profile) तथा उसके कपाल के चेहरे का भाग सुस्पष्टस्थित होता है। ओरंग उटैन के मांसिमायुक्त भूरे बालों के ऊपर रंग का वितरण लहरियादार होता है (रंग की पर्ते में कम पड़े होते हैं) उसके नर के गाल (गले) बहुत बड़े-बड़े होते हैं उसके भूषा तथा कण्ठ के अन्दर, खासतौर से नर कण्ठ के अन्दर एक दुर्गंध उत्सर्जित-ग्रन्थि मिलती है।

जहाँ तक गोरिल्ला का सम्बन्ध है कुछ विद्वानों का—उदाहरण के लिए सर आर्थर कीथ का—रुझान इस मत को मानने की ओर है कि यह विशालकाय मानव-सभ मनुष्य का निकटतम सम्बन्धी है। गोरिल्ला का मस्तिष्क अपेक्षाकृत बड़ा है तथा चिम्पैंजी अथवा ओरंग-उटैन की तुलना में उसकी बनावट भी अधिक जटिल है। गोरिल्ला तथा मनुष्य के नर जननांगों (male genitals) की कुछ बातें अद्भुत रूप से एक-जैसी हैं तथा गोरिल्ला की लैंगिक कोशिकाएँ (sex cells) असामान्य रूप से मनुष्य की लैंगिक कोशिकाओं जैसी हैं। वाइडेन रीश का कहना है (1943) कि मादा गोरिल्ला के कपाल की रचना सिनैन्थ्रोपस के सदृश नजदीकी पूर्वज के कपाल की जो आकृति मानी जाती है उससे बहुत अधिक मिलती है।

लेकिन मानव उत्पत्ति के इस गोरिल्लावादी सिद्धान्त के सम्बन्ध में गम्भीर आपत्तियाँ हैं, क्योंकि पुष्ट मेड़ोंवाला (ridges) नर गोरिल्ला का कपाल इस मानवसमी वानर और उसके निकटतम पूर्वजों को एक ऐसी शाखा में रख देता है जिसके बारे में अधिक

सम्भावना इसी की है कि वंश-वृक्ष में मनुष्य की शाखा के समानान्तर वनवासी उसकी एक अलग शाखा है। गोरिल्ला का रक्त चिम्पांजी अथवा गिब्बन तक के रक्त से कम अवक्षेपण-क्रिया (precipitation reaction) उत्पन्न करता है यद्यपि थक्का (clot) उसका औरंग-उटैन की अपेक्षा अधिक बड़ा होता है। इस दृष्टि से औरंग-उटैन बैबून की किस्म के अधोनासा बन्दरों के अधिक समीप है।

मानव-उत्पत्ति की सबसे अधिक व्यापक वन मानवी परिकल्पना चिम्पांजीवादी है। वुल्फ्राम ल्योल्स विलियम ग्रेगरी हान्स वाइनर्ट जैसे प्रमुख विज्ञान ड्रायोपिथेकस (वृक्ष मानव) तथा उसके बाद के मनुष्य के उत्तर-तृतीय काल (upper tertiary) के पूर्वजों की जो विशेषताएँ बतलाते है वे उन्हें चिम्पांजी के समीप पहुँचा देती है। चिम्पांजी तथा मनुष्य के प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्धों (cerebral hemispheres) की रचना में अद्भुत सादृश्य मिलता है। सामान्यतया चिम्पैंजी में विपर्योकरण के बहुत कम लक्षण मिलते हैं। नर और मादा चिम्पैंजी के बीच इतने बड़े अन्तर नहीं होते जितने गोरिल्ला अथवा औरंग उटैनों में नर और मादा के बीच होते है। ग्रेगरी ने (1933) तो चिम्पैंजी को एक "जीवित जीवाश्म" (living fossil) तक कह डाला था।

जब मनुष्य के निकटतम सम्बन्धियों की बात हम करते है तो यह बिलकुल स्पष्ट है कि मानव-सभों तथा मनुष्य के विषय में शरीर रचना सम्बन्धी तथा शरीर-क्रिया सम्बन्धी जो आधार-सामग्री प्राप्त हुई है उससे मनुष्य और अफ्रीकी मानव-सभा के बीच की घनिष्ठ रिश्तेदारी के सम्बन्ध में डारविन के सिद्धान्त पर कोई असर नहीं पड़ता। किन्तु इस सिद्धान्त को अपदस्थ करने की कोशिशें आज भी की जा रही है।

अनेक पूँजीवादी वैज्ञानिक तो सारा दम लगाकर मनुष्य की वंशावली में से न केवल मानव-सभों को बल्कि समस्त प्रमानवों का ही निकाल देना चाहते है। मनुष्य के पूर्वज को वे एक वृक्ष-वासी के रूप में नहीं बल्कि एक छोटे से द्विपदीय (bipedal) स्थल चर (terrestrial) ऐसे मानव के रूप में इयोअन्थ्रोपस (eoathnropus) अथवा उषा मानव (dawn man) के रूप में चित्रित करते है जो तृतीय काल के निविड़ दिनों में आदिम निम्न वर्ग के स्तनधारियों के अन्दर से किसी समय सीधे-सीधे उत्पन्न हो गया था। आर्सबोल्ड आउल (1946) जो वानरों के साथ मनुष्य की रिश्तेदारी से इन्कार नहीं करता, मनुष्य के इस रहस्यमय पूर्वज का जिसके बारे में विज्ञान को कोई ज्ञान नहीं है चित्रण मानव परिवार के एक ऐसे छोटे-से प्रतिनिधि के रूप में करता है जिसका शरीर कमोबेश मात्रा में सीधा रहता था जिसका कर्पर बहुत बड़ा था और, इसीलिए, उसके शरीर के आकार की तुलना में उसका मस्तिष्क बहुत बड़ा था। ड्रायोपिथेकस को मनुष्य का पूर्वज आउल नहीं मानता। यह विचार कि एक तृतीय कालीन आदमी का अस्तित्व था आसबोर्न ने एक ऐसी परिकल्पना के रूप में प्रस्तुत किया है, जो आउल की इयोअन्थ्रोपसवादी परिकल्पना से मिलती-जुलती है।

4 ओस्बौर्न परिकल्पना

अत्यन्त प्रमुख अमरीकी पुरा भूगर्भशास्त्री हेनरी ओस्बौर्न (1857 1935) उन प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी वैज्ञानिकों का एक विशिष्ट प्रतिनिधि है जो विज्ञान और धर्म का समन्वय करने का प्रयत्न यह कहकर करते हैं कि जैव जगत् (organic world) की सृष्टि सोद्देश्य विकास (purposeful evolution) के मार्ग से होती है। कुछ अमरीकी जीवशास्त्रियों के बीच 'विकास के मार्ग से सृष्टि' का अधिभूतवादी सूत्र (metaphysical formula) बहुत ही लोकप्रिय है।

ओस्बौर्न कहता है कि इओन्थ्रोपियो (eoanthropi) अथवा उषा मानवों (dawn men) के रूप में मानव के तृतीय कालीन प्रपूर्वजों में लगभग वे सभी गुण मौजूद थे जो आधुनिक मनुष्य में पाए जाते हैं। उसके कथन के अनुसार, मनुष्य के पूर्वजों का वानरों के पूर्वजों के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं था अर्थात्, मनुष्य की उत्पत्ति बन्दरों के वंश से नहीं हुई है मनुष्य का विकास सर्वप्रथम आन्तर एशिया (Inner Asia) में हुआ था और उसके पूर्वज स्थलचर जीवन (terrestrial life) बिताते थे। ओस्बौर्न कहता है कि मनुष्य का अस्तित्व न केवल उत्तर-नूतन काल (pliocene) में बल्कि उससे पहले के तृतीय काल के प्रारम्भिक युगों में भी मौजूद था।

ओस्बौर्न की स्थापनाएँ एकदम हवाई हैं, तथ्यों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। उसके विचारों का स्रोत ईश्वरीय उत्पत्ति की परिकल्पना (aristogenesis hypothesis) सम्बन्धी उसके मनगढ़ प्रमेय (premises) हैं और ये भी स्वयं उसी की कल्पना की सृष्टि थे। ओस्बौर्न कहता है कि विकास प्राकृतिक वरण (natural selection) अथवा परिवेश के प्रभाव के कारण इतना नहीं होता जितना कि जीव (organism) में मौजूद स्वयं स्फूर्त प्रगतिशील विकास की नैसर्गिक क्षमता (miraculous ability) के कारण। ओस्बौर्न की परिकल्पना हर चीज के पूर्णतया विरुद्ध है। यह उस आधार सामग्री के भी विरुद्ध है जो जीवित वानरों के साथ मनुष्य के सम्बन्ध को तथा ज्ञात लुप्त वानरों के साथ जीवाश्म मानव के सम्बन्ध को प्रमाणित करती है। 'तृतीय कालीन आदि पाषाणों (tertiary eoliths) में अथवा प्रादिम-कालीन पत्थरों का रूप रखने वाले पत्थरों में तृतीय कालीन मानव के अस्तित्व का प्रमाण ढूँढ़ने की उसकी कोशिश भी उतनी ही बेकार है।

मनुष्य की उत्पत्ति की समस्या के सम्बन्ध में ओस्बौर्न के विचारों में बाद में पुरा-भूगर्भशास्त्र, आम जीव-शास्त्र तथा मानव-शास्त्र के क्षेत्र में उसके अनेक वर्षों के काम के दौरान काफी परिवर्तन हो गया था। ओस्बौर्न ने स्वयं स्वीकार किया था कि 1923 तक वह इस विचार से पूर्णतया सहमत था कि मानवीय नस्ल (human race) की उत्पत्ति विकास के डार्विनवादी सिद्धान्त के अनुसार जीवाश्म मानव-सम वानरों की किसी एक जाति से हुई है। परन्तु एक पुरा भूगर्भशास्त्री की हैसियत से मानव उत्पत्ति के

बन्दर वाले सिद्धान्त के सम्बन्ध में उन्हें सन्देह थे। उसके ये सन्देह निम्न तीन बातों के रूप में व्यक्त हुए थे (1) जीवाश्म मानव के पैरों और भुजाओं के अनुपात मानव-सभों जैसे नहीं हैं, बल्कि पूर्णतया मानवीय हैं—पिथेकैन्थ्रोपस (वानर मानव) तथा सिनैन्थ्रोपस के निम्नांग लम्बे हैं और सिनैन्थ्रोपस के ऊपर के अंग छोटे हैं (2) सिनैन्थ्रोपस के हाथ की रचना पूर्णतया मानवीय है उसका अंगूठा आधुनिक मनुष्य के अंगूठे से कम विकसित नहीं है और न उसकी अंगुलियाँ ही आधुनिक मनुष्य की अंगुलियों से कम लचीली हैं (3) चकमक के कुछ अस्त्र उदाहरण के लिए वे जो रेड क्रैग में (इंग्लैण्ड के दक्षिण-पूर्वी तट पर) मिले थे 12 00 000 वर्ष तक पुराने हैं।

इससे आस्बोर्न यह निष्कर्ष निकालता है कि मनुष्य का अस्तित्व बहुत प्राचीन है। मनुष्य का यह सीधे खड़े शरीरवाला एक ऐसे प्राणी के रूप में दिखता है जो काम करने तथा कला की सृष्टि करने की क्षमता रखता है अर्थात् जो पहले से ही उच्च रूप में विकसित है। चार्ल्स विलियम एण्ड्रूज के साथ ओस्बोर्न ने गोबी के रेगिस्तान की यात्रा की थी इससे उसे मानव के शाश्वत स्वरूप (*eternal character*) सम्बन्धी अपने सिद्धान्त को और विस्तार से प्रस्तुत करने का प्रोत्साहन मिला था। उसका कहना था कि मानव का मूल वास-स्थान मंगोलिया तथा तिब्बत में था। मंगोलिया की यात्रा के दौरान उसके पहाड़ी पठारों भरे स्थल-दृश्यों तथा विभिन्न-विभिन्न लुप्त हो गए विशालकाय सरीसृपों (reptiles) को देखकर ओस्बोर्न के मस्तिष्क में यह विचार आया था कि मनुष्य का पालना इसी स्थान में होना चाहिए। उस प्रदेश की एक ऐसे क्षेत्र के रूप में उसने कल्पना की जिसमें कहीं बलखाती नदियाँ तथा अल्प जंगल थे और कहीं घास के मैदान (1929)। ओस्बोर्न ने तर्क करते हुए कहा कि चौपाये (*quadrupeds*) और द्विपदीय (bipeds) स्तनधारी एक ही प्रदेश में तेजी के साथ विकसित हो सकते थे। उसने कहा कि तथाकथित 'वानर-मानवों' के पूर्वज भी इन्हीं स्तनधारियों में थे। परिवेश के अनुसार यहाँ वे सरलता से नजर रख सकते थे अपने दुश्मनों की नजर से समय रहते छिप जा सकते थे और हथियारों के रूप में इस्तेमाल करने के लिए पत्थर भी यहीं उनके करीब ही उन्हें मिल जाते थे।

मानव का मूल वास-स्थान एक अर्ध-सूखे पठार में था इस विचार को अमरीकी पुरा-जन्तुशास्त्री बीमिस डैरस ने आस्बोर्न से कुछ वर्ष पहले ही प्रतिपादित किया था परन्तु ओस्बोर्न का कहना था कि वह इस परिणाम पर स्वतन्त्र रूप से अपने आप पहुँचा था। अपनी परिकल्पना को ओस्बोर्न ने सर्वप्रथम 1923 में प्रकाशित किया था। उसके बाद के वर्षों में मानव-उत्पत्ति की समस्या के विभिन्न पहलुओं पर उसने बार-बार विचार किया था। अन्ततोगत्वा 1929 में अर्ध-शुष्क पठार की अपनी परिकल्पना को एक व्यापक सिद्धान्त का रूप देते हुए, अमरीका की दार्शनिक सोसायटी (American Philosophical Society) के 200वें वार्षिकोत्सव के सम्मान में हुई कांग्रेस में उसने एक अभिलेख पढ़ा।

मानव-जाति के मूल वास-स्थान तथा उसके पूर्वजों के जीवन की कल्पित पारिस्थितिकी जन्य दशाओं (ecological conditions) के बारे में बताते हुए, ग्रोस्बौर्न ने डारविन के इस विचार की आलोचना की कि मनुष्य का मूल वास-स्थान जंगलों से ढके ऐसे वन में रहा होगा जिसकी जलवायु उष्ण अथवा उष्ण रही होगी। डारविन के मत के विरुद्ध ग्रोस्बौर्न ने कहा कि मनुष्य जो खड़े होकर सीधे चलने का पहले से ही अभ्यस्त हो गया था—और आगे विकास न कर सकता यदि वह ऐसे उष्ण कटिबन्धीय जंगलों से घिरा रहा होता जिनमें पत्थर के हथियारों के निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री उसे न मिल पाती। अपने विचारों की सचाई के प्रमाण में ग्रोस्बौर्न ने यह सिद्धान्त पेश किया कि ऐसे मनुष्य जो अधिकाधिक बुद्धिमान होते जा रहे थे और अपने को स्वतन्त्र रूप से परिस्थितियों के अनुकूल बनाते जा रहे थे मंगोलिया और तिब्बत में मिलनेवाले समतल पठारों की तरह के पठारों पर ही रूप-आकार ग्रहण कर सकते थे (देखिए, पी पी सुश्किन 1928)।

भोजन प्राप्त करने के तरीकों के सम्बन्ध में तृतीय-कालीन मानव की आविष्कारक शक्ति का जन्म ग्रोस्बौर्न के अनुसार इसी वजह से हुआ होगा कि शाकाहारी भोजन का उस समय अभाव था और शिकार की सामग्री की प्रचुरता थी। ग्रोस्बौर्न का कहना था कि ऐसी प्राकृतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत जीवन-संघर्ष की जो अतिशय कठिनाई तथा तीव्रता थी उसने शिकार के लिए लकड़ी तथा पत्थर के हथियारों को इस्तेमाल करने के लिए, जबदस्त प्रेरणा दी होगी। इसके अलावा पर्वतीय पठार की तीव्र जलवायु ने सबसे प्राचीन होमीनिडा (मानव-वंशियों) को अपने को गर्म रखने तथा भोजन पकाने के उद्देश्य से आग का इस्तेमाल करने के लिए मजबूर कर दिया होगा। जंगली पशुओं का शिकार करने की वजह से मनुष्य के पूर्वजों की टाँगों की शक्ति तथा चपलता में वृद्धि हुई होगी दृष्टि की इन्द्रियों का तथा फेफड़ों का विकास हुआ होगा। उष्ण मानवों की परिस्थितिकी (ecology) तथा उनके जीवन के ढंग की ग्रोस्बौर्न ने इसी प्रकार कल्पना की है।

अब हम ग्रोस्बौर्न के उन तृतीय कालीन मानवों के शारीरिक ग्रहण उनकी संरचना तथा उनके आचरण की जाँच-पड़ताल करें जो पिथेकैन्थ्रोपिया से भी पहले से मौजूद थे। पिथकैन्थ्रोपस को वह एक ऐसा प्राणी मानता था जो विकास की बन्द गली में जा फँसा था वह मानव के और अधिक प्राचीन स्वरूप का एक प्रक्षेप था—एक ऐसे रूप का प्रक्षेप जिसे अधिक प्रगतिशील होमीनिडा (मानव-वंशियों) ने एशियाई महाद्वीप के दक्षिणी भाग से भगाकर निकाल दिया था। महासागर के बीच द्वीप की परिस्थितियों में रहने के लिए वह इसीलिए बाध्य हो गया था। ग्रोस्बौर्न की राय में इयोन्थ्रोपस(उषा-मानव) की विशेषताएँ, जिन्हें उन्होंने इसियों साल पहले उपार्जित किया था निम्न थीं

1 अधिकाधिक बढ़ती वृद्धि अग्र मस्तिष्क का तीव्र विकास

2 दो पैरों से चलने की आदत तथा चलने और दौड़ने के योग्य पैर के अँगूठे का विकास
3 छोटी होती हुई भुजाएँ तथा लम्बी होती हुई टाँगें
4 औज़ार बनाने वाले अँगूठे का विकास
5 औज़ार बनाने की क्षमता
6 लकड़ी, हड्डी और पत्थर के अनेक प्रकार के हथियारों का संयोजन तथा प्रयोग
7 तीक्ष्ण-बुद्धि वाले बड़े मस्तिष्क द्वारा सुचालित रूपांकन तथा आविष्कार का कार्य
8 आक्रमण और सुरक्षा करने के कार्यों तथा जीवन की तमाम क्रियाओं में भुजाओं और औज़ारों का उपयोग
9 चलने, दौड़ने, यात्रा करने तथा दुश्मनों से बचने के लिए टाँगों का उपयोग
10 मुख्य तने को भुजाओं, अंगों तथा छाती से लगाकर भालू की तरह पेड़ पर चढ़ना

जीवित वानरों के पूर्वजों की लाक्षणिक विशेषताएँ, ऑस्बोर्न के अनुसार, निम्न हैं —
1 उनके मस्तिष्क के आकार तथा बुद्धि का विकास निरुद्ध (Arrested) होता है
2 वृक्षों पर रहने की आदत से लेकर सारा हाथों से पेड़ों पर चलने-फिरने की अति-वृक्षीय (hyper-arboreal) आदत तक उनमें होती है, मुख्यतया वे पेड़ों पर रहते थे
3 जब ज़मीन पर होते थे तब आदतन चारों हाथों-पैरों पर चलते थे
4 उनकी भुजाएँ लम्बी होती जाती थीं और टाँगें छोटी
5 अँगूठा नहीं रह गया था तथा औज़ार बनाने की शक्ति का अभाव होता जाता था, पेड़ों पर चढ़ने के लिए पैर के अँगूठे की पकड़ने की (परिग्राही) शक्ति विकसित होती जाती थी
6 हाथों में अंगों को पकड़ने की क्षमता होती थी
7 पेड़ पर चढ़ने तथा शाखा पर झूलते हुए चलने की कला के अनुरूप भाग और पीठ के अंगों का अनुकूलन न हो गया था
8 रचना-शक्ति पेड़ों पर अत्यन्त आदिम क़िस्म के घोंसले बनाने तक ही सीमित थी
9 भुजाओं को मुख्यतया पेड़ पर चढ़ने के कामों के लिए वे उपयोग करते थे, आक्रमण तथा दुश्मन को पकड़ने के कार्य के लिए उनका उपयोग गौण रूप से होता था
10 पेड़ पर चढ़ने तथा अंगों को पकड़ने के काम में वे टाँगों का उपयोग करते थे
11 दुश्मन से अपना बचाव पेड़ों की शाखाओं के बीच में भागकर वे करते थे
12 पेड़ पर वे सदा शाखाओं में चढ़ते थे, उनके मुख्य अंगों और तने को गोद में भरकर कभी नहीं।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि मानवों तथा मानव-सम वानरों के बीच—और यह भी न केवल उनकी जीवित जातियों के अपितु उनकी प्राचीन तृतीय कालीन जातियों के बीच—आसबोर्न एक तीव्र विभाजक रेखा खींचता है। इस भाँति यह डारविन के इस सिद्धान्त की जड़ें काटने की कोशिश करता है कि मनुष्य की उत्पत्ति पुरानी दुनिया के बन्दरों के वंश से हुई है। ओस्बोर्न की डारविन-विरोधी मानव-उत्पत्ति सम्बन्धी परिकल्पना का आधार ईश्वरीय सृष्टि (aristogenesis) का वह जीव-शास्त्रीय सिद्धान्त (biological theory) है जिसका उसने विकास किया था और अपने वैज्ञानिक काम के द्वारा आधी शताब्दी तक बचाव किया था।

यह पूछना सर्वथा न्यायोचित होगा कि आसबोर्न की मानव-उत्पत्ति सम्बन्धी परिकल्पना तथा ईश्वरीय सृष्टि के उसके सिद्धान्त के बीच क्या सम्बन्ध है। उनका सम्बन्ध जीवित तथा अटूट है। उसकी परिकल्पना उसके सिद्धान्त का ही एक अंग है। ईश्वरीय सृष्टि के अथवा क्रम-व-क्रम सीधे विकास (rectigradation) के नियम से ओस्बोर्न यह निष्कर्ष निकालता है कि अनुकूलन की नई विशेषताओं का बीज में धीरे धीरे, अनेक शताब्दियों के दौरान में विकास होता है। इनका उदय भ्रूण की प्लाविका (प्लाज्मा) में तथा विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में होता है। ये विशेषताएँ प्राकृतिक वरण की क्रिया से सर्वथा स्वतंत्र हैं।

प्रोबासीडिया (Proboscidea = सूंडिया 1936) के सम्बन्ध में ओस्बोर्न के उस विशाल ग्रन्थ में जो उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुआ था हम पढ़ते हैं "टाइटेनोथेरों (Titanotheres = महाखुरिया) तथा प्रोबोसीडिया (Proboscidea) के सम्बन्ध में लेखक द्वारा किये गए 35 वर्ष के लम्बे शोध-कार्य में विकास क्रम के परिवर्तनशील शास्त्रीय तरीकों को निरूपित करने काम में केवल वे सिद्धान्त निसृत हुए हैं जो लामार्क और डारविन का मालूम थे (परिवर्तन विकास विलुप्तन के सिद्धान्त) बल्कि ईश्वरीय सृष्टि अथवा सर्जनात्मक जीव-रासायनिक क्रमिकता के माध्यम से नए गुणों की उत्पत्ति के नवीन और अभी तक अज्ञात सिद्धान्त तथा प्रणालियों का भी उसमें पता चला है।"[1] क्रम-व-क्रम विकास के इस सिद्धान्त को ही ओस्बोर्न विकासात्मक क्रम की अपनी व्याख्या का आधार बनाता है। वह कहता है कि इस विकासात्मक क्रम का स्वरूप प्रयोजन-पूर्ण 'सजनात्मक' है।

प्राणी जगत् के विकास से सम्बन्धित आस्बोर्न के विचारों के उन विचारों के भाववादी (idealist) स्वरूप का जो प्राणियों की मनोवैज्ञानिक सृष्टि की धारणा को पुनर्जीवित करते हैं कुछ अनुमान निम्न उदाहरण से हमें मिल जाएगा। ओस्बोर्न ने युवा और वयस्क टाइटेनोथेरों (महाखुरियों) के अनेक कपालों का अध्ययन किया था। इस अध्ययन के दौरान में 1912 में उसने देखा कि उनके सींग एक निश्चित पूर्व-निर्धारित

---

1 हेनरी फेयरफील्ड ओस्बोर्न, प्रोबोसीडिया, न्यूयार्क, 1936 खण्ड 1, पृष्ठ 14।

ढंग से निकलते हैं। ओस्बोर्न ने आधुनिक गो-जातीय पशुओं (bovines) के कई सिरों और कपालों की जाँच-पड़ताल की। इसके बाद उसने यह स्थापना की कि जिन स्थानों पर सींग उगते हैं उनमें हड्डी-जैसे तत्त्वों के निकलने से पहले मोटा गोल-गाल-सा ऐसा चमड़ा निकल आता है जिसके ऊपर सूख कर जाल होते हैं तथा एक शृंगि-संचयन (accumulation of keratin) होता है। इसी चीज को लेकर ओस्बोर्न प्रश्न उठाते हैं पहले किस चीज की उत्पत्ति हुई थी सींगों का उपयोग करने की मानसिक प्रेरणा (Psychic impulse) की सींग के हड्डी वाले अन्न के बाह्य-त्वक शृंगि-रक्षक (epidermal keratin protection) की अथवा स्वयं सींग की? इस प्रश्न का ओस्बोर्न ने जो उत्तर दिया था वह अचरज में डालने वाला है वह कहता है कि कि बाह्य-त्वक के उत्पन्न होने से पहले मानसिक प्रवृत्ति उत्पन्न हुई होगी और हड्डीवाली वृद्धि की बाह्य-त्वक् शृंगि रक्षक पहले से पेशबीनी करता है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ओस्बोर्न के विकास-सम्बन्धी विचार आत्म-ओर से स्व उत्पत्ति (autogenesis) की धारणा पर आधारित है। वह ऋजुजननवादी (orthogenetist) है क्योंकि वह मानता है कि जीवों के अन्दर होने की एक छिपी हुई पूर्व-निर्धारित प्रवृत्ति होती है। भ्रूण प्लाविका (embryonic plasma) में जो स्वयंस्फूर्त परिवर्तन होते हैं उनमें यह क्षमता होती है कि परिवेश में होने वाले भावी परिवर्तनों के अनुरूप उन परिवर्तनों के साथ से ही वे अपने को ढाल लेते हैं। ओस्बोर्न का कहना है कि भ्रूण प्लाविका के ये स्वयं-स्फूर्त परिवर्तन वास्तव में ऋजुजनन-सम्बन्धी (orthogenetic) 'जीव नास्तीय विशेषताएँ' हैं जिनका विकास स्वतन्त्र रीति से प्रयोजनपूर्ण रीति से तथा सुसंगत रूप में होता है। क्रम-ब-क्रम सीधे (या ऋजुरोही) (rectigradation) विकास की धारणा में सर्जनात्मक' तत्त्व का समावेश कर देने से ही ओस्बोर्न को सन्तोष नहीं होता। ईश्वरीय-उत्पत्ति के सिद्धान्त का रचयिता 'सुधार' का एक और तत्त्व उसमें जोड़ देता है ऋजुरोहियों (rectigradations) को वह 'अरिस्टोजीनों' (aristogenes) का एक नया नाम दे देता है। इससे उसका यह आशय होता है कि इन जीवों की आनुवंशिकता (heredity) अप्रत्यक्ष होती है तथा साथ-ही-साथ आगे आने वाले जीवन के साथ अपने को अनुकूल बनाने की भी क्षमता उनमें अधिक होती है। इस प्रकार विकास के सम्बन्ध में ओस्बोर्न के विचार स्पष्ट रूप से प्रयोजनवादी (teleological) हैं—उनके अनुसार, जीव जगत् में होने वाला सर्जनात्मक विकास एक निश्चित लक्ष्य की ओर निर्देशित है।

एक वैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक ज्ञान के लोक-प्रचारक के रूप में आधी शताब्दी तक उसने जो काम किया था उसके आधार पर, अपने वैज्ञानिक तथा दार्शनिक विचारों को ओस्बोर्न अत्यधिक महत्त्व देता था। प्रोबोसीडिया (शुण्डिन) के सम्बन्ध में अपने प्रकाशित अभिलेख में वह कहता है 'अनुपात में परिवर्तन होने (allometry) तथा नए अंगों की उत्पत्ति होने (aristogenesis) की दोनों धारणाओं के बीच

स्पष्ट मत करके तथा वंश-परम्परा (ancestry) और समुत्थान (ascent) की बहु विध रेखाओं (इकतालीस या इससे भी अधिक) की—जिन्हें पारिभाषिक रूप से फ़ायल (Phyla या प्रसृष्टि) कहा जाता है—नई-नई खोज करके प्रोबोसीडिया ने हमारे जीव-शास्त्रीय दर्शन में तथा विकास के स्वरूप और कारणों से सम्बन्धित धारणाओं में आमूल क्रान्ति कर दी है।[1] अपने अभिलेख में अन्य स्थानों पर उन जीव-शास्त्रीय नियमों तथा कारकों को जिन्हें वह अपने हाथियों पर लागू करता है मनुष्य पर लागू करने में भी ओस्बोर्न को कोई हिचकिचाहट नहीं होती। मानवजाति के निर्माण में सामाजिक कारकों का जो सबल प्रभाव पड़ता है उसकी ओर अर्थात् गुणात्मक रूप से विशिष्ट उस प्रक्रिया की ओर वह कोई ध्यान नहीं देता जो हमारे ग्रह के शेष सम्पूर्ण प्राणी जगत् के विकास की क्रिया से एकदम भिन्न है।

मानव-उत्पत्ति-सम्बन्धी अपनी परिकल्पना को ईश्वरीय-उत्पत्ति के जीव-शास्त्रीय सिद्धान्त के ठीक बैठाने के प्रयत्न में ओस्बोर्न न केवल विधि-सम्बन्धी तथा तथ्यों की *गलतियाँ करता है बल्कि ईश्वरीय-उत्पत्ति के उसके सिद्धान्त के लिए जितना आवश्यक है* उससे भी आगे बढ़ जाता है। ओस्बोर्न की मुख्य स्थापना यह है कि मानव के पूर्वजीय स्वरूप (ancestral form) में वे विशिष्ट गुण तथा विकास की सम्भावनाएँ 100 प्रतिशत मौजूद रही होंगी जो उसके उत्तराधिकारियों में पाई जाती हैं। परन्तु यह कोई नई बात नहीं है। पुराने पूर्व-निर्मितवादी इस विचार को ही कि भविष्य की पीढ़ियों का निर्माण उनसे पहले आनेवाली पीढ़ियों में होता है दूसरे रूप में यहाँ रख दिया गया है। ओस्बोर्न का सिद्धान्त इसलिए मूल रूप से एक अविभूतवादी वस्तु है। ओस्बोर्न ने पूर्व निर्मितवाद (preformation) के मरे सिद्धान्त को फिर क्यों जिन्दा किया? स्पष्टतया वह समझता था कि मानव-उत्पत्ति की वैज्ञानिक धारणा तथा बाइबिल (इंजील) में बताई गई ईश्वर द्वारा 'स्वयं अपने प्रतिबिम्ब में' मनुष्य की नैसर्गिक सृष्टि करने की कल्पित धार्मिक कथा के बीच जो स्पष्ट अन्तर्विरोध है, उसे कम करने के लिए आवश्यक है कि वानरों और मनुष्य के विकास की वंश-परम्पराओं की दिशाओं को एक-दूसरे से अधिक-से-अधिक सम्भव दूर खिसकाया जाए।

ओस्बोर्न उन अनेक तथ्यों का खण्डन करने में असमर्थ रहा था जो प्रमाणित करते हैं कि मनुष्य और वानरों के बीच रुधिर सम्बन्ध है तथा शरीर रचना शरीर-क्रिया तथा मनोविज्ञान की दृष्टि से उनके बीच ज़बरदस्त सादृश्यता है। इसलिए पुरा-भूगर्भ शास्त्र का ही सहारा लेना उसने अधिक उपयुक्त समझा था क्योंकि उसके क्षेत्र में अपने आपको वह एक अधिकारी विद्वान् समझता है। अपने सैद्धान्तिक विचारों के आधार के रूप में जैसा कि हम पहले ही लिख चुके हैं मनुष्य के तृतीय कालीन पूर्वज (tertiary ancestors) की *कल्पना* वह *उषा-मानव (Dawn man)* के रूप में करता है। यह

1 हनरी फेयरफ़ील्ड ओस्बोर्न प्रोबोसीडिया 1936 खण्ड 1 पृष्ठ 15।

ऊषा-मानव एक छोटा-सा द्विपदीय स्थल-चर मानव-सम प्रधानक है जिसके अंगों का अनुपात प्राय-मानवीय है मस्तिष्क बड़ा है तथा जिसकी बुद्धि अपेक्षाकृत अच्छी तरह विकसित है। तृतीय काल के प्रारम्भ में एक अल्प काल के लिए पेड़ों पर रहने के अतिरिक्त ऊषा-मानव ने विकास की वृक्ष-वासी अवस्था का अनुभव सम्भवतः नहीं किया था। ग्रासीन तो ऊषा-मानव की कल्पना एक ऐसे प्राणी तक के रूप में कर डालता है जो आदि नील-काल (eocene epoch) के भूमि पर रहने वाले एक प्रकार के टार्सियर से साम्य रखता है।—मनुष्य को वानरों से और दूर ले जाने के लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार है। प्रधानकों के वंश-वृक्ष की सामान्य शाखा से उसका ऊषा-मानव अल्प-आव-युग (oligocene epoch) में ही अलग हो जाता है और फिर मानव सम वानरों के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं स्थापित होता। मानव-सम वानरों के साथ मनुष्य की सादृश्यताओं की व्याख्या ग्रासीन समान्तरता (parallelism) तथा समाभिमुख अनुकूलनता (analogous adaptation) की उन क्रियाओं के आधार पर करता है जो मनुष्य तमाम वानरों तथा निम्न वर्ग के कुछ बन्दरों के विकास क्रम में कदाचित् कभी घटित हुई थीं।

ऊषा-मानव के सम्बन्ध में द्विपदीय-सृष्टि (aristogenetic hypothesis) की जो परिकल्पना है उसके तथा टार्सियर सम्बन्धी परिकल्पनाओं के बीच जो सम्बन्ध है उस पर आप्सो की दृष्टि जाए बिना नहीं रह सकती। कुछ अन्य भी मनुष्य और वानरों की सादृश्यताओं की व्याख्या समरूपता (homoeomorphism) के आधार पर अथवा रूप की उस सादृश्यता के आधार पर करता है जिसे हम नई और पुरानी दुनिया के बन्दरों में देखते हैं। इन बन्दरों के रंग-रूप में अनेक बातों में साम्य है परन्तु स्पष्ट लगता है कि उनका विकास एक-दूसरे से स्वतन्त्र रूप से बहुत दूर-दूर स्थित महाद्वीपों पर करोड़ों वर्षों तक होता रहा था। परन्तु जिस बाह्य सादृश्यता के विषय में कुछ आस्म बात कर रहा है उसकी समाभासता (analogical character) अनुमतीय रूप से बहुत दूर की है। इसके विपरीत मनुष्य और वानरों की सादृश्यता केवल समजातता (homology) की श्रेणी की नहीं है उसकी व्याख्या जाति-इतिहासीय बन्धुता (phylogenic relationship) के आधार पर ही की जा सकती है। डारविन की मानव उत्पत्ति सम्बन्धी परिकल्पना की सत्यता को पुरा भूगर्भशास्त्र तथा पुरा-मानवशास्त्र के अनेक तथ्य प्रमाणित करते हैं।

डारविन का यह विचार कि गोरिल्ला, चिम्पैंजी तथा मानव का सामान्य मध्य नील-कालीन (miocene) पूर्वज ड्रायोपिथकस (वृक्ष-मानव) लगभग एक शताब्दी से तथ्यों की कसौटी पर खरा सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त, रामापिथकस वानरों की खोज ने उत्तर नील-काल के (pliocene) उन मानव-समों की आकृति-शरीर-सम्बन्धी विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला है जो वंश परम्परा की दृष्टि से मानव के समीप हैं। सोवियत वैज्ञानिकों एन॰ आई॰ बुर्चक अब्रामोविच और ई॰ जी॰ गबाशविली ने जॉर्जिया में

(1930) जीवाश्म मानव-सम उडाबनोपिथेकस (Udabnopithecus) के दाँतों की खोज की थी। इस खोज ने इस बात को सही सिद्ध कर दिया है कि वे वानर जो मनुष्य के समीप हैं भौगोलिक रूप से दूर-दूर फैले हुए थे तथा उनके रूप और शरीर-रचना में भारी विभिन्नताएँ मिलती थीं। अन्त में विशालकाय उत्तर-नीन-कालीन (pliocene) तथा अति-नूतन-कालीन (pleistocene) मानव-समों की जीवाश्म अस्थियों की नवीनतम खोजें [उदाहरण के लिए, दक्षिणी चीन में जाइगैन्टोपिथेकस ब्लैकी (1936) की तथा जावा में मिगैन्थ्रोपस पैलियोजावानिकस (1943) की खोजें।] जाहिर करती हैं कि मनुष्य के पूर्वजों से मिलते-जुलते मानव-सम दक्षिण-पूर्वी एशिया में भी रहते थे।

इसलिए इस बात में जरा भी सन्देह नहीं है कि अपने महामानव-समों की विविधता की दृष्टि से पश्च-तृतीय-काल (neogene) सम्पन्न था। इन महामानव-समों में काफ़ी भारी संख्या ऐसों की थी जो बाद में विकसित होने वाले प्रथम मानव पिथेकैन्थ्रोपसों (Pithecanthropi) के समीप थे। इस विचार की नींव अब काफ़ी दृढ़ हो चुकी है कि मानवीय नस्ल के सबसे प्राचीन प्रतिनिधि एक ही जैव स्वरूपों के इस वर्ग से निकले थे। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि जाइगैन्टोपिथेकस (Gigantopithecus) अथवा मिगैन्थ्रोपस (Meganthropus) को उसी प्रकार हम अपने पूर्वजों के रूप में स्वीकार कर लें जिस प्रकार मानव-उत्पत्ति-सम्बन्धी अपनी जाइगैन्टिज्म अथवा विकृतिवादी परिकल्पना (degeneration hypothesis) में फ्रैंज वाइडेनरीख (1946) उन्हें स्वीकार कर लेता है। डार्विनवाद के भौतिकवादी सिद्धान्त के विरोध में ओस्बोर्न की ही तरह प्रधानकों तथा मानव के विकास के सम्बन्ध में वह ऋजुवंशन (orthogenesis) के सिद्धान्त को स्वीकार करता है।

जीवाश्म मानव-समों तथा होमीनिडों (मानव-कपियों) के जीवाश्मों की अपनी जाँच-पड़ताल के द्वारा ओस्बोर्न सबसे प्रारम्भिक मानवों तथा निएण्डरथलों को मानवी वंशावली की श्रेणी में से निकाल बाहर करने की कोशिश करता है। ऊषा-मानव की कुल परम्परा को सीधे-सीधे आधुनिक किस्म के मानव तक वह ले जाता है और इस आधुनिक किस्म के मानव की प्राचीनता को वह बढ़ा-चढ़ाकर पेश करता है।[1] इंग्लैण्ड में 1908, 1911 और 1915 में मिली डासन के ऊषा-मानव की जीवाश्म अस्थियों में ओस्बोर्न को अपने सिद्धान्त के लिए जो समर्थन मिला था उसे बाद में प्राप्त होने वाली सूचनाओं ने खत्म कर दिया था। इन सूचनाओं ने उस सिद्धान्त के समस्त वैज्ञानिक सत्याभास (scientific verisimilitude) का अन्त कर दिया था। इन सूचनाओं की वजह से उनमें से कुछ

1 ओस्बोर्न की परिकल्पना की रूपरेखा तथा आलोचना नीचे लिखी रचनाओं में मिलती है:—
Osborn's Hypothesis of Anthropogenesis and Its Criticism in Uspekhi sovremennoi biologii 1940 Vol. XIII Issue 2, pp 347 355. *Osborn's Orthogenetic Hypothesis of the Origin of Man and Its Criticism in Yestestvoznaniye v shkole* 1948 No 3 pp 3 7 और देखें— *Antropologichesky Jurnal* 1936 pp 371 375

अस्थियाँ दाखिल कर दी गई थी। पता चला था कि उनमें जो नीचे का हनु था वह एक आधुनिक चिम्पैंजी (अथवा ओरंग-उटैंग) का था जिसे कृत्रिम रूप से रंग दिया गया था। इस भाँति ऊषा-मानव की खोज जिसे सोवियत के मानव शास्त्री सदा ही सन्दिग्ध दृष्टि से देखते आए थे झूठी साबित हुई थी (रोजिन्स्की 1951 अभियास्की 1954)।

मनुष्य के पूर्वजों के प्राचीन कौशल के सम्बन्ध में ओस्बोर्न का अनुमान इस तथ्य पर आधारित है कि तृतीय काल के आदि पाषाण (tertiary coliths) मिलते हैं। रेडक्रैग से प्राप्त होने वाले जिन आदि पाषाणों का वह जिक्र करता है वे उतने प्राचीन कदापि नहीं हैं जितना वह उन्हें मानता है। इसके अतिरिक्त, कृत्रिम रूप से बनाये गए पत्थर के अस्त्रों में तथा उन प्राकृत पत्थरों में भेद करना बहुधा कठिन होता है जो टूट-फूट के द्वारा और हिमानियों (avalanches) अथवा किन्हीं प्रबल आघातों के दौरान में दूसरे पत्थरों से टकराकर बन जाते हैं। इसके बावजूद, बहुत सम्भव है कि चतुर्थ काल के कुछ आदि-पाषाणों (quaternary coliths) का उपयोग उन प्रथम मानवों ने किया हो जो मनुष्य द्वारा निर्मित हथियारों के अलावा अनगढ़ पत्थरों का भी इस्तेमाल करते थे। अनगढ़ पत्थरों में से सबसे उपयुक्त पत्थरों को छाँट कर और थोड़ा-बहुत ठीक ठाक करके वे उनका इस्तेमाल करते थे।

चतुर्थ काल के तमाम आदि पाषाणों को केवल इसीलिए हम नहीं ठुकरा सकते कि वैसे ही रूप-आकार के पत्थर मध्य नीव युग (miocene epoch) में भी पाये गए हैं क्योंकि इस बात की भी बहुत बड़ी सम्भावना है कि मानव द्वारा बनाये गए प्रथम अस्त्र प्राकृतिक पत्थरों से मुश्किल से ही भिन्न लगते थे।

प्राचीन चीनी मानव, सिनान्थ्रोपस (sinanthropus) के औजार जाहिर करते हैं कि उनसे पहले और भी अधिक सरल रूप के औजार रहे होंगे। हो सकता है कि आदि पाषाण भी इन्हीं सरल औजारों में से रहे हों।

लेकिन ओस्बोर्न का उद्देश्य तो यह था की प्राचीन शिल्पी कि शाश्वत प्रकृति संबंधी अपनी कल्पित कथा का उपयोग करके ठीक मानव शास्त्र के ही क्षेत्र में विज्ञान और धर्म के बीच वह किसी-न-किसी प्रकार सामंजस्य स्थापित कर दे। फिर इसमें क्या आश्चर्य है यदि इस तरह की 'वैज्ञानिक' कपोल कल्पनाओं को पादरी वर्ग सहानुभूति पूर्वक देखता है।

धर्मशास्त्रियों (theologians) के सम्मुख सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि लोगों को यह बात न मानने दें कि मनुष्य का विकास प्राकृतिक रूप में उसके पूर्वजों यानी वानरों से हुआ है। इसलिए हर सम्भव प्रकार से शेष प्राणी जगत् से, यहाँ तक कि उच्च प्राणियों से भी मनुष्य को वे अलग कर देना चाहते हैं जिन्हें [illegible] शरीरों की रचना के आधार पर, स्पष्ट रूप से मनुष्य माना जाना चाहिए। यह सब [illegible] किया जाता है [illegible] कि पूरी शक्ति से कहा जा सके कि यह मानना [illegible] [illegible] ईश्वर ने प्रथम मानव का [illegible] दिया था। इसके अतिरिक्त, [illegible]

उस धर्मशास्त्रिक प्रवृत्ति का भी समर्थन करते हैं जो यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करती है कि आधुनिक मानव पिथकैन्थ्रोपस से भी अधिक प्राचीन है क्योंकि इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य की उत्पत्ति वानरों से नहीं हुई है। इसलिए, उनके लिए यह कहीं अधिक आसान होता है कि घोषणा कर दे कि आधुनिक मानव अत्यन्त प्राचीन है तथा उसका आविर्भाव प्राणी जगत् से सर्वथा स्वतन्त्र रूप से अर्थात् एक दैवीकृति के द्वारा हुआ था। परन्तु हर नई खोज के कारण ऐसे तमाम प्रयत्नों का आधार अधिका धिक क्षीण होता जा रहा है।

अपनी रचनाओं को ऐसा रूप देने के लिए जिससे कि वे वैज्ञानिक लगें प्रतिक्रिया वादी जीवशास्त्रियों तथा अन्य वैज्ञानिकों के ग्रन्थों का धर्मशास्त्री खूब उपयोग करते हैं। विकास निरपवाद रूप से एक प्रक्रिया के रूप में प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही होता है विकास की इस धारणा के विरुद्ध इस्तेमाल करने के लिए प्रमाणों की खोज में वे धर्मशास्त्री भाववादी विचारधारा के पूँजीवादी वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित की गई उस किसी भी परिकल्पना को अपना लेते हैं जो कहती है कि विकास सृष्टि की दैवी योजना (divine plan of creation) का उन्मीलन (unfolding) मात्र है।

धर्मशास्त्रियों को वे परिकल्पनाएँ अत्यधिक सुविधाजनक लगती हैं जो कहती हैं कि किन्हीं अपरिवर्तनशील आनुवंशिक कणों (hereditary particles) यानी जीनों (genes = पित्रैक) का शाश्वत संयोजन और पुनः संयोजन ही विकास का मूलाधार है। पूँजीवादी जीवशास्त्र के क्षेत्र में इस प्रवृत्ति के एक प्रमुख प्रतिनिधि के रूप में हम जान लोट्सी (1927) का नाम ले सकते हैं मनुष्य के सम्बन्ध में वह उसी विकासवाद-विरोधी सिद्धान्त को लागू करता है जो कहता है कि जीव जीनों के संयोजन मात्र हैं। लोट्सी की धारणाओं के यान्त्रिक स्वरूप का ग्रोसौर्स की जीनों की पच्चीकारी के साथ कैसा सम्बन्ध है, इसे हम उसके निम्न कथन में देख सकते हैं "आवश्यक है कि जातियाँ यदि अपरिवर्तनशील भी हों तब भी विकास कम-से-कम तर्कपूर्ण तो हो और जीवन-विहीन (निर्जीव प्रम•) प्रकृति में भरी परिकल्पना की पूरी तस्वीर मिलती है। जीन (genes) उसमें तत्वों (elements) का स्थान ले लेते हैं और क्रोमोसोम (क्रिप्रक सूत्र) स्थायी रासायनिक यौगिकों (constant chemical compounds) का।"

मानव-उत्पत्ति से सम्बन्धित लोट्सी की परिकल्पना मनुष्य को अपरिवर्तनीय जीनों का एक संचय बना देती है और मानवी नस्लों (human races) के सम्बन्ध में भाववादी विचारों (idealist views) को जन्म देती है। यह बात वैज्ञानिक रूप से गलत है। मानव उत्पत्ति से सम्बन्धित डारविन की धारणाओं का यह विरोध करती है। वास्तव में यह इस विचार को जन्म देती है कि मानव जाति मूलतः अपरिवर्तनशील है।

5 मानव उत्पत्ति के सम्बन्ध में वाइडनरीख की परिकल्पना

फ्रैंज वाइडेनरीख एक प्रमुख जर्मन मानवशास्त्री था। प्राणी जगत् के सम्बन्ध में

धाम-तौर में और मनुष्य के सम्बन्ध में खास-तौर में विकास के बारे में जननवादी (स्व उत्पत्तिवादी) सिद्धान्त (outogenetic theory of evolution) का मानू करने का प्रयत्न वर्षों तक उससे व्यापक प्रयास किया था। अब हम वाइडनरीख की परिकल्पना का विश्लेषण करेंगे। वाइडनरीख का कहना है कि मानवी-विकास का पूरा क्रम जहाँ तक उसके दन्त तन्त्र से उसका पता मिलता है अनुजननवादी (या पूर्व-निर्धारित — अन०) विकास (orthogenetic development) का ठठ उदाहरण प्रस्तुत करता है। अंगों (organs) के प्रत्येक तन्त्र (system) को प्रभावित करके तथा उनका एक ही दिशा में रूपान्तर करके विकास का यह क्रम शरीर की सम्पूर्ण रचना को प्रभावित करता है। विकास-सम्बन्धी अपने भाववादी विचारों के अनुरूप ही, वाइडनरीख कहता है कि दन्तीय तन्त्र (dental system) में जो कुछ भी हुआ है वह शरीर में हुए आम परिवर्तनों का परिणाममात्र है। दाँतों के ऊपर प्रत्यक्ष रूप से अथवा समागतया पड़े किसी प्रभाव का परिणाम वह नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए भोजन के तरीके में हुए परिवर्तनों का अथवा आकस्मिक रूप में उत्पन्न होने वाली अनिदिष्ट विभिन्नताओं में से किसी के बरक्स का परिणाम वह (दन्त तन्त्र में हुआ परिवर्तन—अन०) नहीं हो सकता। परन्तु डार्विनवाद के अनुसार न केवल विकास के सम्बन्ध में वाइडनरीख की भाववादी परिकल्पना सर्वथा गलत है बल्कि एक निश्चित शारीरिक प्रक्रम में मानव-वंशियों तथा उनके पूर्वजों के अनुजननवादी (या पूर्व निर्धारित) विकास क्रम से सम्बन्धित उसके विचार भी एकदम निराधार हैं।

वाइडनरीख यह सिद्ध करने का प्रयत्न करता है कि जीवित प्राणियों के भौतिक शरीर में होने वाले परिवर्तनों का स्वरूप स्वयं-स्फूर्त होता है और ये परिवर्तन विकास करने की आन्तरिक प्रवृत्ति (inner tendency to develop) के कारण होते हैं। इस प्रकार के प्रतिक्रियावादी विचार जीवन-शक्तियों के पुराने प्रयोजनवादी सिद्धान्त (theory of life forces) की शरण में लौट जाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। दूसरे शब्दों में उनका अर्थ विज्ञान को तिलांजलि देकर धर्म की गोद में चला जाना है। डार्विन के भौतिकवादी सिद्धान्त में इन विचारों का कोई सम्बन्ध नहीं है। हम पहले ही बता चुके हैं कि प्रधानकों के कपाल और दाँतों के विकास पर भोजन के तरीके में होने वाले परिवर्तनों तथा बाह्य कारकों का वास्तविक प्रभाव पड़ता है।

मानव-उत्पत्ति के सम्बन्ध में जितनी भी भाववादी परिकल्पनाएँ प्रतिपादित की गई हैं उनमें फ्रैन्ज वाइडनरीख द्वारा (1946) में प्रस्तावित की गई जाइगेन्टॉयड (gigantoid) परिकल्पना सबसे अधिक तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत की गई प्रतीत होती है। तथ्यों के रूप में इस परिकल्पना का आधार वे महाकाय मानव-सभा के जीवाश्म अवशेष हैं जो दक्षिण-पूर्वी एशिया में मिले हैं। वाइडनरीख उन्हें मानव-जातियों के (होमीनिडों के), मानव नस्ल (human race) के सबसे प्राचीन प्रतिनिधियों के अवशेष मानता है। वाइडनरीख का मुख्य विचार यह है कि अतिकायता (gigantism) मनुष्य के प्रौढ़ी पूर्वजों की एक खास विशेषता है।

का अधिकांश कपाल आधुनिक मानव के कपाल से सम्भवतः बड़ा था। हाल में पूरी दन्तावली के साथ मिले तीन नीचे के हनुओं (पइविनचुम 1037) को देखने से लगता है कि जाइगन्टोपिथेकस के कपाल का बाह्य तल खुरदरा था। अन्तर्जातीय (inter species) संघर्ष में जाइगन्टोपिथेकस की प्रचण्ड शक्ति उसे प्राबल्य प्रदान करती थी—इसलिए सहायता के लिए हथियारों का इस्तेमाल करने की उसे कोई आवश्यकता नहीं थी। वह पशुओं का शिकार करता था और उनके मांस के कुछ टुकड़ों को जिन गुफाओं में वह रहता था उनमें ले जाता था। परन्तु, ऐसे कोई तथ्य (data) मौजूद नहीं हैं जिनके आधार पर हम यह मान लें कि वह एक मानव प्राणी के रूप में विकसित हो सकता था।



चित्र 39 गिगैन्टोपिथेकस पैलियोसायनिकस अभिन्मयाकटः
अधोहनु का अग्रभाग और दन्त पंक्ति। ऊपर : मानवी (बाएं तरफ तथा ऑरंगउटान दाहिनी तरफ) व अधोहनुओं से एक वास्तविक ने पुनर्निर्माण किया।
आकार सहज का है। ... ग्रोनमस्ताम 1947 के आधार पर।

आइडनरीश की दूसरी दलील का आधार प्राचीन जावा के मिगन्थ्रोपस (Javanese Maganthropus) (चित्र 30) के नीचे के हनु का एक भाग है। इसकी उपलब्धि कोनिग्स वाल्ड के एक सहकर्ता को 1941 में जावा द्वीप के संगिरान (Sangiran) नामक स्थान

वैज्ञानिक विमर्श में उत्पन्न एक गड्ढे में हो गई थी। हनु के दाहिने अर्धांश का भाग का मध्य भाग (ramus horizontalis dexter corporis mendibulae) सुरक्षित था। इस भाग के तथा दाँतों के आयाम जाहिर करते हैं कि उनका स्वामी बहुत बड़े शरीर वाला कोई प्राणी रहा होगा। ठोड़ी के रन्ध्र की सतह तक हनु के इस भाग की ऊँचाई 48 मि० मी० थी जब कि गोरिल्ला में उसकी ऊँचाई 30 और 40 मि० मी० के बीच होती है। उसके प्रथम चर्वण दन्त दो अग्र चवर्णकों तथा रदनक (canines) की गर्तिका (socket) को सुरक्षित रखा गया है।

वाइडनरीख दावा करता है कि मिगेन्थ्रोपस के चवर्ण दन्त के चर्वणक तल का विन्यास बिल्कुल ड्रायोपिथिकस जैसा है। इस विन्यास में छठवीं गड्ढ अन्त्राग्र भी शामिल है जो मिगन्थ्रोपस के वन-मानुषी होने की धारणा को और भी सुदृढ़ कर देता है। चवर्ण दन्त का चर्वणक तल मानव-सभों के समान खुरदरा या समवटदार है। रदनक गर्तिका के उपलंघन को देखने से मालूम होता है कि उसका शिखर छोटा रहा होगा। इस मान्यता का समर्थन अग्र चवर्णकों की आकृति से भी होता है। ये अग्र चवर्णक मानवी दाँतों की याद दिलाते हैं? इनके आधार पर माना जा सकता है कि ऊपर के रदनदन्त (भेदन दन्त) भी छोटे रहे होंगे। उसके बाद में एक रदनदन्त मिल भी चुका है।

ठोड़ी के रन्ध्र तक हनु की ऊँचाई के आधार पर मान लिया जा सकता है कि मिगन्थ्रोपस के शरीर के आयामों से केवल गोरिल्ला तथा जाइगन्टोपिथिकस के ही शरीर के आयाम बड़े थे और मिगन्थ्रोपस के शरीर का विस्तार ओरंग-उटैन के शरीर के विस्तार के सदृश था। परन्तु मानव-सभियों के परिवार से केवल उसके दाँतों की विशिष्टताएँ ही नहीं मिगेन्थ्रोपस को अलग कर देती है, बल्कि स्वयं उसका हनु भी उस उससे विलग कर देता है। उदाहरण के लिए, उसके हनु के जीभ पक्ष की ओर संगम (symphysis) के निकट द्विमांसल पेशी (digastric muscle) के लिए 13 मिली मीटर गहरा एक पसीदा गढ़ा है। वाइडनरीख इस गढ़े को एक असंगति (anomaly) मानता है। जैसा कि वाइडेनरीख ने लिखा है, उसके पास ही द्विमांसल पेशी के लिए एक विवरक (fossa) है परन्तु उसकी त्रिकोणात्मक आकृति तथा लम्बा सपाट तल उसे मनुष्य के विवरक से एकदम भिन्न बना देते हैं। हमारा मत है कि इस गढ़े तथा विवरक दोनों की उत्पत्ति प्राकृतिक है तथा उनकी उत्पत्ति जीभ के हनु-क्षेत्र की पेशियों तथा अस्थियों के किसी विशेषीकरण के कारण हुई है। चाहे जो हो यह बात स्पष्ट है कि आकृति सम्बन्धी ऐसे अन्तर मिगन्थ्रोपस (बृहत मानव) को मनुष्य के पूर्वजों की सूची से अलग कर देते हैं।

मिगन्थ्रोपस के पुनर्निमित (reconstructed) अधो-हनु (mandible) के मध्यमध्य क्षेत्र (medial plane) से लिए गए किसी सीधे अनुभाग (vertical cross-section) की बाह्य रेखा की विशिष्टताएँ भी स्पष्ट कर देती हैं कि यह मानव से कितना दूर है। ये बाह्य-रेखाएँ (contours) जाहिर करती हैं कि मिगन्थ्रोपस को ड्रायोपिथिकस तथा पैरेन्थ्रोपस (Paranthropus) के बीच कहीं रखा जाना चाहिए। अन्त में हम उसके

अधो-हनु के रन्ध्र की ओर ध्यान दिलाएँगे। वानरों में यह नीचे और मनुष्य में ऊँचाई पर स्थित होता है। यह छिद्र अग्र-चर्वणकों तथा चर्वणकों के बीच की सीमा के धरातल के आस-पास (मुख) हनु पिण्ड के ओष्ठिक अंग के मध्य भाग की ऊँचाई पर स्थित होता है। मियेन्थ्रोपस में यह हनु-पिण्ड के मध्यभाग की ऊँचाई पर रहता है उसी प्रकार जिस प्रकार कि मानव-वानियों में वह होता है। परन्तु, अधो-हनु की नाल (mandibular canal) जैसा कि उसके अनुभाग (cross-section) से देखा जा सकता है रन्ध्र से नीचे की तरफ काफी गहरे तक जाती है। यह वानरों की अधो-हनु-नाल की तरह अधिक होती है, मानव-वानियों की अधो-हनु-नाल की तरह वह इतनी ऊपर नहीं होती। यहाँ फिर हम देखते हैं कि मिगन्थ्रोपस मानव-सभों के अधिक करीब है।

हमारे विचार में वानरानुभववादी (pithecoid) व विशिष्टताएँ जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है मानव-वानियों जैसी (hominoid) विशिष्टताओं की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसा लगता है कि मानव-वानियों जैसी विशिष्टताएँ तो मिमेन्थ्रोपस में भी पाई जाती हैं। इसलिए मिगन्थ्रोपस को मानव-वानियों की अपेक्षा मानव-सभों की श्रेणी में रखना अधिक सही हम समझते हैं। विशेषीकरण के अपने दुर्लभ तत्त्वों तथा अपने महाकाय अनुपातों के कारण मिमेन्थ्रोपस मनुष्य का पूर्वज नहीं हो सकता था और इसलिए मानव की वंशानुक्रमणिका (genealogy) से उसे अलग कर दिया जाना चाहिए।

प्रधानकों की श्रेणी में महाकायता एक अपवाद है—सामान्य नियम नहीं। भारत में महाकाय जायोपिथेकस या दक्षिण-पूर्वी एशिया म आइमेंप्टोपिथेकस तथा मियन्थ्रोपस व और मडागास्कर के द्वीप पर महाकाय लेम्यूर—मेगलाडापिस तथा दूसरे—थे और पूर्वी अफ्रीका म बड़ा प्रोकोन्सल (Proconsul Major) था। इससे भी अधिक प्रसिद्ध व जीवाश्म मानव-सम है जिसका रूप-आकार पूर्व मानव-वंशी है। इसलिए वाइडेनरीख की इस बात से कोई सहमत नहीं हो सकता कि हमारे पूर्वज महाकाय प्राणी थे—बहुत बड़े आकार के मानव और हब्शी की तरह के कोई प्राणी। वाइडेनरीख की परिकल्पना निम्न प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दे सकती प्राणी जगत् के विकास की आरम्भ-जननवादी धारणा (autogenetic conception) का विकास के उस उल्टे (reverse) क्रम के साथ कैसे समन्वय स्थापित किया जा सकता है जिसके अनुसार महाकाय मानव-सभों के आकार घटते जाते हैं अथवा उनका विह्रासम होता जाता है तथा वे अपने पूर्वजों की अपेक्षा कहीं अधिक छोटे शरीरों वाले मानवों में बदलते जाते हैं? वैज्ञानिक रूप से असंगत मानव उत्पत्ति सम्बन्धी आइडब्ल्यूआइड वाली अपनी परिकल्पना रूप में वाइडेनरीख ने—यदि आदमी साफ-साफ कह सके तो—स्वयं अपनी ऋजु-जननवादी धारणा (orthogenetic conception) की क्रिया-क्रिया कर दी है। वाइडनरीख का विचार इसलिए भी असंगत है कि मियन्थ्रोपस और आइमेप्टोपिथेकस की भूगर्भ-शास्त्रीय (geological) प्राचीनता इतनी अधिक नहीं है कि उन्हें मानव-वानियों के पूर्वजों की श्रेणी में रख दिया जाए (नस्तुर्ग 1954)।

मनुष्य-उत्पत्ति से सम्बन्धित डार्विनवाद विरोधी किन्हीं परिकल्पनाओं के इस लसपन को हम यह सुझाव देकर समाप्त कर सकते हैं कि उत्तर तृतीय कालीन मानव र्मों (upper tertiary anthropoids) को दो वर्गों म बाँट देना अधिक सुविधा नक होगा। एक वर्ग में मानव-वर्मियों के तथा आकृति-तत्त्व के अनुसार उनसे म्बन्धित वानरों के पूर्वज हाथ इन्हें हम पूर्व-मानव-वंशी मानव-सम (pre-hominoid anthropoids) कह सकते हैं। इस वर्ग में हम ड्रायापिथकस डारविनी (Dryopithecus darwini) ओरियोपिथकस (Oreopithecus) रामापिथकस (Ramapithecus) आस्ट्रलोपिथकस (Australopithecus) पेरन्थ्रापस (Paranthropus) तथा प्लेसियन्थ्रोपस (Plesianthropus) को रखेंगे। दूसरे मध्यजीव-कालीन (miocene) तथा उत्तर जीव-कालीन (pliocene) मानव-समों को पूर्व-वन-मानुषी (pre-simoid) मानव-समों के वर्ग में—जीवित गिब्बन ओरंग उटैन चिम्पजी तथा गोरिल्ला के पूर्वजों के वर्ग में सम्मिलित किया जाएगा। उत्तर-तृतीय-कालीन मानव समों की आज जितनी जातियाँ मौजूद हैं उनसे कहीं अधिक जातियाँ और प्रजातियाँ थीं और व कहीं अधिक मात्रा म दूर-दूर तक फैली हुई थीं।

इस प्रकार की कार्यकारी परिकल्पना पूर्व-मानव-वंशी मानव-समों पर ध्यान केन्द्रित करने में हमें सहायता देती है और मनुष्य के एकदम नजदीकी पूर्वज का पता लगाने में सहायक होती है। काफी से अधिक सम्भावना इसी बात की है कि उनका यह पूर्वज दक्षिण एशिया में रहने वाला आस्ट्रलोपिथकस का कोई उत्तर जीव-कालीन (upper pliocene) सम्बन्धी था वही लाल-चीन की जानी चाहिए। सबसे अधिक सम्भावना इस बात की है कि प्रथम मानवों का निवास-स्थान भी इसी क्षेत्र म था। इस तरह के विश्वास का समर्थन कुछ हद तक जीवाश्म मानव-समों के उन अवशेषों म भी होता है जो भारत चीन हिन्द-चीन तथा जावा में प्राप्त हुए हैं। इनमें जाइगन्टोपिथकस तथा मिगन्थ्रापस के अवशेष भी शामिल हैं। प्रारम्भिक मानव दक्षिण एशिया से आस पास के भूखण्डों म फैलने लगा था—उनके सामने नये देश थे जिनमें प्राग् मानवी यूथ (primeval human herd) की अपनी एकता सामूहिक कार्य-विधियाँ तथा अपने औजारों की वजह से वह अपना बनाने म सफल हुआ था।

मानव-उत्पत्ति से सम्बन्धित डार्विनवाद विरोधी परिकल्पनाएँ मानव-शास्त्रीय प्रधानतः-शास्त्रीय तथा आम जीव-शास्त्रीय न्यासों द्वारा गलत की जा चुकी हैं तथा अब भी गलत सिद्ध हो रही हैं। मानव उत्पत्ति की समस्या के विषय म काम करने के लिए डार्विन का मानव-उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त बहुत दिनों से एक आधार के रूप म काम देता आया है। द्वन्द्वात्मक तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद की पद्धति पर आधारित मानव-उत्पत्ति शास्त्र-सम्बन्धी अपने नए मार्क्सवादी सिद्धान्त के लिए एंगेल्स ने भी आधार-शिला के रूप म उसका उपयोग किया था।

हमारे ग्रन्थ के सबसे भाग म प्राणी जगत् के विकास से सम्बन्धित इतिहास के उस

वर्तन बिन्दु (turning point) पर कुछ और प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है जिसमें मनुष्य का प्रादुर्भाव हुआ था।

मनुष्य की वंशावली (genealogy) तथा मानव-प्रजनन (anthropogenesis) की सम्पूर्ण प्रक्रिया के दो असमान मार्गों में विभक्त किए जाने की समस्या के सम्बन्ध में भी कुछ आम बातें कह देना यहाँ उपयुक्त होगा। पहला भाग अत्यधिक लम्बा है—प्रथम सूक्ष्म-दर्शी (microscopic) जीवित प्राणियों (living beings) से लेकर पिथेकैन्थ्रोपसों के तात्कालिक पूर्वगामियों तक का। इसकी अवधि लगभग 2 00 00 00 000 (दो अरब) वर्ष थी। मनुष्य के पूर्वजों का विकास क्रम परिवेश में होने वाले परिवर्तनों के प्रति उनमें से हरेक जीव (organism) की निरन्तर बदलती हुई प्रतिक्रिया के पूर्ण रूप के ऊपर निर्भर करता था जीव की प्रतिक्रिया में होने वाले परिवर्तन जैविक (biological) समस्त शुद्ध रूप से प्राकृतिक कारकों पर निर्भर करते थे। इन कारकों की शुरुआत प्राकृतिक-वरण से होती थी।

व्यापकतम अर्थ में यहाँ तक कि दार्शनिक अर्थ में हम कह सकते हैं कि प्राणी जगत् के विकास क्रम में अथवा और अधिक निश्चित रूप से कहा जाए तो उसकी उस शाखा के विकास क्रम में जिसकी उत्पत्ति पिथेकैन्थ्रापस (वानर-मानव) या नए गुणों का निरन्तर परिमाणात्मक संचयन होता जाता था। मानव-वंशियों के प्राचीन स्वरूपों में सारे समय विकासात्मक परिवर्तन (evolutionary change) होता जा रहा था। अनिवार्य रूप से इस परिवर्तन ने एक नए ऐसे युग की सृष्टि कर दी थी जो स्तनधारियों के वर्ग के अन्य किसी उपवर्ग में न तो उससे पहले उत्पन्न हुआ था और न उसके बाद ही पैदा हुआ है। यह बहुत ही विलक्षण युग था—जो एक नए प्राणी में सबसे प्रारम्भिक मानव में मिलता है। वह जो काम करता था अर्थात् प्राग् मानवी झुंड के अन्य सदस्यों के साथ मिलकर जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नियमित रूप में वह जो अपने औज़ार बनाता था और अमल में उनका इस्तेमाल करता था उसके कारण गुणात्मक रूप से नये सामाजिक नियम अस्तित्व में आए, वे नए कारक पैदा हुए जिन्होंने मनुष्य के शरीर और पूरे मानव का निर्माण किया।

भाग दो

मानवी शरीर की भौतिक विलक्षणताएँ तथा मानव का आविर्भाव

1

मानव की उत्पत्ति के सम्बन्ध में काम तथा खड़े होकर चलने की भूमिका

1 काम की भूमिका

पिछले अध्यायों में कई बार इस बात का उल्लेख किया गया है कि मनुष्य की शरीर-रचना तथा अन्य जीवशास्त्रीय विशेषताएँ यद्यपि ठीक उसी प्रकार की हैं जैसी कि अन्य प्राणियों की परन्तु शरीर रचना-सम्बन्धी (anatomical) तथा शरीर-क्रिया सम्बन्धी (physiological) कुछ ऐसी विशेषताएँ भी उसमें मौजूद हैं जो अन्य प्राणियों से गुणात्मक रूप से भिन्न हैं। इन विशेषताओं की व्याख्या वानर से मनुष्य में हुए उसके उस विकास की विशिष्टताओं के आधार पर ही की जा सकती है जो उसकी क्रियाशीलता (activities) के प्रभाव के अन्तर्गत हुआ है।

आधुनिक मानव के शरीर में अपने को काम करने तथा सीधे खड़े होकर चलने के उपयुक्त बना लेने की भारी क्षमता है। परन्तु खड़े होकर सीधे चलने फिरने की क्रिया स्वयं मानव-जीवन की समस्त क्रियाओं में मौजूद उस सबसे बड़ी विशेषता के साथ काम करने की क्षमता के साथ अपना अनुकूलन क़ायम करने की क्रिया है।

मनुष्य के प्रारम्भ तथा आगे के विकास की समस्या की जाँच-पड़ताल के लिए प्राकृतिक (natural) तथा सामाजिक (social) विज्ञानों से प्राप्त हुई आधार-सामग्रियों का उपयोग किया जाना चाहिए। समस्या के सर्वांगीण (संश्लिष्ट) अध्ययन से ही इस बात का पता चल सकता है कि प्राणी जगत् (animal kingdom) से मनुष्य का विकास कैसे हुआ था। मानव-उत्पत्ति (anthropogenesis) की समस्या के सम्बन्ध में जीव शास्त्रीय (biological) तथा सामाजिक विज्ञानों से प्राप्त आधार-सामग्रियों का सही सही उपयोग किए जाने का अर्थ यह होता है कि द्वन्द्वात्मक तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद के आधार पर प्रकृति तथा समाज का हर प्रकार से अध्ययन किया जाए।

मानव उत्पत्ति से सम्बन्धित अपने ग्रन्थ में एंगेल्स समझता है कि डार्विन आधे रास्ते में ही रुक गए थे। मनुष्य की जीवशास्त्रीय विशिष्टताएँ कैसे पैदा हुई थीं इसका केवल एक आंशिक जवाब वे दे सके थे क्योंकि मुख्यतः केवल जीवशास्त्रीय नियमों (*biological laws*) का ही उन्होंने उपयोग किया था।

डार्विन के सिद्धान्त के अनुसार, गुण परिवर्तन (mutation) जीवन संघर्ष प्राकृतिक तथा क्रमिक वरण् तथा परिवेश का प्रत्यक्ष आनुवंशिक (hereditary) प्रभाव ही मानव-निर्माण (making of man) के प्रमुख कारक थे।

मार्क्सवाद के संस्थापकों ने मनुष्य के निर्माण (formation of man) की समस्या का सर्वांगीण समाधान प्रस्तुत किया था। इस समाधान में पहला स्थान उन्होंने काम के प्रभाव (influence of work) को दिया था। मानव के विकास (evolution of man) में काम की भूमिका के सम्बन्ध में एंगेल्स की स्थापना को दर्शन के भाववादी सम्प्रदाय के विद्वानों ने नहीं स्वीकार किया था।

मार्क्स की रचनाओं में ऐसी मूलभूत धारणाएँ मिलती हैं जो प्रत्यक्ष रूप से मानव उत्पत्ति की समस्या के मूल तक हमें ले जाती हैं। पूँजी के प्रथम खण्ड में (अध्याय 5 उपभाग 1) मार्क्स ने 'काम' की धारणा की परिभाषा की थी तथा मनुष्य को प्राणी जगत् में अलग करने के सम्बन्ध में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका बतलाई थी।

बिना किसी के द्वारा बनाई गई (यानी अरचित) प्राकृतिक वस्तुओं की सहायता से की जानेवाली कार्यवाहियों को मार्क्स श्रम की क्रियाशीलता का अविकसित भ्रूण (embryonic) रूप मानते हैं। मनुष्य द्वारा औजारों के इस्तेमाल के सम्बन्ध में मार्क्स कहते हैं इस प्रकार उसकी क्रियाशीलता का प्रकृति एक साधन बन जाती है, एक ऐसा साधन जिसे स्वयं अपने शरीर के अंगों (साधनों) में वह जोड़ लेता है जिससे कि बाइबिल के बावजूद उसका कद (stature) बढ़ जाता है।[1] औजार एक प्रकार से मनुष्य की शारीरिक शक्ति (physical strength) को बढ़ा देते हैं और ऐसी कठिनाइयों के ऊपर विजय प्राप्त करने की क्षमता उसमें पैदा कर देते हैं जिन पर अपने खाली हाथों से विजय प्राप्त करना उसकी शक्ति के बाहर होगा।

बनाए गए (fabricated) औजारों से काम करना श्रम का एक अधिक विकसित स्वरूप है।

'श्रम के औजारों का उपयोग और निर्माण यद्यपि बीज रूप में पशुओं की कुछ जातियों में मिलता है परन्तु विशिष्ट रूप में यह विशेषता है मानवी श्रम क्रिया की और फ्रेंकलिन मनुष्य की परिभाषा करते हुए एकमत से उसे एक 'औजार बनानेवाला पशु' कहते हैं।'[2]

मानव उत्पत्ति का काम वाला सिद्धान्त (work theory of anthropogenesis)

---

1 मार्क्स पूँजी खण्ड 1 अध्याय 7 उपभाग 1 मास्को 1954 पृ 179।
2 वही पृ 179।

मार्क्सवाद की मूलभूत मान्यताओं का ही एक विकसित रूप है।

एंगेल्स कहते हैं कि श्रम समस्त मानवी अस्तित्व की प्राथमिक बुनियादी शर्त है और यह बात यहाँ तक सच है कि एक तरह से हमें कहना पड़ता है कि स्वयं मनुष्य का ही सृजन श्रम ने किया है।[1] मनुष्य और बानरों-जैसे उच्च वर्ग के उन प्राणियों के बीच शरीर रचना तथा सामान्य वंशानुक्रम (descent) की दृष्टि से जिनके वह समीप है—काम की क्रियाएँ ही स्पष्ट विभाजक रेखा कायम करती हैं।

काम की भूमिका के सम्बन्ध में अपने क्लासिक (शास्त्रीय) प्रबन्ध में हमारे पूर्वजों के विकास की बात एंगेल्स उस अवस्था से प्रारम्भ करते हैं जिसमें कि जैसाकि वे कहते हैं उनका स्वरूप बानर की असाधारण रूप से विकसित एक जाति का था। इसका अर्थ हम यह समझते हैं कि उस अवस्था में हमारे पूर्वजों के शारीरिक (या जिस्मानी) संगठन का स्तर ऊँचा था अपने को परिवेश के अनुकूल बना लेने की उनमें क्षमता थी और उनका मस्तिष्क अच्छी तरह विकसित हो गया था।

एंगेल्स कहते हैं कि सीधे खड़े होकर चलने लगना बानर के मानवीकरण (humanizing the ape) के मार्ग पर एक निर्णायक कदम था क्योंकि उसके शरीर की इस स्थिति से उसकी भुजाएँ मुक्त हो गई थीं। अब उन्हें न तो लेटकर (pronograde) चलने में मदद देने का काम करना पड़ता था और न शरीर को सहारा देने का। हाथ शुरू-शुरू में काम के एकदम सरलतम रूपों को पूरा करने के योग्य बने और फिर एक बहुत लम्बे काल में जिसमें कि उसके द्वारा किए जानेवाले श्रम के प्रभाव में मानव का रूप-विन्यास हो रहा था उनका और भी अधिकाधिक विकास होता गया। एंगेल्स का कहना है कि हाथ की बनावट तथा उसके कार्यों के ऊपर काम का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। उनका यह भी कहना है कि व्यक्तिगत रूप में उपार्जित विशिष्टताएँ आनुवंशिकता (heredity) के द्वारा बाद की पीढ़ियों में पारेषित होती गई थीं।

परन्तु, जोर देते हुए वे कहते हैं कि सीधे खड़े होकर चलने लगना (orthograde locomotion) एक ऐसी चीज नहीं थी जिसे हमारे पूर्वजों ने फौरन एक ही झटके में हासिल कर लिया हो। पहले यह एक आम चीज बनी थी और बाद में एक आवश्यकता बन गई। सीधी खड़ी दशा को एक नया महत्त्व प्राप्त हो गया। इस स्थिति की प्रगति इसलिए होती रह सकी कि हाथों को एक सर्वथा नया कार्य अर्थात् औजारों का इस्तेमाल करने का कार्य दे दिया गया था। धीरे धीरे उसकी यह विशेषता एक आकस्मिक अभिव्यक्ति (manifestation) न रह गई और एक अनिवार्य आवश्यकता बन गई। आगे चलकर उसकी इस विशिष्ट मानविक क्रियाशीलता ने औजारों के सामूहिक निर्माण का तथा एक ही जैसे प्राणियों के एक समुदाय द्वारा उनके उपयोग का रूप ग्रहण कर लिया। फिर, इसके परिणामस्वरूप हाथों का विकास एक निश्चित दिशा में होने लगा हाथ न केवल काम

1 फ्रेडरिक एंगेल्स प्रकृति में द्वन्द्ववाद, मास्को 1954, पृष्ठ 228।

का साधन (organ) बल्कि उसकी उपज (product) भी बन गया—उसकी बनावट (संरचना) तथा उसके कार्य मनुष्य की श्रम-सम्बन्धी क्रियाशीलता को प्रतिबिम्बित करने लगे। बदलते हुए हाथ ने सम्पूर्ण मानव-शरीर पर असर डाला और, प्रत्योग्याधित रूप से वह शरीर के साथ चूँकि जुड़ा हुआ था इसलिए उसने भी शरीर के प्रभाव का अनुभव किया।

बिखरे हुए शब्दों (ध्वनियों) के रूप में बोली (speech) की उत्पत्ति सामाजिक कार्य के दौरान में हुई थी और फिर उसमें से सचारण (communication) के एक नये अत्यधिक आवश्यक तथा उपयोगी रूप में स्पष्ट वाणी का विकास हुआ। इस प्रकार भाषा सामाजिक विकास की उपज है। वह केवल ऐसे लोगों के बीच पैदा हो सकती थी जिनके मस्तिष्क सुविकसित थे तथा जिनके ललाटकीय तथा पार्श्विका पिण्डों (frontal and parietal lobes) के कोर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के वाणी वाले प्रदेशों (speech-regions) का एक निश्चित स्तर तक विकास हो चुका था।

फिर, काम और वाणी का मस्तिष्क तथा इन्द्रियों (senses) के क्रमिक विकास पर शक्तिशाली प्रभाव पड़ा।

इन तमाम मानवी गुणों की उन्नति में एक महत्वपूर्ण नई वस्तु ने—समुदाय (community) ने—अत्यधिक मदद दी। काम की भूमिका के सम्बन्ध में अपने लेख में एंगल्स बहुत साफ-साफ ढंग से बतलाते हैं कि मनुष्य के निर्माण में मूलभूत प्राकृतिक तथा सामाजिक कारकों के प्रभाव का क्या महत्त्व था तथा उनकी कौन-सी सीमाएँ थीं। इन कारकों में सामाजिक रूप से किए गए कार्य (socially performed work) को अत्यन्त प्रमुख स्थान देते हैं। पशुओं से मनुष्य इस बात में एकदम भिन्न है कि वह ऐसा सामाजिक प्राणी है जो औज़ार बनाता है और अपने सामूहिक श्रम (collective labour) में उनका इस्तेमाल करता है।

कृत्रिम (बनाए गए) औज़ारों की मदद से काम करने की पद्धति का विकास समुदाय (community) के अन्दर तथा उसीके द्वारा किया गया था और मानव समाज के उद्भव की बात भी तभी समझ में आ सकती है जबकि हम यह मान लें कि मनुष्य के तात्कालिक पूर्वज गोलों में रहनेवाले प्राणी (gregarious animals) थे। मार्क्सवाद के संस्थापकों को विश्वास था कि एकदम प्रारम्भिक काल से ही मानव ने अपनी किस्म के दूसरे लोगों के साथ रहने की अभिरुचि दिखलाई थी यह अन्तर्जात सामाजिक भावना (social instinct) एक सबसे महत्वपूर्ण कारण है जिसने वानर को मनुष्य बनने में मदद पहुँचाई है। परन्तु, वानर के एक बार मनुष्य बन जाने के बाद उनका सामाजिक जीवन उसके मानव-सम पूर्वजों के झुण्डोंवाले जीवन (herd life) से भिन्न हो गया।

पहले-पहल मानव पशु से बहुत कम भिन्न था। काम का श्रीगणेश उसके विकास की एकदम प्रारम्भिक अवस्थाओं में ही हो गया था।

भौतिक मूल्यों (material values) के उत्पादन उत्पादन-सम्बन्धों के उदय तथा सामाजिक विकास—इन सबने मानव को पशु जगत् से अधिकाधिक अलग करने का काम किया। इनकी वजह से उसका विकास ऐसे रूप में होने लगा जो पशुओं के विकास के रूप से भिन्न था मनुष्य स्वयं अपने विकास को प्रभावित करने लगे और समय बीतने के साथ-साथ यह प्रभाव भी बढ़ता गया। (एंगेल्स—प्रकृति में द्वन्द्ववाद)।

इसके अलावा मनुष्य के आविर्भाव का मतलब था पशु जगत् से उसका एकदम अलग हो जाना (break-away) क्योंकि मानव-समाज गुणात्मक रूप से एक नयी चीज थी एक हद तक मानव-समाज का उस परिवेश के साथ विरोध रहता है जिसमें वह विकसित होता है।

वानरों के झुण्ड तथा मानव-समाज का विकास अलग-अलग दिशाओं में होता रहा और वे एक-दूसरे से अत्यधिक भिन्न हैं। एंगेल्स ने कहा था

"पशु अधिक-से अधिक संग्रह करने का (to collect) काम कर सकता है मनुष्य उत्पादन करता (produces) है। शब्दों के व्यापकतम अर्थ में वह जीवन के उन साधनों को तैयार करता है जो प्रकृति उसके बिना पैदा नहीं कर सकती। यह चीज इस बात को असम्भव बना देती है कि पशु समाजों के जीवन के नियमों को अविकल रूप में मानव-समाज पर लागू कर दिया जाए।[1]

प्राणी तथा वनस्पति लोकों में विकास कैसे होता है इस सम्बन्ध में डारविन ने जो कार्य किया था उसके विषय में मार्क्स और एंगेल्स की बहुत ऊँची धारणा थी किन्तु जीवशास्त्रीय तथा सामाजिक श्रेणियों (biological and social categories) को डारविन ने जिस अनुचित ढंग से मिला दिया था उसकी उन्होंने आलोचना भी की थी।

मानव उत्पत्ति की समस्या का एंगेल्स ने जो अधिक विस्तृत मार्क्सवादी विश्लेषण किया था वह मनुष्य को हमारे सामने एक नये गुणात्मक रूप से भिन्न सामाजिक प्राणी के रूप में प्रस्तुत करता है। इसके बावजूद मनुष्य अब भी प्रकृति का एक अंग है और वह एक प्रकार से उसमें अपनी अभिपुष्टि करती है (asserts)। एंगेल्स के शब्दों में, मनुष्य प्रकृति का है (man belongs to nature) उसका मांस रुधिर और मस्तिष्क उसी का है और वह प्रकृति का ही अंग बना रहता है परन्तु पशुओं से वह इस बात में भिन्न होता है कि वह प्रकृति के नियमों को पहचानता है और उनका सही-सही ढंग से उपयोग करने की योग्यता रखता है।

मानव-उत्पत्ति की प्रक्रिया की गुणात्मक रूप से विशिष्ट प्रकृति (specific nature) पर खास तौर से एंगेल्स जोर देते हैं मनुष्य सक्रिय रूप से अपने को अपने चारों तरफ की स्थिति के अनुकूल बना लेता है और बाद में प्रकृति के ऊपर प्रभुता स्थापित कर लेता है। सचेत तथा सतत श्रमयुक्त क्रियाशीलता के द्वारा ही मनुष्य इस शक्ति को प्राप्त कर सकता था। काम ने मनुष्य और पशुओं के बीच एक असंक्रमणीय खाई पैदा कर दी थी।

1 फ्रेडरिक एंगेल्स, प्रकृति में द्वन्द्ववाद, मास्को 1954 पृष्ठ 404-405।

इसके बाद विकास की उनकी दिशाएँ न केवल अत्यधिक भिन्न होती गई थीं बल्कि वे एकदम विरोधी दिशाओं में चल पड़ी थी।

3 महावानरों के चलने के तरीके

हमारे तात्कालिक पूर्वजों यानी मानव-सम वानरों के अग्रांग (fore limbs) मुक्त हो सके इस युक्ति की प्राथमिक आवश्यकता थी।

शुरू-शुरू में हमारे पूर्वजों में दो पैरों से चलने की गति का बहुत कम विकास हुआ था और सम्भवतः लम्बे समय तक जमीन पर चलने में वे घबराते थे। प्राकृतिक वरण (natural selection) की क्रिया के दौरान कम विकसित खड़ी स्थिति (erect position) ने क्रमशः शक्ति प्राप्त की। खुले मैदान में जीवन-यापन की परिस्थितियों के अन्तर्गत यह स्थिति एक अनिवार्य आवश्यकता बन गई। आस्ट्रेलोपिथिकस की मंजिल तक पहुँचते-पहुँचते सीधे खड़े होकर चलना एक आम नियम (general rule) हो गया था और तब श्रमपूर्ण कारवाइयाँ सम्भव हो गई थीं। इसलिए, मानव-उत्पत्ति के लिए सीधी खड़ी पोजीशन (स्थिति) एक महत्त्वपूर्ण जीवशास्त्रीय पूर्व-आवश्यकता (biological pre-requisite) है।

सीधे खड़े होकर चलने के प्रारम्भिककालीन तरीके के प्रारम्भ तथा श्रम-सम्बन्धी क्रियाशीलता के उद्भव ने मानव-शरीर के विशिष्टीकरण में और भी इजाफा कर दिया। इससे उसमें श्रम के विभिन्न स्वरूपों के अनुकूल बनने की विशेषताएँ उत्पन्न हुई तथा उसकी वनमानुषी विशेषताएँ कमजोर पड़ने लगीं और उनमें से अनेक विलुप्त हो गईं।

सीधे खड़े होकर चलने की ओर हमारे पूर्वजों का संक्रमण तृतीय काल के उत्तरार्द्ध में एक अत्यन्त लम्बे समय में हुआ था। द्विपदीय-प्रचलन (biped locomotion) का विकास होने में सम्भवतः करोड़ों साल लग गए थे। चतुर्थ काल (quaternary period) का प्रारम्भ होने तक सीधे खड़े होकर चलने का अंगविन्यास रूप से इतनी अच्छी तरह से विकास हो चुका था कि मानव के अग्रांगों ने शरीर को सहारा देने के काम में अथवा जमीन पर चलने के काम में भाग लेना बन्द कर दिया था। अन्त में इसीके फलस्वरूप आस्ट्रेलोपिथिकस का किस्म का वानर सीधे खड़े होकर चलनेवाले पिथेकैन्थ्रापस (वानर मानव) में विकसित हो गया।

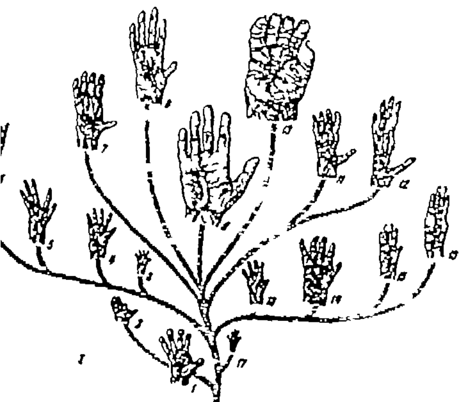
इस बात में हमें और डारविन के साथ हमें सहमत होना पड़ेगा कि मनुष्य के शरीर को एक खास दिशा में पुनर्गठित करने में सीधे खड़े होकर चलने की आदत ने मुख्य कारक का काम किया था। मानवी शरीर रचना की जो लाक्षणिक विशेषताएँ हैं उनमें से अधिकांश का सम्बन्ध प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में द्विपदीय प्रचलन (दो पैरों से चलना) की आदत के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। इन विशेषताओं में हैं शरीर को सहारा देनेवाला एक पैर जिसमें अनुदैर्घ्य चाप (longitudinal arch) के साथ-साथ एक अच्छी तरह से विकसित मजबूत तथा लम्बा अँगूठा है, एक हाथ जिसका अँगूठा अति

तम्य रूप से विकसित है और जिसम विशेषतया जिसकी अंगुलियों के सिरा म स्पर्श की गहरी अनुभूति (sense of feeling) है (चित्र 10) मरुदण्ड (vertebral column) जिसमें वक्रताओं की चार श्रणियाँ (series of four curvatures) है। कटीरुक (lumbar) की वक्रता इनम सबसे खास है पालि प्रदेश (pelvis) क्षतिज से 60° के कोण पर स्थित है एसा कपाल जिसम एक बड़े तथा भारी मस्तिष्क के लिए स्थान है लकिन जो मेरुदण्ड के ऊपर अच्छी तरह स ठहरा हुआ (well-poised) है महामणि के रन्ध्र का तल (plane) लगभग क्षतिज (horizontal) है महामणि का रन्ध्र कपाल के अग्र भाग के समीप है और सीधा नीच की तरफ अथवा कुछ-कुछ माथ की तरफ तक जाता है (महावानरों म वह कुछ-कुछ पीछे की तरफ जाता है) कपाल का ऊपर (cranial) बड़ा तथा आनन (facial) भाग छोटा है कपाल का बाहरी उभार कम विकसित है मस्तिष्क जटिल बनावटवार है शरीर क अपन खास अनुपात है (धड़ की लम्बाई के मुकाबले म पैर लम्बे है और भुजाएँ छोटी)। उसके विशेष रूप से उन्नतिशील अंग जो (अपनी अभिव्यंजना शक्ति म) निरन्तर विकसित होत जाते है —मस्तिष्क हाथ तथा वाणी की इन्द्रियाँ (speech organs) है।

दूसरे प्रधानों की तुलना में मनुष्य म ऐसी कई भि न विशेषताएँ है जिनका सीधा खड़े होकर चलन से कोई सम्बन्ध नहीं है। ठुड्डी क आगे के भाग (मानसिक अण्ड) का उभरा होना रदनकों (छदक दन्तों) का भी दूसरे दाँता स अधिक लम्बा नहीं है कम विकसित होना होठों का केन्द्रीय अथवा सक्रमणात्मक भागों म विकसित होना तथा ऊपर क होंठ और नाक क बीच एक गहरी रेखा का होना—ये सब शरीर रचना स सम्बन्धित उसकी ऐसी ही विशेषताओं क उदाहरण है।

यह बतान क लिए कि हमारे पूर्वजों न वृक्षा क अपन जीवन को छोड़कर जमीन के जीवन को कसे अपना लिया था और कैसे द्विपदीय प्रचलन का विकास हुआ था—आवश्यक है कि हम आधुनिक वानरों क पैरों तथा जमीन पर चलने के तरीकों की जाँच करें। पड़ों के जीवन-काल म बन्दर के चारों अग (limbs) मुख्यतया पकड़न के (परिग्राही) साधनों (organs) का काम देते है।

बाहरी तौर स बन्दर का पैर उसके हाथों स इतना अधिक मिलता है कि प्रथम दृष्टि म वह चार हाथोंवाला प्राणी (quadrumanous) मालूम होता है जैसाकि किसी जमाने मे गलती स उसे बताया भी गया था। बन्दर पेड़ की शाख को हाथों और पैरों दोनों स एक ही जैसी फुर्ती (क्षिप्रता) से पकड़ सकता है और काम की दृष्टि स सचमुच उसक पैर एकदम उसके हाथों से मिलते है। शरीर रचना की (anatomical) दृष्टि स बन्दर के हाथों और पैरा की बनावट की तुलना मनुष्य के हाथों और पैरा के साथ यदि इस तरह से की जाए कि उनकी अस्थियों पेशियों रुधिर वाहिकाओं (blood vessels) तथा तत्रिकाओं (nerves) की संख्या तथा उनका सरचनात्मक स्वरूप स्पष्ट हो जाए तो हमें इस बात का विश्वास दिलाने क लिए वह काफी होगी कि बन्दर के पिछले

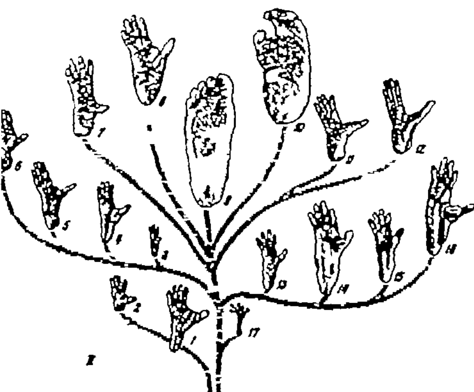


चित्र 40 प्राइमेटों की वंश शाखाओं के
I हाथ और II पैर मनुष्य

1 [illegible] 2 [illegible] (सामान्य लेमूर) [illegible] 5 [illegible] (रात्रि वानर) [illegible] 6 [illegible] वानर—[illegible]) 10 गोरिल्ला [illegible] 11 [illegible] 13 [illegible] ([illegible] वानर) [illegible], 14 [illegible] ([illegible] वानर) [illegible] 17 [illegible]।

पग (hind limbs) मनुष्य के नीचे के अंगों (inferior extremities = टाँगों) के अनुरूप हैं। इसी तरह उसके आगे के पग (fore-limbs) मनुष्य के ऊपर के अंगों (superior extremities = भुजाओं) के अनुरूप हैं।

पेड़ों पर चढ़ते समय बन्दर अपने चारों अंगों का इस्तेमाल करता है। शाखा के ऊपर वह पूर्ण आत्मविश्वास के साथ चलता रहता है—उसकी पूँछ संतुलन बनाए रखने में उसकी सहायता करती है। कुछ उच्चतर वानर (गोरिल्ला, चिम्पैंजी, ओरंग उटैन)



दूरस्थ अवयवों की आकृति
बन्दरों तथा अर्धबन्दरों के।
पत्र० मुख्र, 3. हापल (यूरोपि) जैक्स आ०, 4 ... (बन्दमुखी कपि) ... श्री ...
7 ... (वामन वनमानुष) ..., 8. ... गिमबिरोर्टी, 9 ... (...
(...) ..., 12. ... (...) ...
15 ..., 16. ... (...)
—... 1937 के आधार पर।

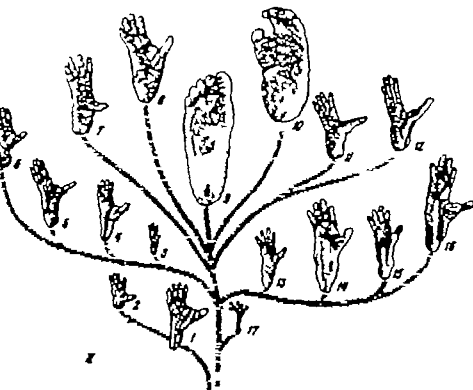
अपने कदम पीछे के अंगों पर कुछ कदम चल सकते हैं और गिब्बन तो आम तौर से अपने पिछले पैरों पर ही चलते हैं और बांह के अपने लम्बे अंगों का उपयोग अपना संतुलन बनाये रखने के लिए करते हैं। निम्न वर्ग के भी ऐसे बन्दर हैं जो अपने पिछले अंगों के सहारे जमीन पर चलते हैं। उदाहरण के लिए अमरीकी मकड़ बन्दर है जो अपना संतुलन अपनी लम्बी पूँछों को एक अलग चिह्न के रूप में देकर कायम रखता है।

चित्र 40 प्राइमेटों की देह शाखाओं के
I. हाथ और II पैर समान

1 लेमूर [illegible] 2 [illegible] (सामान्य [illegible]) [illegible] 5 [illegible] मनुष्य ([illegible] बानर) [illegible] 6 [illegible] बानर—[illegible]) 10 [illegible] 11 [illegible] 12 [illegible] ([illegible] बानर) [illegible] 14 [illegible] ([illegible] बानर) [illegible] 17 [illegible]।

पद (hind limbs) मनुष्य के नीचे के अंगों (inferior extremities = टांगों) के समरूप हैं। इसी तरह उसके आगे के पद (fore limbs) मनुष्य के ऊपर के अंगों (superior extremities = भुजाओं) के समरूप हैं।

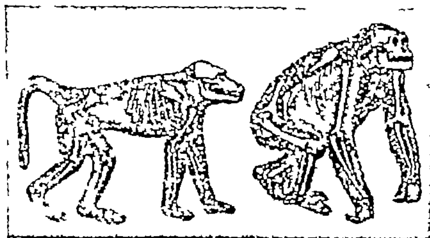
यहां पर बंदर समय समय पर अपने चारों अंगों का इस्तेमाल करता है। शाखा के ऊपर वह पूर्ण आत्मविश्वास के साथ चलता रहता है—उसकी पूंछ संतुलन बनाए रखने में उसकी सहायता करती है। कुछ उच्चतर वानर (गोरिल्ला, चिम्पांजी, ओरांग उटैन)



दूरस्थ प्रदेशों की आकृति
[illegible] हैं।
[illegible] सुअर, 3. [illegible] (मुरामि) [illegible] 4 [illegible] (बहुमुर्ख कपि) [illegible] 7 [illegible] (वामन [illegible]) [illegible] 8. [illegible] कुमारी गिलाबियोली, 9 मानव ([illegible] ([illegible] पुरुषांगुल) [illegible] 12. [illegible] ([illegible]) [illegible] 15 [illegible] 16. [illegible] (बाद कपि [illegible])
—[illegible] तथा [illegible] 1937 के आधार पर।

अपने केवल पीछे के अंगों पर कुछ कदम चल सकते हैं और गिब्बन तो आम तौर से अपने पिछले पैरों पर ही चलते हैं और आगे के अपने लम्बे अंगों का उपयोग अपना सन्तुलन बनाए रखने के लिए करते हैं। निम्न वर्ग के भी एक बन्दर हैं जो अपने पिछले अंगों के सहारे ज़मीन पर चलते हैं। उदाहरण के लिए अमरीकी मकड़ बन्दर है जो अपना सन्तुलन अपनी लम्बी पूँछ को एक प्रश्न चिह्न के रूप में टेककर कायम रखता है।

कोई चार पैरोंवाला प्राणी वृक्षों के जीवन को छोड़कर जब जमीनी जीवन को अपनाता है तो उसके चलने के तरीके में या दिशाओं में से किसी एक में परिवर्तन होना अनिवार्य है। पहली सम्भावना तो यह है कि समतल भूमि पर चारों पैरों से चलने की विभिन्न विधियों का विकास हो जाए। (चित्र 41)। गोरिल्लों बैबूनों तथा लाल बन्दरों (erythrocebus patas schreber) ने विकास के इसी मार्ग को अपनाया था। दूसरी सम्भावना यह है कि जमीन पर वह दो पैरों से चलने लगे—वानर के लिए यह एक बिलकुल नई किस्म की चीज होगी। मनुष्य के पूर्वजों तथा उनके निकटतम सम्बन्धियों ने विकास के इसी दूसरे मार्ग को ग्रहण किया था। सीधे खड़े होकर चलन की राह अपनाने की सम्भावना कितनी है इसका निर्णय जीवित वानरों को देखकर किया जा सकता है।



चित्र 41 बैबून तथा मानवसम (भिन्न भिन्न प्रकार से चलने के समय धड़ की स्थिति में अन्तर तथा शरीर की स्थिति)—ई. ... 1932 के आधार पर।

मानव-सम वानरों खास तौर से गिब्बनों (चित्र 42) द्वारा इस्तेमाल किया जाने वाला चलन का तरीका निम्न वर्ग के बन्दरों के चारों पैरों पर चलन के तरीके से बहुत भिन्न है।

गिब्बनों के आगे के अंग अत्यधिक लम्बे और शक्तिशाली होते हैं पर पीछे के अंग छोटे और कमजोर होते हैं—खासतौर और विशेष हालतों में गिब्बनों के लिए चारों पैरों पर चलना बहुत बेढंगा होगा और चलन के इस तरीके को वे विरले ही कभी अपनाते हैं। इसलिए गिब्बनों के द्विपाद चलन के प्रारम्भ या आज मनुष्य में—जिसकी टाँगें लम्बी तथा मजबूत और भुजाएँ छोटी तथा कमजोर होती हैं—भिन्न है। इसके अतिरिक्त गिब्बन जमीन पर बहुत ही कम चलते हैं और जब वे ऐसा करते हैं तो उनकी चाल भोंडी

सी होती है यद्यपि अपनी दो टाँगों पर ये काफी तेज रफ्तार (चाल) से दौड़ सकते हैं। गिब्बन के जमीन पर न्यूनाधिक सीधी खड़ी पोजीशन (स्थिति) में (यह ठीक है कि ऐसे समय उसका शरीर झुका रहता है) चलने का उदाहरण हमारे लिए इसलिए महत्वपूर्ण है कि स्पष्ट लगता है कि बिना किसी विशेष प्रयत्न के ही एक लम्बे समय तक उसका शरीर दो टाँगों पर खड़ा रह सकता है।

यह विलक्षणता विशेष तौर से पेड़ों के ऊपर शाखाओं से झूलते हुए चलने की अपनी आदत से गिब्बन ने प्राप्त की थी। पेड़ों की शाखों को वह केवल अपने हाथों से पकड़ता है। पेड़ को खड़ी पोजीशन (स्थिति) में रखे हुए, केवल प्रथम भाग के अंगों (fore limbs) की मदद से वह एक शाख से दूसरी शाख पर झूल जाता है। हवा के प्रतिरोध को कम करने के लिए पीछे के अपने अंगों (hind limbs) को एक उड़ती हुई चिड़िया की तरह सिकोड़कर वह बदन से चिपका लेता है।

झूलते हुए शाख से शाख पर जाते समय अर्थात् हाथों की सहायता से शाखों के ऊपर झूलते समय चार हाथवाले अथवा चार पैरवाले प्राणी की जगह गिब्बन एक-दो भुजाओं वाले प्राणी के समान लगता है। गिब्बन का जमीन पर चलने का तरीका भिन्न है दो हाथों वाला (bimanual) मानव-सम गिब्बन जमीन पर चलते समय द्विपदीय (bipedal) हो जाता है। आदमी को केवल इस बात की कल्पना करने की जरूरत है कि पेड़ों पर रहनेवाले (arboreal) मानव-सम महावानरों को जिनके भाग के थे गिब्बन जैसे लम्बे नहीं थे भोजन की तलाश में अथवा किसी और कारणवश जमीन पर आने के लिए मजबूर हो जाना पड़ा था—इसके बाद उसे इस बात का विश्वास हो जाएगा कि खुले प्रदेश की परिस्थितियों में उनके लिए यह कैसे सम्भव और यहाँ तक कि आवश्यक हो गया था कि चलने के अपने तरीके में वे काफी परिवर्तन करें। स्पष्ट लगता है कि स्वयं मनुष्य का आविर्भाव भी काफ़ी हद तक पेड़ों के जीवन से जमीन के जीवन में हुए संक्रमण का परिणाम था।

मान लेना होगा कि मानव तथा महावानरों के सामान्य पूर्वज (common ancestor) का इतना अधिक विभपीकरण नहीं हुआ था जितना कि जीवित मानव-समों का हो गया है। इसी तरह उन जातियों (species) के जो लुप्त हो गई हैं अँगूठे इतने अधिक छोटे नहीं हो गए थे जितने कि चिम्पांजी अथवा ओरंग उटैंग के हो गए हैं।

हम मान ले सकते हैं कि उन मानव-सम वानरों में जो मनुष्य के पूर्वज थे पेड़ों पर रहते समय ही अपने चलन के तरीके में प्रारम्भिक परिवर्तन कर लिया था। सम्भव है कि आज के गोरिल्ला और चिम्पैंजियों की तरह पेड़ों के बीच में चलते समय शाखों को अपने पैरों से इतना अधिक वे न पकड़ते रहे हों इसके बजाय ऊपर की शाखों को हाथों से पकड़कर सन्तुलन बनाए रखते हुए वे घनी शाखों के ऊपर चलते रहे हों।

इस विचार को प्रमुख मानवशास्त्री सर आर्थर कीथ ने (1034) पेश किया था।

इनका मत था कि पेड़ों के अपने जीवन के अंतिम काल में मनुष्य के पूर्वज चलने के लिए ऊपर के अंगों की अपेक्षा अपने नीचे के अंगों का अधिक इस्तेमाल करते थे। जीवित मानव-समों के पूर्वजों के विपरीत जो शाखों को पकड़कर झूलते हुए चलनेवाले प्राणी (brachiating animals) थे हमारे पूर्वजों को सर आर्थर कीथ जाँघों से चलनेवाले (cruriating animals) प्राणी तक कहते हैं। हमारे पूर्वज क्रूरिएटर लोग (cruriators) अपने शरीरों को कमोबेश सीधी और खड़ी पोजीशन (स्थिति) में रखते थे। यह एक ऐसी चीज थी जिसने बाद में ज़मीन पर दो पैरों से चलने में उनकी सहायता की। आगे और चलने का काम अधिकाधिक सीधी पोजीशन में होने लगा। सीधे खड़े होकर चलने (orthograde locomotion) के विकास का लम्बा सिलसिला आधुनिक मानव में आकर ही अधिकतम पूर्णता पर पहुँचा है। परन्तु, मनुष्य की उत्पत्ति वानर की तरह के एक ऐसे पूर्वज से जो बहुत दिन पहले पेड़ों पर रहा करता था हुई थी इस बात के स्पष्ट चिह्न उसके शरीर में आज भी मौजूद हैं। मनुष्य के हाथ में अब भी कुछ ऐसी संरचनात्मक विशेषताएँ मौजूद हैं जो किसी समय वृक्षों पर रहनेवाले उसके पूर्वज के अत्यन्त विकसित परिग्राही (पकड़ने की शक्ति रखनेवाले) अंगों में मिलती थीं। परन्तु सैकड़ों-हज़ारों वर्षों के दौरान में असंख्य पीढ़ियों द्वारा काम के लिए उनका इस्तेमाल किए जाने के कारण मनुष्य के हाथ में परिवर्तन भी काफ़ी हो गया है।



चित्र 42. बाहुओं के सहारे चलता हुआ [illegible] गिब्बन (लम्बी बाँह वाला वानर)। [illegible] चिड़ियाघर में [illegible] 1925। मानव-शास्त्र के [illegible] संग्रहालय से प्राप्त चित्र।

जीवित मानव-समों में हम देखते हैं कि जब वे केवल पीछे के अंगों पर चलते हैं तो

उसकी चाल बहुत अस्थिर होती है। गिब्बन सबसे अच्छी तरह चलता है परन्तु वह अपने संतुलन को अपनी भुजाओं की सहायता से बनाये रखता है। संतुलन बनाये रखने के लिए अपनी भुजाओं को वह अपने कन्धों के सामने फैला लेता है, अथवा जरूरत पड़ने पर उन्हें अपने सिर तक पर रख लेता है। मुख्य सहारा उसका पैर होता है। चिम्पजी के पैर की ही तरह जमीन से उसके पैर के सम्पर्क के भी तीन स्थान है (1) एड़ी (heel) (2) पैर का अँगूठा जो इस मानव-सभो मे अत्यधिक विकसित तथा बाहर की तरफ निकला हुआ रहता है तथा (3) पैर की बाकी चार अँगुलियाँ जो एक साथ रहती है।

पैर की रचना की इन विशिष्टताओं की वजह से खासतौर से उसके उच्च रूप से विकसित अँगूठे की वजह से ओरंग-उटैन अथवा गोरिल्ला की अपेक्षा गिब्बन और चिम्पेंजी कहीं अधिक अच्छी तरह से दो पैरों पर खड़ा हो सकता है।

स्मरण होगा कि मनुष्य के पैर में जमीन के साथ सम्पर्क का मुख्य स्थान अँगूठा है है जो विकास के क्रम में न केवल लगातार उन्नत होता गया है बल्कि दूसरी अँगुली से भी घनिष्ठ रूप से जुड़ गया है। गोरिल्ला के पैर का अँगूठा इस तरह नहीं विकसित हुआ है। इस वानर का शरीर भारी होता है और जब वह खड़ा होता है या दो पैरों पर चलता है तो वह बहुत अस्थिर (unstable) होता है और इसलिए ऐसा वह विरले ही कभी करता है। गोरिल्ला और चिम्पजी के खड़े होने का अपना विशेष ढग अर्ध-सीधा (semi-erect) है। वह लगभग अपने चारों अंगों पर खड़ा होता है। हाथों की उसकी अगुलियाँ मुड़ी रहती है और खड़े होते समय अपना भार, आमतौर से वह अपनी (medial) बीच की (अभिमध्य) अथवा (terminal) अन्त की (अन्त्य) अगुलास्थियों (phalanges) पर रखता है।

ओरंग उटैन मुख्य रूप से पेड़ों पर ही जीवन बिताता है इसलिए उसके पैर का अँगूठा छोटे-से पतले-से माम की ओर निकले हुए एक अंग से अधिक कुछ नहीं होता। आमतौर से उसके अँगूठे में कोई नाखून भी नहीं होता। ओरग-उटैन के पैर की दूसरी अँगुलियाँ बहुत लम्बी होती हैं और मिलकर एक कटि (hook) की तरह काम करती है। चूँकि वे सदा कुछ-न-कुछ मुड़ी रहती हैं इसलिए पैर के तलुए के साथ एक ही तल पर उन्हें सीधा करके रखना एक तरह से असम्भव होता है। छोटी अवस्था के प्राणियों में यह चीज आसानी से की जा सकती है। उन इने-गिने मौकों पर जब वह (ओरंग उटैन) दो पैरों पर चलता है, तब अपने भार को आमतौर से वह पैर के बाहरी सिरों पर डाल रहता है। ऐसे समय उसके पैर की अँगुलियाँ अन्दर की तरफ मुड़ी रहती हैं और दूसरी से लेकर पाँचवी तक सब-की-सब एक क्षतिज पार्श्वासन (horizontal position) में परन्तु छल्लों (rings) की तरह कमोबेश मुड़-मुड़ रहती है।

मास्को के चिड़ियाघर (Moscow Zoological Gardens) का युवा नर ओरंग उटैन मोरिट्ज (moritz) दो पैरों पर चलता था। ऐसा करते समय अपने सारे बोझ को वह पैर के पूरे तलवे तथा उसकी मुड़ी हुई अँगुलियों पर डालता था। परन्तु, सम्भव है

कि चलने के इस तरीके का अभ्यस्त अपने को उसने अपने वन्य जीवन के काम में बना लिया हो। मास्को चिड़ियाघर में 'फ्रीमा' नाम की एक मादा ओरंग-उटैन भी अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में कभी कभी वह पैर के पिण्ड (ball) के तथा उसकी अँगुलियों के ऊपर की तरफ उठे रूप के बल चलती थी परन्तु बाद में पाँच और छः वर्ष की अवस्था के दरम्यान वह तलुओं के बाहरी किनारों तथा क्षैतिज रूप से मुड़ी हुई अँगुलियों के बल पर चलने लगी थी। युवा मादा चिम्पैंजी 'मिमोसा' अपने कुछ भार को पैर के बाहरी किनारे पर डालकर चलती थी परन्तु अधिकांशतया वह अपना भार तलुवे, पैर के अँगूठे तथा वक्र रूप से मुड़ी हुई अँगुलियों से बननेवाले त्रिकोण के ऊपर डालकर चलती थी।

ओरंग-उटैन की चाल बैसाखियों पर चलनेवाले आदमी जैसी होती है क्योंकि उसकी टाँगें छोटी होती हैं और वह दूर-दूर फैली हुई अपनी भुजाओं के बीच जो उसे ज़मीन पर सहारा दिये रहती हैं, झटके में उन्हें आगे की ओर फेंकता हुआ चलता है। वानरों की चाल बहुत भिन्न होती है। दो पैरों पर खड़े होकर वे उछल सकते हैं, वहीं पैर पटकते (mark time) रह सकते हैं। एक ही स्थान पर 'नाचते' या 'फिरकियाँ करते' (twist) रह सकते हैं। चार पैरों से दो पैरों पर चलने का संक्रमण उनके बीच भिन्न-भिन्न मात्राओं में मिलता है परन्तु सीधा खड़ा होना चार पैरोंवाले बन्दरों की अपेक्षा उनके लिए अधिक आसान है।

जीवित मानव-सम वानर अवश्य ही मनोरंजक प्राणी हैं। पेड़ों और ज़मीन पर चलने के उनके तरीकों के अध्ययन से कुछ हद तक उस काल का अनुमान हम कर सकते हैं जिसमें चार पैरोंवाली अपनी चाल को छोड़कर हमारे पूर्वजों ने सीधे चलने की पद्धति अपनानी शुरू की होगी। जीवित मानव-समों के पूर्वजों का विकास मानव के पूर्वजों के विकास से भिन्न था क्योंकि वे दूसरे ही परिवेश में रहते थे। जंगलवाले प्रदेशों में ही रहते रहे थे और पेड़ों पर चलने के तरीकों में उन्होंने दक्षता प्राप्त की थी। वक्ष के (pectoral = छाती के) उनके अंग खासतौर से गिब्बनों और ओरंग-उटैनों के ये अंग लम्बे हो गए, परन्तु चिम्पैंजियों और गोरिल्लों में जिनके पूर्वज ज़मीन पर बाद में उतरे थे यह चीज़ तुलनात्मक रूप में कम मात्रा में हुई। इसके विपरीत महावानरों (great apes) के श्रोणि सम्बन्धी अंग (pelvic limbs) सापेक्ष और निरपेक्ष दोनों दृष्टियों से छोटे हो गए।

जिस समय चिम्पैंजी के पूर्वज आंशिक रूप में और गोरिल्लों के पूर्वज लगभग पूर्ण रूप में स्थलचर प्राणी बने उस समय तक उनका और अधिक विशेषीकरण हो चुका था और उस सीधी चाल-चलन का अपना सकना जो मनुष्य के पूर्वजों की अपनी खास विशेषता थी उनके लिए अब असम्भव हो गया था। परन्तु पेड़ों पर जीवित मानव-समों की प्रगति तो अति धीमी थी। इसके दौरान पेड़ों पर चलना व चढ़ना नहीं थे जितना कि उनकी ऊपर की शाखाओं को हाथों से पकड़कर पेड़ के तनों पर व चलने

थ। उनकी यह स्थिति मनुष्य और महावानरों के सामान्य पूर्वजों (common ancestors) के विकास की उस प्रारम्भिक अवस्था की याद हमें दिलाती है जिसमें वह पेड़ों पर बसा करते (arboreal locomotion) थे (प्रमियारस्की 1953)।

दो पैरों से चलने की आदत का विकास न्यूनाधिक मात्रा में मुक्ति की उस मात्रा से जुड़ा हुआ है जो हाथ के अगों को चलने में सहारा और सहायता देने के कार्यों से मिलती गई थी। हमारे पूर्वज सम प्रदेशों के जीवन के अनुकूल अपने को ज्यों-ज्यों बनाते गए और ज्यों-ज्यों वे प्राकृतिक वस्तुओं का औजारों अथवा अस्त्रों के रूप में उपयोग करने के अभ्यस्त बनते गए त्यों-त्यों उनकी सीधी चाल भी अधिकाधिक पक्की होती गई।

सीधे खड़े होकर (erect position) चलने की तरफ होनेवाले संक्रमण के प्रारम्भिक काल में शरीर द्वारा क्रमावेश खड़ी स्थिति को अपना लेने का काम उन नई परिस्थितियों के प्रभाव के अन्तर्गत प्राकृतिक वरण की प्रक्रिया के द्वारा बहुत तेजी से हुआ होगा जिनमें कि जीवन-संघर्ष विशेषतया जमीन पर घूमनेवाले विभिन्न शिकारी पशुओं के विरुद्ध अन्तर्जातीय (inter species) संघर्ष बहुत भीषण था।

सैद्धान्तिक रूप से जमीन के प्रचलन (terrestrial locomotion) का और आगे विकास हमारे पूर्वजों को दो ही रास्तों पर ले जा सकता था—या तो वह उन्हें पहले की अर्ध-खड़ी पोजीशन (दशा) में वापस ले जा सकता था जिसमें उनके हाथों की मुड़ी हुई अँगुलियाँ जमीन पर चलते समय सहारे का काम देतीं। ऐसा होता तो मानवीकरण (humanization) की ओर उनका मार्ग अवरुद्ध हो जाता। या फिर दूसरा रास्ता यह था कि खड़े होकर चलने की क्रिया में वे अत्यधिक पूर्णता प्राप्त कर लेते। इससे उनके मानवीकरण तथा आगे की प्रगति का मार्ग उन्मुक्त हो जाता।

हमारे पूर्वजों का विकास बादवाले तरीके से ही हुआ। विकास की किसी मंजिल में क्रान्तिक सीमा (critical boundary) को उन्होंने सम्भवतः अधिक तेज गति से पार कर लिया था। उसके बाद खड़ी पोजीशन में चलने की आदत का विकास और अधिक नियमित रूप से होने लगा था परन्तु इस विकास की गति अब भी काफी तीव्र थी। जीवाश्म वानरों की दूसरी कम विकसित जातियाँ जिन्होंने भिन्न प्राकृतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत सीधे चलने का अभ्यास किया था मालूम होता है कि उस क्रान्तिक सीमा को कभी पार न कर सकी थीं। उनमें से कुछ लुप्त हो गई, और दूसरी अर्ध-स्थलीय जीवन-पद्धतिवाले चिम्पैंजी अथवा पूर्ण रूप से स्थलीय जीवन-पद्धतिवाले गोरिल्ला जैसे प्राणियों की पूर्वज बन गई।

3 शरीर का भार (Weight) तथा मनुष्य और वानरों का गुरुत्व केन्द्र (Centre of Gravity).

सीधी खड़ी चाल की ओर हमारे पूर्वजों के संक्रमण में कठिनाई सम्भवतः इस बात से पैदा हो गई थी कि उनका सम्बन्ध बड़े और भारी क़िस्म के मानव-सम वानरों के

क्रम से था। आधुनिक मानव सबसे भारी प्राइमेटों के क्रम में आता है। उसका औसत भार (वजन) 60 और 75 किलोग्राम के बीच होता है। नरों का भार प्रायः 90 से 100 किलोग्राम तक और कभी-कभी इससे भी अधिक होता है (इनमें जो सबसे भारी होते हैं उनका भार 350-400 किलोग्राम तक या इससे भी अधिक होता है)। गोरिल्ला औसतन मनुष्य से कहीं अधिक भारी होता है। नर गोरिल्ला का भार 100 से 150 किलोग्राम तक और कुछ का इससे भी अधिक (200 से 300 किलोग्राम तक) होता है। बर्लिन के चिड़ियाघर (Berlin Zoological Gardens) में रहनेवाले छोटे पहाड़ी गोरिल्ले बॉबी (Bobby) (चित्र 43 क और 43 ख) का भार $10\frac{1}{2}$ वर्ष की अवस्था में 262.3 किलोग्राम था। गिब्बनों की तुलना मनुष्य के साथ नहीं की जा सकती क्योंकि उनका भार 5 से 18 किलोग्राम तक होता है अर्थात उनका भार वही होता है जो मनुष्य के 6 से 12 महीने तक के बच्चे का होता है। गिब्बन की मादा भार में अपने नर से बहुत कम भिन्न होती है।



चित्र 43 (क)—बाल पहाड़ी गोरिल्ला नर (गोरिल्ला गोरिल्ला [illegible]) बॉबी अवस्था 10 वर्ष। [illegible] 1937 [illegible]



चित्र 43 (ख)—बाल [illegible] बॉबी [illegible] 10 [illegible] 1937 [illegible]

गोरिल्ला और ओरंग उटैन की तुलना में गिब्बन तथा चिम्पैंजी के दोनों लिंगों के भार में बहुत थोड़ा अन्तर होता है। गोरिल्ला और ओरंग उटान की मादाओं का भार अपने नरों की तुलना में 3 : 5 से 2 : 3 तक होता है। ल्यान (Lyon) के अनुसार

(1011) बोनियो के चार नर ओरंग-उटैनों का वजन 175 180, 200 और 260 किलोग्राम तथा चार मादाओं का वजन क्रमश 72 82 88 और 100 किलोग्राम था।

मनुष्यों में दोनों लिंगों के बीच वजन का अन्तर औसतन 5 से 10 किलोग्राम होता है। उदाहरण के लिए, यूरोपीय औरतों का औसत वजन 30 किलोग्राम होता है (व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग औरतों का वजन अधिकांशतया 38 और 76 किलोग्राम के बीच होता है) और यूरोपीय मर्दों का औसत वजन 64 किलोग्राम होता है (व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग मर्दों का वजन 42 और 84 किलोग्राम के बीच होता है)।

मानव-शरीर के वजन का महत्व चारों अंगों पर चलनेवाले स्तनधारियों की अपेक्षा भिन्न होता है क्योंकि वह चार अंगों के बजाय केवल 2 अंगों पर टिका रहता है। इसलिए, मनुष्य की टाँगों के ऊपर सापेक्ष रूप से चौपायों की तुलना में दोहरा भार पड़ता है। महावानर जब दो पैरों पर खड़े होते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि उस पोजीशन (दशा) में खड़ा रहना या चलना उनके लिए कितना मुश्किल होता है। समतल भूमि पर दो पैरों से अधिक चलने के वे बिलकुल अनभ्यस्त हैं। इस तरह की पोजीशन (दशा) में मनुष्य की अपेक्षा वानरों का गुरुत्व केन्द्र कहीं अधिक ऊँचाई पर तथा धाम की ओर होता है। यह चीज खासतौर से ओरंग-उटैन और गोरिल्ला में उनके शक्तिशाली धड़ (trunk) पेशी-युक्त भुजाओं (muscular arms) भारी भरकम हनुओं (jaws) के साथ बड़े से सिर तथा चर्बी भरे ऊतक (tissue) की एक मोटी-सी तह से ढके विशाल काम पेट की वजह से होती है।

वानर के गुरुत्व केन्द्र में यदि एक साहुल-सूत्र (plumb-line) गिराया जाए तो वह पैरों के सामने की जगह पर गिरेगा। इससे जाहिर होता है कि इस प्राणी का सन्तुलन ठीक नहीं है। टाँगें और धड़ की पेशियाँ शरीर को सीधी खड़ी पोजीशन में स्थिर नहीं रख पाती और वानर अपने हाथों को जमीन पर रख लेता है तथा ठेठ अपनी अर्ध चौपायों वाली पोजीशन में खड़ा हो जाता है। पड़ों में परिस्थिति भिन्न होती है—वहाँ पर वानर पेड़ की अधिक ऊँची शाखाओं को हाथ से पकड़कर सीधी पोजीशन (दशा) में बहुत समय तक बना रह सकता है।

सर्वप्रथम और सर्वाधिक अन्तर वानरों से मनुष्य का इस बात में होता है कि इसे समतल जमीन पर सीधे खड़े होकर चलने की आदत होती है। मानव शरीर लम्बे काल तक खड़े रहने तथा दो टाँगों पर चलने और दौड़ने के काम के अनुकूल बन गया है। अब चारों अंगों पर चलने में मनुष्य पहले जैसा निपुण नहीं रह गया।

जार्जेस कूवियर (1798) ने लिखा था कि मनुष्य चारों अंगों पर इसलिए नहीं चल सकता कि ऐसा करने में उसकी आँखें नीचे की तरफ देखती रहेंगी। उसकी गर्दन की मांस-पेशियाँ इतनी मजबूत नहीं हैं कि उसके सिर को उपयुक्त पोजीशन में बनाए रखें। चारों अंगों पर चलने की स्थिति में भुजाओं की तुलना में उसके शरीर के भाग अत्यधिक ऊँचे उठ जायेंगे और उसके पैर इतने छोटे हैं कि उनका इस्तेमाल जानवरों की तरह वह

नहीं कर सकता। जानवर सहारे के लिए पैर की अंगुलियों का उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्य का सीना बहुत चौड़ा है जिसकी वजह से उसकी भुजाओं की उन्मुक्त गति में रुकावट पड़ेगी। न बन्दर की तरह आसानी से पेड़ पर ही वह चढ़ सकता है क्योंकि उसके पैर का अंगूठा पैर की दूसरी अंगुलियों से अलग नहीं है। बिल्ली की तरह सरलता से भी वह ऊपर नहीं चढ़ सकता क्योंकि उसके नाखून (nails) बहुत कमजोर हैं।

मनुष्य का पैर अपेक्षाकृत एक छोटा क्षेत्र घेरता है। उसका गुरुत्व केन्द्र आमतौर से काफी ऊँचाई पर दूसरे या तीसरे त्रिक कशेरुक (sacral vertebra) की ऊँचाई पर स्थित होता है। उसका शरीर सीधी पोजीशन में होता है इसलिए यदि उसके गुरुत्व केन्द्र से एक साहुल सूत्र (plumb-line) गिराया जाए तो वह एक ऐसे बिन्दु से होकर गिरता है जो कक्ष-उरु (coxofemoral) की दोनों सन्धियों (articulations) को संयुक्त करनेवाली रेखा के 5 सेन्टीमीटर पीछे है और अभिमध्य गुल्फिका (medial malleoli) के 3 सेन्टीमीटर सामने है। अन्त में वह पैरों से घिरे क्षेत्र के अन्दर की जमीन पर जाकर टिक जाता है (वी० पी० योगेश्वेव 1052 एम० एफ० इवानित्स्की 1060)।

खड़ी पोजीशन में मनुष्य महाकपियों की अपेक्षा अतुलनीय रूप से कहीं अधिक स्थिर होता है। परन्तु छोटा बच्चा शुरू-शुरू में बहुत ही अनिश्चित ढंग से खड़ा होता और चलता है। इसका कारण यह है कि उसकी मांस-पेशियां बहुत कम विकसित रहती हैं और उनकी गतिविधियों में समन्वय (co-ordination) का अभाव होता है। उसमें अस्थिरता रहती है। यही कारण है कि छोटे बच्चे बार-बार गिर पड़ते हैं। पेट के बल खिसकने की अवस्था से चलने की अवस्था तक के संक्रमण की क्रिया स्वयं स्पष्ट कर देती है कि यह क्रिया कितनी लम्बी और कितनी कठिन है।

चलना सीखनेवाले बच्चे का श्रोणि प्रदेश (pelvis) अभी तक उस स्थिति में नहीं होता जो खड़े होकर चलने की उन्नत अवस्था के लिए आवश्यक होती है। वह लगभग मेरुदण्ड (vertebral column) की ही रेखा में होता है और बाद में इस स्थिति से वह घूम जाता है जिसमें कि उसका नीचे का भाग आगे की ओर निकल आता है। अधिक वयस्क व्यक्ति में आमतौर से वह क्षैतिज तल से 50°-60° का कोण (और महिला में 30° 40° का कोण) बनाता है। शिशु का कुडौल रूप में अत्यन्त बड़ा तथा अपेक्षाकृत भारी सिर उसकी अस्थिरता को और बढ़ा देता है। उसकी गर्दन की पेशियां तुलनात्मक रूप से अब भी कमजोर होती हैं और उसके गुरुत्व का केन्द्र वयस्क व्यक्ति की अपेक्षा अधिक ऊँचाई पर होता है जिससे कि बच्चे का सन्तुलन और भी अधिक बिगड़ जाता है।

पेट पर खिसकने की अवस्था से खड़े होकर चलने की अवस्था में हुआ शिशु का संक्रमण मानव पूर्वजों के विकास के उस महत्वपूर्ण क्रम को याद दिलाता है जिसमें सीधे खड़े होकर चलने का सर्वप्रथम श्रीगणेश हुआ था। चारों हाथ-पैर चलनेवाला बच्चा मनुष्य के अधिक दूर के पूर्वजों की चार पैरोंवाले कशेरुकदंडियों (quadruped vertebrates) की याद दिलाता है। एलमहर्स्ट (1032) ने कई जो बच्चों को

मकर पट के बस विमकन से सम्बन्धित उसकी विशेषताओं की खासतौर से जोच-पड़ताल की थी। उसका ख्याल है कि मनुष्य शिशुओं के चलने का यह खास तरीका उस अन्तर्जात प्रवृत्ति (instinct) का प्रकाशन है जो अपने प्राक् मानवी पूर्वजों (pre human ancestors) से विरासत के रूप में उसने पाई है। चलने के इस तरह के तरीके का विकास स्तनधारियों के और भी अधिक पहले के स्वरूपों में अथवा मध्य-जीव कल्प (Mesozoic era) के उरगों (reptiles) तक में हो चुका था।

हमारे पूर्वजों ने सीधे खड़े होकर चलने में जब एक मात्रा तक क्षमता प्राप्त कर ली थी तथा मुक्त हो गए अपने हाथों की सहायता से प्राकृतिक वस्तुओं का वे औजारों और अस्त्रों के रूप में उपयोग करने लग गए थे तब फिर इस नये प्रकार की क्रियाशीलता का विकास उस वक्त तक असम्भव ही बना रहता जिस वक्त तक कि दो पैरों से चलने की आदत में और भी अधिक पूर्णता न प्राप्त कर ली जाती। उनके पैर अब भी अत्यधिक चौरस (flat) थे और उनकी रीढ़ की हड्डियाँ अब भी पर्याप्त मात्रा में बक नहीं हुई थीं इसलिए उनके हाथ में किसी भारी गदा या पत्थर के होने से उनकी अस्थिरता और अधिक बढ़ जाती। जो व्यक्ति अपने पैरों पर अधिक दृढ़ता से खड़े रह सकते थे और अपने औजारों के इस्तेमाल में अधिक दक्ष थे जीवन-संघर्ष में वे ही अधिक सफल हो सकते थे। फिर, ऐसे ही व्यक्ति अधिक स्थिर शारीरिक रचना को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे प्रेषित करते गए होंगे।

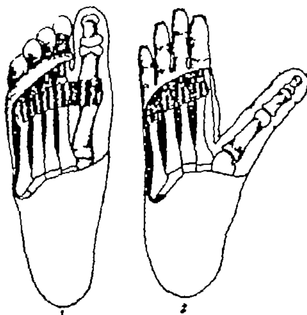
4 अधः शाखाएं (Inferior extremities)

मानव-प्रजनन (anthropogenesis) के क्रम में वानर की पीछे की शाखाएँ (hind limbs) मनुष्य की टाँगों में बदल गई थीं। मुख्यतया पदिका के स्वरूप तथा उसके विकास की मात्रा में और सीधी हो गई जानु-सन्धि (knee joint) की बनावट (structue) में ये परिवर्तन हुए थे। पैर की बनावट (structure) भी बदल गई अनुदैर्ध्य चाप (longitudinal arch) पैदा हो गई खड़े होने और चलने में मुख्य सहारा देने का काम पैर के बाहरी किनारे (edge) के स्थान पर उसका अन्दर की तरफ का किनारा करने लगा और पैर के अँगूठे का आकार बढ़ गया तथा दूसरी अँगुलियों के वह और नजदीक पहुँच गया।

एक लचीली (flexible) अनुदैर्ध्य चाप मनुष्य के पैर की सबसे खास विशेषता है। मानव-वानरों (होमीनिडों) में उसका विकास पैर के अस्थि पिंजर (कंकाल) के पुनर्गठन के द्वारा हुआ था। साथ ही साथ उसकी पेशियों और स्नायुओं (ligaments) में भी परिवर्तन हुए थे। टाँग की पिंडिका की (sural) चतुर्मुखी (quadriheaded) तथा नितम्ब-देशीय (gluteal) पेशियाँ निरन्तर विकसित होती गई और कालान्तर में उन्होंने मनुष्य की पेशियों का खास रूप ले लिया। पुरानी शाखाओं (limbs) में हुए इन्हीं परिवर्तनों ने उन्हें मनुष्य की प्रतिसामी टाँगों में बदल दिया था। इसीलिए वाद वे इस योग्य बनी थीं कि हमारे पूर्वजों के अधिकाधिक सीधे होते जाते शरीरों को खड़े होते

समय चलते समय और दौड़ते समय थामे (सहारा दिये) रह सकें।

विलियम ग्रेगरी (1934) का मत है कि चिम्पैंजी या गोरिल्ला के पैरों जैसी बनावट वाला एक पैर भी सीधे चलने के प्रभाव के अन्तर्गत काफ़ी लम्बे काल में एक मानवी पैर



चित्र 44 वन्य वानर के प्रकारों के पैर 1 मनुष्य 2 चिम्पैंजी। तारतम्य या अनुपात अर्थात् मनुष्य के पैर की पांचों अंगुलियों को और चिम्पैंजी के पैर का चार अंगुलियों को जोड़कर दिखाते। ग्रेगरी, 1929 के आधार पर।

के रूप में विकसित हो जा सकता था। दूसरे विद्वान जैसे कि जो. मिलर (1923) और पी० बी० बुनाक (1931) इस कथन पर आपत्ति करते हैं। वे कहते हैं कि जन्म पूर्व (pre-natal) के विकास-काल में मानव गर्भ (foetus) के पैर का अंगूठा—जैसाकि लेबूक (Leboucq s) की खोज-पड़ताल ने स्पष्ट कर दिया है पैर की अन्य अंगुलियों के मुकाबले में होने का कोई लक्षण नहीं प्रकट करता और इसलिए मनुष्य का पैर वानरों के पैर की बनावट से नहीं बल्कि किसी और से पैदा हुआ होगा।

मनुष्य द्विपदीय (biped) प्राणी कैसे बना इसकी व्याख्या के सम्बन्ध में मानवी पैर की बनावट पर विचार करना एक सबसे महत्वपूर्ण और साथ ही साथ एक दिलचस्प कठिन चीज है। औज़ारों का उपयोग करने के लिए हाथों का मुक्त होना इसी महत्वपूर्ण

जीवशास्त्रीय स्थिति (biological condition) पर घनिष्ठ रूप से निर्भर करता था कि उसके चलने वाले अवयवों पर का विकास हो जाए। और यह चीज हुई भी हमारे पूर्वजों के नूतनयुग परिवारी वर्गों (शाखाओं) के प्रारम्भिक मानव-जातियों (early hominids) के माथे के प्रायस्थित (fulcral) प्रथा में परिवर्तित हो जाने के साथ-साथ।

दो पैरों पर चलने की आदत के बनने में केवल उन प्रारम्भिक परिस्थितियों ने नहीं मदद की थी जो मनुष्य के पूर्वजों के वृक्षों के जीवन के (cruriation) काल में उनके अधिक सीधे खड़े होने के कारण उत्पन्न हुई थी। मुख्यतया यह आदत परिवर्तन की नई प्राकृतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत पनपनेवाले भयंकर जीवन-संघर्ष के कारण बनी थी।

घास के विशाल मैदानों (savannahs) में और बाद में खुले मैदानों में प्राचीन मानव को मांस भक्षी जानवरों से बचने के लिए हमेशा चौकन्ना रहना पड़ता था तथा भागना और छिपना पड़ता था। अधिक विस्तीर्ण क्षेत्र को देख सकने के लिए अपने को उसे अपनी अधःशाखाओं पर (पीछे के अंगों पर) ऊँचा खड़ा करना पड़ता था। प्रारम्भिक मनुष्य खतरे के क्षणों में अपने दुश्मनों से अपने का समय रहते हो घासों के झुरमुट में छिपा से सकते थे या पेड़ों पर चढ़ जा सकते थे अथवा दूसरे लोगों से मिलकर अन्य पशुओं को मार भगाने के लिए अपने अस्त्रों का इस्तेमाल कर सकते थे।

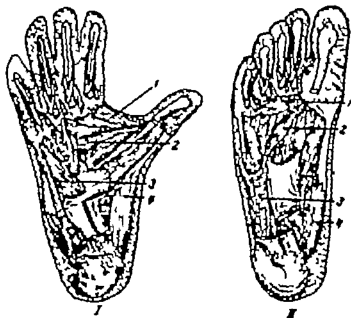
स्पष्ट है कि इन परिस्थितियों के अन्तर्गत हमारे पूर्वजों के केवल वही लोग जीवित रह सकते थे जिन्होंने क्रमागत खुले मैदानों की परिस्थितियों में जमीन के जीवन के लिए अपने को सबसे अधिक अनुकूल बना लिया था।

जिस समय हमारे पूर्वजों ने वृक्षों के जीवन की जगह स्थलीय जीवन को अपनाया था उस समय ऐसी ही हालत रही होगी। अपनी सहज प्रवृत्ति के अनुसार वे छोटे जंगलों, कुंजों तथा वृक्षों के समूहों के ही समीप बने रहते थे। भोजन की खोज में नीचे पेड़ों और झाड़ियों में फलों को तोड़ने के प्रयत्न में भी सीधी खड़ी पाजीशन (दशा) का सम्भवतः विकास हुआ था। लकुटियों और पत्थरों की सहायता से पशुओं का शिकार करने की वजह से भी सीधी खड़ी पाजीशन के विकास में सहायता मिली होगी।

सीधे खड़े होकर चलने की ओर संक्रमण की क्रिया में हमारे पूर्वजों के काफी भारी वजन का भी अत्यधिक महत्त्व रहा होगा। अगर हम मान लें कि विकास के उस काल में उनका वजन 40 और 60 किलोग्राम के बीच था तो सीधे खड़े होने की वजह से *उनकी प्रत्येक ऊर्ध्व शाखा (ऊपर का अंग) 10 से 15 किलोग्राम तक के भार से मुक्त हो गई थी* और प्रत्येक अधःशाखा (lower extremities) के ऊपर पड़नेवाला भार दुगुना यानी 20 से 30 किलोग्राम तक का हो गया था। स्वाभाविक है कि वजन के इस प्रकार पुनः वितरण के परिणामस्वरूप न केवल उनकी शारीरिक संरचना (physical structure) में गम्भीर परिवर्तन हो गए होंगे बल्कि उसने स्वयं भी इस प्रकार के परिवर्तनों को जन्म दिया होगा। इस प्रकार से पैदा हुई शरीर-रचना-सम्बन्धी विशिष्टताओं (anatomical peculiarities) के कारण नीचे के अंगों (अधःशाखाओं) में ऊपर के

अंगों (ऊर्ध्व शाखाओं) की अपेक्षा कहीं अधिक पुन निर्माण (reconstruction) का कार्य हुआ था।

आधुनिक मनुष्य के पैर की बनावट वानरों के परिग्राही (prehensile) पैर की बनावट से बहुत भिन्न है। वानरों के पैरों के अंगूठे उनके पैरों की दूसरी अंगुलियों के मुकाबले में आसानी से मोड़कर रखे जा सकते हैं (are readily opposable)। मानवी पैर के अंगूठे को उसके पैर की दूसरी अंगुलियों के मुकाबले में अब नहीं रखा जा सकता कमोबेश मात्रा में वह उनके समानान्तर ही होता है। मानवी पैर का अंगूठा उसके पैर की अन्य अंगुलियों के साथ एक मजबूत आड़े स्नायु (ligamentum metatarsale transversum) से जुड़ा रहता है और इस प्रकार चिम्पैंजी के पैर से (चित्र 45) अत्यधिक भिन्न होता है। चिम्पैंजी के पैर में आड़ा स्नायु पैर की केवल चार अंगुलियों को (दूसरी से पाँचवीं तक की अंगुलियों को) जोड़ता है। परन्तु, हेनरी रैबेन (1936) ने जो शोध कार्य किया है वह दिखलाता है कि चिम्पैंजी के पैर की पहली और दूसरी अंगुलियों के



चित्र 45 चिम्पैंजी I तथा मनुष्य II के पादतल की पेशियाँ। 1 और 2 — [illegible] पादतल पेशियों के [illegible] 3 और 4 पैर की छोटी अंगुली [illegible] पादतल पेशियाँ। एच० रैबेन ([illegible] 1937) [illegible]।

बीच की लचीली पट्टी (प्रत्यास्थता प्रावरणी=elastic fascia) उसी जाति की होती है जिस जाति का मनुष्य के पैर के आड़े स्नायु (transverse ligament) का नहीं भाग होता है। पट्टी (प्रावरणी) मोटी और मजबूत होती है।

मनुष्य का पैर वानर के पैर से विकसित हुआ था इसका दूसरा विश्वासोत्पादक प्रमाण पैर के अंगूठे की अभिवर्तिनी पेशी (abductor muscle) में तिरछे मुण्ड (oblique head) की उपस्थिति है। (यह चौपाए प्राणियों का खास विशेषता है दूसरे स्तनधारियों में यह नहीं मिलती।) पेशी का यह भाग वानरों की अपेक्षा मनुष्य में कम विकसित होता है (चित्र 4) व्यक्ति-व्यक्ति में उसका रूप बहुत भिन्न होता है किसी हद तक यह बीज जैसी अवस्था में होता है और पूर्णतया अनुपस्थित भी हो सकता है।

अभिमध्य पुण्ठाभिका अस्थि (medial cuneiform bone) के साथ का प्रथम पादशलाका (metatarsal) के कुछ-कुछ चपटे हो गए जोड़ (articular facet= संधायक पृष्ठक) के परिणामस्वरूप मनुष्य के पैर का अंगूठा दूसरी अंगुलियों के बाजू में (laterally) बहुत कम घूम सकता है वानर के पैर के अंगूठे की तरह जिसके कि इस स्थान पर एक भारी गाँठ (saddle joint) होती है दूसरी अंगुलियों के मुकाबले में मोड़कर उसे नहीं रखा जा सकता।

इसके विपरीत मनुष्य के हाथ अंगूठे को मोड़कर दूसरी अंगुलियों के मुकाबले में आसानी से रखा जा सकता है। मनुष्य के हाथ की बनावट, खास तौर से वानर के हाथ की बनावट के ही सदृश है। परन्तु उसके काम करने की क्षमता के कारण तथा उस काम को पूरा करने के सिलसिले में उसके द्वारा विभिन्न औजारों का उपयोग किए जाने के कारण मनुष्य के हाथ में अनेक उल्लेखनीय परिवर्तन हो गए हैं।

मनुष्य के ऊपर के अंगान्त (ऊर्ध्व शाखाएँ) जब चलन तथा सहारा देने के कार्यों से वानर के ऊर्ध्व अंगान्तों की अपेक्षा अधिक मुक्त हो गए तब अंस मेखला (pectoral girdle) की पेशियाँ कण्डराओं (tendons) तथा अस्थियों में युक्त हो जानेवाले ऊपर के अंगान्तों (ऊर्ध्व शाखाओं) में तथा हाथों में हुए परिवर्तनों के कारण वे कई घुमावदार (घूर्णनात्मक) गतियाँ (rotational movements) करने में भी समर्थ हो गए। परन्तु इसके विपरीत नीचे के अंगान्तों (अधःशाखाओं) पर शरीर का सारा भार आ पड़ा और वहन के उनके कुछ काम कम हो गए। उदाहरण के लिए, उनका इस्तेमाल अब पकड़ने (grasping) या खोंचने-खुजलाने (scratching) के काम के लिए नहीं किया जा सकता था उनकी जाँघों (sural) तथा नितम्बों (gluteal) की पेशियाँ अधिक मजबूत हो गईं और उनकी ऊर्विका (femur) तथा अन्तर्जंघिका (tibia) अधिक भारी-भरकम हो गईं।

मनुष्य और वानर के बीच के अधःअंगान्तों (अधःशाखाओं) के वाहिका तन्त्र (vascular system) में भी एक अन्तर है। मनुष्य के बड़ी अधिचर्म धमनी (saphenous

artery) नहीं होती जैसीकि वानरों के होती है परन्तु उन्हीं के समान, एक सफिन शिरा (saphenous vein) उसके होती है—यह उसकी टाँग की सबसे बड़ी शिरा होती है। मनुष्य में बड़ी सफिन धमनी के एकदम अनुपस्थित होने का सम्बन्ध उसकी सीधी खड़ी पोज़ीशन से है [विपर्यय (atavism) के रूप में विरल ही कभी यह मनुष्य में मिलती है]।

शरीर का सीधा रहना जैसे जैसे एक स्थायी विशेषता बनती गई वैसे-ही-वैसे नीचे के अंगों (पश्च शाखाओं) के कुछ कार्य खतम होते गए और उन्होंने कुछ दूसरे कार्य शुरू कर दिए। उनका मुख्य कार्य अब यह है कि खड़े होने या गति करने पर तथा चलते समय भी शरीर को वे सहारा दें। शरीर को सीधा खड़ा रखने तथा उसकी स्थिरता को एक लम्बे समय तक कायम रखने की क्षमता सैकड़ों-हज़ारों वर्षों के काल में पैदा हुई थी। उनके पैरों तथा कंकाल के दूसरे भागों की अस्थियों को देखने से मालूम होता है कि सापेक्ष रूप में काफी हाल तक सिनैंथ्रोपस बहुत झुके रूप में चलते थे उनके शरीर पूरे तौर से सीधे नहीं थे उनकी रीढ़ की वक्रताएँ (curves) अविकसित और लगभग मानव-सभा जैसी थीं। परन्तु उनकी टाँगें सम्भवतः जानु-सन्धियों (knee joints) पर मुड़ी हुई थीं।

मनुष्य के पैर का केवल पेशी-न्यास (musculature) ही नहीं इस बात को ज़ाहिर करता कि उसका विकास वानर के पैर से हुआ है। अनेक वानरों के पैर की दूसरी अँगुली अँगूठे से लम्बी होती है इससे उनके पैर की अँगुलियों की लम्बाई का सूत्र (length formula) निम्न प्रकार होता है 2>1>3>4>5। परन्तु आमतौर से पैर का अँगूठा ही सबसे लम्बा होता है और मानवी पैर का विशिष्ट सूत्र निम्न प्रकार होता है 1>2>3>4>5 और वानरों के पैर का सूत्र होता है 3>4>2>5>1।

प्राचीन काल की मूर्तियों में अक्सर हम देखते हैं कि पैर की दूसरी अँगुली अधिक लम्बी होती है। इसी कारण उसका नाम 'यूनानी पैर' (Greek foot) पड़ गया है। अनेक हज़ार वर्ष पहले रहनेवाले मानवों के कंकालों की जाँच-पड़ताल से पता चलता है कि इस प्रकार का पैर आज की अपेक्षा सम्भवतः उन दिनों कहीं अधिक मात्रा में प्रचलित था। परन्तु इस बात को मान लेना निराधार होगा कि लम्बी दूसरी अँगुलीवाला पैर प्राचीन किस्म के पैर से अधिक सादृश्यता रखता है यह मनुष्य के वन-मानुषी अग्र-पूर्वज (simian precursor) के पैर से अधिक साम्य रखता है। किसी ज़माने में मनुष्य के पूर्व के पूर्वजों के पैर की सबसे लम्बी अँगुली मध्यमा (middle one) हुआ करती थी। 3>2>1>4>5 का सूत्र आजकल विरल ही कभी दिखाई देता है। चार सप्ताह की अवस्था के मानवी भ्रूणों (embryos) में पैर की तीसरी अँगुली की रेखा दूसरी की अपेक्षा अधिक लम्बी होती है। पुस्टर (1020) ने 3 महीने के वयस के मानवी गर्भों का अध्ययन किया था उसका कहना था कि जितने गर्भों की उसने परीक्षा

) थी उनमें से केवल 1.4 प्रतिशत में पैर की तीसरी अंगुली सबसे लम्बी थी।

मानव-वानरों के पैर का ज्यों-ज्यों विकास होता गया त्यों-त्यों उनके पैर का अंगूठा अधिकाधिक बड़ा और मजबूत होता गया और दूसरी अंगुलियों का विकास रुक गया। खास तौर से सबसे छोटी अंगुली और छोटी हो गई। इसका नाखून साधारणतः छोटा (अवशेष) होता है और उसकी दोनों दूरस्थ अंगुलास्थियाँ (distal phalanges) जुड़ी हुई रहती हैं। अंशतः उसके पैर की चौथी अंगुली में भी यही चीज हो सकती है।

आधुनिक मनुष्य के पैर की प्राकृतिक बनावट तथा अभी विविध प्रकार की गतियाँ करने में उसे मदद पहुँचाती है। उसकी वजह से वह गिरता नहीं (एम॰ आई॰ घसल कुनाव 1940)। पंजों पर चलते समय कलाबाजियाँ दिखलाते वक्त बैले नृत्य करते समय अथवा जिमनैस्टिक (कसरत) करते समय तथा उच्चतम प्रकार के अन्य खेल खेलते समय अपना सन्तुलन बनाए रखने की अत्यन्त अद्भुत क्षमता का परिचय मनुष्य देता है।

परन्तु, जब आधुनिक मनुष्य को जब बहुत देर तक खड़े रहना पड़ता है या बासों टाँगों पर चलना पड़ता है तो स्पष्ट रूप से वह उतनी क्षमता नहीं प्रदर्शित करता, और यदि उसे बोझ लादकर भी चलना पड़ता है तो उसके फलस्वरूप उसका पैर चपटा (flat foot) हो जाता है अथवा उसकी शिराएँ फूलकर बाहर निकल आती (varicose) हैं।

उन छोटे शिशुओं की जिनकी जीवन परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं होतीं टाँगों के टेढ़ी-मेढ़ी और कमजोर होने का कारण केवल कैल्शियम (Calcium) की कमी नहीं होता उसका कारण यह भी है कि उनके शिशु की दो टाँगों को उतना ही भार उठाना पड़ता है जितना कि वानरों तथा अन्य स्तनधारी प्राणियों में चार टाँगें उठाती हैं।

शिशु जब दो पैरों पर चलना सीखता है तो उसके पैरों में आकृति-सम्बन्धी (morphological) तथा शरीर-क्रिया-सम्बन्धी (physiological) काफी परिवर्तन हो जाते हैं। आई॰ ए॰ ममयासोवा (1937) ने संरचना-सम्बन्धी (structural) उन परिवर्तनों का अध्ययन किया था जो भ्रूण के 10 सप्ताह के हो जाने से लेकर उसकी पैदाइश के दो वर्ष बाद तक उसमें होते हैं। उसने देखा कि सबसे बड़ा परिवर्तन उसमें उस समय होता है जिस समय कि बच्चा चलना सीखने का प्रयत्न करता है। मनुष्य के लिए बहुत लम्बे काल तक एक ही जगह खड़े रहना अथवा चलते रहना कठिन होता है, उसकी मांस-पेशियाँ थक जाती हैं और वह आराम के लिए बैठने को मजबूर हो जाता है परन्तु घोड़े की तरह का चौपाया बिना किसी क्षति के चौबीस घण्टे तक या इससे भी अधिक काल तक अपने पैरों पर खड़ा रह सकता है।

न केवल पैर की बनावट, बल्कि उसकी खराबियाँ भी यह जाहिर करती हैं कि वह किन्हीं वानरों और बन्दरों के पैरों से सादृश्यता रखता है। (नीचे के आँकड़े रुडाल्फ मार्टिन की पुस्तक 1928 खण्ड 1 से लिए गए हैं।)

धड़ (trunk) की लम्बाई के प्रतिशत के रूप में पैर की लम्बाई
(विभिन्नता की सीमाएं तथा कुछ औसत)

यूरोप के निवासी			
पुरुष	52 0 (46 60)	मार्मोसेट (नवार कपि)	47 0–41 6
औरतें	49 8 (49-66)	रीसस बन्दर (विभाजन कपि)	52 0–47 5
ओरंग-उटैन	71 6 (62 87)	बैबून	53 3–48 4
गोरिल्ला	58 5 (58-59)	अमरीकी बन्दर	45 2–45 0
चिम्पैंजी	57 5 (52-62)	मकड़ बन्दर	69 0
गिब्बन	54 2 (49 65)	लेमूर	43 0 34 5

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि यह मनुष्य मानव-सम वानरों के वर्ग से साम्य रखता है। असाधारण रूप से लम्बे पैर वाला ओरंग-उटैन तथा परिग्राही दुम वाला (prehensile tailed) अमरीकी मकड़ बन्दर (spider monkey) भी इस वर्ग में केवल अपवाद के रूप में हैं। ओरंग-उटैन की यह विशिष्टता प्रकट करती है कि उसका अत्यधिक उच्च मात्रा में विशेषीकरण हो गया है—धीरे-धीरे पेड़ पर चढ़ने, शाखाओं पर अपनी भुजाओं के बल लटके रहने तथा उन्हें अपने पैरों से पकड़ने के अनुकूल उसने अपने को बना लिया है। मकड़ बन्दर, जो अपने पैरों और दुम के सहारे पेड़ों से लटकता है अपने शरीर के भार के काफी अंश को अपने पीछे के अंगों पर डाल देता है।

परन्तु, जहाँ तक नितम्ब से लेकर एड़ी तक उसकी टाँग की लम्बाई का सम्बन्ध है, प्रधानकों के वर्ग में मनुष्य एक अपवाद है (आर० मार्टिन वही)।

मनुष्य तथा दूसरे प्रधानकों के धड़ (trunk) की लम्बाई के प्रतिशत के रूप में नितम्ब (hip) से लेकर एड़ी (ankle) तक टाँग की लम्बाई।

यूरोप के निवासी			
पुरुष	158 5 (136-185)	मार्मोसेट (नवार कपि)	99 7 93 2
औरतें	159 1 (135-197)	रीसस बन्दर	110 2 96 2
गिब्बन	130 7 (113-149)	बैबून	119 0-111 0
चिम्पैंजी	113 0 (104-120)	अमरीकी बन्दर	94 5 91 4
गोरिल्ला	113 0 (111 115)	मकड़ बन्दर	139
ओरंग-उटैन	112 7 (105 131)	लेमूर	110 0-35 0
मंगाबे (mangabey)	105 7 (104-108)		

मनुष्य की ऊर्विका (femur) अथवा ऊरु-अस्थि (thigh bone) की खास विशेषता उसके पीछे की तरफ की वह खुरदरी-सी रेखा (linea aspera) है जो कई जाँघ की पेशियों का तथा अर्बन की लम्बाई के बहुत काफी भाग को एक साथ बांधे रखती है। ऊर्विका की गर्दन तथा अस्थि-दण्ड (diaphysis) के बीच वाला कोण मानव-सम वानरों के ऐसे ही कोण से बड़ा होता है क्योंकि मनुष्य के वृहद उरु-कूट (great trochanter) का सिरा (tip) ऊर्विका के सिर से नीचा होता है और वानर के वृहद उरु-कूट का सिरा

उससे ऊँचा होता है। अधिक बड़े और अधिक छोटे उरुकूट (trochanter) के अतिरिक्त मानवी ऊर्विका पर कभी-कभी एक तीसरा उरुकूट होता है जो बताता है कि उसकी संरचना निम्न वर्ग के पूर्व प्रधानकों जैसी है।

जानु-सन्धि (knee joint) के पास अपनी टाँगों को केवल मनुष्य ही पूर्णतया तथा लम्बे समय तक सीधा रख सकता है। चिम्पैंजी भी अपनी टाँगों को सीधा रख सकता है, परन्तु केवल थोड़े ही समय के लिए।

मनुष्य, गोरिल्ला, चिम्पैंजी तथा गिब्बनों के पैर के अँगूठे की अँगुलास्थियाँ (phalanges) सबसे मजबूत होती हैं परन्तु ओरंग उटन की अँगुलास्थियाँ और उसके पैर की दूसरी अँगुलियों की तुलना में बहुत पतली होती हैं। मनुष्य के पैर के अँगूठे की अनु-गुल्फिका अस्थि (metatarsal bone) का सन्धि तल (articular surface) लगभग चिपटा होता है यह अभिमध्य पुच्छिका अस्थि (medial cuneiform bone) के समीपतम होता है जिसके कारण अँगूठा उस तरह की गतियाँ नहीं कर पाता जिस तरह की सन्धि के अर्ध-वर्तुल (semi-globular) होने पर वह कर सकता।

इस चिपटे सन्धि तल का लक्षण न मानवी भ्रूण के अन्दर हुए निकाला है। इससे स्पष्ट है कि उन युगों-हजारों अथवा लाखों वर्षों के दौरान में जब सीधे खड़े होकर चलन के अनुकूल व अपने को बना रहे थे हमारे पूर्वजों के पैर के ऊपर इसका भारी प्रभाव पड़ा था।

5 श्रोणि प्रदेश, रीढ़ तथा वक्ष (The Pelvis, Spine and Thorax)

ठीक उसी समय जिस समय हमारे पूर्वजों के निम्न अंगान्तों (अधःशाखाओं) की कंकालीय बनावट (skeletal structure) में परिवर्तन हो रहे थे उनकी श्रोणि मेखला (pelvic girdle) की संरचना में भी परिवर्तन हो रहे थे। त्रिक-श्रोणि सन्धि (sacral iliac articulation) के लिए आवश्यक था कि वह और अधिक चौड़ा तथा मजबूत हो जाए। इसलिए हम देखते हैं कि मनुष्य और वानरों में पाँच त्रिक कशेरुक (sacral vertebrae) होते हैं, जबकि निम्न वर्ग के बन्दरों में साधारणतया उनकी संख्या केवल दो या तीन ही होती है।

मानवी श्रोणि (pelvis=पेड़ू) की चौड़ाई उसकी लम्बाई से अधिक होती है (चित्र 46) तथा उसकी इलियम (ilium) की हड्डियों में बड़े-बड़े विवरक (fossae) होते हैं। आकृति में मानवी श्रोणि गोरिल्ला चिम्पैंजी तथा ओरंग-उटंग की श्रोणि जैसी ही होती है। इसके विपरीत लम्बी आकृति (elongated shape) तथा अपनी इलियम अस्थि के उथले विवरकों के कारण गिब्बनों की श्रोणि निम्न वर्ग के अधोनासा बन्दरों (catarrhine monkeys) की श्रोणि से अधिक घनिष्ठ रूप में मिलती है। महावानरों की श्रोणि मेखला (pelvic girdle) की लम्बाई उसकी चौड़ाई में किंचित्

धड़ (trunk) की लम्बाई के प्रतिशत के रूप में पैर की लम्बाई
(विभिन्नता की सीमाएँ तथा कुछ औसत)

यूरोप के निवासी			
मर्द	52.0 (46-60)	मार्मोसेट (मकर कपि)	47.0–41.6
औरतें	49.8 (49-66)	रीसस बन्दर (हिमालय कपि)	52.0–47.5
ओरेंग-उटैन	71.6 (62-87)	बैबून	53.3–48.4
गोरिल्ला	58.5 (58-59)	अमरीकी बन्दर	45.2–45.0
चिम्पैंजी	57.5 (52-62)	माकड़ बन्दर	69.0
गिब्बन	54.2 (49-65)	लंगूर	43.0–34.5

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि यह मनुष्य मानव-सम वानरों के वर्ग से साम्य रखता है। असाधारण रूप से लम्बे पैर वाला ओरेंग-उटैन तथा परिग्राही दुम वाला (prehensile tailed) अमरीकी माकड़ बन्दर (spider monkey) भी इस वर्ग में केवल अपवाद के रूप में है। ओरेंग-उटैन की यह विशिष्टता प्रकट करती है कि उसका अत्यधिक उच्च मात्रा में विशेषीकरण हो गया है—धीरे-धीरे पेड़ पर चढ़ने शाखाओं पर अपनी भुजाओं के बल लटके रहने तथा उन्हें अपने पैरों से पकड़ने के अनुकूल उसने अपने को बना लिया है। माकड़ बन्दर, जो अपने पैरों और दुम के सहारे पेड़ों से लटकता है अपने शरीर के भार के काफी अंश को अपने पीछे के अंगों पर डाल देता है।

परन्तु, जहाँ तक नितम्ब से लेकर एड़ी तक उसकी टाँग की लम्बाई का सम्बन्ध है अधिमानवों के वर्ग में मनुष्य एक अपवाद है (मार० मार्टिन वही)।

मनुष्य तथा दूसरे अधिमानवों के धड़ (trunk) की लम्बाई के प्रतिशत के रूप में नितम्ब (hip) से लेकर एड़ी (ankle) तक टाँग की लम्बाई।

यूरोप के निवासी			
मर्द	158.5 (136-185)	मार्मोसेट (मकर कपि)	99.7–93.2
औरतें	159.1 (135-197)	रीसस बन्दर	110.2–96.2
गिब्बन	130.7 (113-149)	बैबून	119.0–111.0
चिम्पैंजी	113.0 (104-120)	अमरीकी बन्दर	94.5–91.4
गोरिल्ला	113.0 (111-115)	माकड़ बन्दर	139
ओरेंग-उटैन	112.7 (105-131)	लंगूर	110.0–85.0
मंगाबे (mangabey)	105.7 (104-108)		

मनुष्य की उर्विका (femur) अथवा ऊरु-अस्थि (thigh bone) की खास विशेषता उसके पीछे की तरफ की वह खुरदरी-सी रेखा (linea aspera) है जो कई तगड़ी पेशियों को तथा बदन की लम्बाई के बहुत काफी भाग को एक साथ बाँध रखती है। उर्विका की गर्दन तथा अस्थि-दण्ड (diaphysis) में बननेवाला कोण मानव-सम कपियों के कोण से बड़ा होता है क्योंकि मनुष्य के बृहद ऊरु-कूट (great trochanter) का सिरा (tip) उर्विका के सिर से नीचा होता है और वानर के बृहद ऊरु-कूट का सिरा

उससे ऊँचा होता है। अधिक बड़े और अधिक छोटे उरुकूट (trochanter) के प्रतिरिक्त मानवी ऊर्विका पर कभी-कभी एक तीसरा उरुकूट होता है जो बताता है कि उसकी संरचना निम्न वर्ग के कुछ प्रधानकों जैसी है।

जानु-सन्धि (knee joint) के पास अपनी टाँगों को केवल मनुष्य ही पूर्णतया तथा लम्बे समय तक सीधा रख सकता है। चिम्पजी भी अपनी टाँगों को सीधा रख सकता है, परन्तु केवल थोड़े ही समय के लिए।

मनुष्य गोरिल्ला चिम्पजी तथा गिब्बनों के पैर के अँगूठे की अँगुलास्थियाँ (phalanges) सबसे मजबूत होती हैं परन्तु ओरंग-उटन की अंगुलास्थियाँ और उसके पैर की दूसरी अंगुलियों की तुलना में बहुत पतली होती हैं। मनुष्य के पैर के अँगूठे की अनुगुल्फिका अस्थि (metatarsal bone) का सन्धि तल (articular surface) लगभग चिपटा होता है, यह अभिमध्य पुण्पभिका अस्थि (medial cuneiform bone) के समीपतम होता है जिसके कारण अँगूठा उस तरह की गतियाँ नहीं कर पाता जिस तरह की सन्धि के अर्ध-वर्तुल (semi-globular) होने पर वह कर सकता।

इस चिपटे सन्धि तल को सेबोंक ने मानवी भ्रूण के अन्दर ढूँढ निकाला है। इससे स्पष्ट है कि उन सहस्रों-हजारों अथवा शतियों-लाखों वर्षों के दौरान में जब सीधे खड़े होकर चलने के अनुकूल वे अपने को बना रहे थे हमारे पूर्वजों के पैर के ऊपर इसका भारी प्रभाव पड़ा था।

5 श्रोणि प्रदेश, रीढ़ तथा वक्ष (The Pelvis, Spine and Thorax)

ठीक उसी समय जिस समय हमारे पूर्वजों के निम्न अंगान्तों (अध-शाखाओं) की कंकालीय बनावट (skeletal structure) में परिवर्तन हो रहे थे उनकी श्रोणि मेखला (pelvic girdle) की भरचना में भी परिवर्तन हो रहे थे। त्रिक-श्रोणि सन्धि (sacral iliac articulation) के लिए आवश्यक था कि वह और अधिक चौड़ा तथा मजबूत हो जाए। इसलिए हम देखते हैं कि मनुष्य और वानरों में पाँच त्रिक कशेरुक (sacral vertebrae) होते हैं, जबकि निम्न वर्ग के बन्दरों में साधारणतया उनकी संख्या केवल दो या तीन ही होती है।

मानवी श्रोणि (pelvis=पेडू) की चौड़ाई उसकी लम्बाई से अधिक होती है (चित्र 46) तथा उसकी इलियम (ilium) की हड्डियों में बड़े-बड़े विवरक (fossae) होते हैं। आकृति में मानवी श्रोणि गोरिल्ला चिम्पजी तथा ओरंग-उटन की श्रोणि जैसी ही होती है। इसके विपरीत लम्बी आकृति (elongated shape) तथा अपनी इलियम अस्थि के उथले विवरकों के कारण, गिब्बनों की श्रोणि निम्न वर्ग के प्रधानाग्रा बन्दरों (catarrhine monkeys) की श्रोणि से अधिक घनिष्ठ रूप में मिलती है। महावानरों की श्रोणि मेखला (pelvic girdle) की लम्बाई उनकी चौड़ाई में किचित्

अधिक होती है। श्रोणि प्रदेश का चौड़ा बनना प्रत्यक्षतः सीधे खड़े होकर चलने से सम्बन्धित होता है।

चित्र 46 प्राइमेटों की श्रोणि मेखलाएं
1 [illegible] 2 गिब्बन 3 गोरिल्ला 4 मानव।
[illegible] 1937 के आधार पर।

मनुष्य का सीधा खड़ा होना (vertical stance) तथा सीधे खड़े होकर चलना (orthograde locomotion) मुख्य-मुख्य कई बातों पर निर्भर करता है। ये बातें हैं (1) श्रोणि की शक्ति (strength) तथा चौड़ाई ( ) सैक्रम (त्रिक) के साथ उसके संधि (articulation = जोड़) की शक्ति (3) श्रोणि उलूखल (acetabulum) के विचलन (deviation) की वह मात्रा जिस पर ग्रीवा (गर्दन) तथा ऊर्विका (femur) के अस्थि-दण्ड (diaphysis) से बननेवाला कोण (100°–130°) निर्भर करता है तथा (4) श्रोणि प्रदेश (pelvic region) की सबसे कम से विभिन्न पेशियों तथा कण्डराएँ (tendons) तथा उनके जुड़न (attachment) की विशेष विधि।

मानवों में भ्रूण का सिर वानर अथवा बन्दर के भ्रूण के सिर से कहीं अधिक बड़ा होने के कारण मानवी श्रोणि (pelvis) की आकृति तथा रचना का स्पष्ट विकास हुआ।

मादा श्रोणि की अपनी खास विशेषता यह है कि बड़ी श्रोणि (pelvis major) से [जो इलियम के फलों (blades) से और पार्श्विक रूप से कटि (lumbor) तथा त्रिक (sacral) कशेरुकों तथा भगास्थि (pubis) के संगम (symphysis) के ऊपरी किनारे से घिरी रहती है] छोटी श्रोणि में [जो त्रिक के पंच भाग से अनुत्रिक (coccyx) से आसनास्थि (ischium) तथा भगास्थि (pubis) के आन्तरिक पर्शों से और भगास्थि के जुड़े हुए भाग के नीचे के हिस्से से घिरी रहती है] जानेवाला प्रवेश-मार्ग अधिक चौड़ा होता है। प्रसवन (parturition) के शुरू होने से पहले तक गर्भ का सिर बड़ी श्रोणि के प्रवेश में रहता है। उसके बाद प्रवेश मार्ग में से उसे छोटी श्रोणि के प्रवेश में आना पड़ता है। मादा श्रोणि की प्रवेशिका नर श्रोणि की प्रवेशिका से अधिक चौड़ी होती है तथा संगम (symphysis) से नीचे की ओर तथा अगल-बगल (inferiorly and laterally) जानेवाली भगास्थियों (pubes) की शाखाओं के बीच का कोण अधिक बड़ा होता है। जब अनुत्रिक (coccyx) के साथ-साथ त्रिक का नीचे का भाग पीछे की ओर हटता है तो इस तरह की बनावट के कारण छोटी श्रोणि में से गर्भ के बाहर निकलने में आसानी होती है।

श्रोणि के प्रवेश-मार्ग के मूलभूत आयाम इस प्रकार होते हैं (1) सीधा संयुग्म (conjugate) अथवा अग्र-पश्च व्यास (antero-posterior diameter) [जो भगास्थि के संगम के अभ्यन्तरी पक्ष की ऊपरी सीमा के मध्य से लेकर प्राग्रा (promontorium) के तत्स्थानी त्रिक कशेरुक के सबसे ऊपर के भाग निकले हुए बिन्दु तक जाता है] ( ) अनुप्रस्थ (transverse) व्यास अर्थात् प्रवेश मार्ग के उस पार तक की सबसे अधिक दूरी और तिर्यक (oblique) व्यास। गोरिल्ला को छोड़कर किसी भी अन्य मानव-सम की अपेक्षा ये तीनों आयाम मनुष्य में बड़े होते हैं (तालिका *)।

तालिका—2

मानव तथा मानव-समों की श्रोणियों के व्यास

(सण्टीमीटरों में)

	संयुग्म (conjugate)	अनुप्रस्थ (transverse)	तिर्यक (oblique)
मनुष्य			
नर	11	10	10 5
मादा	11 11 5	11 5	11·5
चिम्पैंजी	12	9·5	12
गोरिल्ला	13 5-14	14	14 5
ओरंग उटैन	10	9	10
गिब्बन	8 9·5	4 6	5-7

तालिका 3 हमें बताती है कि केवल मानवी श्रोणि में अनुप्रस्थ व्यास सयुग्म व्यास से बड़ा हो सकता है मानव-सभों के अन्दर श्रोणि अग्रपश्च दिशा में कुछ-कुछ लम्बी-सी होती है। मानव-सभों की श्रोणि के अपेक्षाकृत छोटे आयाम गर्भ के सिर के आकार के तदनुरूप होते हैं मानवी बच्चों की अपेक्षा आकार में उनके शिशु छोटे और भार में हल्के पैदा होते हैं। इसके बावजूद किसी भी मानव-सभ के साथ मनुष्य के संकरण (crossing) की सम्भावना पर विचार करते हुए हर्मन रोहलेडर (1018) इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि मनुष्य के वीर्य से मादा चिम्पैंजी का कृत्रिम रूप से यदि सफलतापूर्वक वीर्य-सेचन (insemination) कराया जा सके तो जो वर्ण-संकर (hybrid) संतान होगी उसका जन्म बिना किसी आपरेशन (cesarotomy) के हो सकेगा।

अपनी आकृति के अतिरिक्त मानव-सभों की श्रोणि से इस बात में भी मानव श्रोणि भिन्न होती है कि मेरुदण्ड (vertebral column) के साथ उसका जो कोण बनता है वह कहीं अधिक बड़ा होता है। वानर जब खड़ी पोजीशन (स्थिति) ग्रहण करते हैं तो उनकी श्रोणि नीचे की ओर झुक जाती है अर्थात् वह उसके मेरुदण्ड की ही रेखा में हो जाती है परन्तु मनुष्य जब खड़ा होता है तब उसकी श्रोणि आगे की ओर झुक जाती है और क्षैतिज के साथ उसका 50°-60° का कोण बन जाता है।

मनुष्य को छोड़कर तमाम प्राणियों की श्रोणि की लम्बी धुरी (long axis) शरीर की लम्बी धुरी के समानान्तर होती है—उसी तरह जिस तरह कि नव जात शिशु की होती है। यही वजह है कि छोटा बच्चा जब अपनी पीठ के बल सदा रहता है तो उसकी टाँगें घुटनों के पास मुड़ी हुई थोड़ी-सी ऊपर की ओर उठी रहती हैं और उसके पैरों के तलुवे अन्दर की ओर मुड़े रहते हैं। यही पोजीशन नवजात वानरों में मिलती है। शिशु जब अपनी पीठ के बल सदा रहता है तो उसकी श्रोणि का प्रतिपृष्ठवाला पक्ष (ventral side) सबसे ऊपर रहता है और उसकी टाँगों तथा घुटनों (जानुओं) को जबरदस्ती ही सीधा किया जा सकता है क्योंकि इस तरह ही हरकत में उसकी रीढ़ काफी झुक जाती है। ज्यों ज्यों बच्चा बढ़ता जाता है त्यों-त्यों श्रोणि का भगास्थि संधिक (pubic articulation) मस्तक की ओर आगे झुकता जाता है (बी. पी. बुनाक 1923)। और साथ होनेवाला विकास श्रोणि की आकृति को अन्तिम रूप में पूर्ण कर देता है। फिर यह उदर के अभ्यन्तरांगों (abdominal viscera) को तथा गर्भ-वेष्टन (placenta) झिल्लियों (membranes) तथा गर्भावस्था काल के अन्त तक के साथ साथ गर्भ को सहारा देने का काम करती है।

निम्न वर्ग के बन्दरों में जो साधारणतया अपने चारों अंगों के बल चलते हैं उदर के अभ्यन्तरांगों के भार को (मादाओं में इस भार के साथ-साथ भ्रूण गर्भ-वेष्टन तथा उल्ब द्रव का भी वजन जुड़ जाता है) उदर (abdomen) की नीचे की भित्ति सम्भाले रहती है क्योंकि उनकी श्रोणि अधिक ऊँचाई पर स्थित होती है। मानव-सभ वानरों में उदर के अभ्यन्तरांगों का सम्भाले रखने का काम श्रोणि उस समय करती है जिस समय कि

वृक्षों की शाखाओं के ऊपर अथवा जमीन पर चलने के दौरान उनका धड़ न्यूनाधिक अनुदैर्ध्य (vertical) स्थिति में हो जाता है। यही बात निम्न वर्ग के कुछ प्रधानकों (लेमूर, सिफाका तथा टार्सियर) अथवा अमरीका के मकड़ बन्दर (एटीलीडाई• ज्योफ राय) और छोटी दुमवाले बन्दरों (cacajao lesson) के सम्बन्ध म भी सही होती है अपने शरीर को कमोवेश अनुदैर्घ्य पार्श्वीयन म रखना इन सबके लिए किसी भी प्रकार स असाधारण चीज नहीं होगी।

सीधी खड़ी स्थिति में रहते हुए विकास के एक लम्बे क्रम स मानव गुजर चुका है परन्तु इस तरह स सीधे चलने का अब भी वह पूर्णतया अभ्यस्त नहीं हुआ है। भारी चीजों को उठाने या ले जाने के कारण अक्सर हर्निया (बढ़अ) हो जाने के जो उदाहरण मिलते हैं उनमें इस बात को देखा जा सकता है। कठिनाई से पैदा होनेवाले बच्चों के जन्म के समय गर्भाशय के भ्रंश (prolapse) के उदाहरणों अपक्षोसाइटीज आंत्रिक अधोवलन (intestinal inversion) तथा अन्य ऐसी ही चीजों के बहुधा मिलनेवाले उदाहरणों में भी इसी चीज को देखा जा सकता है। मानव-उत्पत्ति के क्रम म मानवी शरीर के निर्माण काल में आन्तरिक अवयवों को गुरुत्व की शक्ति ने अपनी जगह स हटा दिया था। मानव के अत्यन्त दूर के पूर्वज चारो अंगों के बल जब चलते थे तब उनके आन्तरिक अवयवों के ऊपर गुरुत्व शक्ति जिस दिशा में प्रभाव डालती थी उससे अब 90 की भिन्न दिशा म उसका प्रभाव पड़ने लगा। उदर के अभ्यन्तरांगों के जुड़ने का ढग भी खास तौर से आन्त्रों के मेसेन्टरी (आन्त्रयुज) के साथ तथा मेसेन्टरी के उसके पृष्ठ (dorsal) के साथ जुड़ने का ढग भी बदल गया।

स्त्रियों की गर्भावस्था के काल में गुरुत्व शक्ति गर्भ को योनि प्रदेश की ओर खींचती है, अब वह उसे केवल उदरीय भित्ति (abdominal wall) की तरफ नहीं खींचती जैसा कि हमारे पूर्वजों के लुप्त हो गए चौपाये स्तनधारियों के जमाने में वह करती थी।

मादा योनि के पुनर्गठन का परिणाम यह हुआ कि दो कार्य कमोवेश सन्तोषपूर्ण ढग से वह करने लग गई वह धड़ के लिए एक सहारे का काम देती है और साथ-ही साथ प्रसव के समय गर्भ के बड़े सिर के लिए एक काफी चौड़े निष्कासन मार्ग का काम देती है। आधुनिक मानवो में ऐसे उदाहरण मिलते हैं जबकि योनि-प्रदेश से बाहर जाने का मार्ग गर्भ के सिर के आकार के अनुरूप नहीं होता। इसकी वजह से विकृत बच्चे पैदा हो सकते हैं।

खड़े होकर सीधे चलने की ओर संक्रमण के काल में मनुष्य की रीढ़ मे बहुत व्यापक तबदीलियाँ हुई थीं। प्रारम्भ म निम्न वर्ग के बन्दरों की तरह वह वक्र थी फिर मानव सर्गों की तरह वह लगभग सीधी हो गई थी अन्त में उसमें कई ऐसी वक्रताएँ उत्पन्न हो गइ जिनकी वजह म सिर, धड़ तथा भुजाओं को सहारा देने का और चलने के कारण जो धक्के लगते हैं उनके प्रभाव को हल्का करने का काम वह अधिक अच्छी तरह स करने लगी। मनुष्य के मेरुदण्ड के विभिन्न भागों में मौजूद कशेरुकों की संख्या मानव-सर्गों के

अन्दर पाई जानेवाली तत्सम्बन्धी संख्या से या बहुत कम भिन्न होती है परन्तु लम्बी दुमवाले और चार पैरों पर चलने वाले बन्दरों के अन्दर पाई जानेवाली संख्या से वह बहुत भिन्न होती है। इन बन्दरों के गुदास्थिक भाग (coccygeal division) में कशेरुकों की अधिक बड़ी संख्या होती है परन्तु उनके त्रिक भाग में—जहाँ कि रीढ़ श्रोणि प्रदेश के साथ जुड़ी होती है—उनकी संख्या कम होती है (तालिका 3)।

तालिका 3

मनुष्य तथा अन्य प्रधानकों की रीढ़ के भागों में मिलनेवाले कशेरुकों की संख्या
(कोष्ठक में दिये गए अंक उनकी चरम सीमाओं को व्यक्त करते हैं)।
(भिन्न-भिन्न लेखकों से लिये गए न्यासों (data) के आधार पर)

प्रधानक	ग्रीवा कशेरुक (cervical)	वक्षीय (Thoracic)	कटि (lumbar)	त्रिक (sacral)	गुदास्थिक (Coccygeal)	योग (total)
मनुष्य	7	12(11 13)	5(6)	5	4-6	33-36
चिम्पैंजी	7	13 (12 14)	3(4)	5(6)	3-5(2)	29-35
गोरिल्ला	7	13(12 14)	3(4)	5(6)	3 5(2)	29-35
ओरांग-उटैन	7	12 (11 13)	5(3)	5	2 3	29-33
गिब्बन	7	13 (14)	4	3	1-4	29-32
पुरानी दुनिया का बंदर	7	12 14	7 5	2 3	2 26	29-57
कैपुचिन बन्दर	7	13-14	8-5	3	14-26	42 51
मारमोसेट तथा टमारिन	7	12 13	7-6	3	25	53-55
टार्सियर	7	13-14	6	3	21 23(27)	50-57
लमूर	7	12(18)	7	3-4	6-20	35-58
वृक्ष छछूंदर (तुपाइया)	7	13	6(5-7)	3-2	22 28	42 58
अमेरिका-निवासी पूंछ छछूंदर	7	14	5	3	31	60

तालिका 3 बतलाती है कि हेपेलिडियों (hapalidae) टार्सियरों तथा तुपाइया (tupaias) को छोड़कर प्रधानकों के सभी वर्गों में गुदास्थिक कशेरुकों (coccygeal vertebrae) की संख्या में कमी हुई है। इससे यह भी जाहिर होता है कि मानव-सभा में मनुष्य में भी कम गुदास्थिक कशेरुक होते हैं। तमाम प्रधानकों के सात ग्रीव कशेरुक (cervical vertebrae) होते हैं। लगभग तमाम अन्य स्तनधारियों में भी उनकी संख्या इतनी ही होती है। पसलियों की संख्या साधारणतया तेरह से अधिक नहीं होती है यद्यपि लमूरों के अन्दर आमतौर से उनकी संख्या बारह होती है और लोरिसिया (lorises—मन्दगामी प्रजाति के प्राणियों) में उनकी संख्या अठारह तक होती है।

मनुष्य तथा वानरों की भाँति मनुष्याभ प्रधानकों में कटि-कशेरुकों की संख्या अधिक

होती है, परन्तु उनके त्रिक कशेरुकों की संख्या कम होती है। त्रिक कशेरुका की संख्या में वृद्धि कटि-कशेरुकों की संख्या में हुई कमी के कारण हो गई थी। इसकी वजह से उसकी त्रिक श्रोणि सन्धि (sacro-pelvic articulation) अधिक मजबूत बन जाती है। लेमूरायड के (lemuroid=निमाकृप्यामों के) वर्ग में से इण्ड्रियाड़े (indridae=इन्द्रमर्कट प्रजाति के प्राणियों) के बीच के स्थान पर चार त्रिक कशेरुक होते हैं इन बर्बर वानरों (prosimians) में सिफाका (propithecus bennet) भी होते हैं। सिफाका आगे के छोटे अंगों वाला एक ऐसा पशु होता है जो पेड़ों और जमीन पर दोनों जगह आमतौर से खड़ी पोजीशन में चलता-फिरता है। मनुष्य तथा मानव-सर्मों के अन्दर कशेरुकों की संख्या सदा 32-36 के अन्दर रहती है यद्यपि दूसरे प्राणकों में उनकी संख्या लगभग हमेशा ही 50 से ऊपर होती है और चुपाइयों में तो वह 60 तक पहुँच जाती है।

मनुष्य के कशेरुकादण्ड में कई अत्यन्त विशिष्ट प्रकार की वक्रताएँ होती हैं। इनमें से 4 हैं—ग्रैव (cervical) रीढ़ की अथवा वक्षीय (spinal or thoracic) कटि की (lumbar) तथा त्रिक (sacral) की [इस अन्तिम वक्रता में गुदास्थि (coccyx) भी सम्मिलित है]। मस्तिष्क की गाथ की ओर उत्तलतागामी (convexity) वक्रता को लौरडोसिस (lordosis) तथा पीछे की ओर की उत्तलतागामी वक्रता को काइफोसिस (kyphosis) कहा जाता है। कशेरुकदण्ड के वक्षीय भाग में कुछ लोगों के दाहिने हाथ की तरफ हल्की-सी वक्रता दिखाई देती है दूसरे मामलों में वह बाएँ हाथ की तरफ मिलती है। इस तरह की पार्श्विक वक्रता (lateral curvature) को स्कोलियोसिस (scoliosis) कहा जाता है। आमतौर से यह वक्रता बहुत थोड़ी तथा दैहिक प्रमापों की सीमाओं के अन्दर ही होती है। यही बात लौरडोसिस तथा काइफोसिस के सम्बन्ध में लागू होती है। जब वे अत्यधिक विकसित हो जाती हैं तब तीनों ही धड़ में विकृतियाँ पैदा कर देती हैं।

मनुष्य की रीढ़ में मौजूद वक्रताएँ उसके शरीर के सीधे बनने का प्रत्यक्ष परिणाम हैं। वैयक्तिक विकास के क्रम में ग्रीवा की लौरडोसिस उस समय विकसित होती है जिस समय कि शिशु अपने सिर को ऊपर उठाने लगता है और कटि की लौरडोसिस बाद में उस वक्त पैदा होती है जिस वक्त कि बच्चा दोनों पैरों से चलना शुरू कर देता है (वी० वी बुनाक 1940)।

सीधा मुँह करके चलनेवाले उन पशुओं का जिनका धड़ क्षैतिज स्थिति में रहता है तथा ऊपर मुँह करके चलनेवाले उन पशुओं का (जैसेकि मानव-सम वानरों का) जिनका शरीर भूमि अथवा वृक्षों पर चलने के उनके ढंग के अनुसार झुकी हुई अथवा सीधी पोजीशन में रहता है—इन दोनों ही तरह के—चतुष्पदीय पशुओं का मेरुदण्ड एक भिन्न प्रकार के प्रचलन के अनुकूल होता है। निम्नस्तर के बन्दरों तथा अर्द्ध-बन्दरों के कशेरुकादण्ड में केवल ग्रीवा और वक्ष की ही वक्रताएँ होती हैं इनका विकास मुख्यतया सिर को थामने के उनके ढंग के कारण होता है। दूसरे

मानवों में अधिकांश प्रधानकों के कशेरुका दण्ड का स्वरूप एक चाप (arch) जैसा वैसा ही होता है जैसाकि चतुष्पदीय स्तनधारियों में आमतौर से मिलता है। कटि और त्रिक की वक्रताएँ केवल मानव-सम वानरों में ही पाई जाती हैं और वे बहुत कम विकसित होती हैं। इन पशुओं की ग्रीवा तथा वक्ष की वक्रताएँ भी कम स्पष्ट रूप में विकसित होती हैं।

चतुष्पदीय प्रचलन के दौरान मेरुदण्ड के कशेरुका कण्टक (spinous processes) साधारण तौर से पीछे की ओर निर्गम करते हैं अग्र भाग की ओर। आगे बढ़े हुए भागों (projections) का दिशा परिवर्तन एक कशेरुक के ऊपर होता है जिसे सम्नमन (anticlinal) कहते हैं। लीमूरों टार्सियरों तथा निम्न वर्ग के प्राचीभाषा बन्दरों के आमतौर से एक सम्नमन दसवाँ कशेरुक होता है। नई दुनिया के बन्दरों के अन्दर उसकी जगह बदलती रहती है परन्तु साधारणतया वह मेरुदण्ड के कटि खण्ड (lumbar division) में होता है।

मानवी कंकाल वानरों के कंकाल से केवल कशेरुका दण्ड (मेरुदण्ड) की विशिष्टताओं के कारण ही अत्यधिक भिन्न नहीं होता है बल्कि अंस मेखला (pectoral girdle) तथा ऊपर की देह शाखाओं (extremities) की आकृति तथा संरचना की दृष्टि से भी उनमें भारी अन्तर होता है।

मानवी वक्ष में पर्शुकाओं (ribs) के बारह जोड़ तथा एक उरोस्थि (sternum) होती है। इस उरोस्थि के साथ पर्शुकाओं (ऊपर की अथवा सच्ची पर्शुकाएं) के केवल सात जोड़ ही जुड़े होते हैं। पर्शुकाओं (पशुकाओं) के आठवें नवें तथा दसवें जोड़ (मिथ्या पर्शुकाएं) सातवें जोड़ के साथ तथा एक दूसरे के साथ पर्शुका उपास्थियों (costal cartilages) के द्वारा जुड़े रहते हैं। उनके ग्यारहवें और बारहवें जोड़ (चलायमान पर्शुकाएं) आगे से असम्बद्ध होते हैं और बहुत छोटे होते हैं—आमतौर से उनका बीच का जोड़ा बहुत छोटा होता है। यह वस्तु मनुष्य के साथ-साथ अन्य प्रधानकों में भी दिखलाई देती है।

मानवी भ्रूण में पर्शुकाएं (पशुकायें) के तेरह जोड़ विकसित होते हैं। यह विशिष्टता मनुष्य को चिम्पैंजी तथा गोरिल्ला के नजदीक ला देती है। परन्तु चिम्पैंजी और गोरिल्ला दोनों के वयस्क अवस्था में भी तेरह ही पर्शुकाएं होती हैं (चिम्पैंजी में भी अधिक मात्रा में गोरिल्ला के पर्शुकाएं के बारह जोड़ तक हो सकते हैं)। पर्शुकाओं के तेरहवें जोड़ का मानवी गर्भ में ही ह्रास हो जाता है। कुछ वयस्क मनुष्यों के पर्शुकाएं के तेरह जोड़ होते हैं और उनका यह अतिरिक्त जोड़ा (अथवा एक ही पर्शुका) साधारणतया कटि के प्रथम कशेरुक में निकलता है। कभी-कभी पर बहुत कम यह ग्रीवा के सातवें कशेरुक से निकलता है। हाल ही में एक ऐसे परिवार का उदाहरण मिला था जिसके कई सदस्यों के पर्शुकाओं के तेरह जोड़ थे।

कशेरुका दण्ड के प्रकारों का अन्तर बताते हुए के० हुटन ([illegible]) कहते हैं कि वे

कपालीय (cranially) और पुच्छीय (caudally) ढंग से जुड़ा-जुड़ा होता है। पहले प्रकार के कशेरुका दर्शकों में वे आते हैं जिनमें रीढ़ के ऊपरी भाग में भिन्न-भिन्न संख्या के कशेरुका होते हैं। उदाहरण के लिए, सातवीं ग्रैव पसली वाले कशेरुका इसी श्रेणी में आते हैं। उन्नीसवें कशेरुका के ऊपर अर्थात् प्रथम कटि कशेरुका के ऊपर मिलनेवाली पसलियों के उदाहरणों को कुहन दूसरी श्रेणी में रखते हैं।

विकास-क्रम में हमारे पूर्वजों के वक्ष की पसलियों की संख्या घटकर तेरह से बारह रह गई थी। उनका वक्ष अधिक चौड़ा और सपाट भी बन गया था। मानवी गर्भ में वक्ष का अनुप्रस्थ व्यास (transverse diameter) उसके आगे-पीछे के व्यास (antero-posterior diameter) से बड़ा होता है शिशु में ये दोनो लगभग बराबर होते हैं, और वयस्क में अनुप्रस्थ व्यास आगे-पीछे के व्यास से फिर बड़ा हो जाता है। (एन० बी० पोपोवा नेटकिना के परीक्षणों को देखिए, 1957)।

उरोस्थि में तीन खण्ड (segments) होते हैं पिण्ड (body) हस्तक (manubrium) तथा असिपत्रक (xiphoid process)। मानव-समों तथा मनुष्यों में उरोस्थि का पिण्ड छोटा और चौड़ा होता है तथा खण्डों में उसका विभाजन साधारणतया अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। निम्न स्तर के बन्दरों की उरोस्थि की आकृति एक डण्डे (rod) की तरह होती है और उसके पिण्ड के खण्ड स्पष्ट रूप से अलग-अलग होते हैं उसका वक्ष साधारणतया अच्छी तरह गोलाकार होता है यद्यपि अधिकांशतया वह उतना सँकरा नहीं होता जितना कि जमीन पर रहनेवाले चतुष्पदीय प्राणियों का होता है। प्रधानकों के वृक्षों के जीवन ने उनकी भुजाओं को वृक्षों पर रहनेवाले अन्य अनेक प्राणियों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रकार के काम करने की शक्ति दे दी है।

अक्षक (clavicles) अभिमध्य को उरोस्थि के हस्तक (manubrium) के साथ जोड़ते हैं। पार्श्विक रूप से उन्हें वे असफलकों (scapulae) के साथ जोड़ते हैं। अस फलकों के साथ मिलकर ये अंसमेखला (shoulder girdle) की रचना करते हैं। अक्षकों की उपस्थिति समस्त प्रधानकों की विशेषता है वह एक ऐसी चीज है जिसके सम्बन्ध में अनेक अन्य स्तनधारियों से वे भिन्नता रखते हैं। उदाहरण के लिए खुरों वालों (ungulates) में एक विशिष्ट प्रकार के प्रचलन के विकास के कारण अक्षक नहीं होता। वे चलने में स्पष्ट रूप से विशिष्ट (specialised) अग्रांगों (extremities) का इस्तेमाल करते हैं। ये अग्रांग आगे पीछे की दिशा में गति करते हैं।

मनुष्य का अंसफलक (scapula) अथवा उसके कंधे की हड्डी लम्बाई की अपेक्षा चौड़ाई में अधिक बड़ी होती है। यह एक ऐसी विशेषता है जो कुछ कम मात्रा में मानव-सम वानरों में भी पाई जाती है। दूसरे प्रधानकों में उसकी लम्बाई उसकी चौड़ाई से बड़ी होती है (ए० के० कोवसनिकोवा 1928)। असफलक मांसपेशियों के एक आस्तर (bed) पर टिका रहता है जिसकी वजह से अत्यन्त भिन्न-भिन्न प्रकार की व समस्त गतियाँ सम्भव हो पाती हैं जिन्हें केवल मनुष्य की ही भुजा सम्पन्न कर सकती है।

6. देह की ऊर्ध्व शाखाएं (The Superior Extremities)

मनुष्य की ऊपर की देह शाखाओं (ऊर्ध्व शाखाओं) की अस्थियां उसके नीचे के अंगों की अस्थियों से कहीं अधिक पतली होती हैं।

ऊपर की देह शाखा के तीन भाग होते हैं—बाहु (arm) प्रकोष्ठ [forearm इसमें बहिःप्रकोष्ठिका (radius) तथा अन्तःप्रकोष्ठिका (ulna) होती है।] और हस्त [hand इसमें कलाई की 8 मणिबन्धास्थियां (carpal bones) 5 करभास्थियां (metacarpal bones) तथा अंगुलियों की 14 अंगुल्यास्थियां (phalangeal bones) होती हैं]। प्रत्येक अंगुली में 3 अंगुल्यास्थियां होती हैं केवल अंगूठे में सिर्फ 2 अंगुल्यास्थियां होती हैं।

मनुष्य की अंगुलियों में सबसे लम्बी मध्यमा या तीसरी अंगुली होती है इसके बाद अनामिका या तर्जनी आती है कनिष्ठा और अंगुष्ठ (thumb) सबसे छोटे होते हैं। अंगुलियों का सर्वसामान्य सूत्र निम्न प्रकार होता है—$3 > 4 > 2 > 5 > 1$। यह सूत्र वही है जो वानरों का होता है। जब अनामिका तर्जनी से लम्बी होती है तब उस हस्त को अन्तःप्रकोष्ठिका वाला (ulnar) कहा जाता है और जब स्थिति इसकी उल्टी होती है तब उस हस्त को बहिःप्रकोष्ठिका वाला (radial) कहा जाता है। यह नामकरण इसलिए कर लिया गया है कि तीसरी अंगुली अन्तःप्रकोष्ठिका की तरफ होती है और तर्जनी बहिःप्रकोष्ठिका की तरफ।

यह निश्चय करने के लिए कि हाथ किस प्रकार का है आवश्यक है कि उसे इस तरह रखा जाए कि मध्यमा का लम्बा अक्ष (axis) प्रकोष्ठ (fore arm) के मध्य अक्ष के साथ मिलकर एक सीधी रेखा (direct continuation) में हो जाए हस्त यदि बाहर की ओर झुका हुआ है तो तीसरी अंगुली बीच की अंगुली के बराबर हो सकती है।

बहिःप्रकोष्ठिका वाला हाथ बच्चों में उनके जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में आमतौर से पाया जाता है और अन्तःप्रकोष्ठिका वाला हाथ वयस्कों में बहुत मिलता है (एम० वी० वासोड्मकोम द्वारा संग्रहीत आधार-सामग्री 1921)। गिब्बनों को छोड़कर तमाम वानरों में अन्तःप्रकोष्ठिका वाला कम ही मिलता है गिब्बनों में 70% के हाथ का रूप बहिःप्रकोष्ठिका वाला होता है। एम० पी० असातिन द्वारा संग्रहीत आधार-सामग्री (व्याख्या) के अनुसार उन मानवों हस्त नहीं होता है जिसका बहिःप्रकोष्ठिका वाला भाग विशेष तौर से उनको पहली बार अधिक मजबूत होती है करभास्थियां (metacarpals) की तुलना में जिसकी अंगुलियां लम्बी होती हैं तथा काम के कारण जिसकी दूरस्थ अंगुल्यास्थियां (distal phalanges) मोटी हो गई होती हैं (असातिन 1931 1952)।

अनेक रूपों में मानवी हाथ मानव-सम वानर की वही परिग्राही देहशाखा (grasping extremity) है जो बहुत अधिक नहीं बदली है। उसकी समस्त अंगुलियों में सुविकसित चपटे नख होते हैं। सबसे संकरा नख कनिष्ठा का होता है दूसरे नख पारिस्था के नखों

से भी अधिक चौड़े होते हैं। मानवी अँगुलियों की गतिशीलता (dynamics) अत्यन्त भिन्नित (differentiated) होती है उनमें से प्रत्येक में स्वतन्त्र रूप में गति करने की अत्यधिक क्षमता होती है। यह एक ऐसी विशेषता है जिसके कारण मनुष्य दूसरे प्रधानकों से अत्यधिक भिन्न हो जाता है। मानव-समाज के हाथों की अँगुलियाँ भी अपनी गतिशीलता के सम्बन्ध में कहीं अधिक मात्रा में एक-दूसरे पर निर्भर करती हैं।

मानवी कन्धे की सन्धि वानरों के कन्धे की सन्धि से अधिक उच्च रूप से विकसित होती है। उसमें इस बात की गुंजायश होती है कि बाहु पर्यावर्तन (circumduction) कर सके। इसके अलावा प्रकोष्ठ की घूर्णनशीलता (rotation) की वजह से मनुष्य का हाथ कहीं अधिक पूर्ण वृत्तीय गति (circular motion) कर सकता है—अपनी हथेली को नीचे करके मनुष्य अवतानन (pronation) की तथा हथेली को ऊपर की तरफ करके उत्तानन (supination) की गति कर सकता है (वी पी० याकीमोव 1946 एम० ए० प्रमियास्की 1941)।

हाथ तथा भुजा की यह गतिशीलता अनेक प्रकार के कामों के लिए आवश्यक है। मनुष्य सबसे अधिक प्रकार की गतियाँ कर सकता है और उसमें फुर्ती भी सबसे अधिक होती है।

चिम्पैंजी और गारिल्ला की कलाइयों की ही तरह मनुष्य की कलाई में भी उस प्रकार की कोई मुक्त (free) केन्द्रीय अस्थि नहीं होती जिस प्रकार की ओरंग-उटान तथा गिब्बनों की कलाई में होती है। यह मुक्त केन्द्रीय अस्थि ओरंग उटैंग और गिब्बनों की कलाई में एक अलग तत्त्व का रूप लिये रहती है। इस तरह इस दृष्टि से एशियाई वानर निम्न स्तर के बन्दरों से बहुत साम्य रखते हैं।

मनुष्य के हाथ की लम्बाई उसके धड़ की लम्बाई के लगभग केवल एक-तिहाई के बराबर होती है। रीसस बन्दर (हिमालय कपि) तथा बैबून (भीम वानर) के हाथ के सम्बन्ध में भी ऐसा ही होता है। दूसरे निम्न वर्ग के अधोनासा बन्दरों नई दुनिया के बन्दरों तथा लंगूरों के हाथ उनके धड़ के एक-तिहाई भाग से छोटे होते हैं मकाक बन्दर का हाथ उसके धड़ का आधा होता है। महावानरों का आधे से लेकर दो-तिहाई तक तथा गिब्बनों का हाथ उनके धड़ की लम्बाई के लगभग तीन-चौथाई भाग के बराबर होता है।

मनुष्य के प्रकोष्ठ (fore arm) तथा ऊर्ध्व बाहु (upper arm) की लम्बाई गारिल्ला और चिम्पैंजी के प्रकोष्ठ तथा ऊर्ध्व बाहु की लम्बाई के लगभग बराबर होती है। मनुष्य की ऊर्ध्व बाहु उसके प्रकोष्ठ से लम्बी होती है। दूसरे प्रधानकों में बहुत कम अन्तर होता है और ऐसा भी हो सकता है कि उनका प्रकोष्ठ उनकी ऊर्ध्व बाहु से कुछ लम्बा हो। ओरंग-उटैन और गिब्बन में खासतौर से ऐसा हो सकता है। ओरंग-उटैन की भुजाएँ उसके धड़ की लम्बाई से डेढ़ गुनी लम्बी तथा गिब्बन की भुजाएँ उसके धड़ की लम्बाई से दो गुनी लम्बी होती हैं (देखिए तालिका 4 इसकी आधार-सामग्री मार्टिन की

पुस्तक से ली गई है 1928)।

तालिका 4

मनुष्य तथा दूसरे प्रधानकों के धड़ की लम्बाई के प्रतिशत के रूप में अग्र (बाहु) देहशाखाओं के भागों की लम्बाई

प्रधानक	ऊर्ध्व बाहु (upper arm)	प्रकोष्ठ (forearm)	हस्त (hand)
बरेन के मिलाना—			
पुरुष	65 (57-73)	50 9 (45-59)	36.8 (32-43)
स्त्रियाँ	61 5 (44-76)	46 5 (38-62)	35 7 (30-45)
गिबन	90 7 (81 103)	97.8 (83-112)	58.1 (48-72)
ओरांग-उटैन	81 8 (76-95)	78 4 (73-91)	63 4 (56-71)
गोरिल्ला	73 0 (70-76)	60 5 (59 62)	55 0 (53-57)
चिम्पैंजी	73 5 (58-68)	59 1 (56-61)	57.5 (51-62)
प्राचीनतम अपूर्ण बन्दर तथा			
पर्णाहारी बन्दर	42 5 39.5	45 0-38 2	29 7 26 0
हिमालय-कपि	50.0-47 5	51 6-42.0	38 7 31 4
बैबून	54 6-49 0	57.2 53 6	37 0 31 9
नई दुनिया के बन्दर	46.0 36.6	46 0-31 7	29 0-26.6
मकड़ बन्दर	72	68	51
लेमूर	39 3-31 7	38.3 32 0	29.4 25 7

मानवी प्रगण्डिका (humerus = ह्यू मरस) में यदा-कदा एक मनोरंजक विपर्यय (atavism) देखने को मिलता है—इसमें अन्तःकपरिसन्धिकन्द-छिद्र (entepicondyloid foramen) मिलता है। यह अधिकांश प्रधानकों की विशिष्टता है। लुपाइयों (सम्भवतः मारसोपियल्स को छोड़कर) लगभग समस्त सम्पूरी दाक्षिणों कुछ हापालिया (hapalae) आमतौर में सिद्ध मारमोसट (मिमोप्रोसबस राजेसिया मिनायस) में मकड़ बन्दरों (एटिलीज) को छोड़कर तमाम सीबस (cebus) बन्दरों में भूरे बाल बाले मकड़ बन्दरों (ब्रैकीटिलीज-ऐटिलीज अराक्नायड्स है। ग्रीफरास तथा इनके जैसे रूपों में) तथा हाउलरों (alouatta) में यह मिलता है। यह छिद्र निम्नवर्ग के अन्य (प्राचीनतमो) बन्दरों अथवा मानव-सभा में नहीं पाया जाता। जब कभी किसी मनुष्य में यह होता है तो उसका रूप आमतौर में अस्थिमय प्रवर्धों (bony projections) के एक तन्त्र जोड़ का होता है या एक कण्डरापट्ट (tendinous band) में जुड़े रहते हैं। उनका बाहुरीय धमनी (brachial artery) तथा मध्यमध्य तन्त्रिका (medial nerve) आमतौर में उस पट्ट के बीच चली जाती है उसी तरह जिस तरह कि उन प्रधानकों में होता है जिनमें साधारणतया यह छिद्र रहता है।

मानवी प्रगण्डिका (human humerus) की एक खास विलक्षणता यह है कि उसके

लम्ब अक्ष (long axis) के सम्बन्ध में उसकी अस्थि के निकटस्थ भाग में बहुत काफी मरोड़ (twist) या ऐंठन (torsion) पाई जाती है। उसकी जोड़वाला तल (articulating surface) अन्दर की ओर मुड़ा रहता है क्योंकि उसका असफलक (स्कैपुला) की संयुक्त मुहा नीचे की अपेक्षा पार्श्व की ओर अधिक मुड़ी हुई रहती है। अन्य तमाम प्राइमेटों में असफलक की यह संयुक्त मुहा नीचे की ओर घूमी हुई रहती है। प्रगण्डिका की यह ऐंठन केवल मनुष्य तथा मानव-सम वानरों में ही पाई जाती है परन्तु मानव-सम वानरों में यह इतनी अच्छी तरह विकसित नहीं होती।

मनुष्य की उत्पत्ति वृक्षों पर रहनेवाले किसी वानरानुगम (pithecoid) से हुई है यह बात केवल वयस्क में ही नहीं जाहिर होती। उदाहरण के लिए नवजात शिशु के हाथ की परिग्राही शक्ति (manual prehension) अचम्भे में डाल देने वाली होती है। जैसाकि हनरी डूमण्ड एवं राबिन्सन तथा दूसरे अनुसन्धानकर्ताओं ने प्रमाणित कर दिया है किसी छड़ी अथवा अंगुली को अपनी अंगुलियों से पकड़कर बच्चा बहुत देर तक लटका रह सकता है। डूमण्ड ने एक घंटे से लेकर एक महीने तक की आयु के 60 भिन्न भिन्न बच्चों का अध्ययन किया था। 2 सेण्टीमीटर मोटी छड़ी को अथवा अनुसन्धाता की अंगुली को पकड़कर सभी बच्चे 10 सेकंड से अधिक तक हवा में लटके रहे थे। तुरन्त जन्मा शिशु 30 से लेकर 60 सेकंड तक लटका रह सकता है। तीन सप्ताह की आयु के शिशुओं ने इस सम्बन्ध में सबसे अधिक क्षमता प्रदर्शित की थी—उनमें से अनेक डेढ़ मिनट तक लटके रहे थे और कुछ ऐसे भी थे जो 2 मिनट 35 सेकंड तक लटके रहे थे। हवा में वे अपनी टाँगों को अपने शरीर के साथ समकोण पर (at right angles) मोड़े हुए लटके रहे थे। शिशुओं ने भय के कोई चिह्न नहीं प्रकट किए थे। वे रोते केवल तभी थे जब उनकी शक्ति जवाब देने लगी थी (आर॰ एस॰ मन॰ 1920)।

बन्दरों की ओर ध्यान से देखने पर आदमी को मालूम होता है कि आगे के अपने अंगों (fore limbs) का उपयोग भोजन को पकड़ने तथा पेड़ों पर चढ़ने दोनों कामों के लिए वे करते हैं। हाथों से वे फलों का छिलका निकाल देते हैं और भोजन को मुँह तक ले जाने के लिए भी वे उनका इस्तेमाल करते हैं। विभिन्न वस्तुओं को वे उठा लेते हैं और अपनी आँखों के समीप रखकर ध्यानपूर्वक उनका अध्ययन करते हैं। आराम के समय अपने हाथों का इस्तेमाल बन्दर दूसरे बन्दर के बालों में से कीड़े-मकोड़ों तथा काँटों को देखो से निकालने के लिए करता है। बन्दर के पीछे के अंग (hind limbs) मुख्यतया उसे सहारा देने तथा चलने में उसकी मदद करने का काम करते हैं परन्तु अनेक बन्दर उनका उपयोग खुजलाने भोजन पकड़ने तथा अनेक दूसरे कामों के लिए करते हैं।

सीधी खड़ी स्थिति की ओर संक्रमण की आरम्भिक अवस्थाओं में हमारे पूर्वज अपने आगे के अंगों का उपयोग चलने के लिए संभवतः बहुतायत से किया करते थे। जमीन पर चलते या स्थिर खड़े होते समय सहारा देने की उनकी प्रत्यक्ष भूमिका धीरे-धीरे कम होती गई और अन्त में वह पूर्णतया समाप्त हो गई। फिर, द्विपदीय प्रचलन की वजह से

जब के एक अस्त्र के रूप में उसका मूल्य एकदम बढ़ जाए। इस तरह के उदाहरणों से हमारे पूर्वजों को प्राकृतिक औजारों का सचत रूप से सस्कार करने की प्रेरणा मिली होगी। परन्तु पत्थर को तेज करने की प्राचीनतम विधियाँ भी बहुत ही धीरे-धीरे विकसित हुई थी।

शरीर को सहारा देने के काम से हाथ अगर मुक्त न हुआ होता तो काम की प्रविधियों का विकास असंभव होता परन्तु अगर पैर इस मात्रा में सक्षम होते कि शरीर को सीधी खड़ी अवस्था में सहारा देने का काम कर सकें तो भी काम की प्रविधियों का विकास उतना ही असंभव बना रहता। फिर सीधे खड़े होकर चलने सकने के परिणाम स्वरूप शरीर के ढांचे में परिवर्तन हुआ। उसकी निरन्तर प्रगति ही मनुष्य के शारीरिक विकास की खास विशिष्टता है। प्राचीन मानव दो पैरों पर चलने में सबसे पहले इसलिए सफल हुआ था कि उनके पूर्वजों की ऊर्ध्व देह-शाखाएँ उसकी अध: देह-शाखाओं के समान उसी मात्रा में चलन के काम के अनुकूल नहीं बनी थी। इसलिए ऊपर की देह-शाखाओं की नई कार्यशीलता (functional activities) को उन सर्वाधिक महत्वपूर्ण चीजों में से एक माना जाना चाहिए जिन्होंने सीधे खड़े होकर चलन (orthogrede locomotion) का मार्ग प्रशस्त किया है। इस भांति बांहों की मुक्ति तथा उनका रूप-परिवर्तन मानव प्रजनन के क्रम में केन्द्रीय महत्त्व की वस्तु बन जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि हाथ काम का साधन बन गया था और, फिर, उसके द्वारा किए गए सामाजिक श्रम से मनुष्य की सृष्टि हुई थी।

मानव प्रजनन के क्रम में मानवी शरीर की रचना में महान् परिवर्तन हुए हैं। जिस जीवाश्म वानरी शरीर (fossil ape organism) में उसका विकास हुआ है उसकी तुलना में वह महान् रूप से बदल गया है। अन्त में होमिनिडी (hominidae = मानव-वंशियों) के शरीर का विकास अपने शिखर पर आधुनिक मानव के होमोसेपियन्स (homo sapiens) के रूप में पहुँचा है। इनके शरीर की रचना की मुख्य विशिष्टताएँ निम्न हैं चार कक्षाओं के साथ सुस्पष्ट रूप से वक्र एक कशेरुका दण्ड कशेरुका दण्ड के ऊपर टिका हुआ एक कपाल जिसका कर्पर (cranium) अपेक्षाकृत बहुत बड़ा तथा आनन प्रदेश छोटा है एक उच्चकोटि का विकसित मस्तिष्क विशेषतया उसका प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्थ भाग (कार्टेक्स) उच्च रूप से विकसित एक बाह्य नासिका अक्ष-ग्रीवा को *दिशा में विपरीत एक चौड़ा वक्ष काम के साधन के रूप में उच्चस्तर से विशिष्ट हाथ तथा* शरीर के सहारे के रूप में पैर पेशी-न्यास (musculature) में अनेक मांस-पेशी सम्बन्धी विशेषताएँ जिनका शरीर का सीधी खड़ी स्थिति में बनाए रखने की दृष्टि से समायोजन हुआ है नाना मुखभंगिमाएँ (expressions) करने की क्षमता रखनेवाली चेहरे की प्रचुर पेशियाँ।

यदि उनकी बीच की देह-शाखाओं तथा धड़ के पर्याप्त रूप से पर्याप्त पुनर्गठन अथवा अनुकूलन न हुआ होता तो मनुष्य के पूर्वज द्विपदीय चाल को न अपना पाए होते।

उनकी ऊपर की देह-शाखाओं ग्रीवा तथा सिर की पेशियों में भी भारी परिवर्तन हो गए थे।

मानव-सम बानरों की पेशियाँ अच्छी तरह विकसित होती हैं वे प्रत्यास्कन्दी (सचीमी) भी बहुत होती हैं परन्तु वे स्पष्ट नहीं दिखाई देती। मनुष्य की पेशियों की अपेक्षा चिम्पैंजी की पेशियों में वजन उठाने की अधिक शक्ति होती है। गोरिल्ला की शारीरिक शक्ति अन्य किसी भी प्रधानक से अधिक होती है। परन्तु, मानव-सर्मो का पेशीतन्त्र पेड़ पर चढ़ने के काम के अनुकूल होता है और मनुष्य के पेशीतंत्र से जो जमीन पर सीधे चलने के कार्य के अनुकूल बन गया है वह भिन्न होता है।

कुछ पेशी पेशियाँ होती हैं जो पेड़ पर चढ़ने के काम के लिए आवश्यक होती हैं। बानरों तथा भिन्न वग के बन्दरों दोनों में ये सुदृढ़ रूप से विकसित पाई जाती हैं। अक्षफलक ग्रीवा की पेशियाँ (scapular-cervical muscles) तथा ऊपरी बाहु तथा पीठ को जोड़नेवाली पेशियाँ ऐसी ही पेशियाँ हैं। विरले व्यक्तियों को छोड़कर मनुष्यों में ये पेशियाँ नहीं मिलती और जब मिलती भी हैं तो एकदम अविकसित रूप में। परन्तु मनुष्य की ऊपरी देह-शाखाओं में अँगूठे की स्वतन्त्र पेशियाँ (abductor pollicis longus) होती है। अधिकांश बानरों में न्यूनाधिक घनिष्ठता के साथ ये पेशियाँ अँगुलियों को मिली-जुली आकोचक पेशियों (common flexor muscles) के साथ सम्बद्ध रहती हैं। शरीर के सीधे खड़े रहने के कारण केवल नीचे की देह-शाखाओं में पैर की पादतलीय पेशियों (plantar musles) का अत्यधिक ह्रास हो गया है किन्तु नितम्बकी (gluteal) औविक (femoral) तथा जंघपिण्डीय (sural) पेशियों का निरन्तर विकास ही होता गया है।

मनुष्य के पेशी-तंत्र में एक तरफ जहाँ नये तत्वों का विकास हुआ वहीं उसी के साथ-साथ दूसरे तत्त्वों का ह्रास भी हुआ। इसके अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। पुच्छीय (caudal) पेशियों का ह्रास तथा नितम्ब की पेशियों का शक्तिशाली विकास—इन्हीं उदाहरणों में से एक है।

आधुनिक मानव का पेशी-तन्त्र तथा जिसके साथ यह जुड़ा हुआ है वह कंकाल विकास क्रम में साथ-साथ बदल गए हैं। आधुनिक मानव की वर्तमान अधिक उन्नत प्रकार की द्विपदीय चाल इसी परिवर्तन के कारण सम्भव हो सकी है। जीव-यान्त्रिकी (bio-mechanics) की दृष्टि से मनुष्य का सीधे खड़े होकर चलना एक अत्यन्त मौलिक प्रकार का प्रचलन है। मनुष्य जब सीधा खड़ा होता है तब उसके नितम्ब तथा जानुसन्धियों की तदनुरूप रचना के कारण उसकी टाँगें उसके शरीर के साथ एक ही रेखा में होती है। (चौपायों की टाँगों की तरह वे उसके साथ समकोण नहीं बनातीं।) उसका कपाल ग्रीवा के साथ विशेष ढंग से संबद्ध है इसलिए उसका सिर रीढ़ के ऊपर खूब अच्छी तरह से टिका रहता है।

7 शरीर के समानुपात (proportions) तथा असममिति (asymmetry)

सीधे खड़े होकर चलने में ज्यों-ज्यों हमारे पूर्वज प्रवीणता प्राप्त करते गए, त्यों-त्यों मानवी शरीर में ऐसे समानुपातों का विकास होता गया जो वानर के समानुपातों से अत्यधिक भिन्न हैं (इनमें से कुछ विशिष्टताओं पर ऊपर विचार किया जा चुका है)। वानर की तुलना में अपेक्षाकृत छोटी ऊपर की तथा लम्बी नीचे की बाहु-शाखाएँ मानव की विशिष्टता है। वानर के आगे के अंग पीछे के अंगों की अपेक्षा लम्बे होते हैं। टाँगों की लम्बाई तथा धड़ के सम्बन्ध का जब हम अध्ययन करते हैं तब हम देखते हैं कि वानर की टाँगों की अपेक्षा मनुष्य की टाँगें अधिक लम्बी होती हैं।

आगे के अंगों की अपेक्षा पीछे के अंगों का लम्बा होना—यह प्रधानकों की खास विशेषता है। टार्सियरों तथा सिफाका लेमूरों के आगे के अंग उनके पीछे के अंगों की अपेक्षा बहुत ही छोटे होते हैं। इस दृष्टि से ये जर्बोआ (चरसाकु) तथा कंगारू से कुछ-कुछ मिलते हैं। पीछे के लम्बे और आगे के छोटे अंग (मानव-सम वानरों को छोड़कर) केवल अमरीका के मकड़ बन्दरों (Ateles) में पाए जाते हैं।

जहाँ तक धड़ की तुलना में टाँगों की सापेक्ष लम्बाई की बात है, मकड़ बन्दर गिब्बन तथा ओरंग-उटान मनुष्य के सबसे अधिक नजदीक आते हैं, चिम्पैंजी और गोरिल्ला और भी दूर हैं। दूसरी ओर, जहाँ तक ऊपर की देह-शाखाओं की सापेक्ष लम्बाई की बात है (धड़ की लम्बाई के प्रतिशत के रूप में) गोरिल्ला तथा चिम्पैंजी मनुष्य के ज्यादा समीप आते हैं और ओरंग उटान तथा गिब्बन और अधिक दूर होते हैं। पहाड़ों तथा तटवर्ती गोरिल्ला के अन्तर का अध्ययन करते हुए शुल्ट्ज ने (1934) देखा था कि पर्वतीय गोरिल्ला की भुजाएँ तटवर्ती गोरिल्ला की भुजाओं से छोटी थीं, इसीलिए उसने उन्हें 'छोटी भुजाओं वाला' तक कह दिया था। मानव तथा मानव-समों के शरीर के अनुपातों में जो तीव्र अन्तर होता है वह नवजात शिशु में आंशिक रूप में अनुपस्थित होता है। शिशु की भुजाएँ उसकी टाँगों से लम्बी होती हैं, उसकी भुजाओं का फैलाव उसके शरीर की लम्बाई से अधिक होती है और उसका धड़ भुजाओं अथवा टाँगों से अधिक लम्बा होता है।

लम्बाई के सम्बन्धों के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि चौड़ाई के अनुपातों (ratios) की जाँच की जाए, विशेष तौर से वक्ष (thorax) तथा श्रोणि-प्रदेश (pelvis) की चौड़ाई के अनुपातों की। इस क्षेत्र में अपने चौड़े वक्ष तथा श्रोणि प्रदेश के कारण मनुष्य उसी वर्ग में आ जाता है जिसमें मानव-सम वानर हैं। किसी हद तक यह पूरा वर्ग सीधे खड़े होकर चलनेवालों का (orthograde) वर्ग है और इस बात में अन्य प्रधानकों से बहुत भिन्न है। जहाँ तक चौड़ाई में वृद्धि की बात है, गोरिल्ला मनुष्य के सबसे समीप और गिब्बन उससे सबसे दूर है। सीधे खड़े होकर चलने के कारण मनुष्य का श्रोणि-प्रदेश चौड़ा हो गया है और विस्तृत-संधि से उसकी टाँगें दूर-दूर स्थित होती हैं जिससे कि खड़े होने और चलने में स्थिरता बनी रहे।

मादा-श्रोणि-प्रदेश नर के श्रोणि-प्रदेश से अधिक चौड़ा होता है उसका रूप-विन्यास मादा शरीर के बच्चा जनने के अनुकूल बनने के क्रम में हुआ है। साथ ही साथ इस अत्यन्त चौड़ मादा श्रोणि प्रदेश की वजह से तन चलते समय मादा शरीर की स्थिरता कुछ कम हो जाती है तथा उसमें अन्तर्जानुता (Knock Kneed) का वह साधारण आसन (posture) देखने को मिलता है जो अनेक स्त्रियों की विशेषता होती है।

बहुत सम्भव है कि मानव-सम तथा मानव के बन्दर-वानर (simian) जैसे पूर्वज ऐसे वानर थे जिनके बाँह के अंग पीछे के अंगों की तुलना में अधिक लम्बे होते थे। बाद में चिम्पैंजी तथा ओरंग-उटैंग के पूर्वजों में यह अन्तर और अधिक मात्रा में बढ़ गया परन्तु उस अनुपात में वह नहीं पहुँचा जिसमें कि गोरिल्ला चिम्पैंजी तथा मानव के सामान्य पूर्वजों में वह मिलता था। मनुष्य के बाद के पूर्वज पेड़ों से नीचे उतर आए और उन्होंने भूमि के जीवन को अपना लिया इसकी वजह से पीछे के अंगों पर चलने की उन्हें बान पड़ गई। प्राकृतिक वरण के द्वारा उनकी देह-शाखाओं के समानुपातों में धीरे-धीरे परिवर्तन लाया गया और अन्त में वे इतनी बदल गई कि उनका अनुपात मानव-सम वानरों की देह-शाखाओं के अनुपात का बिलकुल उल्टा हो गया।

सीधे खड़े होकर चलने तथा काम करने के कारण मनुष्य के शरीर में अनेक असंमितियाँ पैदा हो गई हैं। अब ये उसकी एक विशिष्टता बन गई हैं। यह बात बहुत दिनों से ज्ञात है कि मानव-शरीर के दाहिने और बाएँ पक्ष में आकृति तथा संरचना में पूर्णतया समिमीय (symmetrical) नहीं है। उदाहरण के लिए मनुष्य के चेहरे को ले लीजिए उसके दाहिने और बाएँ पार्श्वों में अधिकतर उल्लेखनीय अन्तर होता है। यदि पूरे चेहरे के दो चित्रों को जिनमें से एक नैगेटिव (प्रतिबिम्ब) के उल्टी तरफ से छापकर निकाला गया है काट लिया जाए और बाएँ तथा दाहिने अर्द्धांशों को एक साथ जोड़ दिया जाए तो बाएँ और दाहिने चेहरों के चित्र प्राप्त हो सकते हैं। बहुत बार चेहरे की दाहिनी और बाईं तस्वीरें इतनी भिन्न होती हैं कि उन्हें देखकर दो अलग-अलग व्यक्तियों की तस्वीरों का भ्रम हो सकता है।

आकृति-सम्बन्धी तथा कार्य-सम्बन्धी असममिति के योग का एक अच्छा उदाहरण मनुष्य के हाथों में मिलता है। अधिकांश व्यक्ति दाहिने हाथवाले होते हैं। बाएँ हाथ वाले लोगों की संख्या कदाचित् 2 से 5 प्रतिशत से अधिक नहीं होती। बच्चों में बाएँ हाथवालों की संख्या इससे कहीं ज्यादा 10 प्रतिशत तक होती है। कुछ अनुसंधान कर्ताओं का कहना है कि 23 प्रतिशत तक शिशु बाएँ हाथवाले होते हैं (विलहेल्म मुड बिग 1932)। सात महीने की अवस्था तक बच्चा आमतौर से दोनों हाथों से बराबर काम करनेवाला या दुहत्था (ambidexterous) होता है। दाहिने या बाएँ-हाथ वाला वह अपने जीवन के प्रथम सात वर्षों में बन जाता है। परन्तु दुनिया तथा उन तमाम वस्तुओं और औज़ारों का इस्तेमाल करने की वजह से जो केवल दाहिने हाथ से काम में लाए जा सकते हैं जन्मजात बाएँ हाथवाले (congenitally-left handed) बच्चे

भी काम के सम्बन्ध में दाहिने हाथ वाले (functionally right handed) बनने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

दाहिने हाथ के अधिक इस्तेमाल से उसकी रचना पर असर पड़ता है और दाहिनी भुजा बाईं की अपेक्षा कई मिलीमीटर या कई सेन्टीमीटर तक लम्बी हो जा सकती है। दाहिने हाथ का प्राथमिकतापूर्ण प्रयोग (preferential use) अन्य अंगों की विशेष तौर से मस्तिष्क की रचना पर प्रभाव डालता है। उससे सम्बन्धित प्रदेश में कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) अधिक सबल रूप से विकसित हो जाता है—दाएँ हाथवाले लोगों में यह प्रदेश उनके मस्तिष्क के बाएँ गोलार्द्ध में होता है। बाएँ हाथ वाले लोगों में स्वभावतः ही दाहिने गोलार्द्ध के उससे सम्बन्धित प्रदेश की तुलना में यह (कॉर्टेक्स) कुछ कम विकसित होता है।

वानरों में यह बात मुश्किल से ही मिलती है कि वे किसी एक हाथ का अधिक (प्राथमिकतापूर्ण) इस्तेमाल करते हों। कुछ अनुसंधानकर्ताओं का कथन है कि वानर सब दाहिने हाथवाले होते हैं। उदाहरण के लिए, विक्टर हैम्सन (1926) इस बात का उल्लेख करता है कि हैम्बर्ग के चिड़ियाघर का एक गोरिल्ला चीजों को फेंकने के लिए अपने दाहिने हाथ का इस्तेमाल करता था। विक्टर हैम्सन को इस बात की रिपोर्ट कार्ल हेगेनबेक ने दी थी। गोरिल्लों के कपालों के अध्ययन के आधार पर हैम्सन यह निष्कर्ष निकालता है कि अनेक गोरिल्लों का बायाँ प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध (cerebral hemisphere) दाहिने प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध की अपेक्षा अधिक विकसित होता है। इसके भी हाल में जी० आर० रोगिन्स्की (1953) ने रिपोर्ट दी थी कि कुछ बन्दर दाहिने हाथ का या बाएँ से अधिक शक्तिशाली होता है अधिक इस्तेमाल करते हैं (यही बात वानरों के सम्बन्ध में भी सही है। देखिए पी० सफ् 1976)।

बन्दर आम तौर से द्विहस्त होते हैं। वे अपने दोनों हाथों का लगभग बराबर (with equal frequency) इस्तेमाल करते हैं। आगे के दोनों अंगों का बराबर इस्तेमाल करना अन्य तमाम स्तनधारियों की भी विशेषता है। ऐसा लगता है कि काम की विभिन्न क्रियाओं के दौरान आक्रमण करने, सुरक्षा करने तथा शिकार करने के दौरान में किसी-न-किसी कारण से दाहिने हाथ का अधिक (प्राथमिकतापूर्ण) इस्तेमाल किया जाना ज्यादा सुविधाजनक बन गया था। फिर दाहिने हाथपन (right handedness) के विकास के लिए यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण साबित हुआ था (कोवलर 1932)।

दाहिने या बाएँ हाथवाला होने के अलावा मनुष्य दाहिने (dextropedal) या बाएँ पैरवाला (sinistropedal) भी हो सकता है। असममिति का यह रूप इस बात पर निर्भर करता है कि खड़े होने या चलने के काम में किस पैर का अधिक इस्तेमाल किया जाता है। दाहिने पैर वाले लोगों में दाहिना पैर आमतौर से अधिक विकसित तथा लम्बा होता है। इसका वास्तविक कारण तो यह है कि सीधे खड़े होकर चलने की वजह से एक पैर के अधिक इस्तेमाल में अधिक सुविधा होती थी। आज इसी की वजह से एक पैर का

अधिक इस्तेमाल किया जाता है। यह सर्वविदित है कि जब वजन का एक विशेष (particular) टाँग के ऊपर डाला जाता है तो कम थकान महसूस होती है। चौपाया अपना भार को दाहिने और बाएँ अंगों पर क्रमांकित बराबर-बराबर रखते हैं।

फुस्टज (1937) ने 7.3 व्यक्तियों तथा 530 उच्च वर्ग के वानरों और मराकों (कपियों) के कंकालों का लेकर उनकी देह-शाखाओं की असममिति का अध्ययन किया था। उसने देखा था कि ऊर्ध्व (अथवा आगे की) देह-शाखाओं (तथा अगांकों) की लम्बी अस्थियों में असममितीय चिह्नों का जो प्रतिशत वितरण तथा उनकी सापेक्ष संख्या मिली थी वह मानव प्राणियों तथा बन्दरों में बहुत भिन्न थी। नीचे की (अथवा पीछे की) देह शाखाओं में मिलनेवाली असममिति की प्रतिशतता मनुष्य वानरों तथा निम्न वर्ग के बन्दरों—सबमें एक समान थी। फुस्टज की धारणा सही है कि दाहिने या बाएँ हाथ का अधिक (प्राथमिकतापूर्ण) तथा नियमित इस्तेमाल केवल मनुष्य में ही दिखलाई देता है। उसका यह कहना भी सही है कि खड़े होने या चलने में किसी एक खास टाँग का उपयोग किए जाने की अपेक्षा किसी एक हाथ के विशेष रूप से तथा अत्यधिक इस्तेमाल किए जाने के अनुपातीय रूप से अधिक उदाहरण मिलते हैं। किसी भी वानर की अपेक्षा आधुनिक मानव में असममिति कहीं अधिक सशक्त रूप से विकसित दिखलाई देती है। यह अनेक इन्द्रियों में जिनमें आँखें भी शामिल हैं मिलती है।

मनुष्य की शरीर-सम्बन्धी (anatomical) तथा शरीर-क्रिया सम्बन्धी (physiological) असममिति का एक अच्छा उदाहरण हमें उस समय दिखलाई देता है जिस समय खुले मैदान में किसी बर्फ के तूफान में अथवा पूर्ण अँधेरे में खो गए लोग एक चक्कर में हटा चलते दिखलाई देते हैं और घूम घूमकर फिर उसी स्थान पर लौट आते हैं जहाँ से व चले थे। किसी घने जंगल में रास्ता खो बैठने वाले मनुष्य का या सागर में पथ भ्रष्ट हो जाने पर किसी तैराक का भी ठीक यही हाल होता है अगर दिशाओं का पता लगाने का उसके पास कोई साधन न हो। दाहिने हाथ वाला आदमी बाईं तरफ भटकेगा और घड़ी की सुई की उल्टी दिशा में चक्कर लगाकर वहीं आ जाएगा तथा बाएँ हाथ वाला आदमी दाहिनी तरफ जाएगा तथा घड़ी की सुई की तरह चक्कर लगाकर वहीं लौट आएगा।

हमारे पूर्वजों द्वारा कुछ प्रदेशों का जीवन शुरू करने के साथ-साथ खड़े होकर चलने के ढंग का जो उनके अन्दर विकास हुआ था उसका उनके पूरे शरीर की रचना पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा था। मानव-शरीर में असममिति के जो इतने चिह्न मिलते हैं वे भी उसीसे प्रभावित होकर बने थे।

वानर के मानवीकरण (humanizing) के सम्बन्ध में सीधे खड़े होकर चलने (erect locomotion) का जो प्रभाव पड़ा है उससे कम महत्त्वपूर्ण प्रभाव उस पर हमारे तात्कालिक पूर्वजों के मस्तिष्क के महान् विकास का नहीं पड़ा है। हमारे ये तात्कालिक पूर्वज वे द्वि-पदीय महान् वानर थे जो तृतीय काल (tertiary period) के अन्तिम दिनों में रहते थे। उस समय तक उन वानरों के मस्तिष्कों का आकार काफी

ऊँचा विकास यदि न हो गया होता तो भोजन प्राप्त करने तथा हिंस्र पशुओं (beasts of prey) को मार भगाने के संघर्ष की आवश्यकताओं के लिए भी वे औजारों का इस्तेमाल करने लगते—यह असम्भाव्य मालूम होता है। और तब मनुष्य के निर्माण (making of man) के लिए आवश्यक सामग्री वे प्रस्तुत कर पाते—यह भी असम्भाव्य ही लगता है। सीधी खड़ी स्थिति के प्रचलन (erect locomotion) मस्तिष्क के विकास तथा आहार में हुए परिवर्तनों के प्रभाव के परिणामस्वरूप मस्तिष्क के वास स्थान (housing) यानी कपाल (skull) का अत्यन्त विभिन्न विकास हो गया है।

8 कपाल

मनुष्य तथा दूसरे प्रधानकों के कपाल में मूलभूत अन्तर यह होता है कि मनुष्य का तंत्रिका कर्पर (neurocranium) उसके आनन-प्रदेश (facial region) से काफी बड़ा होता है। उदाहरण के लिए, केवल नई दुनिया का एक ही बन्दर—गिलहरी (squirrel) अथवा मृत्यु के सिर वाला (death's head) बन्दर (Saimiri Voigt) ऐसा होता है जिसका कपाल मनुष्य के कपाल जैसा होता है। इसका कारण यह है कि उसका महारन्ध्र (foramen magnum) पश्च कपाल (occiput) के लगभग एकदम बीचोबीच (in the centre) होता है और उसमें मस्तिष्क की एक पेटी (brain-case) होती है जो आनन के कपाल से बहुत बड़ी होती है। इसके विपरीत चिल्लाने वाले बन्दरों (howling monkeys) बैबूनों ओरंग-उटंगों तथा गोरिल्लों के एक थूथनी (मुंह) होती है जो तंत्रिका कर्पर (neurocranium) से कहीं अधिक बड़ी होती है।

आधुनिक मानव के कपाल में बाह्य उभार बहुत कम होता है। यह चीज मादा कपाल के सम्बन्ध में विशेष रूप से सही है। अधिकांशतया मादा कपाल को नर-कपाल से आसानी से अलग किया जा सकता है क्योंकि उसकी अस्थियाँ अपेक्षाकृत पतली होती हैं उसका भार कम होता है तथा उसका गोल मस्तकीय उभार बहुत स्पष्ट होता है। चिम्पैंजी और गिब्बन के कपालों का ऊपरी उभार दूसरे मानवाभों की अपेक्षा कम होता है। मादा ओरंग उटंग और गोरिल्ला के कपाल भी कम उभरे हुए होते हैं परन्तु इन महाकाय प्राणियों के नरों के कपाल बड़े स्थूल (massive) होते हैं उनमें शिखाएँ (crests) अस्थि दण्ड (bony bars) तथा चाप (arches) होती हैं। (चित्र 45 क और 48 में)।

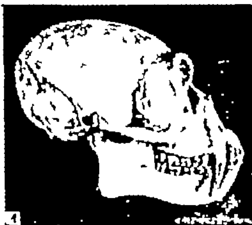
मनुष्य की शंख अस्थि (temporal bone) में कई विशिष्ट स्पष्ट रूप में विकसित चूचुक-रूपी (mammiform) (कर्णमूल) तथा सूचिका-रूपी (stylus shaped) (शर) प्रवर्ध (processes) होते हैं जो अधिकांश अन्य प्रधानकों में नहीं मिलते। मनुष्य की बाह्य अस्थिमय श्रवण-नाल (osseus auditory canal) बानरों की अपेक्षा बहुत छोटी होती है। उसकी शंख अस्थि के अधिकांश भाग का तल खुरदरा (rough) होता है जिस पर शंख पेशी (temporal masticatory muscle) की उत्पत्ति यहीं तथा

पार्श्विका अस्थि (parietal bone) पर होती है और फिर वह अधोहनु-अस्थि (mandible) के चंचुभ-प्रवर्ध (coronoid process) से जुड़ जाती है। नर गारिल्लों तथा ओरंग उटैनों की शंख पेशियाँ (temporal muscles) अत्यन्त सुदृढ़तापूर्वक विकसित हुई होती हैं। उनकी ये पेशियाँ न केवल शंख को तथा पार्श्विका की अस्थियों से बल्कि अनुदैर्घ्य (अग्रपश्च) [longitudinal (sagittal)] शिखा (crest) से भी निकलती हैं। कुछ व्यक्तियों में यह शिखा पाँच सेन्टीमीटर तक ऊँची होती है। ये शंख-पेशियाँ पश्च-कपाल की एक अनुप्रस्थ शिखा (an occipital transverse crest) से भी निकलती हैं। यह शिखा भी उतनी ही स्थूल होती है।

शंखास्थियों (temporal bones) की अग्र उपरि सीमा (antero-superior edge) पक्षक बिन्दु (pterion) का एक भाग होती है। यह पक्षक बिन्दु टाँकों (sutures) का खास मिलन-स्थान (junction) होता है उसकी अपनी विशिष्ट आकृति होती है विभिन्न प्रधानकों के कपालों के शंख विवरकों (temporal fossa) के समीप यह आकृति भिन्न-भिन्न रूपों में बनती है। लुपाइयों सम्पूरा तथा टार्सियरों में जतुकपक्षास्थि (alisphenoid) का अर्थात् जतुकास्थि (sphenoid) के विशाल पक्ष का शंखास्थि के साथ मिल जाना एकदम आकस्मिक है। नई दुनिया के बन्दरों की गण्ड अस्थि (zygomatic bone) बहुधा इस का छूती रहती है। पुरानी दुनिया के अधिकांश बन्दरों में शंख-अस्थि ललाटकीय अस्थि से मिली हुई होती है यह ललाटकीय अस्थि गण्ड अस्थि को जतुकास्थि के विशाल पक्ष से तथा गण्डास्थि से विलग कर देती है। पक्षक बिन्दु की इस तरह की रचना गोरिल्लों और चिम्पैंजियों में बहुतायत से मिलती है परन्तु ओरंग उटैन अथवा गिब्बन में वह विरले ही दिखलाई पड़ती है।

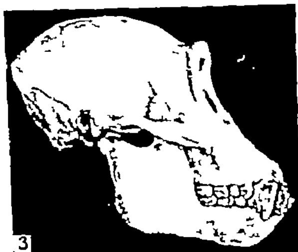
अधिकांश मनुष्यों में पक्षक बिन्दु उसकी शंखास्थि (temporal bone) तथा जतुकपक्षास्थि (alisphenoid) अथवा जतुकास्थि (sphenoid) के बड़े पक्ष के बीच बना हुआ एक टाँका होता है। इस दृष्टि से गिब्बन और ओरंग-उटैन मनुष्य से अधिक मिलते जुलते हैं गोरिल्ला और चिम्पैंजी उससे दूर होते हैं। कदाचित् पक्षक बिन्दु का जातीय इतिहास की दृष्टि से कोई बड़ा स्वतन्त्र महत्त्व नहीं है वह सम्भवतः कपाल के पुनर्गठन (reconstruction) के दौरान घटनेवाली क्रियाओं का ही एक प्रतिबिम्ब है (बाइलट 1932)। प्रधानकों में पक्षक बिन्दु की आकृति किसी सीमा तक मग्ज के विकास स्तर पर निर्भर करती है।

एम. एफ. एशले माण्टेगू (1933) ने बताया है कि पक्षक बिन्दु के निर्माण के लिए गण्डास्थि (zygomatic bone) के विकास-स्तर का क्या महत्त्व होता है। लुपाइयों से लेकर मानव-सभों और मानव तक विभिन्न प्रधानकों के कई हजार कपालों के अध्ययन के आधार पर उसने सिद्ध किया था कि पक्षक बिन्दु की बनावट की तीन बुनियादी किस्में होती हैं। विशेष तौर से उसने बताया था कि लुपाइयों के पक्षक बिन्दु की आकृति सम्पूरा के पक्षक बिन्दु की आकृति जैसी होती है और गोरिल्ला





चित्र 43 (क). दो प्राक् मानव-सदृशों के कपाल
1 [illegible] ([illegible])
2 [illegible] का [illegible] ([illegible])





चित्र 48(ख) वर्तमान मानव-सभा के कपाल
3 कैमरून का चिम्पांजी (पैन ट्रोग्लोडाइट्स) 4 वयस्क गोरिल्ला
(गोरिल्ला गोरिल्ला सैवेज तथा वाइमन)
आकार सहज का $\frac{1}{3}$ $\frac{1}{3}$ $\frac{1}{3}$ $\frac{1}{4}$ ।
जी. एलियट, 1913 के आधार पर।

के पश्चक बिन्दु की आकृति मनुष्य के पश्चक बिन्दु की आकृति जैसी। दूसरे अनुसंधानकर्ताओं ने उस प्रभाव का उल्लेख किया है जो पक्षक प्रदेश (pterional region) के निर्माण पर प्रधानकों के मस्तिष्क के शंख प्रदेश (temporal region) के विकास का पड़ता है। इसी प्रकार मनुष्य की पार्श्विका अस्थि (parietal bone) के सबल विकास ने ललाटकीय अस्थि (frontal bone) को शंखास्थि से विलग कर दिया है।

ललाटकीय अस्थि पर मिलनेवाले उभार मनुष्य की विशिष्टता हैं। कमजोर रूप में विकसित अधिनेत्रगुहा के कटक (supra-orbital ridges) भी उसी मात्रा में उसकी मानवविशेषता हैं। ये अधिनेत्रगुहा कटक गोरिल्लों और चिम्पैंजियों के कपालों पर पाये जानेवाले स्थूलकाय अस्थिमय वलयों अथवा अधिनेत्रगुहाई स्थूलकों (torus) से तथा आधुनिक मानव के पूर्वजों—पिथेकैन्थ्रोपसों (वानर-मानवों) और निअण्डरथल मानवों के कपालों पर मिलनेवाले कटकों से बहुत भिन्न होते हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि ललाटकीय अस्थि का चेहरेवाला टांका (metopic suture) बन्द नहीं होता बल्कि उसी तरह खुला रहता है जिस तरह जीवन के गर्भ-काल (uterine period of life) में वह खुला रहता है। चेहरेवाला यह टांका आम तौर से निम्न वर्ग के प्रधानकों के कपालों में मिलता है और मनुष्य के कपाल में उसके मिलने को एक विपर्ययण (atavism) ही माना जाना चाहिए। परन्तु, मनुष्य की मस्तिष्क-पेटिका (brain-case) की बढ़ती हुई धारिता के कारण चेहरे के टांके की उत्पत्ति प्रगतिक रूप में एक नई चीज की उत्पत्ति मालूम होती है (उरीसन 1032)।

कपाल के आधार (base) के लगभग बीचोंबीच पश्च-कपाल की अस्थि में एक बड़ा-सा मुँह, एक महा रन्ध्र होता है। जब कपाल एक विशेष स्थिति में जिसे फ्रैंकफुर्ट अथवा जर्मन क्षैतिज स्थिति कहा जाता है, होता है और श्रवण द्वारों (auditory orifices) की ऊपर की कोरें (upper edges) तथा नेत्र कोटरों (orbits) की नीचे की कोरें एक ही क्षैतिज तल पर होती हैं तब महारन्ध्र भी लगभग क्षैतिज अवस्था में ही होता है यद्यपि अधिकांश स्थितियों में वह थोड़ा-सा आगे की ओर झुका हुआ होता है। मानवसमों में वह और पीछे की तरफ होता है किन्तु पश्च-कपाल की अस्थि के उठे हुए किनारे तक नहीं पहुँचता। निम्न वर्ग के बन्दरों तथा दूसरे प्रधानकों व स्तनधारियों में यह महारन्ध्र बहुत पीछे और न्यूनाधिक मात्रा में पीछे की ओर और भी अधिक झुका हुआ होता है।

महारन्ध्र की क्षैतिज स्थिति यह जाहिर करती है कि मनुष्य अपने सिर को गर्दन की पिछली पेशियों की सहायता से स्थिर बनाये रखता है जो मानवसमों की गर्दनों की पेशियों से अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली होती हैं। इसी कारण मानवी कपाल में उस तरह का कोई अग्र-पश्च शिखा (saggital crest) नहीं होती जैसी कि अत्यधिक उन्नत रूप में नर गोरिल्ला तथा ओरांग उटान में दिखाई देती है। यह सही है कि कुछ मानवी कपालों में मुख्यतया नर-कपालों में [illegible] विकसित एक पश्च कपालीय शिखा (occipital crest) होती है। यह शिखा पश्च-कपाल के बाहरी उभार तथा

घाटे [nuchal (nape)] की रेखाओं (lines) के साथ मिल जाती है। यह उसी तरह की होता है जिस तरह की दूसरे प्रधानकों के पदव-कपाल की शिखा होती है।

मानवी कपाल के प्रानन-प्रदेश में एसी कई विशेषताएँ हैं जो विशिष्ट हैं। युग्मित नासा प्रस्थियो (paired nasal bones) के काफ़ी विकास का विषय करने में हम उल्लेख करना चाहिए। नासा प्रस्थियों के नीचे के भाग भाग की ओर कुछ बढ़ रहते हैं और भाम तौर से व एक-दूसरे में संयुक्त नहीं होते। यह मानवी कपाल की एक खास विशेषता है। मानव-समान समेत सभी बन्दरों की नासा प्रस्थियाँ बहुत ही प्रारम्भिक प्रवस्था में प्राम तौर से जन्म से पूर्व के ही काल (pre-natal period) में एक साथ उत्पन्न हो जाती हैं। चौड़ाई में मनुष्य की नासा प्रस्थियों का विकास चिम्पाजी प्रथवा गोरिल्ला से प्रधिक सादृश्य रखता है। प्रारंग-उटैन की नासा-प्रस्थियाँ प्रधिक सँकरी होती हैं और उनके लम्बे-नुकीले सिरे ललाटकोय प्रस्थि तक के प्रन्दर घुस जाते हैं।

मस्त्रास्थियों के नीचे बाईं ओर दाहिनी ऊर्ध्व हन्वस्थियाँ (maxillae) पर गड्ढ (depressions) होते हैं जिन्हें रद-खातों के विवरक (canine fossae) कहा जाता है। जीवाश्म मानव प्रथवा वानरों और बन्दरों में ये नहीं पाए जाते। मानवी भ्रूण में उर्ध्व हन्वस्थियों के स्थान पर चार प्रस्थियाँ बनती हैं—दो ऊर्ध्व हन्वस्थियाँ (maxillary) और दो छेदक (incisor) प्रस्थियाँ [दूसरे स्तनधारियों की प्रन्तःऊर्ध्व हनु (inter-maxillary) प्रस्थियों के प्रनुरूप]। परन्तु जन्म के समय प्राम तौर से छेदक प्रस्थि के टाँके (incisor bone suture) का कोई चिह्न नहीं दिखलाई देता।

इस बात को कि मनुष्य के प्रन्दर छेदक प्रस्थि नहीं होती शरीरविज्ञों ने प्रठारहवीं शताब्दी में ही नोट कर लिया था। उन्होंने बताया था कि यह एक चीज़ है जिसमें मनुष्य के शरीर की रचना तमाम प्रन्य स्तनधारियों से एकदम भिन्न होती है। किन्तु, कुछ विद्वान उस समय भी ऐसे थे जिन्होंने इस बात का प्रनुभव किया था कि विरले प्रवसरों पर मानवी कपाल के प्रन्दर उसके कड़े तालु (hard palate) पर छेदक टाँकों के भी चिह्न मिल जाते हैं जो ज़ाहिर करते हैं कि ऊर्ध्व हनु तीन भागों में बँटी होती है। प्रग्र भाग में छेदक प्रस्थि तथा ऊर्ध्व हनु-प्रस्थि के बीच टाँका के मिलने के उदाहरण तो और भी कम मिलते हैं। वयस्क व्यक्ति के कपाल पर छेदक प्रस्थि की खोज करने का सम्मान प्राम तौर से महान् कवि और विद्वान वोल्फगाग गेटे को दिया जाता है। वयस्क के कपाल पर छेदक प्रस्थि के चिह्न यद्यपि विरल ही मिलते हैं, परन्तु विकास के गर्भ-काल (uterine period) में एक प्रलग प्रस्थि के रूप में स्पष्ट रूप से वह दिखलाई देती है। उसे प्रन्य स्तनधारियों की प्रन्तःऊर्ध्व हनु (inter-maxillary) प्रस्थि का ही रूप माना जा सकता है।

प्राधुनिक मानव के नीचे के जबड़े प्रथवा प्रधोहनु (mandible) की प्राकृति घोड़े के नाल के समान होती है। उसमें स्पष्ट रूप से बनी हुई एक ठुड्डी (chin protuberance) होती है। पर की ठुड्डी (जाम-युक्त) मेंपुसियोंवाले मिश्रनों प्रथवा स्यामांगों

(symphalangus gloger) के अलावा दूसरे वानरों में ठुड्डी का कहीं कोई आभास तक नहीं दिखाई देता और उनके अधोहनु के दोनों अर्धांशों में या तो एक त्रिकोण (acute angle) बनता है या फिर वे एक-दूसरे के समानान्तर रहते हैं। लेमूर के अधोहनु के दोनों भाग सारे जीवन ही बिना टाँकों के (unsutured) रहते हैं। अधोहनु के मुकुट प्रवर्ध (coronary processes) के साथ मध्यग विवरक मानव-सभों की अपेक्षा मानव के अन्दर कहीं अधिक गहरे तक जाते हैं।

मस्तिष्क-पेटिका (brain-case) का अधिक विकास तथा आनन के कंकाल का अपेक्षाकृत कम विकास होमिनिडी (मानव-कुलिया) की खास विशेषता है। जीवाश्म स्तनधारियों के विकास की यह अन्तिम अवस्था है। जीवाश्म स्तनधारियों में कपाल के प्रतिलोम समानुपात (inverse proportions) ही साधारण बात थी। जीवाश्म मानव सभों के कपाल का विकास भी इन्हीं आधारों पर होता रहा था। प्रोकोंसल (proconsul) तथा ड्रायोपिथिकस (वृक्ष-मानव) से लेकर आस्ट्रेलोपिथेकस तक की जो अनेक चीजें प्राप्त हुई हैं उनमें इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। ढलुवां मस्तक (sloping forehead) भारी अधिनेत्रगुहा स्थूलक (heavy supra-orbital torus) तथा सशक्त अधोहनु जैसी चिम्पैंजी और गोरिल्ला की तरह के मानव-सम वानरों की प्राकृतिक विशेषताएँ ज्यों-ज्यों कम होती गईं त्यों-त्यों मस्तिष्क के विकसित होने, जबड़ों के कमजोर पड़ने तथा सीधे खड़े होकर चलने की आदत के उत्तरोत्तर निखरने के साथ-साथ मानव कुलिया के कपाल की विशिष्टताओं का रूप-विन्यास होता गया।

आदिम जीवाश्म स्तनधारियों के कपाल के तथा उनसे भी प्राचीन सरीसृपों (उरगों) उभयचरों (amphibians) तथा मत्स्य (fish) के कपाल की अनेकों खास विशेषताओं को खास तौर से उनके आनन-प्रदेश की विशेषताओं को वानरों ने विरासत के रूप में प्राप्त कर लिया था। विलियम ग्रेगरी (1930) का यह कहना बिलकुल सही है कि यद्यपि हिब्रू (Hebrew = यहूदिया) के पुराने शास्त्री बराबर यही कहते रहे हैं कि मानव भगवान् की प्रतिमूर्ति है किन्तु आधुनिक विज्ञान ने प्रमाणित कर दिया है कि मानवी चेहरा भी ठीक उन्हीं तत्त्वों से बना है जिनसे गोरिल्ला का चेहरा बना है।[1] उसने प्रमाणित कर दिया है कि मानव तथा मानव-सभों दोनों के चेहरे का ढांचा निम्न वर्ग के मत्स्य पूर्वजों की एक लम्बी शृंखला में से विरासत के रूप में प्राप्त हुआ (inherited) है।

सहस्रों वर्षों में विकसित आनन प्रदेश कपाल के ऊपर का भारी अधिनेत्र स्थूलक तथा उसके साथ वाले उभार के आधार पर यदि निर्णय किया जाए तो मालूम होता है कि नर मानव, उरांग तथा गोरिल्ला का कपाल उच्च वर्ग के प्राइमेटों के विकास की एक शृंखला की चरम उपलब्धि है तथा मानवी रचना विपरीत दिशा में होनेवाले उनके विकास का उच्चतम स्वरूप है। कपाल के ऊपर शिखाओं तथा अस्थियों का प्रस्फुटन कई भिन्न-भिन्न कारणों से होता है। प्राणी के शरीर के आयाम जाति (species) तथा लिंग

सम्बन्धी भेद प्रचलन की किस्म तथा भोजन—उसके अधिक महत्वपूर्ण कारण हैं (वी० वी० बुनाक 1923)। फलों के सख्त छिलकों को काट पाना अथवा पौधों के सख्त भागों को चबा सकना—अधोहनु तथा उसकी पेशियों के सबल विकास पर निर्भर करता है। और इनके इस विकास के लिए आवश्यक होता है कि कपाल का चापछद (vault= गुम्मज) मोटा हो जाए तथा उसकी अस्थियों और उसके अधिक शक्तिशाली अस्थिमय कूटों में जल्दी टाँके लग जाएँ। ये सब चीज़ें मिलकर मस्तिष्क के मुक्त विकास को सीमित कर देती हैं।

उच्च कम के वानर-जैसे प्रधानकों में गिब्बन चिम्पांज़ी तथा मनुष्य का स्पष्ट रूप से एक अलग कम मालूम होता है। पेड़ों में अथवा ज़मीन पर चलते समय गिब्बन अपने शरीर को कमोबेश ऊर्ध्वाधर (vertical) पोज़ीशन में रखते हैं। इसके अलावा वे छोटे ही होते हैं। जैसाकि हम देख चुके हैं वे 90 से 100 सण्टीमीटर की ऊँचाई तक ही बढ़ते हैं। उनका वज़न 5 से 8 किलोग्राम तक होता है। गिब्बन के सिर को अपेक्षाकृत कमज़ोर पेशियाँ सँभाले रहती हैं। चिम्पैंज़ी का कपाल गोरिल्ला अथवा ओरंग-उटैन के कपाल से छोटा होता है। उसका आनन-प्रदेश कम विकसित होता है और उसके सिर को जो पेशीलग्न पोज़ीशन में रखे रहता है वह भी अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली होता है। इसके अलावा दूसरे मानव-सभों के समान ही चिम्पैंज़ी ज्यादातर अर्ध-सीधी अवस्था में चलता-फिरता है, असली चौपाये की तरह वह नहीं चलता। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चिम्पांज़ी के कपाल के अपेक्षाकृत कम उभार का आंशिक कारण उसके शरीर के आयाम (dimensions) तथा उसके चलने का ढंग है (वी० आई० कोचेटकोवा, 1953)।

निम्न वर्ग के बन्दरों में हम बैबून (भीम वानर) को देखें। ज़मीन पर चलने वाले इस बन्दर के कपाल में सबल रूप से विकसित एक तुण्ड (snout) अथवा आननीय विभाजन (facial division) होता है। उसकी मस्तिष्क-कैटिका बहुत कम विकसित होती है। उदाहरण के लिए, दक्षिण अफ्रीका के बबून (चकमा) का कर्पर छोटा होता है और उसके जबड़े खास तौर से शक्तिशाली होते हैं। बैबून के कर्पर का चापछद मोटा होता है और सबल रूप से विकसित उसकी चर्वण (masticatory) तथा अन्य पेशियों के उभर्म जुड़े रहने के लिए उसके बाह्य तल पर साफ-साफ दिखाई देनेवाले कूट बने होते हैं।

बैबून की चर्वण पेशियाँ बहुत मज़बूत होती हैं। वे मध्य शंख तथा पार्श्विका की अस्थियों से संलग्न रहती हैं। उसका कपर स्पष्ट रूप से खुरदरा होता है और उसके ऊपर कूट तथा शिखाएँ तक बनी होती हैं। ये चीज़ें नर बैबूनों में जो मादाओं से बहुत बड़े होते हैं खास तौर से मिलती हैं। चर्वण पेशियाँ उसके मज़बूत दाँतों वाले हनुओं (जबड़ों) को बहुत कसकर बन्द कर सकती हैं। उनसे काटकर बैबून अपने दुश्मन को पूरी तरह घायल और, यहाँ तक कि ख़त्म कर दे सकता है। लूटपाट मचानेवाले बैबूनों से अपने गाँव की

(symphalangus gloger) के अलावा दूसरे वानरों में ठुड्डी का कहीं कोई आभास तक नहीं दिखाई देता और उनके अधोहनु के दोनों पार्श्वों से या तो एक त्रिकोण (*acute angle*) बनता है या फिर वे एक-दूसरे के समानान्तर रहते हैं। वानर के अधो हनु के दोनों भाग सारे जीवन ही बिना टाँकों के (unsutured) रहते हैं। अधोहनु के कपालीय प्रवर्ध (coronary processes) के साथ मसृण विवरक मानव-वर्गों की *अपेक्षा वानर के अन्दर कहीं अधिक गहरे तक जाते हैं।*

मस्तिष्क-पेटिका (brain-case) का अधिक विकास तथा आनन के विकास का अपेक्षाकृत कम विकास होमिनिडों (मानव-वंशियों) की खास विशेषता है। जीवाश्म *स्तनधारियों के विकास का यह अन्तिम चरण है। जीवाश्म स्तनधारियों में कपाल के* प्रतिलोम समानुपात (inverse proportions) ही साधारण बात थे। जीवाश्म मानव सभा के कपाल का विकास भी धीमी गति से ही होता रहा था। प्रोकांसल (pro-*consul) तथा ड्रायोपिथेकस (वृक्ष-मानव) से लेकर आस्ट्रेलोपिथेकस तक की जो अनेक* खोजें प्राप्त हुई हैं उनमें इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। ढलुवाँ मस्तक (sloping *forehead*) भारी अधिनेत्रगुहा स्थूलक (heavy supra-orbital torus) तथा *मजबूत अधोहनु जैसी चिम्पैंजी और गोरिल्ला की तरह के मानव-सम वानरों की प्रारम्भिक* विशेषताएँ ज्यों ज्यों कम होती गई त्यों-त्यों मस्तिष्क के विकसित होने जबड़ों के कमजोर पड़ने तथा सीधे खड़े होकर चलने की आदत के उत्तरोत्तर विकसने के साथ-साथ मानव वंशियों के कपाल की विशिष्टताओं का रूप विन्यास होता गया।

आदिम जीवाश्म स्तनधारियों के पास के तथा उनसे भी प्राचीन सरीसृपों (उरगों) उभयचरों (amphibians) तथा मत्स्य (fish) के कपाल की अनेकों खास विशिष्टताओं को खास तौर से उनके मानव-प्रदेश की विशेषताओं को डार्विन ने विकासवाद के रूप में ग्रहण कर लिया था। विलियम बकरी (1930) का यह कहना बिलकुल सही है कि यद्यपि हिब्रू (Hebrew = यहूदिया) के अज्ञानी पादरी बराबर यही कहते रहते हैं कि मानव भगवान् की प्रतिमूर्ति है किन्तु आधुनिक विज्ञान ने प्रमाणित कर दिया है कि मानवी चेहरा भी ठीक उसी साँचे में बना है जिसमें गोरिल्ला का चेहरा बना है। उसने प्रमाणित कर दिया है कि मानव तथा मानव-सम वानरों के चेहरे का कपाल निम्न वर्ग के *स्तनधारियों से एक समान पूर्वजों से विरासत के रूप में प्राप्त हुआ (inherited)* है।

पहले सब में विद्यमान आनन प्रदेश कपाल के ऊपर की भारी अस्थिमय शिखाओं तथा उनके आस पास उभार के आधार पर यदि निर्णय किया जाय तो मालूम होता है *कि नर वानर ऊँट तथा गोरिल्ला का कपाल उच्च वर्ग के प्राणियों के विकास की एक* शृंखला को चरम उत्कर्ष है तथा मानवी कपाल विपरीत दिशा में होनेवाले उनके विकास का उच्चतम स्वरूप है। कपाल के ऊपर शिखाओं तथा पेशियों का संकुलन कई भिन्न भिन्न कारणों से होता है। प्राणी के शरीर के आकार जाति (*species*) तथा लिंग

सम्बन्धी नव प्रयत्न की किस्म तथा भोजन—उसके अधिक महत्त्वपूर्ण कारण हैं (बी० बी० बुनाक 1953)। फलों के सख्त छिलकों को काट पाना अथवा पौधों के सख्त भागों को चबा सकना—अधोहनु तथा उसकी पेशियों के सबल विकास पर निर्भर करता है। और, इनके इस विकास के लिए आवश्यक होता है कि कपाल का चापछद (vault = गुम्बज) मोटा हो जाए तथा उसकी अस्थियां और उसके अधिक शक्तिशाली अस्थिमय कूटों में जल्दी टाँके लग जाएं। ये सब चीजें मिलकर मस्तिष्क के मुक्त विकास को सीमित कर देती हैं।

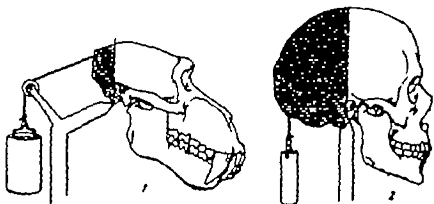
उच्च वर्ग के वानर-सम प्रधानकों में गिब्बन, चिम्पैंजी तथा मनुष्य का स्पष्ट रूप से एक अलग वर्ग मालूम होता है। पेड़ों में अथवा जमीन पर चलते समय गिब्बन अपने शरीर को कमोबेश ऊर्ध्वाधर (vertical) पोजीशन में रखते हैं। इसके अलावा वे छोटे ही होते हैं। जैसाकि हम देख चुके हैं वे 90 से 100 सेन्टीमीटर की ऊँचाई तक ही बढ़ते हैं। उनका वजन 5 से 8 किलोग्राम तक होता है। गिब्बन के सिर को अपेक्षाकृत कमजोर पेशियां सँभाले रहती हैं। चिम्पैंजी का कपाल गोरिल्ला अथवा ओरांग उटांग के कपाल से छोटा होता है। उसका आनन-प्रदेश कम विकसित होता है और उसके सिर को जो पश्चोन्नत पोजीशन में रखे रहता है वह भी अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली होता है। इसके अलावा दूसरे मानव-समों के समान ही चिम्पैंजी ज्यादातर अर्ध-सीधी अवस्था में चलता-फिरता है, असली चौपाये की तरह वह नहीं चलता। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चिम्पैंजी के कपाल के अपेक्षाकृत कम उभार का आंशिक कारण उसके शरीर के आयाम (dimensions) तथा उसके चलने का ढंग है (वी० आई० कोचेटकोवा, 1953)।

निम्न वर्ग के बन्दरों में हम बैबून (नीम बानर) को देखें। जमीन पर चलने वाले इस बन्दर के कपाल में सबसे स्पष्ट रूप से विकसित एक तुण्ड (snout) अथवा आननीय विभाजन (facial division) होता है। उसकी मस्तिष्क पेटिका बहुत कम विकसित होती है। उदाहरण के लिए, दक्षिण अफ्रीका के बैबून (चकमा) का कपाल छोटा होता है और उसके जबड़े खास तौर से शक्तिशाली होते हैं। बैबून के कपाल का चापछद मोटा होता है और सबल रूप से विकसित उसकी चर्वण (*masticatory*) तथा अन्य पेशियों के उनमें जुड़े रहने के लिए उसके बाह्य तल पर साफ-साफ दिखलाई देनेवाले कूट बने होते हैं।

बैबून की चर्वण पेशियां बहुत मजबूत होती हैं। वे गण्ड-अस्थि तथा पार्श्विका की अस्थियों से सम्बद्ध रहती हैं। उसका कपाल स्पष्ट रूप से खुरदरा होता है और उसके ऊपर कूट तथा शिखाएँ तक बनी होती हैं। ये चीजें नर बैबूनों में जो मादाओं से बहुत बड़े होते हैं खास तौर से मिलती हैं। चर्वण पेशियां उसके मजबूत दाँतों वाले हनुओं (जबड़ों) को बहुत कसकर बन्द कर सकती हैं। उनसे काटकर बैबून अपने दुश्मन को पूरी तरह घायल और यहाँ तक कि खत्म कर दे सकता है। लूटपाट मचानेवाले बैबूनों से अपने गाँव की

रक्षा करने के लिए अफ्रीका के निवासियों को बहुधा अस्त्र-शस्त्रों से अच्छी तरह लैस होकर एक साथ बाहर जाना पड़ता है। मारे-काटे जाने के बावजूद जीव-विज्ञान के एक वर्ग के रूप में बैबून खूब फल-फूल रहे हैं।

बैबून के सिर में मजबूत जबड़ा (हनु) तथा एक लम्बा तुण्ड (snout) होता है। उसकी गर्दन की पेशियाँ जो उसे क्षैतिज पोजीशन में स्थिर रखती हैं शक्तिशाली होती हैं। पेशियों का यह बलशाली दल कपाल की पश्च तथा पार्श्विका अस्थियों के अनेक उभरे हुए अस्थिमय कूटों तथा शिखाओं के साथ संलग्न रहता है।



चित्र 49 कपाल

1 बैबून, 2 मनुष्य। उस पेशीय शक्ति के बराबर भार को व्यक्त करते हैं जो सिर को कशेरुक दण्ड के ऊपर सामान्य स्थिति में बनाए रखने के लिए आवश्यक होती है।
विडमर दी मोर्टिलेट 1923

इस तरह बैबून के कपाल की रचना मनुष्य के कपाल से बहुत भिन्न होती है। बैबून तथा मनुष्य के कपालों की तुलना करते समय शरीर के आसनों, चलन-फिरन के ढंगों तथा भोजन की धारणा के महत्व पर विशेष रूप से जोर दिया जाता है (चित्र 49)।

एक ब्रिटिश विद्वान डब्ल्यू डी० वालिस (1931) का विचार है कि प्राग्-ऐतिहासिक काल में मनुष्य के कपाल का जो विकास हुआ था मुख्यतया वह भोजन तथा जीवन के रंग-ढंग में हुए परिवर्तनों के कारण हुआ था। उसका खास तौर से कहना है कि मनुष्य के कपाल की कई विशिष्ट विशेषताओं का विकास कृत्रिम रूप से तैयार किए गए (artificially prepared) भोजन के गुणों में हुए परिवर्तनों के प्रभाव का ही परिणाम स्वरूप हुआ था। आग ने भोजन को मुलायम (soft) बना दिया और उसके रासायनिक गुणों में भी तब्दीली पैदा कर दी। वालिस का विचार ध्यान देने योग्य है (नुमानकोवा के मतानुसार भी [illegible] 1948)।

कृत्रिम रूप से तैयार और मुलायम कर दिए गए भोजन का कम मजबूत जबड़ों से मापित

(masticatory apparatus) के द्वारा भी पचा लिया जा सकता है। धीरे-धीरे औज़ार अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगते हैं। मनुष्य के दाँतों का वे बहुत-सा काम कर देते हैं और खाने के पहले उसके भोजन को काट देते हैं। बजाय दाँतों का उसका काम जैसे-जैसे कम होता गया, तब हो तब एकदम प्रारम्भिक मानवों का नीचे का हनु भी छोटा तथा चौड़ा और घोड़े के नाल (horse-shoe) की आकृति का बनता गया। रदनक-दन्तों के शिखर घट गए और चर्वण दन्त (molars) खासतौर से उनमें का तीसरा दाँत छोटा हो गया। अधोहनु के प्रवर्धों का आकार घट गया तथा अधाखा (ramus) के स्थूलकाय (condyloid) और चञ्चीय (coronary) प्रवर्धों के बीच का फासला भी घट गया। अधोहनु से स्वच्छान्त कूट (limbic ridge) के घट जाने के कारण तथा स्पष्ट वाणी के भी विकसित हो जाने के कारण ठुड्डी का बढ़ा हुआ हिस्सा (chin protuberance) विकसित हो गया।

अधोहनु के साथ-साथ ऊर्ध्व हनुअस्थि तथा मुक्त हनु की भी आकृति बदल गई। अक्षि-नेत्रगुहा कूट के आयाम, उसकी मोटाई तथा आगे निकले होने की उसकी मात्रा (degree of projection) भी कम हो गई। वे भिन्न-भिन्न ऊँची-नीची चीज़ें, अस्थि मय दन्त तथा शिखर जिनसे हमारे पूर्वजों के कपालों का बाह्य उभार बनता था, लगभग सब-के-सब लुप्त हो गए। धीरे-धीरे कपाल अधिक चिकना हो गया। परन्तु मानव-विकास (human evolution) के सम्पूर्ण काल में नर के कपाल का उभार सर्वदा मादा के कपाल के उभार की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रहा है। किन्तु कपाल में हुए जिन भाग परिवर्तनों का ऊपर उल्लेख किया गया है वे लैंगिक भेदों से कहीं अधिक बड़े हैं। कपर के उभार में कमी होने तथा उसकी भित्तियों के पतली हो जाने से मस्तिष्क को विकास करने का अवसर मिला और मानवी कपाल, विशेष रूप से उसका तंत्रिका कर्पर (neuro-cranium) क्रमशः अधिक चौड़ा हो गया। इसके अलावा मस्तिष्क के लगातार विकास से उसके उभार में कमी हो गई, कपाल अधिक उन्नत हो गया, माथा अधिक ढलुआ हो गया तथा कपाल ने एक अधिक गोल रूप धारण कर लिया [अधिकांश प्राचीन मानवों के कपालों के कर्पर की काफ़ी लम्बाई के आधार पर देखने से लगता है कि मनुष्य के निकटतम पूर्वजों का कपाल सम्भवतः लम्बे प्रकार का होता था, अर्थात् वे दीर्घकपालीय (dolichocephalic) होते थे]।

मानव-प्रजनन के भावी क्रम की दृष्टि से भोजन के पकाए जाने तथा उसके रूप में होनेवाले परिवर्तनों का भारी महत्त्व था। वृक्षों पर रहनेवाले हमारे पूर्वज फलों, बेर काष्ठ-फलों, नई कोंपलों तथा पत्तियों पर जीवित रहनेवाले आधुनिक बड़े वानरों के समान मुख्यरूप से फल-भोजनी मानव-सम (frugivorous anthropoids) थे। स्पष्ट है कि आस्ट्रलोपिथिकस जैसे मनुष्य के तात्कालिक पूर्वज अपने भोजन में नाना प्रकार के छोटे प्राणियों को भी शामिल कर लेते थे।

सबसे प्रारम्भिक मानव के औज़ार अपरिष्कृत रूप से पत्थरों का भी काम करते थे।

इस बात को मान लेने में किसी गलती का डर नहीं है कि पृथ्वी पर आविर्भूत होनेवाले प्रथम मानव छोटे और मझोले आकार के प्राणियों का शिकार करते थे। एंगेल्स का विचार है कि भोजन के रूप में मांस के प्रयोग ने मानव के विकास में मदद पहुँचाई है।

प्राचीन मानव का चित्र हमारे सामने विचित्र प्रकार के एक ऐसे लुटेरे प्राणी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसकी शक्ति तथा जिसके दाँतों की तीक्ष्णता दूसरे प्राणियों की तरह बढ़ते जाने के बजाय प्राकृतिक वरण के क्रम में घटती गई थी। परन्तु इन चीजों की कमी को कृत्रिम औजारों ने कुछ अधिक ही पूरा कर दिया था। टोलों में रहनेवाले हमारे प्राचीन पूर्वजों में हथियारों के उन स्वामियों ने हमला करने तथा अपनी रक्षा करने की ऐसी जबरदस्त क्षमताएँ पैदा कर ली थीं कि उनके हनुओं तथा दाँतों की शक्ति में कमी होने का कोई असर नहीं पड़ सकता था।

मनुष्य के विकास क्रम में उसके औजारों में अर्थात् उसकी इन्द्रियों में उसके शरीर की प्राकृतिक इन्द्रियों की अपेक्षा कहीं अधिक परिवर्तन हुए हैं। एक पशु प्राकृतिक परिवेश में होनेवाले परिवर्तनों के अनुकूल अपने को ढालने की सीमित सम्भावनाएँ ही रखता है परन्तु मानव—जिस समाज में वह रहता है उसके विकास के साथ-साथ काम करने की अपनी क्रियाओं (work processes) तथा औजारों को अधिकाधिक जटिल (complicated) बनाता जा सकता है और इस प्रकार अनन्त रूप में अपने को वह पूर्ण बनाता जा सकता है। यह उन विशेषताओं में से एक सबसे बड़ी है जो अन्य तमाम प्राणियों की तुलना में मनुष्य को विशिष्ट बना देती है। भोजन के रूप में मांस के प्रयोग ने अग्नि के उपयोग के विकास में बहुत सहायता दी थी। जिन पशुओं को वह मारता था उनका कच्चा मांस खाने की जगह मनुष्य ने उनको भूनकर और उबालकर खाना शुरू कर दिया। निस्सन्देह इससे वह कहीं अधिक पाचक बन गया। इसके परिणामस्वरूप उसके हनु लगातार छोटे और कमजोर होते गए। साथ-ही-साथ उसके उदरीय आन्तरांग (abdominal viscera) में भी परिवर्तन हो गया। उदाहरण के लिए मांसाहारी भोजन के स्थान पर वनस्पतियों का भोजन अथवा दोनों का मिला-जुला भोजन ग्रहण करने पर आँतों की लम्बाई भी अवश्य बढ़ गई होगी।

आधुनिक मानव की आँत (आन्त्र) उसके धड़ से कई गुना अधिक लम्बी होती है। विभिन्न नस्लों के लोगों में उनकी यह लम्बाई अलग-अलग [illegible] 1010 सेन्टीमीटर तक होती है। [illegible] (1931) द्वारा प्रकाशित की गई आधार-सामग्री के अनुसार मनुष्य की सबसे छोटी आँत की लम्बाई 6.3 सेन्टीमीटर और सबसे बड़ी की 1180 सेन्टीमीटर होती है। 7 वर्ष के एक चिम्पैंजी की जिस आँत को मैंने नापा था उसकी लम्बाई 828.5 सेन्टीमीटर थी। उसके धड़ की लम्बाई 1[illegible] सेन्टीमीटर थी। इसका अर्थ हुआ कि उसकी आँत उसके धड़ से 6.70 गुना अधिक लम्बी थी। एम० ए० मैनसन (1912) द्वारा तैयार की गई उस तालिका के अनुसार जिसका लोगों ने उपयोग किया

है मनुष्य की आँतों और धड़ की लम्बाई का अनुपात 3.0 से 0.3 गुना तक बदलता रहता है।

भोजन की भिन्न-भिन्न आदतोंवाले स्तनधारियों तथा मनुष्य की आंतड़ियों
की लम्बाई का उनके धड़ की लम्बाई के साथ अनुपात

(ई. लाव 1931 से उद्धृत)

कीटभक्षी (इन्सेक्टीवोरा)	2·5	फलभोजी	6 8
मांसाहारी (कार्निवोरा)	3 7	कन्दभोजी	7 1
मत्स्यभक्षी (पिसीवोरस)	4 6	अन्न-भक्षी	8 7
मानव	5 0-6 3	शाकाहारी	15 1

इससे प्रकट होता है कि लम्बाई में मनुष्य की आँत सर्व-भक्षी (omnivorous) प्राणियों की आँतों के सबसे करीब होती है।

हमारे पूर्वजों की खान-पान की आदतों में होनेवाले परिवर्तनों ने उनके शरीर पर जो प्रभाव डाला था वह साधारण नहीं था। मानवी कपाल में होनेवाले जिन परिवर्तनों का ऊपर उल्लेख किया गया है वे उन परिवर्तनों की याद दिलाते हैं जो किन्हीं पालतू पशुओं में देखने को मिलते हैं। मनुष्य की अनेक शारीरिक विशेषताओं की — जैसे कि उसकी त्वचा के रंग की तथा डील डौल की — उत्परिवर्तन-शीलता (mutability) तथा मानवी कपाल में होनेवाले उपर्युक्त परिवर्तनों की बात के आधार पर यूजेन फिशर ने पालतू बनाने के प्रथम सिद्धान्त (theory of domestication) की स्थापना की थी (1914)।

फिशर के कथनानुसार मनुष्य तथा पालतू पशुओं की शारीरिक रचना में पाये जाने वाले सादृश्य की चीजों को इस बात के आधार पर समझा जा सकता है कि जीवन की नई परिस्थितियों ने मनुष्य को ठीक उसी तरह प्रभावित किया था जिस तरह कि पालतू पशुओं को वे प्रभावित करती हैं। इस तरह की व्याख्या सबसे पहले तो एक पक्षीय है। मनुष्य के निर्माण तथा पालतू पशुओं के विकास के बीच जो गुणात्मक अन्तर है उसकी यह अवहेलना करती है। पालतू पशुओं की नस्लों का विकास तो कृत्रिम वरण के द्वारा सबसे अच्छे पशुओं को चुनकर, उनको चयन किया जाता है जो सबसे अच्छे प्रजनक (producers) होते हैं। इसके विपरीत मनुष्य के विकास में कृत्रिम वरण की कोई भी भूमिका नहीं थी।

कुछ पालतू पशुओं के मस्तिष्क उनके जंगली सजातीयों (wild relatives) की अपेक्षा छोटे होते हैं। उदाहरण के लिए बकरी का मस्तिष्क लगभग एक-तिहाई छोटा हो गया है। परन्तु मानव-वंशियों के मस्तिष्क का आकार बढ़ता गया है और उसकी जटिलताओं में भी वृद्धि होती गई है। पालतू बनानेवाला फिशर का सिद्धान्त इसलिए अधूरा है कि मानव प्रजनन की प्रक्रिया (process of anthropogenesis) को वह मात्र एक जैविक (biological) क्रिया बना देता है और उसके विशिष्ट स्वरूप की ओर ध्यान नहीं देता।

मनुष्य के विकास की विशिष्ट चीज यह है कि उसके शरीर की रचना में जो वानरी गुण (ape characteristics) थे वे धीरे-धीरे लुप्त हो गए हैं और उसकी क्रियाशीलता के प्रभाव के अन्तर्गत मुख्य मानवी गुणों का उत्तम प्रस्फुटन हो गया है। द्वि-पदीय चाल या पैरों पर स्थिर रूप में खड़े होने की शक्ति, हाथ की अंगुलियों का विभिन्नीकरण तथा अत्यन्त उच्च रूप से उन्नत प्रमस्तिष्कीय प्रान्तस्थ भाग (कार्टेक्स) का विकास ऐसे ही मानवी गुण हैं। जिन सामाजिक परिस्थितियों की उसने स्वयं सृष्टि की थी मनुष्य अपने को जैसे जैसे उनके अनुकूल बनाता गया और जैसे जैसे प्रकृति के ऊपर क्रमशः वह विजय प्राप्त करता गया वैसे ही वैसे उसके ये मानवी गुण और भी अच्छी तरह से विकसित होते गए।

मनुष्य की शारीरिक रचना की कुछ विशेषताओं का विकास—जैसे कि कपाल के आयतन में वृद्धि का घटना कारकों के एक ऐसे समूह के प्रभाव के अन्तर्गत हुआ है जो उन कारकों के समूह से भिन्न है जिनके प्रभाव के अन्तर्गत किन्हीं एकदम पालतू बना लिए गए स्तनधारियों में इसी तरह के परिवर्तन हुए हैं। स्पष्ट है कि खोपड़ी के विकास में बाहरी लक्षणों की सादृश्यता विकास की तथाकथित अभिबिन्दुता (convergent development) ही थी।

एंगेल्स का मत था कि प्राचीन प्रकार का मानव एक ऐसी जाति का वानर रहा होगा जो अपनी बौद्धिकता तथा अनुकरण-शक्ति में दूसरों से अधिक ऊँचाई पर था। प्राचीन मानव के जीवन में मूल कन्द, कीड़े-मकोड़े, पतंगे, बिच्छू आदि तथा सरीसृपों को पकड़ने तथा पक्षियों के छोटे बच्चों को इकट्ठा करने के अलावा विभिन्न स्तनधारियों का शिकार करना भी जीविका का एक महत्वपूर्ण साधन रहा होगा।

प्राचीन मानव ने पहले छोटे-छोटे आसानी से पकड़े जा सकने वाले और आसानी से खाने योग्य पशुओं के शिकार से शुरू किया। फिर धीरे-धीरे मानव कार्य के क्षेत्र का क्रम आसानी से पकड़े जा सकने वाले और बहुधा तेज चलनेवाले छोटे-छोटे स्तनधारियों का शिकार करने तक उसने विस्तारित किया। इन तेज चलनेवाले स्तनधारियों तथा पक्षियों का शिकार करने के लिए आवश्यक था कि पत्थर, फलक तथा लकुटियों (sticks) का इस्तेमाल करने का विचार सामान्यतः वह ग्रहण करे। परन्तु मध्यम आकार के तथा बड़े पशुओं का शिकार करना उसने बहुत धीरे-धीरे सीखा। मैमथ (भीमगज) जैसे विशालकाय पशुओं का शिकार करना तो वास्तव में मनुष्य हिम युग (ice age) के अन्त काल में ही सीख सका था। बहुत बार बीमार अथवा मरे हुए पशुओं का भी मांस खाने में प्रारम्भिक मानव कोई हिचकिचाहट नहीं दिखलाता था।

मानवों की क्रियाशीलता का उपयोग प्रारम्भ में मुख्यतया भोजन प्राप्त करने के लिए ही किया जाता था। इस क्रियाशीलता के फलस्वरूप मानवों के बीच नए सम्बन्ध पैदा हुए। बाद में ये सम्बन्ध और भी अधिक स्पष्टता के साथ सामाजिक अथवा उत्पादन के सम्बन्धों के रूप में सामने आए।

इस भाँति शिकार तथा भोजन के रूप में मांस के उपयोग की ओर उसके संक्रमण ने मनुष्य के निर्माण (formation) पर प्रगतिशील प्रभाव डाला है और मानवी शरीर की रचना के अन्दर किन्हीं विशिष्ट गुणों के विकसित होने में सहायता दी है। सीधे खड़े होकर (orthograde) चलने में क्षमता प्राप्त हो गई, सिर की स्थिति बदल गई, हनुओं का आकार छोटा हो गया तथा कपाल की धारिता में वृद्धि हो गई। धीरे-धीरे पूर्व कपाल की वानरी विशेषताएँ खत्म हो गई और साथ ही साथ वह अधिकाधिक मानवी बन गया (कार्ल काई रोगिन्स्की 1934)।

मानवी कपाल ने कई प्रगतिशील विशेषताएँ प्राप्त कर लीं और साथ ही-साथ उसकी वे विशेषताएँ लुप्त हो गई जो प्रतीपगामी (retrogressive) थी। मस्तिष्क तथा सम्पूर्ण मानव-शरीर के विकास के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। प्रगतिशील तथा प्रतीपगामी प्रवृत्तियाँ न केवल मनुष्य तथा तमाम जीवों के बल्कि सम्पूर्ण प्रकृति के विकास के द्वन्द्वात्मक क्रम की विशिष्टता है।

2

मानव तथा वानरों का मस्तिष्क और उनकी तंत्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता

1 मानव तथा वानरों का मस्तिष्क और उनके विकासक्रम

तंत्रिका तंत्र का उद्गमन तथा विकास प्राणी जगत् के विकास क्रम में हुआ। पृष्ठवंशियों में विशेष रूप से सुविकसित मस्तिष्क वाले उच्च वर्ग के स्तनधारियों में उसने अपना उच्चतम रूप प्राप्त किया।

डार्विन के सिद्धान्त ने इस प्रश्न को बहुत साफ कर दिया है। मानवी मस्तिष्क की संरचना तथा क्रियाशीलता की समस्या पर डार्विन के सिद्धान्त की रोशनी में विकासवादी रुख से जो प्रकाश डाला गया है उसका महत्त्व बताते हुए, एंगेल्स ने कहा था

'जीवों के बारे में सरल स्वरूपों से लेकर अधिकाधिक बहुविध तथा जटिल बनते जाते स्वरूपों तक की विकास शृंखला को उसी रूप में जिस रूप में वह आज हमारे सामने है—कम-से-कम उसकी मुख्य विशेषताओं के साथ निर्धारित कर लिया गया है। यह शृंखला सीधे मनुष्य तक चली जाती है। इसकी वजह से न केवल यह संभव हो गया है कि आंगिक उत्पत्तियों के प्रकृति के वर्तमान भण्डार की व्याख्या की जा सके बल्कि इस बात का भी आधार तैयार हो गया है कि मानव मस्तिष्क के प्राग् इतिहास का भी निर्धारण किया जा सके। इससे इस बात का आधार तैयार हो गया है कि निम्नतम जीवों के साधारण रूप-विहीन परन्तु उत्तेजना के प्रति संवेदनशील प्रोटोप्लाज्म (जीवद्रव्य) से लेकर चिन्तनशील मानव मस्तिष्क तक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का पता लगा लिया जाए। इस प्राग् इतिहास की जानकारी के अभाव में, चिन्तनशील मस्तिष्क का अस्तित्व करिश्मा ही बना रहता है।'[1]

इवान पावलोव द्वारा विकसित किया गया प्रतिवर्त सिद्धान्त जो प्रायोगिक रूप से

---

1 फ्रेडरिक एंगेल्स, ड्यूहरिंग मत-खंडन, मास्को 1954 पृष्ठ 265।

डार्विनवाद के ऊपर ही आधारित है। इस बात की समझदारी प्राप्त करने की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि जाति इतिहास के विकासक्रम में मनुष्य और उसके पूर्वजों के मस्तिष्क तथा विश्लेषकों (अवयव के उपकरणों—अनु०) का विकास कैसे हुआ है। इस सम्बन्ध में इस चीज का उल्लेख कर देना भी आवश्यक है कि निम्न प्रश्न आज के डार्विनवाद के लिए अब भी महत्त्व रखते हैं: जीव के ऊपर, विशेषरूप से उसके व्यक्तिगत विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में परिवेश के प्रभाव तथा असर की मात्रा कितनी होती है; उपार्जित किए गए गुणों का आनुवंशिकता के द्वारा कितना पारेषण होता है; जीव में हुए शारीरिकी तथा दैहिकी में सम्बन्धित परिवर्तनों के संचयन के परिणाम स्वरूप होने वाले गुणात्मक उत्परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाली नई जातियों की प्रक्रिया क्या होती है; वनस्पति तथा प्राणी जगतों में अन्तर्जातीय और बहिर्जातीय संघर्ष की उपस्थिति कैसे और कितनी मात्रा में होती है।

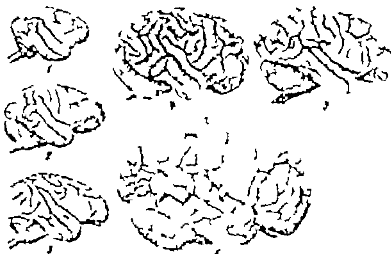
जहाँ तक प्राणी-जगत् का सम्बन्ध है, आवश्यक है कि तन्त्रिका तन्त्र के विकास के सम्बन्ध में विशेष ध्यान दिया जाए, क्योंकि परिवेश के साथ यह तन्त्र एक विशेष प्रकार का सम्पर्क स्थापित करता है तथा विकास-गति में जीवन की निरन्तर परिवर्तनशील परिस्थितियों के साथ अनुकूलन के अनन्त क्रम में उसकी भूमिका अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण होती जाती है। पावलाव के दैहिकी-सम्बन्धी सिद्धान्त विशेष रूप से वे जो प्रतिवर्तों से वास्ता रखते हैं, जीव तथा उसके परिवेश के पारस्परिक सम्बन्धों की एक नई धारणा हमें प्रदान करते हैं।

पावलाव ने लिखा था: "बाह्य जगत्—जो प्राणी को घेरे रहता है, एक ओर तो असंख्य औपाधिक प्रतिवर्तों (conditioned reflexes) को जन्म देता है; दूसरी ओर, उसी तरह लगातार उन्हें दबा देता है। जीवन की दूसरी ऐसी अभिव्यक्तियों (manifestations) में उन्हें रोक देता है जो किसी भी निश्चित क्षण में जीवन के मूलभूत नियम की—परिवेश के साथ सन्तुलन बनाये रखने की आवश्यकताओं के नियम की—अधिक अच्छी तरह से पूर्ति कर सकती हैं।" 'सन्तुलन' शब्द से पावलाव का अभिप्राय—परिवेश के साथ किसी जीव के निरन्तर अनुकूलन का होता था। आप ने कहा है: "इस प्रकार अर्धमस्तिष्कीय गोलार्द्ध दोनों ही होते हैं—एक ऐसी इन्द्रिय (organ) जो आवेगों का विश्लेषण करती है तथा एक ऐसी इन्द्रिय जो नए प्रतिवर्तों, नए बन्धनों (bonds) की सृष्टि करती जाती है। ये गोलार्द्ध प्राणी-शरीर की वह इन्द्रिय होते हैं जिसमें परिवेश के साथ जीव का अधिकाधिक पूर्ण सन्तुलन कायम करने के निरन्तर कार्य के सम्पादन की विशेष क्षमता होती है, एक ऐसी इन्द्रिय जिसके ऊपर बाह्य जगत् की अभिव्यक्तियों के अत्यन्त विविध समायोजनों (combinations) तथा विभेदों (variations) की तदनुरूप, तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है। और, एक मात्रा तक प्राणी शरीर के निरन्तर नाश विनाश की भी यह एक विशेष इन्द्रिय है।"

पावलाव ने इस तथ्य की स्थापना कर दी कि बाह्य उत्तेजनाओं के ग्रहण में सम्बन्ध

रखने वाले,विश्लेषकों (संवेदक उपकरणों—अनु॰) के केन्द्रीय सिरे प्रमस्तिष्कीय गोला के अन्दर होते हैं बाह्यांगों—नसों कानों त्वचा नासिका मुंह आदि के साथ सम होने वाले विश्लेषकों के अग्र कक्षाम के पेशी-स्नायु तथा आन्तरिक इन्द्रियों से आर होने वाले आवेगों (impulses) से जुड़े रहते हैं।

प्रधानतः मे विश्लेषकों का उत्तरोत्तर विकास प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स (प्रावरण भाग —जिसमें उनके केन्द्रीय क्षेत्र स्थित होते हैं—के रूपान्तर तथा मस्तिष्क के पुनस पुनर्गठन के ऊपर अमिट रूप से निर्भर था। प्राकृतिक कारणों के प्रभावों के अन्त अन्दर के विश्लेषकों में जो विकास होता है उसकी आम विशिष्टताओं के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त कर लेंगे तो मानवी मस्तिष्क के विशिष्ट गुणों के विषय में भी अच्छी समझदारी प्राप्त कर सकेंगे (चित्र 50)। बिना किसी भय के इस बात को



चित्र 50. वानर तथा मानवी मस्तिष्क

1 [illegible] 2 [illegible] 3 [illegible] 4 [illegible] 5 [illegible] 6 आधुनिक मानव [illegible]

[illegible] 1932 [illegible]

मान ले सकते हैं कि वास्तविक मानवी गुणों की उत्पत्ति मुख्यतया काम और वाणी के प्रभाव के अन्तर्गत हुई थी।

एंगेल्स कहते हैं

"पहले श्रम उसके बाद और फिर उसके साथ स्पष्ट वाणी—यही वे दो आवश्यक उद्दीपन (stimuli) थे जिनके प्रभाव में वानर का मस्तिष्क धीरे-धीरे मानव के मस्तिष्क में बदल गया। मानव का मस्तिष्क वानर के मस्तिष्क के साथ इतनी समानता रखने के बावजूद उससे कहीं अधिक बड़ा और कहीं अधिक पूर्ण है। मस्तिष्क के विकास के साथ-ही-साथ उसके एकदम नजदीकी औजारों यानी ज्ञानेन्द्रियों (sense organs) का भी विकास होता गया।[1]

मानव-मस्तिष्क के सफल विकास में सबसे पहले उसके निकटतम पूर्वजों यानी लुप्त वानरों के मस्तिष्क की उन्नतिशील शारीरिकी तथा दैहिक विशिष्टताओं से सहायता पहुँचायी है। इसके साथ-ही-साथ उसमें सहायक जो दूसरे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारक थे वे निम्न थे—जमीन पर रहने के जीवन के नए तरीके का प्रभाव सीधे खड़े होकर चलने के आरम्भ तथा मांस के भोजन का प्रभाव गोल बनाकर रहने की अधिक पक्की आदतों तथा अन्त में औजारों का इस्तेमाल करने की उस आदत का प्रभाव जिसका श्रीगणेश भोजन प्राप्त करने तथा जंगली जानवरों के हमलों से बचने के उद्देश्य से किए जाने वाले पत्थरों तथा डण्डों के उपयोग से हुआ था। जैसा हम पहले ही लिख चुके हैं शरीर की सीधी खड़ी पोजीशन (स्थिति) ने ग्रीवा की पेशियों के ऊपर पड़ने वाले भार को घटा दिया था। यह भार सबसे अधिक हमारे सबसे प्राचीन चतुष्पदीय पूर्वजों की ग्रीवा की पेशियों के ऊपर तब रहता है जब सिर को सिर्फ क्षैतिज स्थिति में सीधा रखा जाता था। पश्चकपालीय शिखर ग्रीवा की पेशियों के जुड़े रहने का एक सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, (ग्रीवा की पेशियों पर भार कम होने से—अनु) इसका विकास रुक गया और यह नीचा तथा अधिकाधिक चिकना होता गया। कर्पर की सम्पूर्ण बाह्य भित्ति चिकनी हो गई, उसका उभार बहुत घट गया। मस्तिष्क तथा उसके घटक अंगों के निरन्तर विकास के लिए, विशेषतौर से उसके आयामों की वृद्धि के लिए इस चीज का अत्यधिक महत्त्व था। निस्सन्देह बात केवल मात्रात्मक वृद्धि की नहीं है इससे भी महत्त्वपूर्ण बात मस्तिष्क के उसके सूक्ष्मतम तन्तुओं तक के आन्तरिक रूपान्तरण की तथा उसकी गहनता के अधिक विकास की है।

सीधे खड़े होकर चलने में अधिकाधिक पारंगत होते जाने तथा औजारों की सहायता से हाथों द्वारा किये जाने वाले कार्यों की बढ़ती हुई जटिलता से भी मस्तिष्क के लगातार विकास तथा उसके तदनुरूप कपाल के उत्परिवर्तन में मदद मिली थी। परन्तु

1 एंगेल्स 'डायलेक्टिक्स ऑफ नेचर'—प्रकृति में द्वन्द्ववाद मास्को पृष्ठ 233।

उसके इस विकास का अन्तिम प्रणोद (impulse) मानव इतिहास के उस अद्भुत मोड़ के क्षण में तब प्राप्त हुआ था। जब हमारे पूर्वजों ने औज़ारों को बनाना शुरू कर दिया था वास्तविक कार्यशीलता का समारम्भ हुआ जब विकास के एक बाद एक नित नए तथा अधिकशक्तिवान कारकों का आविर्भाव हुआ।

इस भाँति सीधे खड़े होकर चलने में चाहे परोक्ष रूप से ही क्यों न हो मानव के पूर्वजों के मस्तिष्क के विकास में सहायता की थी—ऐसा वह विशेषतौर से इसलिए कर सका था कि सहारा देने तथा चलने में मदद देने के कार्यों से हाथ के पंजों (हाथों—अनु०) को मुक्त करके उन्हें उसने पकड़ने तथा मारने की नई शक्ति प्रदान कर दी थी। अधिचर्मीय सम्वेदक इन्द्रियों (epidermal sensory organs) में उसने एक विशेष क्षमता तथा सम्प्रसार पैदा कर दी। इन चीजों ने हाथों और पैरों की अंकुरक रेखाओं (papillary lines) तथा चित्राकृतियों का रूप ग्रहण किया।

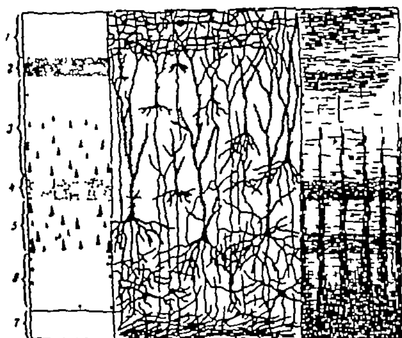
दृष्टि तीक्ष्णतर हो गई और इससे प्राग्-मानव को अपना भोजन ढूँढ़ने तथा अपने शत्रुओं का दमन करने की अधिक शक्ति प्राप्त हो गई। इससे उस क्षेत्र का विस्तार बढ़ गया जिस पर अपने आस-पड़ोस की दुनिया में वह वस्तुओं को देख सकता था। इस सबकी वजह से विशेषतया अथवा सम्वेदक उपकरणों (sensory apparatus) का रूप विन्यास हुआ तथा उनको नए कार्य मिल गए। फिर इसके परिणामस्वरूप प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) का रूपान्तरण हो गया और एक मात्रा में प्राग्-मानव का सम्पूर्ण शरीर ही बदल गया।

यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि पैवलाव का विचार था कि तंत्रिका तंत्र में अतिशय अभिक्रियता (सुनम्यता) का जो गुण है उसका अत्यधिक महत्त्व है। मस्तिष्क तथा केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के ढाँचों के जाति इतिहास सम्बन्धी विकास क्रम का विश्लेषण करने के सम्बन्ध में आम जीव-विज्ञान के पवलोव-मिचुरिनवादी सिद्धान्त विशेष महत्त्व रखते हैं। मनुष्य के दूर के पूर्वजों यानी आदिम बन्दरों में और इनसे भी अधिक प्राचीन अर्द्ध-बन्दरों में (जिनमें टार्सियर भी सम्मिलित हैं) मस्तिष्क तथा केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के ढाँचों में जबरदस्त परिवर्तन हुए थे। तृतीय काल के 6 करोड़ वर्षों के क्रम में इन प्राचीन अर्द्ध-बन्दरों में बहुत बड़े परिवर्तन हुए थे। बन्दरों, वानरों तथा मानव की उत्पत्ति फिर इन्हीं विकासानुगत परिवर्तनों के क्रम में हुई थी।

मस्तिष्क की शरीर-सम्बन्धी तथा देह-व्यापार सम्बन्धी विशिष्टताओं का अध्ययन करने के लिए अत्यन्त भिन्न-भिन्न पद्धतियों का उपयोग किया जाना चाहिए। इन पद्धतियों में दूर-दर्शी तथा सूक्ष्म-दर्शी माप-जोख का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है—विशेषरूप से मस्तिष्क के कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के अध्ययन के सम्बन्ध में। कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है।

मानव तथा पशुओं के मस्तिष्क के कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के कोशाणु निर्माण सम्बन्धी परीक्षण (cyto-architectonic investigation) के सिद्धान्तों की स्थापना

वी० ए० बेट्ज ने कर दी थी। बेट्ज 10वीं शताब्दी में रूस के एक प्रसिद्ध शारीर-विज्ञ थे जिन्होंने कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) की तह में बड़ी सूच्याकार कोशिकाओं (बेट्ज की चालक कोशिकाओं) की खोज की थी। (चित्र 51)। यह तह अब छः बुनियादी तहों में पाँचवीं (बाह्यतम की ओर से गिनी जाकर) तह के नाम से ज्ञात है। मस्तिष्क के कार्यों



चित्र 51 मनुष्य के मस्तिष्कीय कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) का स्तरण
स्तर—1 आणविक 2 बाह्य दानेदार 3 छोटी तथा मध्यम सूच्याकार कोशिकाएँ 4 आन्तरिक, दानेदार 5 बेट्ज की विशाल सूच्याकार कोशिकाएँ 6 बहुरूप कोशिकाएँ 7 श्वेत द्रव्य—ई० सिबिर, 1930 के आधार पर।

तथा उसके सूक्ष्म रूपविन्यास के अध्ययन के लिए बेट्ज ने मार्ग प्रशस्त कर दिया था और इस तरह, तुलनात्मक आकृतिशास्त्र के दृष्टिकोण से कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के विभाजन के लिए भी उन्होंने आधार प्रस्तुत कर दिया था।

रूप तथा कार्य के परस्पर सम्बन्ध के बुनियादी विचार का फिर वी० ए० बेख्तरेव, एम० वी० म्यूमेनामो तथा बाद के प्रगतिशील मस्तिष्क विज्ञों ने और आगे विकास किया था।

सोवियत संघ में जीव विज्ञान के शास्त्री शरीर-क्रिया विज्ञान के विद्वान तथा अन्य

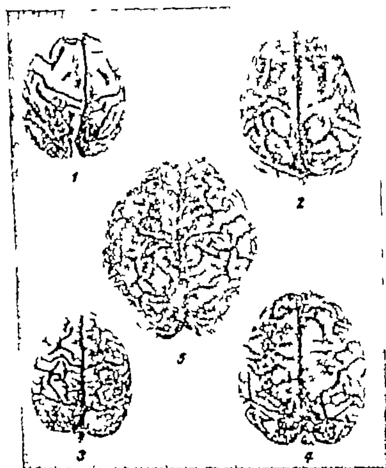
वैज्ञानिक कार्यकर्ता भाग सेचेनोव-पैवलोव सिद्धान्तों के आधार पर मस्तिष्क का गहन अध्ययन कर रहे हैं। मस्तिष्क संस्थान मास्को के राजकीय विश्वविद्यालय मानवशास्त्रीय संस्थान तथा अन्य शोध-केन्द्रों में जो कार्य किया गया है और अब भी किया जा रहा है, वह जाहिर करता है कि मानव वानरों तथा बन्दरों के प्रमस्तिष्कीय गोलार्धों का— उनके ऐतिहासिक विकासवादी परिपार्श्व में अध्ययन करने से अत्यन्त मूल्यवान जानकारी प्राप्त की जा सकती है (टी जी० शेवचेंको 1950)। विशेषतौर से मानवी प्रमस्तिष्क के कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) की तीसरी तह की तारा-जैसी आकृति वाली कोशिकाओं में इस अध्ययन के परिणामस्वरूप महत्त्वपूर्ण गुणात्मक भेदों का पता मिला है (पोल्याकोव 1958)।

मानवशास्त्रीय शोध-कार्य की दृष्टि से मस्तिष्क का आयतन उसका भार तथा उसका बाह्य उभार भी अत्यधिक महत्त्व रखते हैं। मानव मस्तिष्क का आयतन 1 000 घन सेण्टीमीटर से 2 000 घन सेण्टीमीटर तक अलग-अलग व्यक्ति में अलग अलग होता है। जहाँ तक जातियों अथवा मानव-शास्त्रीय वर्गों के क्षेत्रीय वितरण पर प्रभाव डालने वाले इन भेदों का सम्बन्ध है वे 1 200 तथा 1 800 घन सण्टीमीटरों की सीमाओं के अन्तर्गत होते हैं। 1,000 घन सेण्टीमीटर से कम आयतन के मस्तिष्क मनुष्य में विरले ही मिलते हैं, यद्यपि लोगों ने ऐसे व्यक्तियों के भी उदाहरण बताये हैं जो अपने जाति भेद के बावजूद अन्य मानवों से किसी भी प्रकार से भिन्न नहीं थे किन्तु, मृत्यु के बाद उनके मस्तिष्कों की जाँच-पड़ताल की गई थी तो वे 900 घन सेण्टीमीटर के 800 घन सण्टीमीटर के अथवा इससे भी छोटे निकले थे।

मस्तिष्कों के आयतन की यह इतनी बड़ी भिन्नता मानव ही की विशेषता है। जंगली जानवरों में यह भिन्नता इतनी नहीं होती। उनमें मस्तिष्क के आयतन तथा उसके भार का अन्तर लगभग 5 से 10 प्रतिशत से अधिक कभी नहीं होता। पालतू पशुओं में जंगली जानवरों की अपेक्षा अधिक बड़े अन्तर दिखलाई देते हैं परन्तु इनकी भी तुलना मनुष्य के अन्तर जो अन्तर मिलते हैं उनके साथ नहीं की जा सकती। यहाँ पर यह बात भी जोड़ दी जानी चाहिए कि बन्दी अवस्था में रखे जाने पर किन्हीं जातियों तथा नस्लों के मस्तिष्क के आयाम छोटे हो गए हैं।

मस्तिष्क का आयतन तथा कर्पर की धारिता बराबर नहीं होते हैं। मस्तिष्क तथा कपाल के बीच मस्तिष्कावरण दृढ़तानिका (dura mater) जाल तानिका (arachnoid) तथा मृदुतानिका (pia mater) रुधिर वाहिकाएँ तथा प्रमस्तिष्क-मेरु द्रव होता है। इनके कारण आयतन में काफ़ी भारी अन्तर हो जाता है। वयस्क में यह अन्तर 5 से 10 प्रतिशत होता है और बुड्ढ़ों में वह 15 प्रतिशत तक हो जाता है। दूसरे शब्दों में उनके बीच 100 घन सेण्टीमीटर का अथवा 200 घन सेण्टीमीटर तक का अन्तर होता है।

मस्तिष्क के भार का अनुमान उसके आयतन से लगाया जा सकता है क्योंकि उसका आपेक्षित भार जल के भार से थोड़ा अधिक होता है। मस्तिष्क की अधिकांश संहति

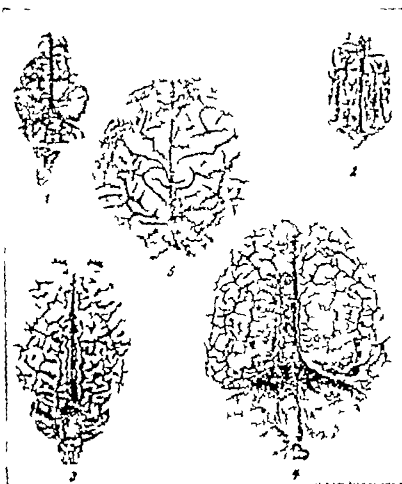


चित्र 52. प्रवानरों के मस्तिष्क—
1 बैबून 2. गिब्बन 3 चिम्पैंजी 4 गोरिल्ला, 5 मनुष्य।
एल. स्मिथ 1928 के आधार पर।

(mass) प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्धों (87 प्रतिशत) में तथा अनु-मस्तिष्क (11 प्रतिशत) में होती है। मनुष्य के मस्तिष्क का न केवल निरपेक्ष बल्कि सापेक्ष भार भी उसे वानरों से बहुत आगे बढ़ा कर देता है (चित्र 62)। मनुष्य के मस्तिष्क का भार गोरिल्ला के मस्तिष्क के भार से 10 गुना चिम्पैंजी के से 4 गुना ओरंग-उटैन के से 6 गुना तथा

पिग्मन के से 2 गुना अधिक होता है।

यह सच है कि पूरे शरीर के भार की तुलना में मस्तिष्क का भार मनुष्य की अपेक्षा नई दुनिया के कुछ बन्दरों में अधिक मिलता है। मनुष्य में मस्तिष्क और पूरे शरीर के भार का अनुपात 1 : 85 होता है, कैपुचिन बन्दर (भिक्षु-कपि) में यह 1 : 19 और माकक



चित्र 53 मानवी तथा स्तनपायी मस्तिष्क
1 कंगारू, 2 कुत्ता 3 घोड़ा 4 हाथी 5 मनुष्य।
एफ़ विडमी 1928 के आधार पर।

बन्दर में 1 15 होता है। परन्तु, इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि स्तनधारी प्राणी जितना ही छोटा होता है उसके मस्तिष्क का सापेक्ष भार उतना ही अधिक होता है। इस विशिष्ट नियमितता की वजह से मनुष्य और वानरों के सम्बन्ध में ऊपर जो अनुपात दिये गए हैं उन्हें आसानी से समझा जा सकेगा।

इसके अलावा भारतीय हाथी-जैसे एक इतने विशालकाय प्राणी के मस्तिष्क का भार यद्यपि मनुष्य के मस्तिष्क से चार गुना तक अधिक होता है (चित्र 53) परन्तु उसका सापेक्ष भार उसकी तुलना में लगभग 15 गुना तक कम होता है (1 560)।

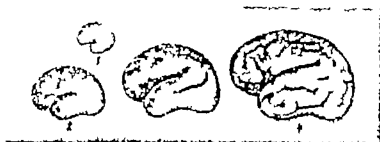
मनुष्य के मस्तिष्क के निरपेक्ष और सापेक्ष भार प्राणी-जगत् के अन्दर उसे ऐसे प्रमुख स्थान पर प्रतिष्ठित कर देते हैं कि जिन पशुओं का नाम लिया गया है उनमें से किसी से भी बहुत ऊपर उसको रखने के लिए केवल यह बात ही काफ़ी है।

मानवी मस्तिष्क की खास विशेषताओं को उसके व्यक्तिगत इतिहास के विकास-क्रम में देखा जा सकता है (बी० एम० क्लोसोवस्की 1051)। दूसरी ओर उसका यह विकास क्रम उच्चवर्ग के वानरों के साथ मनुष्य के घनिष्ठ सम्बन्ध को भी स्पष्ट रूप से प्रदर्शित कर देता है। बाहरी विकास का आरम्भ गोलार्द्धों के केन्द्रीय भाग में होता है और अन्दर उस से तल ही तल पर वह परिधि तक फैल जाता है वह यहाँ में अलग अलग बँट जाता है। ये तहें घट होती हैं। इसके बाद गर्भ के अन्दर कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के भावी विकास में एक जबर्दस्त परिवर्तन आ जाता है—मानो उनकी वल्लिकाओं (gyri) दरारें (fissurae) तथा गहरी रेखाओं (sulci) के साथ लेखों प्रदेशों तथा उप-प्रदेशों का जन्म कार्टेक्स के अन्दर हो जाता है।

पी० आई० पोल्याकाव (1937 1049) कहते हैं कि दरारें तथा वल्लिकाओं का प्रारम्भ नव कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के अन्दर कोशा-सम्बन्धी वास्तु के महान परिवर्तनों के हो जाने के बाद होता है। यह नव-कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) मानवीय कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के कुल आयतन का 95 प्रतिशत तक होता है।

गर्भाशय के अन्दर विकास के चौथे चान्द्रमास के आरम्भ में प्रथम घ्राण-द्वार (basi-rhinal or olfactory fissure) प्रकट होता है। इसके उपरान्त सिलवियन (sylvian) विवरक का निर्माण होने लगता है तथा इस पार्श्विक विवरक के समीप प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्धों के पार्श्विक पर्श्वों के खखीय ललाटकीय तथा पार्श्विका के भ्रमा में कुछ दरारें तथा गहरी लकीरें उभर आती हैं (चित्र 54)।

सिलवियन विवरक के पश्चात् मनुष्य तथा मानव-सर्मा दोनों में केन्द्रीय समकस (rolando) का आविर्भाव होता है। निम्न वर्ग के बन्दरों में सिलवियन विवरक के बनने के बाद उस समानान्तर समकस (खोला) का उदय होता है। जो मनुष्य के ऊपर के मंख के समकस के अनुरूप होता है। पाँचवें चन्द्रमास में मानवी गर्भ के प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्धों पर कई और दरारें (समकस) दिखाई देने लगती हैं। इसके बाद वाले महीने में सिलवियन विवरक की कोरें बन्द होने लगती हैं और मस्तिष्क का केन्द्रीय



चित्र 54 मानवी मस्तिष्क का विकास—1 तीन महीने का गर्भ, 2 पांच महीने का गर्भ, 3 सात महीने की अवस्था का गर्भ 4 नवजात शिशु बाएं तरफ का पार्श्व-रूप। मानव-शास्त्र के मास्को संग्रहालय में मौजूद सांचों के आधार पर।

पिण्ड धीरे-धीरे विभरक की तलहटी पर झुककर रह जाता है। गर्भाशय के विकास क्रम में गोलार्धों के कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) पर दरारों तथा खातकों की एक चित्राकृति धीरे-धीरे बन जाती है। यह चित्राकृति संवेल्लक-मस्तिष्क वाले प्राणियों (gyrencephalic) की अपनी प्रारूपिक विशेषता है अर्थात् यह उन प्राणियों की विशेषता है जिनके मस्तिष्क वलियों से क्रमानुसार ढंके रहते हैं। चिक्कण—मस्तिष्क वाले प्राणियों (lissencephalic) से चिकने तल के मस्तिष्क वाले प्राणियों से ये प्राणि भिन्न होते हैं।

निम्नतम प्रकार के कार्डेटा (रज्जुमान प्राणियो) से लेकर, जाति-इतिहास के विकास क्रम में जिन-जिन अवस्थाओं से भी हमारे पूर्वज गुजरे हैं उनका प्रमाण मानवी गर्भ के मस्तिष्क के वैयक्तिक विकास की न केवल ये विशेषताएँ, बल्कि उसकी और भी अनेक खास विशेषताएँ प्रस्तुत करती है

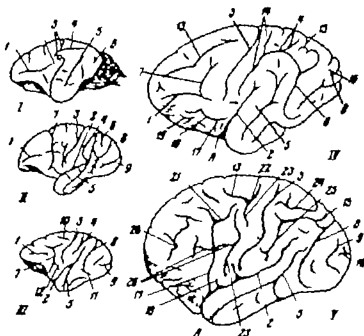
प्रसूति के समय तक गर्भ के मस्तिष्क मे ऐसे तैयार तथा विकसित खातकों (सीताओं) तथा संवेल्लकों का आविर्भाव हो चुका रहता है जो वयस्क मस्तिष्क के खास रूप का काम दे सकें। मस्तिष्क के सामने अब भी लगभग 20 वर्ष का समय विकास के लिए होता है। इस काल में वह अपने आयामों को बढ़ा सकता है तथा द्वितीय और तृतीय वर्ग की अतिरिक्त गहरी लकीरों के उभर आने से अपने तल की चित्राकृति को और गहन बना सकता है। (चित्र 56-57)। जरायु-स्तनियों (placentalia) के बच्चों का जब जन्म होता है तब उनके मस्तिष्क का काफी निर्माण हो चुका रहता है। जन्म के तुरन्त बाद से उसकी वृद्धि बन्द हो जाती है। मोटेतौर पर पशुओं के मस्तिष्क का वैयक्तिक विकास कम अवस्था में ही रुक जाता है। इस तरह, इस सम्बन्ध में भी मानव एक अपवाद होता है। इस चीज को मनुष्य तथा वानरों के मस्तिष्कों के भार तथा आयतन दोनों की दृष्टि से तुलना करते हुए देखा जा सकता है। मानवी शिशु का मस्तिष्क वयस्क के मस्तिष्क के लगभग केवल एक चौथाई माप के बराबर होता है।

चित्र 55 मानवी प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध का पार्श्व तल
1 दरारें (सीताएं) तथा II कन्वोल्यूशन्स (वलय) बायीं तरफ का सामने का पश्च-ललाटकाय पिण्ड घने रूप में दिखा क्षेत्र—पार्श्विका पिण्ड शंखीय तथा पश्चकपाल तरफ का सामने क्षेत्र—मनुकपालाय पिण्ड—1 और 2 सिल्वियन दरार का आरम्भ स्थान का मध्य क्षैतिज शाखा, 3 1 और 2 की ऊपर उठती हुई मध्य शाखा 3 और 4 का ओर जाने वाली रेखाओं के बीच ललाटपूर्वीय सीता 4 रेन्डिक्स सीता 5 नीचे की ओर जाने वाली ललाटपूर्वीय सीता, 6 नीचे का केन्द्र पूर्व का सीता 7 मस्तिष्क की ललाटकाय सीता 8. ऊपर की ललाटपूर्वीय सीता 9 ऊपर की केन्द्र पूर्व का सीता 10. केन्द्रीय सीता (रोलैण्डकी), 11 और 12 की पश्चकेन्द्रीय सीता, 13 अन्तर पार्श्विका सीता 14 13 और 14 के बीच की सीता (13 का दूसरी ओर पश्चिमा सीता का

आरम्भ स्थान है) 14 और 13 के बीच द्वार पर पार्श्विका तथा मनुकपालीय पिण्डों के दरम्यान पार्श्विका मनुकपालाय दरार देखा जा सकता है 150 व की स्थिति सीता 16 अनुप्रस्थ मनुकपालीय सीता 17 18 19 20 ऊपर का तथा पार्श्व की मनुकपालीय सीताएं 20 से नीचे मनुकपालीय व मनुकपालीय तथा पार्श्व के पिण्डों के दरम्यान मनुकपाल-पूर्व के अन्दर तथा शंखीय पिण्ड पर जाने का शाखीय सीता दिखाई देती है 21 मस्तिष्क की शंखीय सीता 22. ऊपर का शंखीय सीता (उसका अन्तिम छोर, आगे की ओर जाकर शंखीय मुख से मिल जाता है।) 23 सिल्वियन दरार का पश्च शाखा 24 सिल्वियन दरार का अन्त।

II—1 नीचे का ललाटकाय वलय कक्षीय भाग 2. तरैव त्रिकोणात्मक भाग, 3 तरैव पिछा-मासिक का भाग 4 मस्तिष्क का ललाटकाय पिण्ड, 5 ऊपर का ललाटपूर्वीय पिण्ड 6. आगे का केन्द्रीय पिण्ड 7 पीछे का केन्द्रीय पिण्ड 8. ऊपर का पार्श्विका पिण्ड 9 पार्श्विका पिण्ड के नीचे के भाग का ऊपरी तल का वलय 10. तरैव कोणात्मक वलय 11 मनुकपालीय पिण्ड का आगे की ओर जाने वाला वलय 12. नीचे का शंखीय वलय, 13 मस्तिष्क का शंखीय वलय। ई. सिल्वियर, 1930 के आधार पर।

इसके विपरीत वानर के बच्चे का मस्तिष्क वयस्क वानर के मस्तिष्क का लगभग आधे अथवा दो तिहाई भाग तक के बराबर होता है।

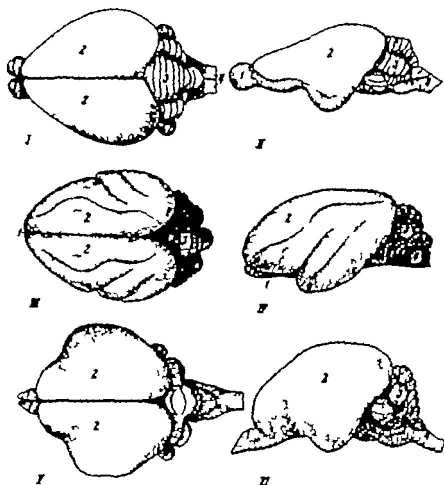


चित्र 56 प्रानरों के प्रमस्तिष्कीय गोलार्धों पर खाताओं का विकास

I काला लेमूर (लेमूर मैकाको एल.), II भूरा मारमोसेट (नखर-कपि) (सीलस जैकस एल.), III छोटी भारतीय मैकाक (मैकाकस नेमेस्ट्रिनस एल.), IV हुलोक गिब्बन (हुलक शाखा वानर-हायलोबेटस हुलोक हारलन), V सामान्य चिम्पैंजी, (एन्थ्रोपोपिथिकस ट्रोग्लोडाइट्स ब्लूमेनबाख)। A—केन्द्रीय पिंड का बाह्य प्रदेश, 1 मस्तिष्क कन्दुकियों, 2 सिल्वियन दरार 3 केन्द्रीय सीता 4 ऊपर की अग्रवर्ती कालिका की सीता 5 समानान्तर सीता 6 अनुप्रस्थ अनुकपालीय सीता 7 नीचे की केन्द्रपूर्व की अग्रवर्ती मेहराबदार सीता 8 बाहरी कपाली सीता 9 पार्श्व की अनुकपालीय सीता 10 ऊपर केन्द्रपूर्व की सीता 11 नीचे की अनुकपालीय सीता 12 नीचे की अनुप्रस्थ सीता 13 ऊपर की ललाटवर्ती सीता 14 केन्द्र पश्च की सीता 15 पार्श्विक अनुकपालीय सीता 16 चूचुकीय दरार, 17 ललाटपालीय कक्षीय सीता 18. ऊपर की सीमा 19 कक्षीय सीमा, 20. ललाटपालीय ... की कक्षीय सीता 21 अभिमध्य की ललाटवर्तीय सीमा 22. ऊपर की केन्द्रपूर्व की सीमा 23 नीचे की केन्द्रपूर्व की सीमा 24. अनुप्रस्थ तथा अग्रवर्ती पार्श्व की सीमा 25 नीचे की केन्द्रपश्चवर्ती सीमा 26. बीच की ललाटवर्तीय सीमा।

—श्री बोल्फ्फरत्न, 1924 के आधार पर।

ओरंग-उटंग जैसे एक महावानर का मस्तिष्क उक्त प्राणी के जीवन के प्रथम दो या तीन वर्षों में ही काफी भारी हो जाता है परन्तु बाद में उसमें वृद्धि नहीं होती। मानवी मस्तिष्क के भार में विभिन्न अवस्थाओं में जो परिवर्तन होते हैं उनका वी० पी० बुनाक



चित्र 57 विभिन्न प्राणियों के मस्तिष्क
I, II छछूंदर की वृक्ष-छछूंदर अथवा तुपाया (तुपाया ...) III, IV लेमूर (लेमूर मकाको), V, VI टार्सियस स्पेक्ट्रम (टार्सियस स्पेक्ट्रम)। 1 घ्राण कन्द, 2 प्रमस्तिष्क गोलार्ध, 3 अनुमस्तिष्क, 4 मस्तिष्क-पुच्छ (मेडुला ओब्लांगेटा)।
एल० तुल्गेस 1929 के आधार पर।

ने अध्ययन किया है (1936)। एक संश्लिष्ट पद्धति तथा विशेष संयन्त्रणाओं का उपयोग करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि शिशु के मस्तिष्क से सम्बन्धित सर्वाधिक विकास की पुरानी धारणाएँ गलत थीं। उन्होंने बताया कि मस्तिष्क की सापेक्ष संहति में 10 से 5 वर्ष की अवस्था में सबसे अधिक वृद्धि हो जाती है। इसके बाद धीरे-धीरे तथा बहुत थोड़ी मात्रा में शरीर की संहति की अधिक तीव्र वृद्धि के कारण इस अनुपात में कमी होती जाती है।

भावी प्रगति के क्रम में मस्तिष्क के भार के लैंगिक भेद अधिक स्पष्ट हो जाते हैं एक वयस्क नर के मस्तिष्क का औसत भार 1 400 ग्राम तथा वयस्क मादा के मस्तिष्क का भार 1 217 ग्राम होता है अर्थात् मादा के मस्तिष्क का भार 130 ग्राम कम होता है। यदि हम इस बात को ध्यान में रखें कि मानवी मस्तिष्क में कई सौ घन सेण्टीमीटर तक का अंतर होता है और इस बात का भी ख्याल रखें कि बौद्धिक विकास का स्तर मस्तिष्क के निरपेक्ष भार पर नहीं निर्भर करता तो हम समझ जाएँगे कि उनके मस्तिष्क के भारों के इस अन्तर का कोई महत्त्व नहीं होता।

इसी में इस बात को भी जोड़ दिया जाना चाहिए कि मादा-मस्तिष्क का सापेक्ष भार साधारणतया नर मस्तिष्क के भार से कुछ अधिक होता है क्योंकि मर्द औसतन औरत से आठ से नौ किलोग्राम तक अधिक भारी होता है और मर्द की औसत ऊँचाई औरत की औसत ऊँचाई से लगभग दस सेण्टीमीटर अधिक होती है। यही बात गोरिल्ला तथा ओरंग-उटँग जैसे मानव-सम वानरों के सम्बन्ध में भी सही है उनके नर-मादाओं से कहीं अधिक भारी होते हैं तथा मस्तिष्क का सापेक्ष भार उनके नर की अपेक्षा उनकी मादा में अधिक होता है।

मानवी मस्तिष्क की जो खास विशेषताएँ हैं उनमें उसके गोलार्द्धों की आकृति तथा रचना की स्पष्ट रूप से सूक्ष्म असममिति (asymmetry) भी एक होती है। दाहिने हाथ वाले लोगों के मस्तिष्क का बायाँ गोलार्द्ध दाहिने गोलार्द्ध की अपेक्षा अधिक उच्च रूप से विकसित होता है। उनकी वाणी का चालक-क्षेत्र (motor speech area) बाएं गोलार्द्ध में रहता है। मानव-सम का मस्तिष्क इतना असममितिपूर्ण नहीं होता जितना मनुष्य का यद्यपि बाएं गोलार्द्ध के अधिमान्य (preferential) विकास के भी उदाहरण देखने में आए हैं। मास्को के सुखुमीप्राणिकृत्य मार्जन (चिड़ियाघर) के युवा नर ओरंग-उटँग मोरेट्ज का बायाँ गोलार्द्ध उसके दाहिने गोलार्द्ध से कुछ अधिक लम्बा निकला था (उसकी 1933 में मृत्यु हो गई थी)।

मानव तथा वानरों के कपालीय मृण्मय (चापसूत्र) के मापमानों के अध्ययन के आधार पर जिन तथ्यों की स्थापना की जा चुकी है वे हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं कि असंममिति युक्त मस्तिष्क केवल मानव के ही नहीं होता है। स्पष्ट यथा है कि कुछ कम विकसित रूप में यह विशेषता तृतीय जीव युग के आस्ट्रेलोपिथेकस जैसे जीवाश्म मानुष-मानवों में भी मौजूद थी। सम्भव है कि मानवी मस्तिष्क की अधिक असंममिति को यदि सीधे खड़े होकर

पकड़ने में निपुणता आने हाथों के मुक्त होने तथा हामिमोफाइयों की कार्यशीलता में दाहिने हाथ के उपयोग के बढ़ने के साथ-साथ हो गई हो।

2 घ्राणविश्लेषक के परिमा प्रदेशों का विकास

निश्चय रूप से मान लिया जा सकता है कि प्रधानकों के निकटतम पूर्वज जमीन पर रहने वाले छोटे-छोटे वे कीट भक्षी स्तनधारी प्राणी थे जो छः करोड़ वर्षों से अधिक पूर्व-मध्य कल्प (Mesozoic era) के खटीयुग (cretaceous period) के अंतिम काल में मौजूद थे। इन प्राणियों की घ्राण-इन्द्रिय बहुत शक्तिशाली थी। उनके लम्बे थूथों तथा नास्य-शुक्तिकाओं (nasal conchae) के बाहुल्य से इस चीज को देखा जा सकता है। इसे उनसे भी देखा जा सकता है जो सम्भवतः बड़े आकार के घ्राण पिंड थे। दूसरे शब्दों में इन प्राणियों के घ्राण (गंधीय) विश्लेषक के परिमा भाग तथा केन्द्रीय प्रदेश भली भाँति विकसित थे तथा बहुत अच्छी तरह से काम करते थे।

वानरों का घ्राण विश्लेषक बहुत कम विकसित होता है और उसके परिमा वाले भाग यानी नाक का रूप किसमें ही अच्छी तरह से स्पष्ट होता है। मानव का घ्राण-बोध कमजोर होता है लेकिन साथ-ही-साथ उसके एक बड़ी नाक होती है जिसका ढाँचा मजबूत अस्थियों तथा उपास्थियों से बना होता है।

मानवी नाक के बाहरी भाग का विकास बहुत मात्रा में ऊर्ध्वहन्वस्थियों (मैक्सिला) के ऊपर के भागों झर्झरिका अस्थि के ऊर्ध्वाधर (vertical plate of the ethmoid bone) तथा नासिका के ऊपर की ओर विकसित होने के ऊपर निर्भर होने के साथ-साथ ऊर्ध्वहन्वस्थि के कोष्ठिका प्रवर्ध (alveolar process) के परावर्तन (recession) पर निर्भर करता है। आकृति तथा रचना दोनों की दृष्टि से मानवी नाक एक विशिष्ट रूप रखती है। यह विशेषतः बन्दरों में यहाँ तक कि मानव-सभा में भी नहीं मिलती। गारिल्ला अथवा चिम्पैंजी की नाक बन्दर, उपास्थियों के अपने मजबूत कंकाल के साथ मनुष्य की नाक से अत्यन्त घनिष्ठ रूप से मिलती-जुलती मालूम होती है।

वेबर (Weber) के अनुसार (1936) वानर के नास्य-कंकाल में भी वही अस्थियाँ तथा उपास्थियाँ होती हैं जो मनुष्य की नाक में होती हैं। परन्तु उनकी नाक जो आगे की ओर नहीं बढ़ी होती है उसका कारण यह है कि वानर का ऊपरी हनु मजबूती से विकसित होता है उसके नासिका रंध्र छोटे होते हैं उसकी नासिका की उपास्थियों की आकृति भिन्न होती है तथा उसकी नास्यास्थियों का आकार छोटा होता है और किंचित् वे भाग की ओर निकली रहती हैं।

ऊपर का कथन नासिका के मुख्य बन्दर पर भी लागू होता है। इस प्राणी का सम्बन्ध सेम्नापिथेसिनों (Semnopithecinae=लंगूर के लंगूरों) के उप-कुटुम्ब से है। उसकी लम्बी-लम्बी मुलायम घूमती-फिरती नाक मुड़ से अधिक मिलती जुलती मालूम होती है। उसके सिर पर एक लम्बा गहरा मनुष्य जैसा होता है। कोष अथवा अधिक

उत्तेजना के समय इसे फुला लिया जा सकता है। काफी वय वाले प्राणियों में यह नाक ठुड्डी के नीचे तक लटक आती है।

और भी कई तरह के लंगूर (Semnopithecus) हैं जिनके नाक होती है। उदाहरण के लिए हैनान के द्वीप तथा कोचीन-चीन के ऊपरी भाग में रहने वाले छूक लंगूर के (Pigathrix nemaeus Linnaeus) तथा सुमात्रा के समीप पागेह के दक्षिणी द्वीप के छोटी दुम वाले लंगूर (Simias Concolor Miller) के भी स्पष्ट नाक होती है। नाक वाले वानरों की एक जिन्स (genus) है। उत्तर-पश्चिम चीन का चपटी नाक वाला सुनहरा बन्दर (Rhinopithecus roxellanae Milne-Edwards) युनान पश्चिमी चीन तथा दक्षिण-पूर्वी तिब्बत का चपटी नाक वाला बीटिअन बंदर (Rhinopithecus bieti Milne-Edwards) मध्य-चीन तथा दक्षिण-पूर्वी तिब्बत का चपटी नाक वाला ब्रेलीचियन बंदर (Rhinopithecus brelichi Thomas) तथा उत्तरी वियतनाम के टोंकिंग का चपटी नाक वाला टोंकिंग बंदर, अथवा 'भगा वानर' (*Rhinopithecus* avunculus Dollman Presbytiscus avunculus Pocock) ये सब इसी जिन्स के वानर हैं।

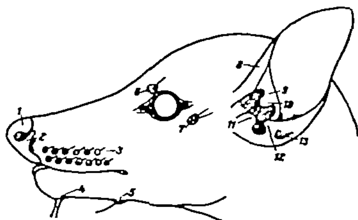
बहुत-से ऐसे बंदर हैं जिनकी गंध (घ्राण) की बाहरी इन्द्रिय बिलकुल छोटी होती है। ओरंग-उटैन तथा चिम्पैंजी जैसे मानव-सम वानरों के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से सही है। नासिका के द्वार के क्षेत्र में इन दो वानरों के कपाल कुछ अवतल होते हैं अर्थात् वे सिमोगनेथस (symognathous) होते हैं।

मनुष्य की नाक का कोमल हड्डी वाला मध्य-चतुर्भुज ढांचा मिन्निका के नीचे के भाग नाक की भित्तियों की उपास्थियों तथा अनेक छोटी-छोटी उपास्थियों का बना होता है— (नाक की भित्तियाँ नासिकास्थि तथा फलकों अथवा पर्तों की मुख्य उपास्थियों के बीच दोनों तरफ होती हैं)।

नासिका के द्वार के अन्दर तथा उसकी बगल की भित्तियों पर नाक की तीन शुक्तिकाएं होती हैं—नीचे की बीच की तथा ऊपर की। नवजात शिशु के एक चौथी शुक्तिका भी होती है—सान्टोरिनी शुक्तिका—जो पचास से सत्तावन प्रतिशत प्राणियों में बाद में अन्तर्धान हो जाती है।

मानव के अन्दर पाँचवीं शुक्तिका (Concha) बहुत ही कम मिलती है। वयस्क मनुष्यों में एक चौथी अथवा पाँचवीं शुक्तिका का बना रहना इस बात का प्रमाण है कि उनके दूर के पूर्वजों की घ्राणेन्द्रिय अधिक सक्रिय ढंग से काम करती थी। आधुनिक मानव में केवल उसकी ऊपर की नासा शुक्तिका घ्राण-क्षेत्र में होती है। उसकी नासा-शुक्तिकाओं की संख्या में कमी हो जाने के कारण मानव भी वानरों बन्दरों तथा टार्सियरों के साथ साथ अल्प घ्राणकों के वर्ग में पहुँच जाता है। इसके विपरीत लेम्यूर तथा तुपाइया जिनका मस्त-कोष बड़ी अधिक विकसित होता है बड़े घ्राणकों के वर्ग में आते हैं। वस्तुतः को पहचानने के एक साधन के रूप में गन्धों के सूक्ष्म-भाव की उपस्थिति प्रौपाधिक

परिवर्ती की सृष्टि करने की क्षमता के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। पक्षियों में यह



चित्र 58 प्ररोम के गुच्छ तथा मेयाग्रस्कर के सम्पूर का भाग (चिरगांग ट ह्यौरराय)—
1 अभिनासा में नासिका का भाग, 2 पार्श्व का नाक का उठा भाग, 3 ऊर्ध्वहनु के ऊपर प्ररोम 4 ठुड्डी के प्ररोम 5 कपोलहनु की उपग्रन्थियों के बीच के प्ररोम 6 भ्रूपरि प्ररोम 7 कपोलों के प्ररोम, 8 कुन्तलाकार 9 प्रति कुन्तलाकार 10. प्रतिकुन्तलाकार का क्रम 11 कर्णमूल 12. प्रतिकर्णमूल 13 तिरस्क (कर्ण स्तूप)। ल्फ० कुयकोस 1929 के आधार पर।

क्षमता बहुत होती है और स्तन धारियों में उनसे भी अधिक।

घ्राण-विश्लेषक के परावर्तन के साथ-साथ मानव तथा बन्दरों के चेहरे की विशेषसम्वेदक इन्द्रियाँ भी छोटी होती गईं। ये दोनों क्रियाएँ परस्पर सम्बन्धित थीं तथा मानवक्षेत्र के विशेषतयानास्य क्षेत्र के छोटे होते जाने के साथ, घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई थीं। निम्न वर्ग के प्रमाणकों में अर्द्ध बन्दरों के चेहरे पर लम्बे कड़े खड़े हुए बालों के गुच्छ प्ररोम (vibrissae) कहते हैं—चार तक गुच्छ तथा एक असमग्र गुच्छा होता है। ये विशेष प्रकार के स्पर्श बाल होते हैं



चित्र 59 अधिक मटमाफड़ी मनान्तिस ट ह्यौराथ। चेहरे पर प्ररोम के गुच्छ स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। जी० मान्दारियर तथा जी० एलात, 1932 के आधार पर।

(चित्र 58-59)। इन बालों के नीचे बाह्य त्वक (epidermis) विशेष तन्त्रिकाओं के सिरों तथा नाड़ी-वाहों के रूप में रुधिर के प्रत्यक्ष सम्पर्क होते हैं। प्रकम्प तथा किसी भी वस्तु के बीच सम्पर्क स्थापित होते ही रुधिर के नाड़ी प्रवाह में तुरन्त एक हलचल पैदा हो जाती है तथा तन्त्रिका के द्वारा एक संकेत पारेषित हो जाता है जो उस वस्तु के दाब का अन्दाजा दे देता है।

निम्न वर्ग के बन्दरों के चेहरे पर प्रकम्पमूर्धों के केवल तीन ही युग्म-गुच्छ शेष रह गए हैं—नेत्र-कोटरों के ऊपर के भागों पर ऊपर के होंठ पर तथा ठुड्डी पर। मानव सम बानरों के केवल दो ही गुच्छे होते हैं (डकवर्थ 1915) और मानव के एक भी नहीं होता। मनुष्य के विकास के भ्रूण काल में भी रुधिरमय नाड़ी-वर्मों समेत ऐसे बाल विरले ही कभी गर्भ के चेहरे पर मिलते हैं।

वृक्ष-जीवन के परिणामस्वरूप सवेदक इन्द्रियों में प्रतीपगामी तथा प्रगतिगामी दोनों ही प्रकार के परिवर्तन हुए थे। उदाहरण के लिए, उन प्रकम्प उपधानों (pads) के स्थान में जो निम्न वर्ग के अनेक स्तनधारियों के पैरों में मिलते हैं बन्दरों के पादतल (plantar) करतल (palmar) तथा हाथों और पैरों की त्वचा आकुंचनीय सलवटों (flexure creases) के साथ-साथ अंकुरक कटकों (papillary ridges) से ढकी रहती है (चित्र 60)

इन अंकुरक कटकों में तन्त्रिकाओं के सिरों के गुच्छ मौजूद होते हैं। इनके द्वारा हाथ या पैर संवेदक-उत्तेजनाओं के बोध को ग्रहण करता है तथा बालों फला तथा पास-पड़ोस की द्रुमिका के अन्य पदार्थों के साथ हाथ या पैर का सम्पर्क होने पर उस में उन्हीं के द्वारा उस वस्तु की प्रतिक्रिया पैदा होती है। अंकुरक कटकों तथा उनकी सन्धियों से हथेलियों तथा तलुओं में विशिष्ट प्रकार की त्रि-अरीय चित्राकृतियाँ बनती हैं तथा अंगुलास्थियों के सिरों पर चक्रों तथा त्रिकोणों का निर्माण होता है। आकुंचनियों की सलवटों की दिशा क्या होगी—त्रिर्यक अथवा अनुदैर्घ्य यह इस बात पर निर्भर करता है कि बन्दर की प्रत्येक जाति तथा उसका प्रत्येक प्राणी अपने हाथों अथवा पैरों को किस प्रकार मोड़ता है।



चित्र 60. मानव-सभों के हाथों के तल के आकुंचनीय तथा अकुंरक कुट। 1 गिब्बन 2. ओरंग उ न 3 गोरिल्ला।
सी. सोनन्ताग, 1924 के आधार पर।

किसी भी मानव के हाथ की कटका तथा सलवटों की स्वर्णांकित चित्राकृति अत्यन्त गहन होती है तथा उसकी कभी पुनरावृत्ति नहीं होती। यह चित्राकृति मनुष्य की अंगुलियों का हस्ताक्षर है साथ-ही-साथ यह उसका मानव-शास्त्रीय हस्ताक्षर (anthropological signature) भी है। मानव-शास्त्र तथा विधि-आयुर्विज्ञान दोनों के लिए ही इन चित्राकृतियों का अध्ययन बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसी का लेकर विधि आयुर्विज्ञान में एक विशेष शाखा की अंगुलि-विज्ञान (dactyloscopy) अथवा अंगुलि-चिह्नाध्ययन की स्थापना की है। इस विज्ञान की सहायता से बहुत बार ऐसे अपराधियों को पहचाना जा सका है जो जुर्म के स्थान पर अपने अंगुलिचिह्न छोड़ गए थे।

जीवशास्त्री के लिए अंकुरक कटका की चित्राकृति का महत्व इसलिए होता है कि यह किसी जाति के जाति-इतिहास के विकास-क्रम का परिणाम होता है यह बताती है कि उक्त जाति के विकास का मार्ग क्या था वृक्ष जीवन के साथ प्रमानुकूलन कैसे अनुकूलन प्राप्त किया था। मानव के सम्बन्ध में यह यह बताती है कि कार्यशीलता के द्वारा उसके शरीर का रूपान्तरण कैसे हुआ है। बढ़ी हुई ग्रहण शक्ति के फलस्वरूप इन चित्राकृतियों में जो परिवर्तन हुए हैं वे उस विशेष मार्ग का परिचय देते हैं जिसे मनुष्य के सम्वेदक तन्त्र ने वानरों के सम्वेदक तन्त्र से पृथक अपने विकास-क्रम में अपनाया है।

मनुष्य के पूर्वजों यानी लुप्त वानरों के हाथों में स्पर्श की सूक्ष्म सम्वेदना शक्ति होती थी। इस बात पर जोर देना जरूरी है कि औजारों के सही इस्तेमाल तथा निर्माण के काम में इस सूक्ष्म स्पर्श-बोध ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका पूरी की होगी। इसमें सन्देह नहीं कि उसके बिना औजारों का न सही इस्तेमाल हो सकता था न वे बनाये जा सकते थे। इसका उल्टा भी सही है बहुतेरे हजारों वर्षों तक काम के सकड़ों भिन्न-भिन्न स्वरूपों ने मानवी हाथ का और पूर्ण बनाया है। उन्हीं की वजह से गुणात्मक रूप से एक विशिष्ट इन्द्रिय की हैसियत से उसका विकास हुआ है। इस इन्द्रिय की कायचालनता गतिज (kinaesthetic) बाह्य स्पर्श दार्ष्टिक तथा अन्य विश्लेषकों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। इसके बाद पत्थर के किसी औजार अथवा अन्य वस्तुओं के आयामों उनकी आकृति तथा भार की जाँच एक नये ढंग से की जाने लगी। मनुष्य के वानर-सम उन पूर्वजों के विकास क्रम में जो अभी तक वृक्षों में शाखाओं फलों आदि को ही ग्रहण करने के अभ्यस्त थे स्पर्श की जो अनुभूति विकसित हुई थी उससे इस इन्द्रिय की सम्वेदना भिन्न थी और अब भारों की जाँच इसीसे की जाने लगी।

बाह्य जगत् के प्रभाव के अन्तर्गत घ्राण-विश्लेषकों की ही तरह स्पर्श के विश्लेषकों का भी विकास हो गया क्योंकि पकड़कर पाँवों पर बहुत समय इन वानरों के न केवल हाथों में बल्कि परिग्राही (पकड़ने की शक्ति रखनेवाले) पैरों का विकास हो गया था

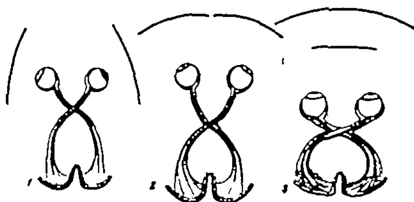
बल्कि नखधारी परिग्राही हाथों का भी विकास हो गया था। परन्तु यह विकास हाथों और पैरों के करतल तथा पादतल की त्वचा की छन्नेवाक तन्त्रिका के प्रकुरकों के उपयुक्त विकास के साथ सम्बद्ध था। वृक्षों पर चलने की जटिल तथा कभी-कभी अत्यन्त जोखिम भरी क्रिया के समय उनकी गति को समन्वित करने तथा उसे स्थिरता प्रदान करने का कार्य देह-शाखाओं में हुआ यह पूर्ण उत्परिवर्तन ही पूरा करता था।

पेड़ पर चढ़ते समय तथा एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूदते समय अपना सन्तुलन को बनाये रखने की समस्या बन्दरों के लिए एक प्राथमिक समस्या थी। इस समस्या को सन्तुलन की इन्द्रियों के विशिष्ट विकास के द्वारा ही प्रधानतया अन्तःकरण तथा अनुमस्तिष्क के प्रविवर उपकरण (*vestibule apparatus*) के विकास के द्वारा ही हल किया जा सकता था। हाथों और पैरों की गतियों का समन्वय यही इन्द्रियाँ करती हैं।

चलने में देह-शाखाओं के भाग लेने की बात दाष्टिक विश्लेषक के साथ अत्यन्त घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध थी। इस दाष्टिक विश्लेषक (visual anlayser) का काफी विकास हो गया था। अर्द्ध-बन्दरों जैसे प्राचीन किस्म के प्रधानकों के मुखों के छोटे हो जाने से दाष्टिक विश्लेषक के बाह्य प्रदेश को अपना पुनर्गठन करने का काफी अवसर मिल गया था। आँखें जब सिर के पार्श्व में स्थित थीं तब उनके दृष्टि-क्षेत्र अलग-अलग थे परन्तु जब आँखें सिर के अग्र-भाग में आ गईं तो उनके दृष्टि-क्षेत्र भी एक-दूसरे से मिलने लगे (चित्र 61)। दूसरे शब्दों में प्रधानकों में द्वि-नेत्री (binocular) अथवा त्रिविम (*stereoscopic*) दृष्टि का अधिकाधिक विकास होता गया। इसकी वजह से वस्तुओं को वे उनके उभार के साथ देखने लगे। इससे अपने खान-स्थान के उष्ण-कटिबन्धीय वनों के रंगों में अधिक स्पष्टता के साथ भेद करने की क्षमता उन्हें प्राप्त हो गई। इस तरह रंग-दृष्टि का विकास हुआ।

विश्लेषकों—घ्राण, स्पर्श तथा दृष्टि के विश्लेषकों—में होनेवाले परिवर्तनों के कारण अनेक जटिल कारक तथा बाह्य जगत् के प्रभाव थे। इसमें सन्देह नहीं है कि भोजन की आदतों का परिवर्तन भी इन कारणों में से एक था। आधुनिक कीट भक्षी स्तनधारियों की भाँति नाना गन्धों की भौमिक दुनिया में कीटों तथा उनके डिम्भों की खोज करने के बजाय सबसे प्राचीन प्रधानकों ने बरो काष्ठ-फलों कलियों पत्तों फूलों तथा पौधों के रस के रूप में वनस्पति भोजन का अधिकाधिक उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। ये अत्यन्त प्राचीन प्रधानक सम्भवतः स्वयं भी आधुनिक तुपाइयों की किस्म के कीट भक्षी प्राणियों से मिलते-जुलते थे (एम. वेबर, 1930)। तरह-तरह के वनस्पति भोजनों के बाह्य रूप का अत्यधिक महत्व रहा होगा यदि और किसी वजह से नहीं तो केवल इसी वजह से कि प्राचीन अर्द्ध-बन्दरों ने फल के रंग तथा उनकी भक्षता की मात्रा के बीच किसी-न-किसी प्रकार का सम्बन्ध अवश्य ही स्थापित कर लिया होगा—और यह चीज उनके लिए बुनियादी महत्त्व की थी।

आधुनिक बन्दरों में कम-से-कम उनके दूर के पूर्वजों यानी जीवाश्म अर्द्ध-बन्दरों की तुलना में अपेक्षाकृत एक कहीं अधिक सुविकसित दाष्टिक विश्लेषक होता है। बन्दर के



चित्र 61 विभिन्न स्तनधारियों की दृष्टि-तंत्रिकाओं के व्यत्यास का चित्र

1 नेत्रों के स्वतन्त्र संचालन तथा अलग-अलग (एक-एक नेत्र का) दृष्टि के क्षेत्र (घोड़ा आदि)—दृष्टि तन्त्रिकाओं का पूर्ण व्यत्यास

2. आँखों के कम सन्निश्चित संचालन तथा एक दूसरे आँख के संयुक्त दृष्टि क्षेत्रों के साथ (खरगोश आदि)—लगभग पूर्ण व्यत्यास,

3 पूर्णरूप से सह-समन्वित आँखों का संचालन तथा पुतलियों की क्रिया दृष्टि का स्पष्ट त्रिनेत्री क्षेत्र तथा दृष्टि के स्पष्टता का बिन्दु वाला क्षेत्र (दृष्टि की तन्त्रिका के दृष्टिपटल सम्बन्धी तथा बिन्दु सम्बन्धी तन्तुओं का पूर्ण व्यत्यास है, अर्थात् दृष्टिपटल के दाहिने अर्ध-भाग से तन्तु मस्तिष्क के दाहिने गोलार्द्ध तक जाते हैं और उसके बायें अर्ध-भाग से बायें गोलार्द्ध तक)

एफ. कुत्नोव्स तथा प्रो॰ पोर्लिसस 1929 के आधार पर।

नेत्र-कोटर आगे की तरफ होते हैं और उसके दृष्टिपटल (रेटिना) की गहराई में एक पीत बिन्दु (macula lutea=सुस्पष्ट बिन्दु) अपने अवनमन के साथ होता है। यह बिन्दु स्पष्टतम दृष्टि का बिन्दु होता है। बन्दरों की दृष्टि अत्यन्त तीक्ष्ण होती है। बाह्य जगत् की वस्तुओं को वे उनके उभार तथा रंगों के साथ देखते हैं।

अन्य स्तनधारियों की अपेक्षा बन्दरों की दार्ष्टिक तीक्ष्णता श्रेष्ठतर होती है क्योंकि वस्तुओं को वे तीन विमाओं (three dimensions) में देख सकते हैं अर्थात् उनकी दृष्टि त्रिविमा होती है। हमारे निकटतम सम्बन्धियों वानरों तथा बन्दरों की आँखें आगे की ओर रहती हैं। इसके विपरीत अन्य स्तनधारियों में से अधिकांश की आँखें पार्श्वों की तरफ बड़े या छोटे कोण पर स्थित होती हैं। लेमूरों तथा टार्सियरों की आँखें सामने की पार्श्वीय (स्थिति) से 45 के कोण पर स्थित होती हैं। चूपाइयों की आँखें पार्श्व में और भी पार्श्व की तरफ होती हैं। विकास क्रम में आधुनिक बन्दरों के पूर्वजों की आँखें पार्श्व से आगे की तरफ आ गई हैं जिससे अपने सामने की वस्तुओं को व उनके पूर्ण उभार के साथ देख सकते हैं।

बल्कि मसमारी परिग्राही हाथों का भी विकास हो गया था। परन्तु यह विकास हाथों और पैरों के करतल तथा पादतल की त्वचा की सम्वेदक तंत्रिका के अकुरकों के समस्त विकास के साथ सम्बद्ध था। वृक्षों पर बसने की जटिल तथा कभी-कभी अत्यन्त जोखिम भरी क्रिया के समय उनकी गति को समन्वित करने तथा उसे स्थिरता प्रदान करने का कार्य देह-शाखाओं में हुआ यह पूर्व उत्परिवर्तन ही पूरा करता था।

पेड़ पर चढ़ते समय तथा एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूदते समय अपने सन्तुलन को बनाये रखने की समस्या बन्दरों के लिए एक प्राथमिक समस्या थी। इस समस्या को सन्तुलन को इंद्रियों के विशिष्ट विकास के द्वारा ही प्रधानतया अन्तःकरण तथा अनुमस्तिष्क के प्रविवर उपकरण (vestibule apparatus) के विकास के द्वारा ही हल किया जा सकता था। हाथों और पैरों की गतियों का समन्वय यही इन्द्रियाँ करती है।

बसने में वेह-शाखाओं के भाग लेने की बात चाक्षिक विश्लेषक के साथ अत्यन्त घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध थी। इस चाक्षिक विश्लेषक (visual anlayser) का काफ़ी विकास हो गया था। अर्द्ध-बन्दरों जैसे प्राचीन किस्म के प्रमानकों के मुखों के छोटे हो जाने से चाक्षिक विश्लेषक के बाह्य प्रदेश को अपना पुनर्गठन करने का काफ़ी अवसर मिल गया था। आँखें जब सिर के पार्श्व में स्थित थी तब उनके दृष्टि-क्षेत्र अलग-अलग थे परन्तु जब आँख सिर के अग्र-भाग में आ गई तो उनके दृष्टि-क्षेत्र भी एक-दूसरे से मिलने लगे (चित्र 61)। दूसरे शब्दों में प्रमानकों में द्वि-नेत्री (binocular) अथवा त्रिविम (stereoscopic) दृष्टि का क्रमिकाधिक विकास होता गया। इसकी वजह से वस्तुओं को वे उनके उभार के साथ देखने लगे। इससे अपने वास-स्थान के उष्ण-कटिबन्धीय वनों के रंगों में अधिक स्पष्टता के साथ भेद करने की क्षमता उन्हें प्राप्त हो गई। इस तरह रंग-दृष्टि का विकास हुआ।

विश्लेषकों—प्राय स्पर्श तथा दृष्टि के विश्लेषकों—में होनेवाले परिवर्तनों के कारण अनेक जटिल कारक तथा बाह्य जगत् के प्रभाव थे। इसमें सन्देह नहीं है कि भोजन की आदतों का परिवर्तन भी इन कारणों में से एक था। आधुनिक कीट भक्षी स्तनधारियों की भाँति नाना गन्धों की भौमिक दुनिया में कीटों तथा उनके डिम्भों की खोज करने के बजाय सबसे प्राचीन प्रमानकों ने बेरों काष्ठ-फलों कलियों पत्तों फूलों तथा पौधों के रस के रूप में वनस्पति भोजन का अधिकाधिक उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। ये अत्यन्त प्राचीन प्रमानक सम्भवतः स्वयं भी आधुनिक तुपाइयों की किस्म के कीट भक्षी प्राणियों से मिलते-जुलते थे (एम॰ वेबर, 1938)। तरह-तरह के वनस्पति भोजनों के बाह्य रूप का अत्यधिक महत्त्व रहा होगा यदि और किसी वजह से नहीं तो केवल इसी वजह से कि प्राचीन अर्द्ध-बन्दरों ने फल के रंग तथा उनकी भक्ष्यता की मात्रा के बीच किसी-न-किसी प्रकार का सम्बन्ध अवश्य ही स्थापित कर लिया होगा—और यह चीज उनके लिए बुनियादी महत्त्व की थी।

आधुनिक बन्दरों में कम-से-कम उनके दूर के पूर्वजों यानी जीवाश्म अर्द्ध-बन्दरों की तुलना में अपेक्षाकृत एक कहीं अधिक सुविकसित चाक्षिक विश्लेषक होता है। बन्दर के

चित्र 61 विभिन्न स्तनधारियों की दृष्टि तंत्रिकाओं के व्यत्यास का चित्र

1 नेत्रों के पार्श्व अवस्थान तथा अलग-अलग (एक-एक नेत्री) दृष्टि के क्षेत्र (घोड़ा आदि)—दृष्टि तंत्रिकाओं का पूर्ण व्यत्यास

2. आँखों के अर्ध-सन्निविष्ट संस्थान तथा एक भाग के संयुक्त दृष्टि क्षेत्रों के साथ (खरगोश आदि)—अपूर्ण व्यत्यास,

3 पूर्णतः के अग्र-सन्निविष्ट आँखों का संस्थान तथा पुतलियों की क्रिया दृष्टि का साथ द्विनेत्री क्षेत्र तथा दृष्टि के स्पष्ट का बिन्दु पाया जाता (दृष्टि की तंत्रिका के दृष्टिपटल सम्बन्धी तथा बिन्दु सम्बन्धी तन्तुओं का पूर्ण व्यत्यास है, अर्थात्, दृष्टिपटल के दाहिने अर्ध-भाग से तन्तु मस्तिष्क के दाहिने गोलार्ध तक जाते हैं और उसके बाएँ अर्ध-भाग से बाएँ गोलार्ध तक)

एल. बुकोल्स तथा प्रो॰ पोलिएक 1929 के आधार पर।

नेत्र-कोटर भाग की तरफ होते हैं और उसके दृष्टिपटल (रेटिना) की गहराई में एक 'पीत बिन्दु' (macula lutea = सुस्पष्ट बिन्दु) अपने अवनमन के साथ होता है। यह बिन्दु स्पष्टतम दृष्टि का बिन्दु होता है। बन्दरों की दृष्टि अत्यन्त तीक्ष्ण होती है। बाह्य जगत् की वस्तुओं को वे उनके उभार तथा रंगों के साथ देखते हैं।

अन्य स्तनधारियों की अपेक्षा बन्दरों की दाष्टिक तीक्ष्णता श्रेष्ठतर होती है क्योंकि वस्तुओं को वे तीन विमाओं (three dimensions) में देख सकते हैं अर्थात् उनकी दृष्टि त्रिविमा होती है। हमारे निकटतम सम्बन्धियों वानरों तथा बन्दरों की आँखें आगे की ओर रहती हैं। इसके विपरीत अन्य स्तनधारियों में तो अधिकांश की आँखें [illegible] की तरफ बड़े या छोटे कोण पर स्थित होती हैं। सम्पूर्ण तथा [illegible] की आँखें [illegible] की पार्श्वीय (स्थिति) से 40 के कोण पर स्थित होती हैं। [illegible] की आँखें [illegible] और भी पीछे की तरफ होती हैं। विकास क्रम में आधुनिक बन्दरों की आँखें [illegible] पार्श्व से आगे की तरफ आ गई हैं जिससे अपने आसपास की वस्तुओं को [illegible] के साथ देख सकते हैं।

मानव की त्रि-विमा दृष्टि के विकास का प्रवस्थापन उसके तृतीय काल के बन्दर-जैसे पूर्वजों के विकास में किया था। यह चीज मानव तथा बन्दरों के विकास की विशिष्टता है। निम्न वर्ग के आधुनिक स्तनधारियों की तरह हमारे और भी दूर के पूर्वजों की दाष्टिक तंत्रिकाएँ एकदम आड़ी (सामने से कटी हुई) होती थीं। उनकी दाहिनी दाष्टिक तंत्रिका बाईं आँख के साथ तथा बाईं दाष्टिक तंत्रिका दाहिनी आँख के साथ संबद्ध होती थी। बन्दरों तथा मानवों की दृष्टि इन्द्रियों में अर्द्ध-व्यत्यस्तता (semi-decussation) होती है अर्थात् बाईं दाष्टिक तंत्रिका के आधे तन्तु बाईं आँख के मस्तिष्क से संलग्न होते हैं और शेष आधे दाहिनी आँख के साथ जुड़े होते हैं और इसी तरह इसका उल्टा सिलसिला भी होता है।

जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं मानव और बन्दरों की आँखों के रेटिना (दृष्टिपटल) पर दृष्टि तंत्रिका के प्रवेश बिन्दु पर एक केन्द्रीय अवनमन (central depression) के साथ एक पीतबिन्दु होता है। यह स्पष्टतम दृष्टि का बिन्दु होता है। इससे दोनों आँखों द्वारा जो सिर में आगे की तरफ स्थित होती हैं दिखलाई देनेवाली वस्तुओं की छाप संयुक्त रूप से एक साथ ग्रहण की जाती है। इसके परिणामस्वरूप दृष्टि का एक ही क्षेत्र हो जाता है जिससे कि देखी गई वस्तु का एकदम शुद्ध बिम्ब अंकित हो जाता है। सुस्पष्ट बिन्दु (macula lutea) दूसरे किन्हीं स्तनधारियों में नहीं मिलता। मानव में उसकी रचना बन्दरों की अपेक्षा अधिक सरल होती है क्योंकि मानव की तंत्रिकाओं के सिरों में थोड़ी संख्या में शंकु (कोन) होते हैं और बन्दरों में शंकुओं के अलावा दण्ड भी होते हैं। इसके अतिरिक्त बन्दरों की दोनों प्रकार की तंत्रिकाओं के सिरे अधिक सूक्ष्म तथा संख्या में बहुत होते हैं।

इस तरह अपनी द्विनेत्रिक दृष्टि के लिए मानव प्रधानतया अपने वानर पूर्वजों का ऋणी है। रंगों की दुनिया को देख सकने की क्षमता के लिए भी वह उन्हीं का ऋणी है। अपनी तीन-रंगी दृष्टि की वजह से मानव पुरानी दुनिया के बन्दरों से मिलता-जुलता है। चिम्पैंजी नीले और हरे रंगों में आसानी से फर्क कर सकता है किन्तु लाल और पीले रंगों को देखने की उसकी शक्ति मानव से कम है और लम्बी दुम वाले अफ्रीकी बन्दरों गेनानों (guenons) की देखने की शक्ति से अधिक समानता रखती है। प्रसमत मिक्षु-कपि (capuchin monkeys) लाल रंगों को बिलकुल नहीं देखते। वे लाल-अन्धता अथवा प्रोटेनापिया (protanopia) के बीमार आदमी से मिलते-जुलते होते हैं।

ऐसी तीक्ष्ण दृष्टि जो साथ-ही-साथ द्विनत्रीय होती थी तथा रंगों में भेद करने की सामर्थ्य रखती थी अन्य पशुओं विशेषे सर्पों तथा प्रसख्य परजीवियों और काँटों से भरे उष्ण-कटिबन्धीय जंगलों के उनके वास-स्थानों में बन्दरों के लिए जैविक रूप से अत्यधिक लाभदायक थी। जब वे अनुभव करते हैं कि उन्हें कोई खतरा नहीं है और वे खाते नहीं होते हैं झाड़ियों के बीच से सफर करने के बाद जब वे विश्राम करते होते हैं, तब एक दूसरे के बालों से कीड़े-मकोड़ों और काँटों को वे निकालने लगते हैं। साधारणतया एक

बन्दर लेट जाता है अथवा किसी सुविधाजनक आसन में खड़ा हो जाता है और बाहरी तौर से निष्क्रिय बना रहता है और दूसरा बन्दर उसके बालों तथा त्वचा के खुले भागों को टटोलने लगता है। वह बालों के एक गुच्छे के बाद दूसरे गुच्छे में सावधानी से कीड़ा-मकोड़ों तथा काँटों को ढूँढ़ता है और समय-समय पर अपनी अँगुलियों तथा नाखूनों से कीड़ों अथवा अन्य बाहरी वस्तुओं को पकड़कर उनमें से निकाल लेता है।

कीड़े बहुत छोटे तथा तकलीफ देनेवाले होते हैं। शरीर से उनके निकाल दिए जाने से उष्ण-कटिबन्धीय प्रदेशों में रहनेवाले पशुओं और लोगों को बहुत राहत मिलती है। इसको समझने के लिए आदमी के लिए अफ्रीका की लम्बी तथा बहुधा अत्यन्त कष्टदायी यात्राओं के वर्णनों की याद कर लेना ही काफ़ी है। इन वर्णनों से हम जानते हैं कि वहाँ की यात्रा की एक मुख्य बाधा—ये असंख्य काटने और डंक मारनेवाले कीड़े भी होते हैं। चींटियाँ भी उन्हीं में से होती हैं। तेज़ी से दौड़कर अथवा फुर्ती से फुदककर भाग जानेवाले किसी छोटे-से कीड़े को देखना और पकड़ लेना आसान नहीं होता। उसके लिए ज़बरदस्त चाक्षुषिक तीक्ष्णता, तीव्र तथा सुसमन्वित अंग-परिचालन तथा हाथों और दृष्टि-प्रदेश के कार्यों को नियमित करनेवाले कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के प्रेरक भागों के बीच सुव्यवस्थित प्रमस्तिष्कीय सम्बन्ध की आवश्यकता होती है।

यहाँ पर हम यह बता देना चाहिए कि पिस्सुओं की तलाश करने अर्थों में वास्तव में बन्दरों द्वारा एक-दूसरे के बालों की सफ़ाई करने के काम का पूरा वर्णन नहीं होता। बिना किसी विरोध के इस बात को माना जा सकता है कि उसका एक महत्त्वपूर्ण भाग सफ़ाई-बनाई अर्थात् कमज़ोर या गिरे हुए बालों को हटाने की क्रिया भी होता है। इन बालों की गद्दियों और जड़ों को उन छोटे-छोटे मणिभों (crystals) के साथ जो स्वेद ग्रंथियों (sweat glands) में रहते हैं बन्दर फ़ौरन खा लेता है (ईविंग 1036)।

मानव के पूर्वजों की द्वि-नेत्रिक दृष्टि का विकास आगे के बाहुओं (देह-शाखाओं) में पकड़ने की अधिक सूक्ष्म क्षमता के विकास तथा अन्य अँगुलियों के मुकाबले में अँगूठे को मोड़कर रख सकने की शक्ति के अधिक विकास के साथ-साथ हुआ था। तृतीय काल के वानर भिन्न-भिन्न खाद्य पदार्थों को प्राप्त करते थे, आँखों के पास ले जाकर तमाम कामों में उनकी जाँच करते थे, फल के कुछ भागों को दाँतों से काटकर कटे हुए भाग की परीक्षा करते थे, नन्हे-नन्हे परजीवी प्राणियों को पकड़ते तथा उनकी परीक्षा करते थे—इन तमाम कामों में तथा वानरों द्वारा किये जानेवाले ऐसे ही अन्य कामों में प्राकृतिक वरण के क्रम में प्रेरक विश्लेषकों तथा आगे के देहांगों (हाथों-पैरों) के मिले-जुले क्रमिक विकास ने अवश्य सहायता पहुँचाई होगी। आँखों के नियंत्रण के अन्तर्गत अंग-परिचालनों के संचालन-कार्य के विकास में भी उन्होंने सहायता दी होगी। एकदम प्रारम्भिक मानवों द्वारा किये जानेवाले काम ने प्रस्तर काल के प्रथम सैकड़ों-हज़ारों वर्षों के दौरान इस क्रिया में परिवर्तन पैदा किये होंगे और उसे अधिक तेज़ बनाया होगा। इसका पता किसी हद तक [illegible] ग्रंथियों से तैयार किए गए उनके साँचों से मिल सकता है। आम को

परिशाही देह-सारूपों के हाथों के विशेष विकास के बिना अथवा तीक्ष्ण त्रि-नैत्रिक दृष्टि के बिना औजार बनाने की कल्पना करना भी असम्भव है। हमारे पूर्वजों में ठीक इन्हीं शारीरिकी-दैहिकी विशिष्टताओं का संयोजन मौजूद था।

इसलिए मानव के प्रादुर्भाव तथा उसके सम्पूर्ण भावी विकास के लिए आवश्यक था कि उसके हाथ की तन्त्रिकाओं तथा पेशियों की खास बनावट का तथा उनसे सम्बन्धित केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र और दृष्टि की इन्द्रिय के सूक्ष्म शिल्प का क्रमिक रूप से निरन्तर विकास होता जाए। परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हुए, हाथ और मस्तिष्क, सामाजिक रूप से किये जानेवाले काम के दौरान विकसित होते गए।

प्रारम्भिक प्रधानकों के स्पर्श तथा दृष्टि के विश्लेषकों का उनके प्रेरक विश्लेषकों के साथ मिलकर एक नई तरह से विकास हुआ। उनके छोटे मौलिक पूर्वजों की तुलना में इस विकास का मार्ग भिन्न रहा होगा। इसकी वजह से न केवल उन्हें अपने चलने के तरीके तथा खाने की आदतों को बदलने में आसानी हुई होगी बल्कि अन्तर्जातीय (inter specis) संघर्ष की परिस्थितियों के अनुकूल बनने में भी इसने उनकी सहायता की होगी। बड़ी-बड़ी बिल्लियों नाना प्रकार के साँपों तथा शिकारी पक्षियों-जैसे खतरनाक प्राणियों के विरुद्ध संघर्ष करने की परिस्थितियों के अनुकूल बनने में विशेष रूप से विकास के इस नये तरीके ने उनकी सहायता की होगी।

कार्तिक (श्रवण के) विश्लेषक ने भी जंगल की विभिन्न ध्वनियों में फ़र्क करने में विशेषता प्राप्त करके एक महत्त्वपूर्ण भूमिका की थी। तीक्ष्ण श्रवण-शक्ति बन्दर के लिए दिन और रात दोनों समय अत्यन्त महत्त्व रखती है। कभी-कभी उसकी वजह से रात के उन शिकारी जानवरों से व बच जाते हैं जो चुपचाप उनके पास तक आ जाते हैं। गोल के अन्य सदस्यों की आवाज़ों द्वारा पैदा की गई ध्वनियों को बन्दर बराबर सुनते रहते हैं। बन्दरों द्वारा पैदा की गई कुछ ध्वनियाँ संकेतों का स्थान रखती हैं। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि गोल को खतरे से आगाह करने के लिए कौन-सा बन्दर आवाज़ पैदा करता है।

चिकित्सा विज्ञानों की अकादेमी (Academy of Medical Sciences) के सुखुमी मेडिको-बायोलोजिकल केन्द्र में एक वैज्ञानिक नीना ए० तिख ने गोल में रहनेवाले बन्दरों द्वारा अपनाए जानेवाले व्यवहार के साधनों के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण शोध-कार्य किया था (1950)। उन्होंने अपने कार्य के लिए अबीसीनिया के लंगूरों (हमाद्रियास) के एक झुण्ड को चुना था। इन बानरों की आवाज़ें उनकी भावनात्मक स्थिति की अभिव्यंजना करती हुई लगभग 15 विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ पैदा करती प्रतीत होती हैं। उन्होंने प्रमाणित किया कि इन लंगूरों द्वारा पैदा की गई ध्वनियाँ उनकी भावनाओं तथा शरीर की उनसे सह-सम्बद्ध गतियों से जुड़ी रहती हैं। कृत्रिम रूप से यहाँ तक कि औपाधिक प्रतिवर्त की पद्धति से भी इन ध्वनियों को पैदा कराना बहुत कठिन था। आंशिक रूप से इसका कारण यह है कि भावनाओं की अभिव्यंजना करनेवाली ध्वनियाँ एकदम स्व का निदिष्ट होती हैं तथा उनकी स्वाभाविक (अनौपाधिक) ध्वनियों का एक निश्चित पैतृक आर

(biological weight) के साथ कुछ सम्बन्ध होता है। उदाहरण के लिए, भोजन के संकेतों की सहायता से ऐसी ध्वनि को उत्पन्न करा सकना जिसका सम्बन्ध सुरक्षा से हो बहुत मुश्किल होता है उनसे भोजन का संकेत करती हुई ध्वनि उत्पन्न कराना अपेक्षाकृत सरल होता है। एम ए० पकराटोव ने भी इस सम्बन्ध में परीक्षण किये थे इनसे यह भी पता चला था कि वानरों की तंत्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता में व्यतिक्रम (क्रम भंग) भी होता है (एल० जी० वोरोनिन 1952)।

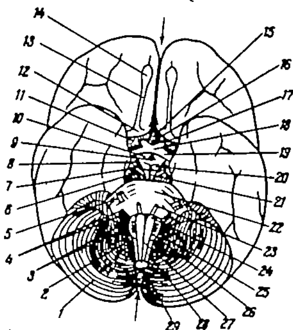
इसमें यह बात और जोड़ दी जानी चाहिए कि बन्दरों और मानव-सम वानरों के कार्णिक विश्लेषक की परिमा पर के तथा बाह्यक प्रदेश मनुष्य की तुलना में बहुधा अधिक भिन्नित होते हैं। उदाहरण के लिए, बन्दर अत्यधिक ऊँचे स्वरों (टोनों) को (लगभग 30 000 चक्र प्रति सैकण्ड की आवृत्तिवाले स्वरों तक को) सुन सकते हैं। मनुष्य विशेष ध्वानिकी साधनों (acoustic appliances) की सहायता के बिना इन्हें नहीं सुन सकता। बन्दरों की कर्ण-शष्कुली-पेशियाँ (auricular muscles) अत्यधिक विकसित होती हैं और अपने कानों को व बड़े मजे से हिला-डुला सकते हैं। परन्तु, मनुष्य के बाहरी कान में उसके बड़े आकार के बावजूद हिलने डुलने की क्षमता नहीं होती (अथवा इस कार्य के लिए वह लगभग अक्षम होता है)। गोरिल्ला तथा ओरंग-उटैन के कान भी इसमें अक्षम होते हैं यद्यपि उनके कान अपेक्षाकृत कहीं अधिक छोटे होते हैं।

इसी प्रकार से दूसरे क्षेत्रों में भी बन्दरों के विश्लेषक अधिक विकसित होते हैं। उदाहरण के लिए, उनके चाक्षुक तथा विशेष रूप से घ्राण-विश्लेषक उच्चरूप से विकसित होते हैं। दूसरे शब्दों में प्रथम संकेत तंत्र (first system of signal) के क्षेत्र में बन्दर कई मानों में मनुष्य से अच्छी स्थिति में होते हैं। परन्तु अपने मस्तिष्क की कार्यशीलता तथा संकेतों के द्वितीय तंत्र (वाणी) तथा उसके विश्लेषकों के उपयोग की दृष्टि से अपने बन्दर सम्बन्धियों की अपेक्षा मानव अतुलनीय रूप से अधिक अच्छी स्थिति में है। इन चीजों की वजह से वह वस्तुओं के ऐसे पक्षों को देख-पहचान सकता है जिन्हें कोई भी अन्य प्राणी नहीं देख-पहचान सकते।

कर्ण-शष्कुली के स्पर्श के चाक्षुक तथा अन्य विश्लेषकों के परिमापर वाले प्रदेश (बाह्यांत) प्रमस्तिष्कीय गोलार्धों के तत्स्थानीय बाह्यक प्रदेशों के साथ सीधे-सीधे जुड़े रहते हैं। परिवेश के प्रभाव के अन्तर्गत प्रधानकों का जब विकास हुआ तो वे भी उन्हीं के साथ-साथ विकसित होते गए। अब हम प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के तत्स्थानीय क्षेत्रों को देखें।

बन्दर के किस्म के मस्तिष्क का विकास एक अर्द्ध-बन्दर जैसे अधिक आदिम प्रधानक के मस्तिष्क से हुआ था। उदाहरण के लिए, लेम्यूर का मस्तिष्क बहुत छोटा होता है। उसका भार केवल कुछ दर्जन ग्राम होता है। उसका घ्राण-प्रमेष्ठ तो अच्छी तरह विकसित होता है परन्तु उसके ललाटकीय पिण्ड छोटे होते हैं। उसका मंख-पिण्ड जो प्राय: सभी प्रधानकों में मिलता है, स्पष्ट दिखलाई देता है। अधिकांश प्रधानकों के प्रमस्तिष्कीय

गोलार्धों के तल पर सम्बेलस को अथवा वलिकाओं की एक छोटी संख्या होती है। उसके पश्च-कपाल प्रदेश में स्पष्ट रूप से दिखलाई देनेवाली एक पक्षाभुष दरार (spur like fissure) होती है वैसी ही जैसी कि तमाम अन्य प्रधानकों में मिलती है। अनुमस्तिष्क मस्तिष्क से केवल आंशिक रूप से ही ढका रहता है।



चित्र 62. मानवी मस्तिष्क के अधोतल का दृश्य

1 अनुमस्तिष्क, 2. कर्णतंत्रिका 3 जिह्वा-ग्रसनी तथा प्राणदा तंत्रिकाएं 4 धमनमीय तथा प्रावसिकी तंत्रिकाएं 5 त्रिकोणात्मक तंत्रिका 6 आक्षेपिक तंत्रिका 7 अभिवाहक तंत्रिका 8 प्रमस्तिष्कीय वृन्त 9 निलय 10 धूसर अंकुर 11 धूसर के आगे का छिद्रमय क्षेत्र 12. घ्राण का त्रिकोण 13 घ्राण मार्ग, 14 घ्राण कन्द (14 और 15 के बीच का तीर अनुदैर्ध्य दरार की ओर इंगित करता है) 15 ललाट की सीमा 16. शोधकोषिय स्नायु 17 दृष्टि तंत्रिका 18. दृष्टि व्यत्यस्त 19 दृष्टि मार्ग 20. चूचुका (कार्पोरा मैमिलेरिया) 21 अग्र पृष्ठीय भित्तक (दो रंगों) बीच का छिद्रमय क्षेत्र इसी चित्र में होता है। 22. सेतु तथा सेतुओं की मुख्य सीमा 23 मस्तिष्कीय तंत्रिका 24 मस्तक का भूप 25. ओलिव (फल) 26. अधो-जिह्वा तंत्रिका 27 मस्तक की पश्चिमभव्य दरार 28. अग्र का पश्च तंत्रिका 29 मस्तिष्क पुच्छ (29 और 1 के बीच का तीर अनुमस्तिष्क के बड़े भाग की ओर इंगित करता है।

र विलिमर, 1930 के आधार पर।

मानव समेत सभी प्रधानकों के मस्तिष्क के वृन्त में खण्डीकरण (segmentation) के चिह्न होते हैं। यह रीढ़ रज्जु (मज्जग्रह) में अधिक स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है उसमें रज्जु से निकलते जोड़ों को उन्मेदक तथा उत्तर की प्रेरक-तंत्रिकाओं के युग्मित सम दूरी रखनेवाले गुच्छों के रूप में यह दिखलाई देता है। मस्तिष्क के वृन्त (वल्कों) में इसी तरह का अन्तर्विभाजन कर्पर तंत्रिकाओं के बारह जोड़ों के सममितिपूर्ण विन्यास के रूप में व्यक्त होता है। खण्डीकरण (या विभाजन) की यह प्रवृत्ति इस बात का प्रमाण है कि मानव के पूर्वज जिन्हें बहुत दिन नहीं हुए, चतुष्पदीय थे और उसके और दूर के पूर्वज निम्न वर्ग के पृष्ठ-वंशी थे। बन्दरों तथा अर्द्ध-बन्दरों के साथ-साथ मानव की जड़ें पशु जगत् (पशु लोक) में बहुत गहराई तक जाती हैं। और बन्दर अथवा वानर के मस्तिष्क की रचना ही उसके अपने मस्तिष्क की रचना का आद्य स्वरूप था। रीसस मकाक (हिमालय-कपि) अथवा बैबून (लंब-वानर) जैसे निम्न वर्ग के बन्दरों का मस्तिष्क लम्यूर के मस्तिष्क से अधिक बड़ा और भारी है उसका वजन 80 और 100 ग्राम के बीच होता है उसकी घ्राण की गाँठें बहुत बड़ी नहीं होतीं और उसके सबसल्कों तथा कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के प्राचीन घ्राण प्रदेशों के अन्य भाग कम विकसित होते हैं—यद्यपि मनुष्य की तुलना में व अधिक स्पष्ट होते हैं (चित्र 6*)।

आई० एम० फ़िलीमोनोव (मस्तिष्क संस्थान मास्को) की खोजों से प्राप्त हुई आधार-सामग्री (न्यासों) के अनुसार मानवी कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) का मुख्य क्षेत्र जो उसके घ्राण के कार्यों से सम्बन्धित है और इसलिए जिसे प्राचीन अथवा पुरा-कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) माना जाता है—पूरे क्षेत्रफल का केवल 0.61 प्रतिशत होता है (फ़िलीमोनोव 1949)। मानवीय कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के घ्राण-प्रदेश के घटन की तुलना यदि कई दूसरे प्रधानकों के घ्राण प्रदेश के कम होने के साथ की जाए तो उसी अनुसन्धानकर्त्ता के कथनानुसार, मनुष्य के अन्दर प्राचीन कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) का पूरे के साथ अनुपात साधारण मार्मोसेट (हापाल—नखर-कपि) की (4.7 गुना) की तुलना में बहुत कम हो जाता है।"

पुरा-कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के विपरीत नव-कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) एक विकासशील अंग है मानव समेत कई प्रधानकों में विकास का अत्यन्त उच्च स्तर उसने प्राप्त कर लिया है (चित्र 63 तथा 64)। यह काय कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के कुछ प्रदेशों के क्षेत्रफल में विस्तार हो जाने से विशेष तौर से सम्भव हुआ है। यह विस्तार जिस तरह से हुआ है वह केवल मनुष्य की विशिष्टता है। उदाहरण के लिए, हम मानव और बन्दरों के नव-कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के नीचे के पार्श्विक प्रदेश को लें।

मास्को के मस्तिष्क संस्थान के आई० जी० एवकेवा ने सामान्य मार्मोसेट (हापाल—नखर-कपि) रेसस बन्दर, अफ्रीका के लम्बी दुमवाले बन्दर चिम्पान्जी चिम्पैंजी और रंग उटन तथा मानव के कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के इस प्रदेश का अध्ययन किया था। उन्होंने प्रमाणित किया कि इन सबकी मूल रचना की रूपरेखा में एक ही जैसी



चित्र 63 प्रधानों के प्रमस्तिष्क के प्रान्तस्थ भागों के कार्यक्षेत्रों के क्रम
I कीट-भक्षी स्तनधारी (दिखाऊ मॉनटोड एलिफेन्टुलस) II. प्रसमी तुपाया (तरु-छछूंदर), III
चूहिया जैसी पूंछ वाले वृक्ष-छछूंदर (पिलोसिरकस लावर्ई), IV लमूर V नयी दुनिया के बंदर
VI मार्मोसेट (नयार अंग) VII मकाक VIII. मानव (सियानी मानव)।
I, II IV एक क्लार्क 1929 के आधार पर।
III V VI VII VIII के आइमैन 1925 के आधार पर।

चित्र 64 वानरों व मानवसदृश कपियों व मानव मस्तिष्कों के प्रदेश

1 ओरंग-उटैन (वन-मानुष) 2. सिफैका (निम्न वानर) 3 गोरिल्ला (भीम-वानर), 4 मानव 5 लमूर (शिखा-कपि), 6. मर्मोसेट (नखर-मर्कट) 7 केपुचिन (सिवकपि) 8. मकाक 9 बैबून (श्व-वानर), 10 गिब्बन (शाखा-वानर)। a. चालक, b. गुम्भारक, c. रुचि समन्वयी तथा d. अन्य प्रदेश। चारों पार्श्विक पत्र। उल्लेखनीय चित्र सामने है (चित्र दिखलाता है कि लेमूर और मर्मोसेट की अवस्था से मानव-कपि तथा मानव की अवस्था तक उसका क्रम बराबर विकसित होता गया)। मानव के प्रान्तस्थ भाग के कालानुक्रम प्रदेश का विस्तार देख पाएगो पाचक क्षेत्र को दिखलाता है। आकारमाप का ½ है। एल० सिबना 1928 के आधार पर।

विशेषताएँ हैं उन्होंने दिखलाया कि मनुष्य के विशिष्ट मानवी क्षेत्र 39 और 40 (human areas 39-40) मानव सर्पों के कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) में भी मिलते हैं (के० बाडमैन 1926)। साथ-ही-साथ उनके बीच स्पष्ट परिमाणात्मक तथा गुणात्मक अन्तर भी उन्होंने ढूँढ़ निकाले। एक ओर तो मानव-सर्पों के कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के इस प्रदेश के साथ लगे हुए क्षेत्रों तथा उप-क्षेत्रों के बीच की सीमाएं मनुष्य की सीमाओं की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होती हैं, दूसरी ओर, मानव-सर्पों में ये क्षेत्र बहुत कम विकसित होते हैं और नीचे के सम्पूर्ण पार्श्विक प्रदेश को न ढककर केवल उसके ऊपर के भागों को ही ढक पाते हैं। साधारण मार्मोसिट (नखर-कपि) का नीचे का पार्श्विक प्रदेश सम्पूर्ण बाह्यक तल का 0 17 प्रतिशत होता है ओरंग-उटैन और चिम्पांजी में यह उनके पूरे बाह्यक तल का 3 3 प्रतिशत होता है, परन्तु मानव में यह नीचे का पार्श्विक प्रदेश काफी फैल गया है और सम्पूर्ण क्षेत्रफल के 7 0 प्रतिशत का घर रहता

है (वाई. जी० शेवचेंको 1930-1934)।

यह अनुपात अत्यन्त शिक्षाप्रद है। मानवी प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) का सम्पूर्ण क्षेत्रफल यद्यपि चिम्पैंजी के प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) से तीन गुना बड़ा होता है परन्तु मनुष्य का नीचे के पार्श्विक प्रदेश से 10 गुना अधिक बड़ा होता है। जाति-इतिहास की दृष्टि से मनुष्य में इस नव नीचे के पार्श्विक प्रदेश के इतने सबल विकास का कारण स्पष्ट रूप से यह है कि श्रम-क्रियाओं तथा वाणी (द्वितीय संकेत प्रणाली) के प्रभाव के अन्तर्गत वह और अधिक तथा जैसिम्मय-पूर्ण कार्य करने लगा था। तंत्रिका की वही गड़बड़ियों के समय इस प्रदेश के कार्यों में विघटन दिखलाई देता है। इसलिए, नीचे का पार्श्विक प्रदेश द्वितीय संकेत-प्रणाली के कार्यों के साथ, वाणी बोलने पढ़ने तथा लिखने के कार्यों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। जाति-इतिहास की दृष्टि से मानवी प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) का यह नया प्रदेश मानव के मस्तिष्क को बन्दरों तथा वानरों के मस्तिष्क से गुणात्मक रूप से ऊपर उठा देता है।

मानव के ललाटकीय क्षेत्र में भी कुछ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ऐसी विशिष्टताएँ मिलती हैं जिनकी उत्पत्ति जाति-इतिहास की दृष्टि से हाल में ही हुई है। ये विशिष्टताएँ मानव मस्तिष्क को पशु के मस्तिष्क के ऊँचे स्तर पर पहुँचा देती हैं। मास्को के मस्तिष्क संस्थान में वाई. पी० कोनोनोवा ने इस विषय पर ब्यौरेवार अध्ययन किया था। उन्होंने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण खोज की थी चिम्पैंजी के मस्तिष्क के नीचे के ललाटकीय प्रदेश में उन्हें ऐसे क्षेत्र मिले थे जो मानवी मस्तिष्क के ब्राडमैन के चवालीस और पैंतालीसवें क्षेत्रों के अनुरूप हैं। विदेशी विद्वानों ने तो मानव-समा तक के अन्दर ऐसे श्रम-जातों की उपस्थिति से इन्कार किया है। प्रारम्भिक रूप में ऐसे क्षेत्रों के अनु-चिह्नों को कोनोनोवा ने निम्न वर्ग के कुछ बन्दरों में भी ढूँढ निकाला था (वाई० पी० कोनोनोवा 1940)। क्षेत्र चवालीस और पैंतालीस मानव के लिए इतने महत्त्वपूर्ण क्यों होते हैं? इस भाग तथा स्पष्ट वाणी के कार्यों के बीच जो सम्बन्ध है उसे विद्वानों ने बहुत पहले ही नोट किया था। प्रसिद्ध फ्रांसीसी मानवशास्त्री पॉल ब्रोका के नाम पर मस्तिष्क के इस भाग को उन्होंने 'ब्रोका के वाणी-केन्द्र' का नाम तक दे दिया था। परन्तु, बाद में पता चला कि वाणी के कार्यों में केवल ललाटकीय प्रदेश ही नहीं बल्कि नीचे के पार्श्विक तथा शंख-प्रदेश भी अपनी भूमिका करते हैं। परीक्षणों से पता चला है कि वाणी के कार्यों का प्रेरक क्षेत्र वास्तव में नीचे की ललाटकीय वल्लिका में स्थित होता है। बाएँ गोलार्द्ध के इस प्रदेश में यदि कोई बीमारी हो जाए तो दाहिने हाथ वाले लोगों में शब्दों के द्वारा विचारों को व्यक्त करने की शक्ति का लोप (aphasia) हो जाता है तथा वाणी सम्बन्धी और भी व्याधियाँ पैदा हो जाती हैं।

मानव के ललाटकीय पिण्ड का निरन्तर विकास होता जाता है। यह चीज उसकी अन्य शारीरिक तथा बौद्धिक विशेषताओं में जैसे कि तन्तुकों (fibrils) के गुच्छों के द्वारा

मस्तिष्क के अन्य प्रदेशों के साथ उसके बहुसंख्यक सम्बन्धों से प्रमाणित हो जाती है। तन्तुओं के घेर में होने वाले मिमिलिनकरण (myelinization) से (जैसे कि नीचे के पार्श्विक प्रदेश में) विकास क्रम में समाटनीय पिण्ड की सापेक्ष वृद्धि से तथा प्रमस्तिष्कीय गोलार्ध के तल पर मवसलकों की संख्या के बढ़ जाने के कारण तमाम आकारों की दरारों से बनी चित्रकृति के स्पष्ट रूप में पचीदा बन जाने से भी इसी चीज का प्रमाण मिल जाता है।

वाणी के कार्यों के साथ जिस दूसरी चीज का सम्बन्ध है वह है सख प्रदेश। इसके अन्दर ध्वनि संग्रहण का क्षेत्र (sound reception zone) होता है और स्पष्ट वाणी अथवा और भी व्यापक शब्दावलि में कहा जाए तो ध्वनि की भाषा के संग्रहण से यह विशेष रूप से सम्बन्धित होता है। एस० एन क्रिनिट्स्की (1940) के शोध-कार्य ने स्पष्ट कर दिया है कि क्षेत्र 41 जिसका कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के श्रवण क्षेत्र के रूप में खास महत्व है बंदरों की अपेक्षा मानव में अधिक सूक्ष्म रूप से विभिन्नित होता है। शंख पिण्ड के अन्य भाग के जाति-इतिहास की दृष्टि से नये क्षेत्र के सम्बन्ध में भी यही बात कही जानी चाहिए। मनुष्य का मस्तिष्क बंदर के मस्तिष्क से इस बात में और भी स्पष्ट रूप से भिन्न होता है कि उसके शंख-पिण्ड के मध्य-उप प्रदेश के बाहमेज क्षेत्र 21 की रचना बहुत सूक्ष्म होती है।

शंख-पिण्ड के पिछले क्षेत्रों का खासतौर से उसके उस भाग का जिसे वहल (एक जर्मन शरीर-विज्ञानी के नाम पर) वर्निक-ग्रन्थि कहा जाता था बड़ा महत्व है इसे उसकी अस्वस्थता की हालत में भी देखा जा सकता है। इन क्षेत्रों में जब कभी व्याधि लग जाती है तब सम्वेदक असमता (sensory aphasia) पैदा हो जाती है अर्थात् फिर शब्दों को नहीं समझा जा सकता। साथ लगे हुए पिण्ड में यानी पश्च-कपाल में कोई बीमारी हो जाती है तो उसमें शब्दों की अक्षमता अथवा दार्ष्टिक असमता (optical alexia) पैदा हो जाती है जिससे मरीज अक्षरों अथवा पूरे-पूरे शब्दों को नहीं पहचान पाता। इसलिए, सम्भवतः यह प्रदेश केवल उन्हीं कार्यों में महत्वपूर्ण योगदान करता है जिन्हें सिर्फ मनुष्य कर पाता है, अर्थात् यह केवल द्वितीय संकेत प्रणाली (second system of signals) के कार्यों में ही मदद पहुँचाता है। इस द्वितीय संकेत-प्रणाली के साथ किसी-न-किसी रूप में सम्पूर्ण कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) का भी सम्बन्ध होता है।

दार्ष्टिक विश्लेषक का प्रमस्तिष्कीय सिरा कार्टेक्स (प्रांतस्थ भाग) के पश्च-कपाल प्रदेश में स्थित होता है। मनुष्य में प्रथम तथा द्वितीय संकेत-प्रणालियों से सम्बन्धित दार्ष्टिक प्रतिबिम्बों के संग्रहण की यह प्रथम मुख्य इन्द्रिय होता है। फिर इसमें आश्चर्य ही क्या है यदि हम सम्बन्ध में भी अनुसंधानकर्ता अन्य प्रधानकों के मस्तिष्कों की तुलना में काफी अन्तर पाते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि वानरी मस्तिष्क के मानवी मस्तिष्क में विकसित होने की क्रिया से सम्बन्धित एक स्पष्ट गुणात्मक पुनर्गठन इसी प्रदेश में हुआ है।

इस संबंध में फिर हम मास्को के मस्तिष्क संस्थान में हुए शोध-कार्य से प्राप्त सामग्री

का उपयोग करेंगे। वहाँ पर मानव, वानरों तथा निम्न वर्ग के बंदरों के मस्तिष्कों का अध्ययन किया गया था (एम० एस० ब्रियोडजेन्स्काय तथा आई० एम० फिलीमोनाफ 1949)। इसमें देखा गया था कि पश्च-कपाल प्रदेश के तीन वास्तविक क्षेत्रों में से क्षेत्र 19 का सबसे अधिक विकास हुआ था और उसकी रचना भी बहुत जटिल थी। क्षेत्र 17 बहुत छोटा था। मानव में क्षेत्र 19 कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के कुल तल के 4.5 प्रतिशत को घेरता है। ओरंग-उटैन में यह 6.5 प्रतिशत तल को घेरता है और निम्न वर्ग के (पेनान-अफ्रीकी किस्म के) बंदर में 6.0 प्रतिशत तल को। और इसी प्रकार, क्षेत्र 17 उनके कार्टेक्स के कुल तल के क्रमश: 3.0 प्रतिशत, 8.5 प्रतिशत तथा 10.0 प्रतिशत क्षेत्र को घेरता है।

इससे देखा जा सकता है कि मानव मस्तिष्क के पश्च-कपाल प्रदेश की कुछ विशिष्ट विशेषताएँ होती हैं। दूसरे शब्दों में पश्च-कपाल के प्रदेश के 19 और 17 क्षेत्रों का विकास मानव के निकटतम सम्बन्धियों यानी वानरों अथवा बन्दरों के मस्तिष्कों के विकास के ढंग से सर्वथा भिन्न रूप में हुआ है।

प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्धों में इन क्षेत्रों की स्थिति एक भिन्न ही चित्र उपस्थित करती है। क्षेत्र 17 मानव के पार्श्विक पक्ष में नहीं स्थित होता बल्कि कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के पार्श्विका-शंखीय प्रदेश की अतिशय वृद्धि के परिणामस्वरूप यह लगभग पूर्णतया गोलार्द्ध के माध्यमिक भाग में स्थित होता है। इसी प्रदेश में वह पक्षाकुश दरार (*spur-like fissure*) होती है जो बन्दरों में प्रमस्तिष्क के पार्श्विक पक्ष में पश्च-कपाल की धुरी पर स्थित होती है। निम्न वर्ग के बन्दरों में पश्च-कपाल के कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) का वास्तविक क्षेत्र पार्श्विका की तरफ धसा गया है और आंशिक रूप से अपनी पीछे की सीमा को उसने ढक लिया है। इसकी वजह से यह अर्ध वानरी दरार पैदा हो गई है जो पार्श्विका तथा पश्च-कपालीय पिण्डों की सीमा पर प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्धों के पार्श्विक तल पर स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है।

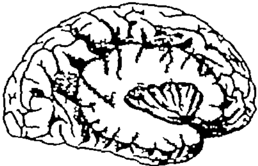
मानव में पश्च-कपालीय पिण्ड की वृद्धि मजबूती से रुक गई है तथा उसके सापेक्ष आयामों में भी कुछ कमी हो गई है, इसका कारण है नीचे के पार्श्विका, शंखीय तथा ललाटकीय पिण्डों की वृद्धि। इससे निष्कर्ष निकलता है कि प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स के कुछ भागों के अधिक विकास के कारण दूसरे भागों अथवा तत्वों में सापेक्ष अवनति होती गई है। पूरे मस्तिष्क के सम्बन्ध में भी यह बात सही है। पहले की विशेषताओं के आधार पर, मानव-प्रजनन की प्रक्रिया के दौरान उसमें पूर्णतया नई मानवी विशेषताओं का आविर्भाव हो गया है और उसके अन्दर वानरी लक्षण कमज़ोर हो गए हैं अथवा सर्वथा विलुप्त हो गए हैं। एक अन्य उदाहरण के द्वारा भी इसे स्पष्ट किया जा सकता है।

ललाटकीय तथा शंखीय पिण्डों की बीच की सीमा पर प्रमस्तिष्क की गहरी दरार के एकदम अन्दर केन्द्रीय पिण्ड अथवा रील का द्वीप (*Island of Reil*) है (चित्र 65)। उसे दरार के सीमान्तों को पीछे की ओर हटाकर देखा जा सकता है। दरार के ऊपर साथ

ढके हुए पिण्डों से जिनमें शंख-पिण्ड भी सम्मिलित है, एक ढापन अथवा आवरण बन जाता है। बर्बर वानरी मस्तिष्क कुछ भिन्न होता है। उसका केन्द्रीय (सम्पर्की) अथवा पृथक पिण्ड बहुधा ऊपर बताये गए पिण्डों के बीच के तल पर आगे तक बढ़ आता है और एक मध्यस्थिति अपना लेता है। (ए० ए० इलिन 1934)।

बढ़े हुए सम्वेस्मकों (वलिकाओं) के उदाहरण—जैसेकि पृथक पिण्ड के इर्द-गिर्द की उनकी वह वृद्धि जिससे सिलवियन (गहरी) दरार के तल पर एक द्वीप बन जाता है—जाहिर करते हैं कि उनके विकास (सम्वेस्मीकरण) की एक तीव्र क्रिया चलती रहती और उसके साथ-साथ दरारों की संख्या में विशेष रूप से द्वितीय तथा तृतीय वर्ग की दरारों की संख्या में वृद्धि होती जाती है।

मानवी मस्तिष्क के कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) में होने वाले मानवी शरीर के विकास की यह क्रिया बताती है कि श्रम तथा वाणी के प्रभाव के अन्तर्गत होनेवाले मानवी शरीर के विकास के दौरान तंत्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता की केन्द्रीय इन्द्रिय का रूपान्तरण होता रहता है। यह क्रिया मानव को बर्बर वानरों के मस्तिष्क के विकास की क्रिया से एकदम अलग श्रेणी में रख देती है। बर्बर वानरी मस्तिष्क का विकास शुद्ध रूप से जैविक अथवा अधिक व्यापक अर्थ में प्राकृतिक कारकों के प्रभाव के अन्तर्गत होता है।



चित्र 65 ललाटकपाल, पार्श्विक तथा शंखीय पिण्डों के प्रतिच्छादी भागों से बने आच्छद (ढक्कन) के हटा दिये जाने के बाद सिल्वियन विदरों के तल पर मानवी प्रमस्तिष्कीय गोलार्ध का केन्द्रीय पिण्ड अथवा द्वीप। ई. सिसिंगर, 1930 के आधार पर।

मानवी मस्तिष्क के कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के सम्वेस्मीकरण की तथा उसमें दरारें बनने की तीव्र क्रियाओं का कारण यद्यपि आंशिक रूप से स्वयं मस्तिष्क के आकार में होनेवाली वृद्धि होती है परन्तु उसका मूलभूत कारण प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्धों के आन्तरिक कोशिका संगठन में होने वाला गुणात्मक रूपान्तरण ही होता है। यह बात प्रमाणित की जा चुकी है कि सुकुमार बाह्य कोषा-झिल्लों की आश्चर्यकारी जटिलता का कारण बहुत भारी हद तक तंत्रिका कोशिकाओं की अर्थात् तंत्रिका-कोशिकाओं (न्यूरनों) की—उनके समस्त तन्तुओं के साथ एक अनुपाती समृद्धिशाली संरचना होती है।

मानवी मस्तिष्क का आयतन ओरंग-उटंग के मस्तिष्क के आयतन से तीन गुना बड़ा होता है परन्तु ओरंग-उटंग के मस्तिष्क में केवल एक अरब न्यूरन

(तन्त्रिका-कोशिकाएँ) होते हैं और मानवी मस्तिष्क में 3 अरब नहीं बल्कि कम-से-कम 14 अरब न्यूरन (तन्त्रिका-कोशिकाएँ) होते हैं। इस चीज की ही वजह से वैज्ञानिक परीक्षणों से स्पष्ट हो गया है मस्तिष्क के भागों के आपसी सम्बन्धों के बारे में जबर्दस्त उलझनें पैदा होती हैं। साथ-ही-साथ इससे एक बार फिर यह प्रमाणित हो जाता है कि मानव का मस्तिष्क बर्बर वानर के मस्तिष्क से गुणात्मक रूप में भिन्न है।

इस भाँति आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले प्रमाण इस बात को सही साबित कर देते हैं कि मानव का मस्तिष्क प्राणि-विकास की एक अत्यन्त लम्बी शृंखला की चरम उपलब्धि है। प्राग् ऐतिहासिक काल के अन्त के समीप जब वानरों से प्रथम मानवों का विकास हुआ तभी श्रम तथा वाणी के प्रभाव के अन्तर्गत तन्त्रिका-तंत्र के तीव्र विकास की क्रिया का श्रीगणेश हो गया था। तभी मानव चेतना का जन्म हुआ और इससे मनुष्य का प्रकृति के नियमों को समझने तथा स्वयं अपनी उत्पत्ति के सम्बन्ध में खोज-बीन करने की शक्ति प्राप्त हुई।

मानव-मस्तिष्क की रचना विकास तथा उसके कार्यों के अध्ययन का जो पूरा क्रम रहा है वह इस धार्मिक धारणा का पूर्णतया खण्डन कर देता है कि मानव-शरीर का नियामक दैवी आत्मा के एक अंश के रूप में उसके भौतिक पक्ष की अमर प्रतिमूर्ति के रूप में आत्मा करती है। मस्तिष्क में कार्यों के स्थान-सीमन (localization) का सिद्धान्त जाहिर करता है कि समस्त मानसिक क्रियाएँ मस्तिष्क के अक्षत भागों के सामान्य रूप से कार्य करने तथा उस सबसे महत्त्वपूर्ण पूरी इन्द्रिय पर ही निर्भर करती हैं।

मस्तिष्क की सामान्य कार्यशीलता की समझदारी प्राप्त करने में पैवलोव के यौगानिक प्रतिवर्ती के गहन रूप से भौतिकवादी सिद्धान्त से अत्यधिक सहायता मिलती है। उस महान् देहिकी-विद् द्वारा निकाला गया यह सिद्धान्त अकाट्य रूप से यह सिद्ध कर देता है कि स्तनधारियों तथा मानव के तन्त्रिका-तंत्र के कार्य का नियंत्रण करनेवाले आम नियम मौजूद हैं यह सिद्धान्त उनकी प्रथम संकेत-प्रणाली की एक ही जैसी प्रकृति को स्पष्ट कर देता है तथा मानव-शरीर के व्यक्ति-इतिहास जाति-इतिहास तथा उसकी रचना और उसके जीवनावश्यक कार्यों की विशिष्टताओं को समझने में सहायता करता है। मानव शरीर या पशु जगत् के विकास की और भी प्राचीन अवस्थाओं की उत्पत्ति है।

इसके अतिरिक्त अपने वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर, पैवलोव ने द्वितीय संकेत प्रणाली की अवधारणा की स्थापना की थी। यह प्रणाली केवल मनुष्य में मिलती है। पशुओं में यह नहीं मिलती। वाणी तथा चिन्तन से सम्बन्धित गहनतम वैज्ञानिक तथा दार्शनिक समस्याओं की जाँच-पड़ताल के लिए इस विचार का कितना महान् महत्त्व है— इसे बढ़ा-चढ़ाकर कह सकना कठिन होगा।

पैवलोव का प्रतिवर्ती सिद्धान्त लेनिन के प्रतिबिम्ब के सिद्धान्त की सत्यता को, प्राकृतिक-वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर अच्छी तरह से प्रमाणित कर देता है। इस प्रकार, जहाँ तक चिन्तन को इन्द्रिय के रूप में मस्तिष्क के विकास का सम्बन्ध है मानव प्रजनन

की समस्या पर इस सिद्धान्त से प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

3 बन्दरों की तन्त्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता

पशुओं की तन्त्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता का अध्ययन दैहिक-विज्ञ औपाधिक प्रतिवर्तों को मुख्य रूप से वस्तुगत प्रणाली के आधार पर करते हैं। महानतम रूसी दैहिक विज्ञों आई० एम० सेचेनोव तथा आई० पी० पावलोवद्वारा रचित दैहिकप्रतिवर्त का सिद्धान्त (physiological reflex theory) तन्त्रिका-वाद का सिद्धांत (theory of nervism) उस एक पूरी धारणा की आधार-शिला है जिसकी सहायतासे जीव-शास्त्री जिनमें मानव शास्त्री भी शामिल हैं विकास से सम्बन्धित कुछ सबसे कठिन समस्याओं के समाधान के लिए एक सही तथा प्रगाढ़ भौतिकवादी दृष्टिकोण के साथ आगे बढ़ सकते हैं।

पैवलाव के दैहिक सिद्धान्त उन प्रतिक्रियावादी धारणाओं के विरुद्ध एक शक्तिशाली तथा प्रभावपूर्ण अस्त्र का काम देते हैं जिन्हें विशेष रूप से अमेरिका ग्रेट ब्रिटेन तथा जर्मनी में प्राणि-मनोविज्ञान के क्षेत्र में जबरदस्ती घुसेड़ दिया गया है। तन्त्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता के परीक्षण की मनोगतवादी पद्धति का स्थान एक-न एक दिन वस्तुगत वादी पद्धति अवश्य ले लेगी। स्मरण होगा कि पैवलोव इस बात की कभी अनुमति नहीं देते थे कि तन्त्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता के अध्ययनार्थ किए जानेवाले दैहिक प्रयोगों का वर्णन मनोविज्ञान की शब्दावली में किया जाए। द्वैतवादी भाववादी (idealist) मनोविज्ञान के विरुद्ध जहाँ वे संघर्ष करते थे वहीं भौतिकवादी मनोविज्ञान के अस्तित्व तथा विकास को वे एक प्रमाणित वास्तविकता के रूप में मानते थे। भौतिकवादी मनोविज्ञान का आधार मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त है उसकी पद्धति का सम्बन्ध प्रतिवर्ती सिद्धान्त से है, और अब मनोविज्ञान स्वयं पैवलोव की शिक्षाओं के साथ अभिन्न रूप से जुड़ गया है। तन्त्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता स्पष्ट वाणी (द्वितीय संकेत प्रणाली) चिन्तन तथा श्रम जैसी मानव-प्रजनन के अध्ययन के लिए प्राथमिक महत्त्व की चीजें पैवलोव के कार्यकलाप में अत्यन्त प्रमुख स्थान रखती हैं। पवलोववादी दैहिकी पूर्णतया भाववाद के विरुद्ध है। मानव-प्रजनन के सम्बन्ध में डार्विनवाद विरोधी नानाविध परिकल्पनाओं के विरुद्ध सोवियत के मानवशास्त्री जो संघर्ष चला रहे हैं उसमें पैवलोववादी दैहिकी एक ठोस वैज्ञानिक आधार का काम करती है।

बन्दरों के व्यवहार में कुछ ऐसी विशेषताएँ मिलती हैं जो किसी भी अन्य प्राणी की अपेक्षा मानव के व्यवहार के साथ कहीं अधिक समानता रखती हैं। बंदरों का यह व्यवहार बहुत दिनों से वैज्ञानिकों की दिलचस्पी की वस्तु रहा है। यहाँ तक कि अठारहवीं शताब्दी में ही वैज्ञानिकों ने—उदाहरण के लिए जार्जेज बुफन (1707 1788) ने बंदरों तथा मानव-सम वानरों के कार्य-कलापों का अध्ययन किया था। इन प्राणियों के व्यवहार, परिचलन तथा उनकी सहजप्रवृत्तियों के अध्ययन-कार्य में सबसे अधिक प्रगति उस समय हुई जब प्राणि-मनोविज्ञान सहित, जीव-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में डार्विन के

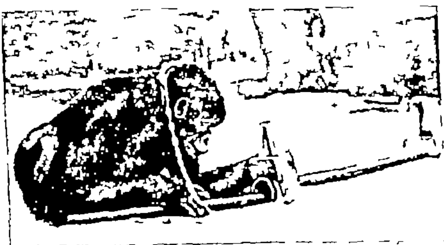
विकास सम्बन्धी सिद्धान्त का विजयपूर्वक प्रवेश हो गया।

स्मरण होगा कि मानवों तथा पशुओं में आवेगों की अभिव्यक्ति (Expression of the Emotions in Men and Animals) के सम्बन्ध में डारविन ने एक बुनियादी ग्रंथ लिखा था जो 1872 में प्रकाशित हुआ था। अपने इस ग्रन्थ को डारविन अपने दूसरे ग्रंथ मानव की उत्पत्ति तथा लैंगिक वरण (Descent of Man and Selection in Relation to Sex) का एक भाग अथवा परिशिष्ट मानते थे। डारविन ने प्रमाणित कर दिया था कि मूलभूत आवेगों की मानवी अभिव्यक्ति वानरों तथा बन्दरों की अभिव्यक्ति से बहुत मिलती-जुलती है। उनका कहना था कि इस बात को उनके (मानवों वानरों तथा बन्दरों के—अनु०) अनन्य-सम्बन्ध के एक प्रमाण के रूप में ही समझा जा सकता है।

मानव तथा पशुओं के बीच जो गुणात्मक अन्तर है उसकी ओर से आँखें मूंदने अथवा उन्हें समझने में असफल होने का प्रमाण अनेक प्राणि-मनोवैज्ञानिकों की रचनाओं में स्पष्ट रूप से मिलता है। किसी हद तक डारविन स्वयं इस कमजोरी के शिकार थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसकी वजह से पशु-मनोविज्ञान से सम्बन्धित सही धारणाओं के विकास के मार्ग में बाधा पड़ी है और, बहुत बार उस पर विचार करते समय मनुष्यत्वारोपण का दोष उत्पन्न हो गया है।

जर्मन प्राणि-मनोविज्ञानशास्त्री वोल्फगांग कोहलर ने वानर-सदृशों के व्यवहार का बहुत विस्तृत परीक्षण किया था। उसके पास कई समय जंगली चिम्पैंजी थे। उनकी 'मानसिक क्षमताओं' का पता लगाने के लिए उसने बहुत-से प्रयोग किए। इन प्रयोगों में देखा गया कि दुर्गम स्थानों पर रख दी गई, अथवा उनकी पहुँच से परे ऊपर टाँग दी गई खाने की वस्तु तक पहुँचने के तरीकों को ढूंढ निकालने में कुछ चिम्पैंजी दूसरों की अपेक्षा अधिक होशियार थे। खाने की उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए बक्सों को खिसकाकर व उनके ऊपर चढ़ गए, अथवा उन्होंने कमचियों का इस्तेमाल किया। एक प्रयोग में देखा गया कि एक चिम्पैंजी ने दो छोटे-छोटे बेंतों अथवा बाँसों को जोड़कर एक लम्बा डण्डा बनाना भी सीख लिया था। कोहलर ने इसमें यह गलत निष्कर्ष निकाला था कि चिम्पैंजी में मनुष्य की तरह की बुद्धि होती है।

मानव और पशुओं को एक ही स्तर पर रखने की यह प्रवृत्ति अमेरिकी प्राणि-मनोविज्ञान शास्त्रियों में अक्सर पाई जाती है। ऐसे प्राणि-मनोविज्ञान-शास्त्रियों में राबर्ट यर्क्स का प्रमुख स्थान था। उसने महावानरों के व्यवहार का अध्ययन किया और तय कर दिया कि बौद्धिक विकास के स्तर की दृष्टि से गोरिल्ला (चित्र 88) प्रथम स्थान रखता है चिम्पैंजी द्वितीय और ओरंग-उटैन तीसरा। परन्तु यर्क्स का सबसे गलत निष्कर्ष तो यह था कि बन्दर वानरों में चिन्तन की क्षमता है। वह कहता था कि यह क्षमता प्रत्यक्ष 'प्रभासन (illumination)' 'अनुमान' (guessing) अथवा 'विचारों' (ideas) के रूप में अभिव्यक्त होती है। दूसरे शब्दों में यर्क्स और कोहलर दोनों ने प्राणि-विज्ञान-शास्त्र सम्बन्धी समस्याओं पर भाववाद के दृष्टिकोण से विचार किया था।

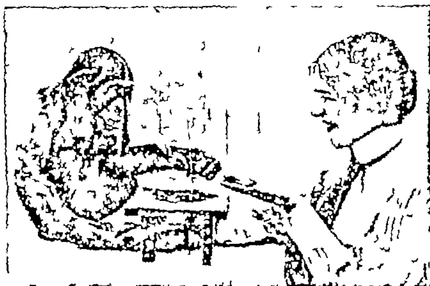


चित्र 66 युवा मादा पर्वतीय वानर (गोरिल्ला गोरिल्ला बेरिन्जेइ माट्शी) कुमारी कांगो डर्नी की सहायता से नली के अन्दर से भोजन फल को निकालने की कोशिश करती हुई। मानव-सम जीवशास्त्र की प्रयोगशाला ओरेन्ज पार्क, फ्लोरिडा, अमेरिका में आर० यर्क्स का प्रयोग। आर० तथा ए० यर्क्स 1934 के आधार पर।

पशुओं की बुद्धि तथा व्यवहार की समस्या के सम्बन्ध में सोवियत के प्राणि-विज्ञान शास्त्रियों का दृष्टिकोण भिन्न है। इस सम्बन्ध में एन० एन० लेडीजिना-कोट्स (मास्को) एन० आई० वॉयटोनिस (सुखूमी) तथा जी० जैड० रोजिन्स्की (लेनिनग्राद) जैसे उन लोगों के कार्य-कलापों की जाँच हम करेंगे जिन्होंने मानव प्रजनन की समस्या के सम्बन्ध में बन्दरों तथा वानरों का विशेष अध्ययन किया है।

एन० एन० लेडीजिना-कोट्स ने चिम्पन्जी के एक बच्चे जोनी की बौद्धिक क्षमताओं तथा उसकी वाच्छिक प्रत्यक्षशीलता की विशिष्टताओं का अध्ययन किया था। इस कार्य में नमूना दिखलाकर चीजों को उससे छँटवाने के मौलिक ढंग का उन्होंने इस्तेमाल किया था (चित्र 67)। प्रथम प्रयोग आमतौर से वे निम्न प्रकार करती थीं—प्राणी के सामने आकृति में एक ही जैसी परन्तु रंग में अलग-अलग कई वस्तुएँ रख दी जाती थीं। इसके बाद उसी तरह की एक वस्तु वे एक बक्स से निकालती थीं और चिम्पन्जी को दिखाती थीं। वह उसी रंग की वस्तु को छाँट लेता था और प्रयोगकर्त्ता के हाथ में रख देता था।

लेडीजिना-कोट्स ने इसी पद्धति का उपयोग करते हुए कई प्रयोग किये। उनमें उन्होंने निम्न निष्कर्ष निकाले—यह व्यवहार 'दूरदर्शिता' (foresight) का इतना परिणाम सम्भवतः नहीं है जितना 'दर्शनोत्तर' (after-sight) का। अगर इस तरह कहा जा सके तो हम कहेंगे कि चिम्पन्जी का मस्तिष्क प्रतिबिम्बक (परावर्तक) होता है हम



चित्र 67 बाल चिम्पैंजी जोनी के साथ प्रयोग। जोनी को प्रयोग करनेवाली महिला जो एक खिलौना दिखाती है वह वही रंग की डिबिया उठाकर देता है।
ना० लेडीगिन कोट्स, 1923 के आधार पर।

निकालने का जब व्यावहारिक अनुभव उसे प्राप्त हो जाता है केवल तभी अपने मस्तिष्क का सही तौर से इस्तेमाल करना वह शुरू कर पाता है। प्रयोगकर्ता (लेडीगिना-कोट्स 1923-1924) ने यह राय व्यक्त की थी कि इस सम्बन्ध में मानव और चिम्पैंजी में बहुत अन्तर होता है क्योंकि मनुष्य जो एक तर्कशील प्राणी होता है "परिणामों का निष्कर्ष निकाल लेता है और, ठोस अनुभव की आवश्यकता के बिना भी सही निष्कर्षों पर पहुँच जाता है।

चिम्पैंजी के साथ प्रयोग करने के अलावा लेडीगिना-कोट्स ने एक रीसस बन्दर (हिमालय-कपि) के साथ भी काम किया था। उसके भोजन अथवा मुक्ति के मार्ग की राह में भिन्न-भिन्न प्रकार की रुकावट रखकर उन्होंने उसका परीक्षण किया था। इस प्राणी के सम्बन्ध में भी फिर उन्होंने उसी तरह का निष्कर्ष निकाला था "अपनी साधारण संज्ञान-कारिणी शक्ति (cognitive ability) की दृष्टि से निम्न वर्ग का बन्दर अगर मनुष्य का बिलकुल उलटा नहीं है, तो उससे बिलकुल भिन्न तो है ही" (1920)।

चिम्पैंजी के एक बच्चे और उसी अवस्था के एक मानव-बालक के व्यवहार की विशिष्टताओं की तुलना के आधार पर हमारी यह परीक्षणकर्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँची थी कि यद्यपि चिम्पैंजी के व्यवहार में काफ़ी गुणात्मक अन्तर देखने को मिलता है, फिर









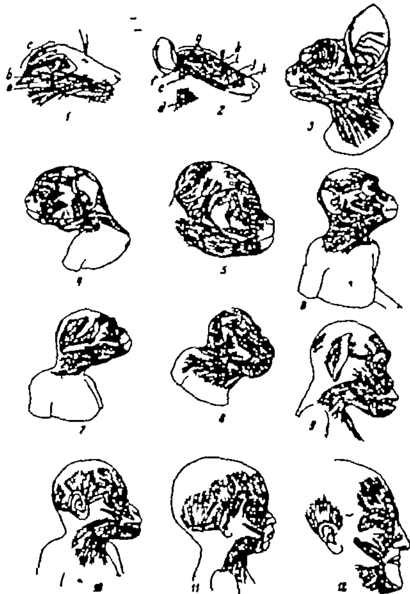

चित्र 68. बाल चिम्पैंजी कोली के चेहरे पर विभिन्न भाव
[illegible] 3 आश्चर्य, 4 घृणा 5 क्रोध 6 भय 7 [illegible]
[illegible] के आधार पर।

भी इस चीज को माना जा सकता है कि उसमें वैसे ही बौद्धिक लक्षण दिखलाई देते हैं जैसे कि उन सबसे प्राचीन होमिनोयाइडों में रहे होंगे जो बाद में चलकर तर्कशील मानव-प्राणी बन गए थे।

उसी चिम्पजी के बच्चे जौनी के व्यवहार उसकी आदतों, सहज प्रवृत्तियों तथा उसके अभिव्यंजनापूर्ण भाव-परिवर्तनों के सम्बन्ध में—डेढ़ वर्ष की अवस्था से लेकर चार वर्ष की अवस्था तक के—निरीक्षण के दौरान लेडीगिना-कोट्स ने (1935) चिम्पजी के चेहरे के भिन्न-भिन्न भावों का भी अध्ययन किया था। ध्यान उत्तेजना, दुःख, सुखी भय, क्रोध आश्चर्य मनोयोग तथा घृणा की मूलभूत अवस्थाओं के समय उसके चेहरे का भाव कैसा होता है—इसका उन्होंने अध्ययन किया था। चिम्पजी की भाव-व्यंजना में मुँह तथा होठों की गति महत्वपूर्ण कार्य करती थी (चित्र 68)। जब वह बहुत उत्तेजित होता है तब उसके सिर, पद भुजाओं तथा पैरों के बाल खड़े हो जाते हैं। पशु के रूप तथा व्यवहार में दूसरे बाहरी परिवर्तन भी दिखलाई देते थे। गोरिल्ला तथा ओरंग-उटैंग की तुलना में भी नकल बनाने का काम चिम्पैंजी आश्चर्यजनक रूप से उनसे अधिक कर सकता है। उसकी यह नकल मनुष्य द्वारा की जाने वाली नकल से बहुत मिलती है।

महावानरों के चेहरे के भावों का परास (range) निम्नतरों तथा निम्न वर्ग के बन्दरों से कहीं बड़ा होता है, परन्तु मानव से यह कम होता है। इस परिप्रेक्ष्य में मानव की श्रेष्ठता का कारण वे अत्यन्त विभिन्नतापूर्ण भाव हैं जिन्हें उसके चेहरे का पेशी-न्यास तथा उसका तंत्रिका-तंत्र सम्पन्न कर सकता है। मनुष्य का यह सम्बन्धक विशेषक अधिक उच्च रूप से विकसित होता है उसके चेहरे की पेशियों की तंत्रिकाओं के उद्दीपन की व्यवस्था अत्यन्त सूक्ष्म है, उसकी पेशियाँ अच्छी तरह से विभिन्न हैं (चित्र 69) और मस्तिष्क के साथ उसके सम्बन्धों का तंत्र अत्यन्त संश्लिष्ट है।

प्रधानकों के चेहरे के पेशी-न्यास के विकास का ब्यौरेवार अध्ययन ई० हुबर ने किया था (1931)। वह केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र के ऊपर बहुत जोर देता है। वह कहता है कि केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के विकास का उच्च स्तर चेहरे की पेशियों की संश्लिष्टता की प्रारम्भिक शर्त है—भावनात्मक अभिव्यंजना की प्रचुरता इस विकास के बाद ही सम्भव हो सकती है। ज्यों-ज्यों प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स (प्रावरक भाग) के विभिन्न प्रदेशों के पारस्परिक सम्बन्धों की संख्या बढ़ती जाती है त्यों-ही-त्यों चेहरे की पेशियाँ भी अधिक विविधतापूर्ण बनती जाती हैं। हुबर का कहना था कि जहाँ निम्न वर्ग के प्रधानकों के चेहरे के भावों की अभिव्यक्ति मात्र ऐसी सरल योजना तक ही सीमित रहती है जिसमें कुछ बराबर चलती आई विशेषताएँ होती हैं वहीं ज्यों-ज्यों वानर के ऊपर जाया जाता है त्यों-त्यों यह भावाभिव्यक्ति अधिकाधिक सम्पन्न तथा सबमुखी बनती जाती है। महावानरों तक पहुँचते-पहुँचते उसमें आश्चर्यजनक विविधता तथा संश्लिष्टता उत्पन्न हो जाती है। इन महावानरों में अफ्रीका के महा मानव-सम गोरिल्ला तथा चिम्पैंजी मानव से सबसे अधिक मिलते जुलते हैं। ओरंग उटैंग उनसे कुछ दूर



चित्र 69 प्रधानकों के चेहरे का पेशीविन्यास 1 और 2 लेमूरों टार्सियरों तथा आदिम अमेरिकी कपियों में दिखाई देनेवाले प्रधानकों के चेहरे के ऊपरी पेशीविन्यास का मूलभूत रचना के चित्र 3 मार्मोसेट का कुतरनेवाला टार्सियर (टे साल्वेयर र्वेलिन) 4 सिल्क मारमोसेट (लियोन्टोसेबस-ओडिपोमीडास रोजेलिया पान), 5 काला मकड़ बन्दर (एटेलीज ऐटेर एड कूविएर), 6 रेसस बन्दर (हिमालय-कपि) (मिकेकस-मेकाकस रीसस ओडबर्ट), 7 स्याम का शेपीदार गिब्बन (हायलोबेटिस पिलियाटस मे) 8. ओरंग-उटैन (पोंगो पिग्मायस पान) (नर जो पूरेतौर से बड़ा अभी नहीं हुआ है), 9 सामान्य चिम्पैंजी (पैन चिम्पैंजी मेयर) 10 तरुणी गोरिल्ला (गोरिल्ला गोरिल्ला मात्शी) (मृत मादा) 11. यूरोपीय शिशु, 12. वयस्क यूरोपीय। a पृष्ठपेशी (ऊपर की) b पृष्ठपेशी (नीचे की) c. चांद की ओर तथा भृकुटपारीय पेशियों का दल d. ऊपरी मेष कर्णोपरिका के मध्य भीष अंग का अविकृत भाग, e. कान को उठाने और गिरानेवाली कर्णोपरिका पेशी पृष्ठस्थ भाग f कर्णाभिमुख संरचना g नाक भौहीय, दन्तीय तथा चक्षुरक्षीय पेशियों का दल h. ओष्ठीय पेशी i. नासिकोष्ठीय मध्य को चौड़ा करनेवाली पेशी, j चर्वण कपोल पेशी k गलकोष अथवा कपोल की पेशी।

हे॰ हुबर 1931 के आधार पर।

होता है।"

परन्तु चेहरे की भावाभिव्यक्ति के विस्तार (पसार) में गोरिल्ला तथा चिम्पैंजी भी आधुनिक मानव का मुकाबला नहीं कर सकते। इसका कारण यह है कि ऊपर बताये गए प्राकृतिक-जैविक कारकों के अतिरिक्त [जिनमें सीधे खड़े होकर चलने तथा औजारों का इस्तेमाल करने की वजह से कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के प्रेरक प्रदेश के तत्सम्बन्धी क्षेत्र की प्रगति भी शामिल है] मानव के पूर्वजों का विकास प्रत्यक्ष सबल सामाजिक कारकों के प्रभाव के अन्तर्गत भी हुआ था। इन सामाजिक कारकों के प्रभाव से एकदम प्रारम्भिक मानवों के मस्तिष्क तथा मानस के उनके चेहरे के पेशी न्यास तथा उसकी भावाभिव्यक्ति के पूर्णतर विकास में बहुत सहायता मिली है।

हूबर ने कहा था साफ़ बोलने की शक्ति के प्राप्त हो जाने तथा क्रमश पूर्ण बनते जाने का चेहरे के पेशीन्यास तथा अभिव्यंजना-शक्ति दोनों के विकास पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा होगा और उन्हें मदद मिली होगी। हूबर ने आगे कहा था प्राचीन मानव के चेहरे के पेशीन्यास पर तथा आधुनिक मानव की भावाभिव्यक्ति की पेशियों के विकास पर वाणी का जो कल्याणकारी प्रभाव पड़ा था वह अभि-नेत्र गहा के प्रदेशों की पेशियों तथा उनका जोड़ने वाले भ्रू-मध्यों के साथ-साथ मुँह के आस-पास की पेशियों के ऊपर अब भी जारी है।"

नवजात शिशु के चेहरे की भावाभिव्यक्ति अपेक्षाकृत बहुत कम विभिन्न होती है क्योंकि उसकी सम्वेदक इन्द्रियाँ तथा कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) अपर्याप्त रूप से विकसित होते हैं। परन्तु जन्म के समय उसके चेहरे की पेशियाँ मुख्यतया पूर्णतया विकसित होती हैं। इस बात का भी उल्लेख करना आवश्यक है कि भावों के रूप में व्यक्त की गई नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ कुछ महीनों के गर्भों तक में देखी गई हैं (पी० के० अनोखिन 1957)। शिशुओं में चेहरे की पेशियों की क्रियाशीलता जन्म के समय पूर्णरूप से विकसित नहीं होती यद्यपि उसके बाद बहुत तेजी से वह विकास करती है—विशेष रूप से जीवन के पहले वर्ष में। उसके बाद अगले दो वर्षों में वह किञ्चित् अधिक धीमे-धीमे विकसित होती है। वयस्क व्यक्ति के चेहरे की पेशियाँ बहुत सूक्ष्म रूप से विभिन्न होती हैं। लम्बी तथा प्रयत्नपूर्ण ट्रेनिंग के द्वारा एक्टर भाव (अभिनेता) चेहरे की भावाभिव्यक्ति में असीम निपुणता प्राप्त कर लेते हैं। प्रतिदिन के जीवन में भी भावाभिव्यक्तियों की विराट् विभिन्नता—हँसी की क्रोध की तथा अन्य भावनाएँ—देखी जा सकती है। मुँह की पेशियाँ बहुत विकसित होती हैं जिससे भिन्न-भिन्न प्रकार से हँसा जा सकता है। ये पेशियाँ मुँह के कोनों को पीछे की ओर खींच लेती हैं जिससे दाँत खुल जाते हैं। वानरों के मुँह की पेशियाँ इतनी अच्छी तरह विभिन्न नहीं होती उनके द्वारा दाँतों का निकाला जाना अधिकतर भय की अभिव्यक्ति होता है यद्यपि कभी-कभी जैसाकि चिम्पैंजी के मामले में वह हँसी का भी द्योतक हो सकता है (जी० सिकरोव 1956)।

बन्दर की विशेष तौर से उसकी युवावस्था की एक खास विशेषता यह है कि आस-

पास की दुनिया की तमाम वस्तुओं में चाहे वे खाने योग्य हों या न हों उसकी दिलचस्पी होती है। एन० वाई० वॉयटोनिस (1940) ने निम्न वर्ग के बन्दरों की 'अनुस्थिति ज्ञान से सम्बन्धित अनुसंधानकारी क्रियाशीलता' का विशेष रूप से अध्ययन किया था। उन्होंने यह सिद्ध किया था कि बन्दर किसी वस्तु के केवल नयेपन की ओर ही नहीं आकर्षित होता उसकी रचना की जटिलता तथा उससे काम ले सकने की मात्रा की ओर भी वह आकर्षित होता है। बैबून (श्व-वानर) तथा रीसस बन्दर (हिमालय-कपि) मानव-सम वानरों से एक बात में भिन्न होते हैं—किसी वस्तु में इस बात से उनकी दिलचस्पी नहीं बढ़ती कि वह आवाज करती है।

किसी नई तथा मनोरंजनपूर्ण वस्तु के सम्बन्ध में बन्दर की जिज्ञासा इतनी तीव्र होती है कि वह अपनी भूख तक को भूल जाता है और हर तरफ से उस वस्तु की जाँच-पड़ताल करने लगता है। निस्सन्देह अपने परिवेश की वस्तुओं के सम्बन्ध में उसके अन्दर इतनी तीव्र जिज्ञासा की उत्पत्ति उसके जीवन के ढंग के कारण हुई है। उसीके कारण वह विकसित हुई है। बन्दर का मस्तिष्क काफ़ी सुसगठित होता है उसकी दृष्टि बहुत अच्छी होती है और उसके हाथ के अंगों में पकड़ने की शक्ति होती है। अपने स्वाभाविक वास स्थान में वह नाना प्रकार के भोजन प्राप्त कर सकता है और उसके परिवेश के घटना क्रमों तथा वस्तुओं की उस पर भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया होती है। वॉयटोनिस ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाला था अनुस्थिति ज्ञान का अनुसंधान करने की बन्दर की सहज प्रवृत्तियाँ—जिन्हें पवलोव उसकी विशिष्टता बताते हैं—भोजन की खोज के लिए जितनी आवश्यक हैं उनसे कहीं अधिक होती हैं। निम्न वर्ग के बन्दरों तक में वे भोजन की खोज की आवश्यकताओं से अत्यन्त अधिक होती हैं। यहाँ पर हम फिर डारविन के इस विचार की महत्त्वपूर्ण पुष्टि देखते हैं कि हमारे पूर्वज ऐसे वानर रहे होंगे जो भोजन की प्राप्ति के लिए अन्य वस्तुओं का उपयोग करने की क्षमता रखते थे। दूसरी तरफ़, वॉयटोनिस के निष्कर्ष आवश्यक बना देते हैं कि हम पता लगाएँ कि जीवाश्म-बन्दरों अथवा सुदूर अतीत के वानरों के अन्दर मानव की जो कुछ विशिष्ट बौद्धिक विशेषताएँ मिलती हैं उनकी जड़ कहाँ है।

वस्तुओं में बढ़ी हुई दिलचस्पी अपने-आपमें इतनी बड़ी चीज नहीं थी कि उसकी वजह से हमारे पूर्वज औजारों के उपयोग की ओर बढ़ते और उनसे काम लेने लगते। इसके लिए आवश्यक था कि इन लुप्त वानरों में इस बात की भी क्षमता होती कि वस्तुओं के पारस्परिक सम्बन्धों को वे देख सकते और उन्हें या तो अपनी प्राकृतिक इन्द्रियों के प्रयोग से अथवा किसी ऐसी वस्तु की सहायता से बदल दे सकते जो उनके हाथों में एक औजार का काम देती। वॉयटोनिस ने सिद्ध कर दिया था कि निम्न वर्ग के बन्दरों में यह क्षमता न केवल होती है, बल्कि उसका प्रकाशन भी एक मौलिक ढंग से होता है। किसी विशेष लक्ष्य में उनकी बहुत दिलचस्पी होती है तो उसे प्राप्त करने में वे जबर्दस्त दुराग्रह तो दिखलाते ही हैं। इसके अलावा निम्न वर्ग के बन्दर उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए

नाना प्रकार की वस्तुओं का भी इस्तेमाल करते हैं। एक प्रयत्न के असफल होने पर बहुधा उसका आसानी से वे परित्याग कर देते हैं और फिर कई यहाँ तक कि अनेकों प्रयत्नों के बाद उसे प्राप्त करने का सफल तरीका निकाल लेते हैं।

वोयटोनिस ने कुछ बहुत दिलचस्प प्रयोग किए थे। इन प्रयोगों में देखा गया था कि एक चोटीधारी मेकाक (pig-tailed macaque) का एक बच्चा एक बाल्टी की मदद से एक उथले कुएं में से पानी या वायु निकालना सीख गया था। एक लम्बे कांटे की मदद से दूर रखे हुए एक सेब को प्राप्त कर लेना भी उसने सीख लिया था (चित्र 70)। इसी



चित्र 70. सुखुमी के मंकी-नर्सरी ... मेकाक पर किए गए ए. ...
... प्रयोग। मकाक के एक गहरे काम प्रयोग के कुएँ में एक तरफ को रखे सेब को निकालने के लिए बन्दर एक कांटेदार छड़ी का इस्तेमाल करता है।
मानव-शास्त्र के मास्को संस्थान के अभिलेखागार से प्राप्त चित्र।

जाति के एक युवा नर ने भोजन प्राप्त करने के लिए एक लम्बी या छोटी मुड़ी हुई कमची का स्वतन्त्र रूप से इस्तेमाल करना भी सीख लिया था। (ये प्रयोग ए. आई॰ काट्ज ने किए थे। साथ में दिया गया चित्र उनके उस ग्रंथ से लिया गया है जो उन्होंने विज्ञान के उम्मीदवार की डिग्री प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत किया था।)

इन परीक्षणों से नए तथ्यों की स्थापना हुई। इन तथ्यों ने जाहिर किया कि किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बंदर अटल और जमकर प्रयत्न कर सकते हैं। इसके लिए भोजन का लालच जरूरी नहीं है। मानव के पूर्वजों में यह क्षमता और भी अधिक विकसित

रूप में मौजूद रही होगी। वस्तुओं के पारस्परिक सम्बन्धों में परिवर्तन करने के लिए औजारों का इस्तेमाल करने की क्षमता उनमें रही होगी। उदाहरण के लिए जमीन से



चित्र 71 चिम्पैंजी के साथ प्रयोग
1 बन्दर उस डोरी को पकड़ता है जिसमें एक सेब बंधा हुआ है 2 सेब को निकालने के लिए बन्दर एक टेढ़े और लम्बी छड़ का प्रयोग करता है।
ना रोगिन्स्की 1948 के आधार पर।

गाँठें कन्दों जड़ों कीटों तथा उनके डिम्भों को खोदने के लिए औजारों का इस्तेमाल करने की क्षमता उनमें रही होगी।

वॉयटोनिस के परीक्षणों के अनुसार निम्न वर्ग के बन्दरों में वस्तुओं के ब्यौरों को नोट करने (गौर से देखकर याद रखने) की शक्ति अद्भुत मात्रा में होती है। पत्थर के *औजारों का निर्माण करते समय इस गुण का हमारे पूर्वजों के लिए* जबर्दस्त महत्त्व रहा होगा। प्रारम्भ में ये औजार अत्यन्त अनगढ़ थे परन्तु बाद में उनका निर्माण अत्यन्त कौशल के साथ होने लगा था।

इस भाँति निम्न वर्ग के बन्दरों के प्राकृतिक व्यवहार की कुछ खास विशेषताओं की व्याख्या उपस्थित करके वॉयटोनिस द्वारा किए गए काम ने डारविनवाद के एक मूलभूत निष्कर्ष को सही प्रमाणित कर दिया। यह निष्कर्ष यह है कि मनुष्य की बौद्धिक क्षमताओं की जड़ों को उसके बर्बर वानर जैसे पूर्वजों की मानसिक शक्तियों में (जहाँ तक कि आधुनिक बन्दरों के आधार पर सोचा जा सकता है) ढूँढ़ा जाना चाहिए। दूसरी तरफ वॉयटोनिस के परीक्षणों का निष्कर्ष बहुत अच्छी तरह से यह भी जाहिर कर देता है कि

वानर से मनुष्य बनने में हाथ के महत्त्व के सम्बन्ध में एंगेल्स का जो विचार था वह कितना सही है।

प्रयोगों के समय यह भी देखा गया कि भिक्षु-कपि (केपुचिन) की किस्म के प्लिटिरहाइन (platyrrhine) बंदरों में भी औजारों का इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति जबर्दस्त जिज्ञासा तथा नई वस्तुओं में गहरी दिलचस्पी होती है। जी० जेड रोजिन्स्की (1040) द्वारा किये गए परीक्षणों ने दिखलाया है कि भिक्षु-कपि किस जबर्दस्त हद तक विकसित होते हैं और किसी समस्या को सही तौर से हल करने में दार्ष्टिक ग्रहीता (visual receptor) की कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह भी देखा गया कि प्रयोग की परिस्थितियाँ जब बदल दी जाती हैं तब भिक्षु-कपि भी अपनी स्थिति को जल्दी से बदल लेता है। जे० ए० विगरेस्ट के हान (1931) तथा एच क्लूवर (1033) द्वारा किये गए प्रयोगों ने भिक्षुकपियों की तीक्ष्ण मति का भी परिचय कराया था।

इससे भी अधिक दिलचस्पी की चीज रोजिन्स्की के वे प्रयोग (1048) थे जो बौद्धिक क्रियाशीलता के क्षेत्र में प्रारम्भिक कदमों की समस्या को लेकर चिम्पेंजियों के साथ उन्होंने किए थे (चित्र 71)। रोजिन्स्की ने बदरों की जैविक विशिष्टताओं पर विचार किया था। उनकी दृष्टि तथा स्पर्श की इंद्रियाँ अच्छी तरह से विकसित होती हैं तथा इनके साथ-साथ उनमें संचलन (locomotor) की खास क्षमताएँ होती हैं। अन्य स्तन धारी प्राणियों से वे कई दूसरी बातों में भी उल्लेखनीय रूप से भिन्न होते हैं।

आजादी की हालत में बदरों के जीवन की जो परिस्थितियाँ होती हैं उनको समझना पड़ती है क्योंकि दूसरे स्तनधारी प्राणियों की तुलना में जैविक रूप से उनका व्यवहार अत्यन्त संश्लिष्ट होता है, यद्यपि उनके व अजात अनोपाधिक प्रतिवर्त परिणाम की दृष्टि से मुश्किल से ही अधिक हो सकते हैं। व्यवहार विभिन्न प्रतिवर्ती अथवा उनके साहचर्य का सीधा-सीधा योग नहीं होता।

रोजिन्स्की के परीक्षणों ने स्पष्ट कर दिया था कि चिम्पेंजी के व्यवहार की विशिष्टता है उसकी अतिशय सुनम्यता परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढाल लेने की उसकी शक्ति तथा कठिन स्थितियों में सुसंगठित रूप से कार्य करने की उसकी क्षमता। वैयक्तिक अनुभव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। कोहलर के विपरीत इस सोवियत विद्वान ने दिखाया कि चिम्पांजी किसी भी प्रकार से 'अपनी दृष्टि के क्षेत्र का गुलाम' नहीं होता है, उसमें इस बात की क्षमता होती है कि एक स्थिति को छोड़कर दूसरी स्थिति में आसानी से पहुँच जाए। औजार के रूप में कमची का निम्न वर्ग के बदरों की अपेक्षा अधिक तेजी तथा अधिक फुर्ती के साथ इस्तेमाल करने की भी उसमें क्षमता है (जी० जड० रोजिन्स्की 1046 1053)। मानव-उद्गमन की प्रक्रिया का अध्ययन करनेवाले मानवशास्त्री के लिए सर्वाधिक दिलचस्पी की वस्तु वनिका की उच्चतर क्रियाशीलता में होनेवाले वे परिवर्तन हैं जो मानव के पूर्वजों के विशेषतया जोवाश्म प्राणकों के विकास-क्रम में हुए होंगे।

एमेस्स कहते है कि मानव के तात्कालिक पूर्वज असाधारण रूप से अत्यन्त विकसित मानव-सम वानर थे। बुद्धि तथा अनुकूलन-शक्ति में दूसरे सबों से वे आगे थे। अनुकूलन शीलता' की संकल्पना—कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के द्वारा—शरीर की सामान्य अधिक शारीरिकी तथा दैहिक विशेषताओं के साथ अधिक घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है परन्तु बुद्धिशीलता की संगणना विश्लेषकों के केन्द्रीय प्रदेशों के साथ-साथ स्वयं कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) की क्रियाशीलता के आधार पर की जानी चाहिए।

सादृश्य मानव-शास्त्र तंत्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता के नियमों के सम्बन्ध में पैवलोव की शिक्षाओं के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। अपनी समस्याओं के समाधान के लिए वह इन्हीं शिक्षाओं का सगठनात्मक रूप से उपयोग करता है। पवलोववादी समस्त दैहिक सिद्धान्तों का मानव-प्रजनन शास्त्र के लिए जबरदस्त महत्त्व है चिन्तनशील मस्तिष्क के साथ (एक) प्राणि का पृथ्वी पर कैसे आविर्भाव हुआ इसको समझने में वे बहुत मदद देते हैं वे बताते है कि वह सबसे जटिल जीव कैसे पैदा हुआ जिसमें जैसाकि एगेल्स ने कहा है प्रकृति ने स्वयं अपना संज्ञान प्राप्त कर लिया है।

मानव तथा पशुओं से सम्बन्धित तंत्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता का भौतिकवादी पैवलोव सिद्धान्त प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी वैज्ञानिकों के भाववादी दैहिक-शास्त्र तथा मनोविज्ञान का एकदम विरोधी है। मानव-विज्ञान के क्षेत्र में प्रचलित भाववाद के विभिन्न रूपों के जो कभी-कभी बहुत परिष्कृत होते हैं विरुद्ध संघर्ष में यह सहायता देता है। मानव के विकासवादी विकास की भौतिक धारणा पवलोव के दर्शन की विशिष्टता है।

मानव-प्रजनन की समस्या का सम्बन्ध पैवलोव ने उन प्राणियों की तंत्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता की विशिष्ट विशेषताओं के साथ जोड़ा था जिनका विकासवादी दृष्टिकोण से उन्होने अध्ययन किया था। 1913 में उन्होंने लिखा था पशु जीवन की उच्चतर अभिव्यक्तियों की आधुनिक तुलनात्मक अध्ययन-पद्धति के आरम्भकर्ता तथा प्रेरक सही तौर से चार्ल्स डारविन ही है। जैसाकि हर शिक्षित व्यक्ति जानता है पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विकास के विचार के उनके कुशल निदर्शन ने मानव-जाति की सम्पूर्ण मानसिक क्रियाशीलता के क्षेत्र में और विशेष रूप से प्रकृति-विज्ञान की जैविक शाखाओं के क्षेत्र में नई जान डाल दी थी। इस परिकल्पना ने कि मनुष्य की उत्पत्ति पशुओं से हुई है पशु-जीवन में मिलनेवाली अभिव्यंजनाओं के अध्ययन को अत्यन्त मोहक बना दिया था। इस अध्ययन का ज्ञान बढ़ाने की सबसे उपयोगी विधि क्या हो सकती है यह तथा स्वयं अध्ययन की समस्या उत्तर डारविन काल की समस्याएँ थीं।

बुद्धि के विकास से सम्बन्धित समस्याओं के गम्भीर अध्ययन के लिए पैवलोव के परीक्षणों ने मार्ग प्रशस्त कर दिया था। मानव तथा पशु जगत् के बीच जाति-इतिहास विषयक सम्बन्ध सिद्ध करने के अपने प्रयत्न में डारविन ने उनकी सामान्य शारीरीय दैहिक विशेषताओं पर ध्यान केन्द्रित किया था। पैवलोव ने मानवी तथा पशुओं के मस्तिष्कों की शरीर-क्रिया की वास्तविक समानता सिद्ध कर दी परन्तु, साथ-ही-साथ

उन्होंने उनके गुणात्मक भेदों पर भी बल दिया और द्वितीय संकेत प्रणाली के विचार की स्थापना की जो केवल मनुष्य में मिलती है।

स्वयं अपनी भौतिकवादी धारणा के अनुसार पैवलोव बहुत दिनों तक मानव-प्रकृति के सम्बन्ध में द्वैतवादी विचारों के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। शैरिंगटन-जैसे ब्रिटिश सैक्से तथा यर्क्स-जैसे अमेरिकी अथवा कोहलर जैसे जर्मन विद्वान ऐसे द्वैतवादी विचारों के प्रचारक थे। विदेशी तथा रूसी मानववादियों की दृष्टि में पैवलोव एक बिलकुल भूमित आदमी थे उनके भौतिकवाद-विरोधी विचारों तथा मानव को पशु बनाने के उनके प्रयत्नों का पैवलोव ने सदैव विरोध किया। पशुओं की तन्त्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता के ऊपर मनुष्यत्वारोपण करने के प्रयत्नों का अर्थात् ऐसे विचारों अथवा सामान्यीकरणों (सामान्य धर्मों) को उनके ऊपर आरोपित करने के प्रयत्नों का भी उन्होंने विरोध किया था जो द्वितीय संकेत प्रणाली के आधार पर केवल मनुष्य में ही मिल सकते हैं। उन्होंने उनके इस कथन पर आपत्ति प्रकट की थी कि पशुओं की तन्त्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता मात्र व्यावहारिक तर्कवाद (practical rationalism) न होकर बौद्धिक है। ऊपर जिस प्रकार विद्वानों का उल्लेख किया गया है उनमें इस तरह की भ्रान्तियों का होना स्वाभाविक होता है क्योंकि मानव-व्यवहार को मुख्य रूप से वे पशुओं के व्यवहार के स्तर पर रख देते हैं। उनकी सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दैहिकी से पैवलोव की दैहिकी भिन्न है क्योंकि यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की संग्रामिक भावना से ओत-प्रोत है (ई ए असरत्यान 1961)।

भौतिकवादी सम्प्रदाय के मनोवैज्ञानिकों जीव-शास्त्रियों तथा मानव-शास्त्रियों का पैवलोव के नियतत्ववाद (determinism) के सिद्धान्त को अत्यधिक सम्मान देना चाहिए, क्योंकि उसकी सहायता से मानव प्रजनन की प्रक्रिया की व्याख्या की जा सकती है। पैवलोव का यह सिद्धान्त उन अनेक प्रयोजनवादी (teleological) धारणाओं के विरुद्ध है जो इस अवैज्ञानिक विश्वास के ऊपर आधारित हैं कि संसार तथा मानव का स्वरूप अज्ञेय है और जो नैसर्गिक शक्तियों के हस्तक्षेप की बात में विश्वास करती हैं। कुछ अमरीकी विद्वानों ने जिन भ्रान्तिपूर्ण सिद्धान्तों की स्थापना की है उनके एक उदाहरण के रूप में हम रॉकफैलर इंस्टीच्यूट न्यूयार्क के लिकोम्पटे दु नाव्ही द्वारा प्रस्तावित जैव-जगत् के विकास से सम्बन्धित 'टेलीफ़ाइनलिज़म (दूर-प्रयोजनवाद) के सिद्धान्त' का नाम लेंगे। इसकी रूपरेखा उसकी पुस्तक मानव तथा उसका भवितव्य (L'homme et sa destinee) में दी हुई है। वह कहता है कि विकास का आधार नैसर्गिक पूर्वनियोजन है और मनुष्य की सृष्टि ईश्वर ने एक चमत्कार के द्वारा की थी ठीक उसी भाँति जिस भाँति बाइबिल (इंजील) में वह बताई गई है। अमेरिका के प्रतिक्रियावादी जीवशास्त्री अनेक पुस्तकों तथा लेखों के द्वारा 'विकास के द्वारा सृष्टि' (creation through evolution) के सिद्धान्त की हिमायत करते हैं। यही उनकी प्रमुख प्रवृत्ति है। दूर का प्रयोजनवाद (telefinalism) इस प्रवृत्ति के अनेक रूपों में से केवल एक है।

भिन्न-भिन्न प्रतिवर्ती तथा उनके परिवर्तनों के पारस्परिक सम्बन्धों की समस्या के विषय में पवलोव का जो दृष्टिकोण था वह जीव के ऊपर बाहरी परिवेश के प्रबल प्रभाव को ध्यान में रखता था।

प्राण जीवशास्त्र के दृष्टिकोण से डार्विनवादी दृष्टिकोण से समस्या का अध्ययन करते हुए पैवलोव ने दिखलाया था कि व्यक्तिगत अनुकूलन की क्रिया समस्त प्राणि-जगत् में मिलती है उन्होंने बतलाया था कि अनौपाधिक प्रतिवर्त तथा अन्तर्जात प्रवृत्ति के रूप में उनके संयोजन किसी जाति (species) की अनुकूलन-क्रिया की तरह की वस्तु है और उनके अस्थायी सम्बन्ध—औपाधिक प्रतिवर्त तथा उनके सहचारी (associations) परिवेश के साथ जीव के 'संतुलन स्थापित करने' के वैयक्तिक स्वरूप का अर्थात् वैयक्तिक अनुकूलन क्रिया का काम देते हैं।

1935 में उन्होंने लिखा था "मानव तथा पशु के व्यवहार का रूप न केवल तंत्रिका तंत्र के स्वाभाविक गुणों के द्वारा बल्कि उन प्रभावों के द्वारा भी निर्धारित होता है जिन्होंने जीव के व्यक्तिगत अस्तित्व के काल में उसको प्रभावित किया है और अनवरत रूप से प्रभावित करते रहते हैं अर्थात् उनके व्यवहार का रूप अनवरत ट्रेनिंग अथवा शिक्षा के ऊपर—इन शब्दों के व्यापकतम अर्थ में—निर्भर करता है। ऐसा इसलिए होता है कि तंत्रिका-तंत्र का जो सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है—उसकी सुघट्यनीयता (नम्यता) वह उपरिलिखित अन्य गुणों के साथ-साथ और अनवरत रूप से कार्य करती रहती है।

पैवलोव के विचार तथा उनकी व्यावहारिक उपलब्धियाँ आधुनिक सोवियत शरीर क्रिया विज्ञान (दैहिकी) के लिए अब भी महत्त्वपूर्ण हैं। मानव तथा पशुओं के भौतिक वादी शरीर-क्रिया विज्ञान (दैहिकी) की नींव महान् रूसी वैज्ञानिक आई० एम० सचिनोव ने रखी थी। पैवलोव ने उन्हीं की वैज्ञानिक मुशिक्षाओं का ओजस्वी ढंग से विकास किया है। ठोस परीक्षण बतलाते हैं कि औपाधिक तथा अनौपाधिक प्रतिवर्तों के परिवर्तनशील स्वरूप के सम्बन्ध में तथा उनके बीच के घनिष्ठ जनन-सम्बन्धों के विषय में पैवलोव के कथन बिलकुल सही हैं।

सरल से संश्लिष्ट की ओर संक्रमण की मूलभूत धारणा की स्थापना पैवलोव ने 1923 में ही कर दी थी। तंत्रिका-तंत्र के अवरोधक कार्यों की अपनी धारणा के सम्बन्ध में यह स्थापना उन्होंने की थी। पवलोव के शरीर-क्रिया विज्ञान (दैहिकी) के सिद्धान्त की इसी मूलभूत स्थापना का अमर वानरी विकास की उस अवस्था पर लागू किया जाए जिसमें वानरों ने अपने वृक्ष-जीवन को छोड़कर भौमिक जीवन को अपनाया था तो मानवशास्त्री को उस तंत्रिका न्याय (nervo mechanism) को समझने की शक्ति प्राप्त हो जाती है जिसने हमारे पूर्वजों के अनेक प्रतिवर्ती कार्यों की क्रिया में प्रगाढ़ परिवर्तन पैदा कर दिये थे। ये परिवर्तन हमारे पूर्वजों के प्रतिवर्ती कार्यों की क्रिया में उस समय हुए थे जिस समय उत्तर-तृतीय काल की नई परिस्थितियों के अनुकूल उन्होंने अपने को बनाया था।

बन्दरों की तंत्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता का अध्ययन पैवलोव के आदेश से उनकी प्रयोगशाला में 1923 में ही आरम्भ कर दिया गया था। उसे ए० जी० इवानोव स्मालेन्स्की तथा डी० एस० फुर्सीकोव ने शुरू किया था। बाद में और अनेकों अनुसंधान कर्त्ताओं ने उसे जारी रखा था। अपने अध्ययन-कार्य में उच्च वर्ग के वानरों तथा निम्न वर्ग के बन्दरों दोनों का वे इस्तेमाल करते थे।

बन्दरों की तंत्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता में पैवलोव की बहुत दिलचस्पी थी। उन्होंने उनकी गुणात्मक विशिष्टताओं को निर्धारित करने की कोशिश की थी। प्रायः उनकी उन्होंने अन्य स्तनधारियों के साथ तथा मानव के साथ तुलना की थी "इस बात पर हम यदि एक बार फिर विचार करें मगर हम पूछें कि दूसरे पशुओं की तुलना में बन्दर क्यों अधिक सफल हुआ है मनुष्य के क्यों अपेक्षाकृत वह इतने समीप है तो हम देखेंगे कि ऐसा इसलिए है कि उसके हाथ होते हैं यहाँ तक कि चार हाथ अर्थात् आपसे और हमसे भी अधिक हाथ। इसकी वजह से अपनी आसपास की वस्तुओं के साथ वह अत्यन्त जटिल सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। यही इसकी भी वजह है कि बन्दर ताहूचकों के एक भारी समूह का निर्माण कर लेता है और दूसरे पशु ऐसा नहीं कर पाते।"

दूसरे शब्दों में प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) में विश्लेषक-संश्लेषात्मक प्रक्रियाओं (analytico-synthetic processes) का पर्याप्त विकास केवल बन्दरों की विशिष्टता है। यह चीज खास तौर से बन्दरों के विश्लेषकों के विकासवादी विकास के उच्च स्तर के साथ जुड़ी हुई है। इसके कारण बाह्य जगत् का अपेक्षाकृत कहीं अधिक संश्लिष्ट विश्लेषण वह कर लेता है और उसके कुछ तत्त्वों तथा पक्षों का वह संश्लेषण भी कर लेता है। इस सम्बन्ध में विभिन्न संकेत-प्रेरक तंत्रिकाएँ (motor signalling nerves) उच्च रूप से विकसित प्रेरक उपकरण (motor apparatus) तथा गति सम्वेदक (kinaesthetics) विशेष रूप से महत्त्व रखते हैं।

पैवलोव आगे कहते हैं, "इन प्रेरक ताहूचकों का तंत्रिका-तंत्र तथा मस्तिष्क में चूँकि भौतिक आधार होना चाहिए, इसलिए बन्दर के मस्तिष्क के प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्धों का तदनुरूप दूसरे पशुओं की अपेक्षा कहीं अधिक विकास हो गया है और यह विकास प्रेरक कार्यों के विविध रूपों के ही सन्दर्भ में हुआ है। हाथ की भिन्न-भिन्न प्रकार से परिचालन करने की शक्ति के अतिरिक्त हमारे पास वाणी के स्पन्दनों का संश्लिष्ट तंत्र भी मौजूद है।

पैवलोव के शरीर-क्रिया विज्ञान (दैहिकी) सम्बन्धी सिद्धान्त मानव के तात्कालिक पूर्वजों की श्रम-क्रियाशीलता के पुनारम्भ की समस्या को एक नये तथ्यपूर्ण भौतिकवादी आधार पर तथा नई सद्धान्तिक धारणाओं के प्रकाश में हल करने में हमारी सहायता करते हैं। पैवलोव एंगल्स द्वारा प्रतिपादित किए गए मानव-प्रजनन के श्रम सिद्धान्त के बहुत समीप तक आ गए थे। इससे मानव-चिन्तन की प्रारम्भिक अवस्थाओं की समस्या पर विचार करना सम्भव हो जाता है। पैवलोव ने राफ़ैल नाम के एक चिम्पैंजी को ऊपर

लटका दी गई खाने की एक वस्तु को प्राप्त करने के लिए बक्सों तथा अन्य चीजों का एक पिरामिड बनाते देखा था। इस कार्य के सम्बन्ध में उनका मूल्यांकन निम्न प्रकार था "मैं कहता हूँ यह बुद्धि है यह सारी क्रियाशीलता जिसके दौरान वानर कभी एक चीज तो कभी दूसरी चीज करने की कोशिश करता है यह कार्यरूप में चिन्तन है। आप आप वास्तव में हमारे चिन्तन के विकास को अपनी आँखों के सामने देख रहे हैं उसके सामने की सारी बाधाओं को आप देखते हैं और उन्हें दूर करने के विभिन्न तरीकों को। इसमें बुद्धिशीलता है और भी कोहलर उसे अस्वीकार करते हैं वे जोर देकर कहते हैं कि यह अन्वीक्षा तथा विभ्रम (trial and error) की विधा है।

विदेशों के अनेक प्रतिक्रियावादी शरीर-क्रिया-शास्त्री (दैहिक-विज्ञ) तथा मनोवैज्ञानिक वानरों की अर्थात् उन पशुओं की जो मानवों के इतने समीप हैं तंत्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता का गलत अर्थ लगाते हैं। वे उन पर मानवी मानस के गुणों को आरोपित कर देते हैं। यर्क्स का विचार था कि वानर लगभग इन्सान हैं। कोहलर का कहना है कि वे मानवी किस्म के दिमाग रखते हैं। इस तरह मानव तथा वानरों के बीच के गुणात्मक अन्तरों का अन्त कर दिया जाता है। इसके विपरीत दूसरे लोग मानव और पशुओं के बीच आवश्यकता से अधिक गहरी विभाजक रेखा खींच देते हैं। वे कहते हैं कि मानव में ईश्वर का अंश है, अर्थात् अमर आत्मा है।

पैवलाव जब आदिम चिन्तन की बात करते हैं तब इस शब्द को वे शुद्ध रूप से शरीर-क्रिया विज्ञान (दैहिक) की दृष्टि से देखते हैं। वे उन गुणात्मक भेदों का भी उचित ध्यान रखते हैं जो उसे मानवी बुद्धि से भिन्न बनाते हैं। उदाहरण के लिए, वे कहते हैं कि 'यर्क्स अथवा कोहलर जैसे जो मनोवैज्ञानिक सच्चाई से दूर हटना चाहते हैं वही इस तरह की खोखली बातें कहते हैं कि बन्दर मनुष्य की तरह अपने को आज़ाद समझता हुआ चला गया अथवा 'बन्दर ने मात का फ़ैसला कर लिया'। निस्सन्देह यह सब बकवास है समस्या का एक बचकाना और अप्रयोजनीय समाधान है। 'एंथ्रोपॉयड का सारा व्यवहार विश्लेषण करने तथा सम्बन्ध स्थापित करने तक सीमित था।"

मानव तथा बन्दरों के अन्तर को कम आँककर भाववादी विज्ञान मानव की उत्पत्ति के घास-पात जीवनवादी सिद्धान्त (vitalist theory) का समर्थन करते हैं और उसके साथ-साथ यह धारणा भी बाढ़ देते हैं कि शरीर और आत्मा एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं परन्तु आत्मा शरीर पर शासन करती है। इस तरह के वैज्ञानिकों में यही अन्तर्विरोध मिलता है। पूँजीवादी देशों में इसी 'धार्मिक विज्ञान' को प्रोत्साहन दिया जाता है। अमेरिका के कुछ प्रतिक्रियावादी जीवशास्त्रियों का कहना है कि संसार की सृष्टि ईश्वर ने की है— यह बात उसके विकास से ही सिद्ध है। इन लोगों की रचनाएँ बाईबिल (इंजील) की प्रथम मानवों की सृष्टिसम्बन्धित कल्पित कथा को सही साबित करने का प्रयत्न करती हैं। जीवन-विज्ञान तथा मानव-उत्पत्ति से सम्बन्धित सत्य को भी इसी प्रकार की तोड़ मरोड़ कुछ भाववादी सोवियत वैज्ञानिकों की रचनाओं में मिलती है। मस्तिष्क तथा तंत्रिका

की उच्चतर क्रियाशीलता से सम्बन्धित रचनाओं में यह विशेष रूप से मिलती है।

जब इसी प्रकार के एक अंग्रेज प्रतिक्रियावादी वैज्ञानिक की रचनाओं को पैवलोव ने पढ़ा तो क्रोध से भरकर उन्होंने लिखा कि यह वैज्ञानिक अनेक भागों की तरह इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार है कि पशुओं में बुद्धि होती है, परन्तु इसके बावजूद उन पशुओं को मानव से वह बिलकुल अलग कर देता है और इस बात से इन्कार करता है कि मानव की उत्पत्ति पशुओं से हुई है। वह हमारी इस बात पर आपत्ति करता है कि हम लोग पशु-जगत् के मांसे की कड़ी हैं। इसी वैज्ञानिक के विषय में पैवलोव ने लिखा था मनुष्य ने अपने तथा पशु के बीच किस तरह से ऐसी खाई खोद ली है उसके सम्बन्ध में बहुत दिनों से मैं अचम्भा करता आया हूँ।

पैवलोव के विचारों को उनके शिष्यों तथा अनुगामियों ने अत्यन्त गम्भीरता से आगे विकसित किया है। बानरों की तन्त्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता के सम्बन्ध में कुछ बुनियादी काम स्वयं पैवलोव की प्रत्यक्ष देख-रेख में (चित्र 72) लेनिनग्राद के पास पैवलोवो (पुराने कोल्टूशी) की प्रयोगशाला में किया गया था। यह काम रूसी चिम्पैंजी रफ़ैल तथा उसकी मादा साथिन रोजा को लेकर किया गया था। चिम्पैंजियों के व्यवहार का कई वर्ष तक लगातार अध्ययन किया गया था। तन्त्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता की प्रयोगशाला में अन्य वैज्ञानिकों के साथ मिलकर ई० जी० वात्सूरो ने एक बड़ी संख्या में प्रयोग किये थे (ई० जी० वात्सूरो 1948 1955 पी० के० डेनिसोव 1958)। उन पिंजड़ों के पास जिनमें रफ़ैल और रोजा रखे जाते थे पैवलोव बहुत-सा समय बिताते थे। मानव-सदृश वानरों के व्यवहार तथा उनकी तन्त्रिकाओं की उच्चतर क्रियाशीलता में उनकी गहरी दिलचस्पी थी।

चित्र 72. चिम्पैंजी रफ़ैल
(5 अक्तूबर 1948 के फोटो पर।)

बन्द बक्सों में से उनके ढक्कनों के रंगों के अनुसार, गोल चौकोर त्रिकोणात्मक अथवा किसी दूसरे आकार की शक्ल रखनेवाली छड़ियों की सहायता से खाना निकालने के सम्बन्ध में किये गए प्रयोग हमारे लिए बहुत महत्त्व रखते हैं। पहुँच से परे ऊपर टाँग दिये गए फल और बर्रों को प्राप्त करने के लिए रफ़ैल ने अत्यन्त भिन्न-भिन्न प्रकार के उपायों को इस्तेमाल करने की होशियारी दिखलाई थी। उसने एक बाँस को खड़ा किया

और वह उस पर चढ़ गया बक्सों को उसने एक के ऊपर एक रखकर उनका इस्तेमाल किया तथा भिन्न भिन्न आकृतियों की अन्य वस्तुओं का भी उसने उपयोग किया। अपने भात्त के पास पहुँचने के लिए एक बेड़े से दूसरे बेड़े पर बाँस रखकर (पानी को) पार करने का उसका तरीका भी कम मनोरंजक नहीं था।[1]

आग के साथ भी कुछ मनोरंजक प्रयाम किये गए थे। एक मंच पर एक तश्तरी में एक संब रख दिया गया था और उसके चारों तरफ़ जलती हुई मोमबत्तियाँ खड़ी कर दी गई थीं। रफैल बिना अपने हाथों को जलाए फल को नहीं पा सकता था इसलिए मोमबत्तियाँ बुझाने के लिए उसने विभिन्न तरीकों का इस्तेमाल किया था या—तो फूँककर उसने उन्हें बुझा दिया था या हथौड़े से मारकर उनको गिरा दिया था। दूसरे बक्सों पर, उसने पानी लेकर आग बुझा दी थी (चित्र 73) अथवा पानी को अपने मुँह में भरकर लपटों के ऊपर उसने कुल्ला कर दिया था।

एक अत्यन्त शिक्षाप्रद प्रयोग वह था जिसमें देखा गया था कि एक वानर ने दो बाँसों का साथ बाँधकर एक लम्बा बाँस तैयार कर लिया था। वास्तूरो के अनुभव ने उसे इस निष्कर्ष पर पहुँचाया था कि मानव-सभी के व्यवहार का मुख्य कारक गति-सम्वेदक तरंग (kinaesthetic impulse) अर्थात् मुख्य स्थान प्रेरक-सवेदक को गति-सम्वेदक के प्रत्यक्ष बोध (perception) को दिया जाना चाहिए दार्ष्टिक बोध को नहीं।

वास्तूरो ने कोहलर के इस सिद्धान्त का विरोध किया कि बन्दर दृष्टि-क्षेत्र (field of vision) के दास हैं। सोवियत अनुसन्धानकर्ता ने कोहलर के उस सिद्धान्त को भी अस्वीकार कर दिया जिसके द्वारा वह कहता है कि चिम्पैंजी के मानव जैसी ही बुद्धि होती है। कोहलर मानव और बन्दर के बीच की सीमा रेखा को मिटा देता है वानर के ऊपर मनुष्यत्वारोपण करता है और साथ ही साथ यह कहकर कि वानर अथवा बन्दर में सचेत रूप से औज़ार बनाने की क्षमता होती है मानव को वह पशुवत् बना देता है।

बन्दर जब सरलतम 'औज़ारों' का इस्तेमाल करते हैं और जब संयोगवश उनके जोड़ भी बना लेते हैं तब भी उनका व्यवहार उस व्यवहार से केवल आंशिक रूप से ही मिलता है जिसे अपने पूर्वजों का उस सुदूरकाल का व्यवहार (उनकी कार्यप्रणाली) हम मानते हैं जिसमें वे भूखों में रहते थे और आदिम औज़ारों के रूप में प्राकृतिक वस्तुओं का उपयोग करना उन्होंने आरम्भ कर दिया था।

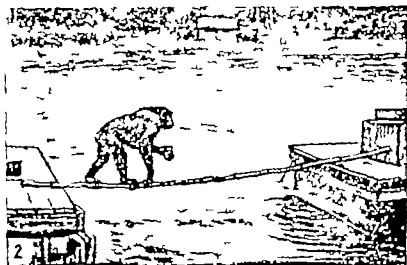
परन्तु इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं है कि मानव प्रजनन की प्रक्रिया की समझदारी प्राप्त करने के लिए बर्बर वानरों के व्यवहार का अध्ययन बहुत मूल्यवान है। व्यवहार (तंत्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता) की कुछ मूलभूत विशेषताओं का सादृश्य तथा भावनाओं की अभिव्यंजना शैली—ये उस आम दिशा की ओर इंगित करते हैं जिस पर

---

1 वैज्ञानिक के मार्गदर्शन 'रोज़ा और रफैल' का लगभग 3 000 मीटर लम्बा एक सिनेमा-फ़िल्म (लगभग तीन घण्टों में) तैयार किया गया था। चेष्टा पर चिम्पैंजी के साथ प्रयोग एक और फ़िल्म (पत्र भागों में) बनाई गई थी।

चलकर मानव के पूर्वजों—वानरों तथा बन्दरों के मस्तिष्क का तथा उनकी संवेदक इन्द्रियों का विकास हुआ था।





चित्र 73 चिम्पैंजी राफ़ेल के साथ प्रयोग
1 आग बुझा रहा है, 2 बल्लि पर चल रहा है।
ई. वात्सुरो, 1948 (1), तथा वी. रोगिन्स्की 1948 (2) के आधार पर।







चित्र 74 चिम्पांजी के साथ प्रयोग। चित्रों का संकेत बतलाता है कि भोजन बंद बक्स में रख दिया गया है जिसमें आने का रास्ता पिंजड़े के बाहर की दीवार के एक दरवाजे से है। 1 प्रयोग से पहले, 2. ढीला खोल कर दिया गया है (बोल्ट खोल गया है), 3. भोजन बन्दर के हाथ में है। एन० रोगिन्स्की, 1953 के आधार पर।

पैवलोव की प्रयोगशालाओं में तथा सुखुमी के मेडिको-बायोलाजिकल केन्द्र में पैवलोव के शिष्यों तथा अनुयायियों ने पिछली एक चौथाई शताब्दी के दौरान में बन्दरों पर जो परीक्षण तथा प्रयोग किए हैं वे पशु-जगत् से मानव की उत्पत्ति से सम्बन्धित डारविन के सिद्धान्त को सही प्रमाणित करते हैं और नये भौतिकवादी शरीर-क्रिया विज्ञान (दैहिकी) के आधार पर, वे बताते हैं कि मानव तथा उच्च वर्ग के प्रायमेटों, वानरों तथा बन्दरों के बीच जाति-इतिहास सम्बन्धी रिश्तेदारी और भी घनिष्ठ है।

बन्दरों की तन्त्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता तथा उनके व्यवहार का निर्धारण उनके परिवेश के साथ ऐतिहासिक रूप से विकसित हुए जीव के उन सम्बन्धों के आधार पर होता है जो उस जाति की आकस्मिक विशेषताएँ होते हैं। सुखुमी और कोल्तूशी में पैवलोव के तरीकों का इस्तेमाल करने के सम्बन्ध में एल. जी. वोरोनिन (1952-1954) ने महत्वपूर्ण शोध-कार्य किया था। उनके कथनानुसार बन्दरों में नकल करने की बहुत अच्छी योग्यता होती है। उनके अन्दर अनुस्थिति ज्ञान-परीक्षण के अच्छी तरह से प्रस्फुट प्रतिवर्त होते हैं, ध्वनि तथा हाव भावों के प्रतिवर्तों के द्वारा संकेत करने की क्षमता होती है तथा उत्तेजन और निरोधन की पृथक् तन्त्रिका क्रियाएँ होती हैं।

एल. जी. वोरोनिन तथा उनके सहायकों ने कोल्तूशी की पैवलोव प्रयोगशाला में जो प्रयोग किए थे वे भी पशुओं की औपाधिक प्रतिवर्त सम्बन्धी क्रियाशीलता के जीव शास्त्रीय (जैविक) महत्त्व को प्रकट करते हैं। ये प्रयोग पृष्ठवंशियों की तन्त्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता के शरीर-क्रिया विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए किए गए थे (एन. ए. रोकोतोवा 1953)।

अपने जीवन क्रम में प्राणी जिन औपाधिक प्रतिवर्तों का संचयन करता है उनका योग ही व्यक्तिगत रूप से उपार्जित किया गया उसका अनुभव होता है। इस अनुभव का स्वरूप तथा उसकी मात्रा उक्त प्राणी की प्राकृतिक योग्यता पर निर्भर करती है। इस योग्यता की जड़ें उसके तन्त्रिका-तन्त्र के विशिष्ट गुणों में निहित होती हैं। इसके अतिरिक्त पैतृक रूप से दाय में प्राप्त की गई विशेषताओं के परिणामस्वरूप क्रमिक पीढ़ियों की तन्त्रिका सम्बन्धी उच्चतर क्रियाशीलता की प्रकृति पर भी इस अनुभव का कुछ प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

अपने इर्द-गिर्द की जटिल सामाजिक चीजों, उत्पादन से सम्बन्धित अपनी श्रम क्रियाओं, अपनी ही जाति के अन्य लोगों के साथ अपने निरन्तर साहचर्य तथा अपने अत्यन्त सविकसित मस्तिष्क के कारण मानव में औपाधिक प्रतिवर्तों की प्रचुरता होती है। मनुष्य की विशिष्टता उसका उच्च रूप में विकसित मानस तथा व्यवहार है। ये दोनों ही पशुओं के मानस तथा व्यवहार से गुणात्मक रूप से भिन्न होते हैं। ये उस द्वितीय संकेत प्रणाली के विशिष्ट विकास से निर्धारित होते हैं जो तमाम प्राणियों में सामान्य रूप से पाई जाती है। पैवलोव के अनुसार मानव के विकास क्रम में औपाधिक प्रतिवर्तों की प्रथम संकेत-प्रणाली के अतिरिक्त मौखिक तथा चित्र-रेखीय (graphic) प्रतीकों की

एक द्वितीय संकेत प्रणाली भी उत्पन्न हो गई है। ये प्रतीक उस प्रत्येक वस्तु का चित्रण कर सकते हैं जिसे बाह्य जगत् में तथा स्वयं अपने आन्तरिक संसार में लोग प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं।

4 द्वितीय संकेत प्रणाली—मानव चिन्तन की विशिष्ट विशेषता

पैवलोव भावी शताब्दी के अपने अत्यन्त समृद्धिशाली वैज्ञानिक कार्य का जब सिंहावलोकन कर रहे थे और उन विशेषताओं के ऊपर विचार कर रहे थे जो मानव को पशुओं से ऊपर उठाती हैं तब इस निष्कर्ष पर वे पहुँचे थे कि मानवों और पशुओं के बीच जो गुणात्मक अन्तर हैं वे सर्वप्रथम और सर्वाधिक मस्तिष्क की रचना तथा कार्यों के अन्दर तंत्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता के अन्दर पाए जाते हैं। उस गुण की तलाश करते हुए जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है और उसकी उन विशिष्ट विशेषताओं के विकास में सहायता देती है जिन पर ऊपर हमने विचार किया है उन्होंने द्वितीय संकेत-प्रणाली की संकल्पना की स्थापना की थी।

पैवलोव इसका विवरण इस भाँति देते हैं 'विकसित होते हुए पशु जगत् के अन्दर उस अवस्था में जिसमें मानव का प्राविर्भाव हुआ था तंत्रिका की क्रियाशीलता की प्रक्रिया (विधा) में एक असाधारण वस्तु का योग हो गया। वास्तविकता का परिचय देने वाली प्रथम संकेत-प्रणाली मानव के पास भी होती है। परन्तु शब्द एक दूसरी संकेत प्रणाली बन गया वास्तविकता का संकेत देनेवाली हमारी विशिष्ट प्रणाली। यह (शब्द) संकेत प्रथम संकेतों का संकेत है। बोले जानेवाले शब्द से उत्पन्न हुए बहुसंख्यक उद्दीपन (संताप) एक तरफ तो हमें वास्तविकता से दूर ले गए—और वास्तविकता के साथ हमारे सम्बन्ध तोड़े-मरोड़े न जा सकें इसके लिए आवश्यक है कि इस चीज को हम हमेशा याद रखें। दूसरी तरफ ठीक इसी शब्द तथा शब्द ने जो उससे जुड़ा हुआ है हमें मानव बनाया है। इसके बारे में यहाँ पर कुछ कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु इस बारे में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि प्रथम संकेत प्रणाली के लिए जिन मूलभूत नियमों की स्थापना की गई है द्वितीय संकेत प्रणाली भी उन्हीं के शासन में चलती है क्योंकि यह भी उसी तंत्रिका-ऊतक का कार्य है।

बोली जानेवाली भाषा के सम्बन्ध में प्रथम तथा द्वितीय संकेत प्रणालियों के कार्यों को पूरा करने वाली तंत्रिका-कोशिकाओं तथा संवाहकों की क्रियाशीलता के नियमों की बात जिस समय पैवलोव ने कही थी उस समय इस बात से वे अच्छी तरह परिचित थे कि *संचरण के दोनों तरीके गुणात्मक रूप से भिन्न-भिन्न महत्त्व रखते हैं*। इसका कारण केवल यह नहीं है कि दूसरे का विकास पहले के आधार पर होता है बल्कि यह भी है कि बोला जानेवाला शब्द स्पष्ट वाणी एक अत्यन्त अद्भुत चीज है जो मानव को पशु जगत् से अलग कर देती है।

प्रथम तथा द्वितीय संकेत प्रणालियों के बीच जो मूलभूत अन्तर है उस पर अपनी

रचनाओं में पैवलोव बार-बार जोर देते हैं।

'निस्सन्देह शब्द मनुष्य के लिए उतने ही वास्तविक औपाधिक उद्दीपन का काम करता है जितना कि वे अन्य सब उद्दीपन करते हैं जो उसके और पशुओं दोनों के बीच सामान्य रूप से मिलते हैं परन्तु, साथ-ही-साथ इसकी (शब्द की) परिधि में एक इतना व्यापक क्षेत्र आ जाता है कि पशुओं की दुनिया में अन्य ऐसे कोई औपाधिक उद्दीपन नहीं मिलते जिनकी गुणात्मक अथवा परिमाणात्मक रूप से उसके साथ तुलना की जा सके। वयस्क मानव के सम्पूर्ण पिछले जीवन के कारण बोला जानेवाला शब्द उन तमाम बाह्य तथा आन्तरिक उद्दीपनों से जुड़ा रहता है जो प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्धों तक पहुँचते हैं। वह उन सबका संकेत करता है वह उन सबकी जगह ले लेता है और इसलिए, शरीर की उन तमाम क्रियाओं उन तमाम प्रतिक्रियाओं को वह पैदा कर सकता है जो उद्दीपनों से पैदा होती हैं।"

मनुष्य के जीवन में काम के साथ-साथ स्पष्ट वाणी ने जो महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी और उसके शरीर पर जो असर उसका हुआ था उसके सम्बन्ध में एंगेल्स ने जो बात कही थी उससे पैवलोव की शिक्षाओं की ओर भी प्रगाढ़ समझदारी हमें प्राप्त हो जाती है। काम तथा वाणी के संयुक्त प्रभाव के कारण मस्तिष्क तथा सम्वेदक इन्द्रियों का रूपान्तरण हो गया है मानव शरीर की जीवनावश्यक क्रियाओं को संयुक्त करने के उत्तरोत्तर काम के दौरान उन्होंने नये गुण तथा सम्पूर्णता प्राप्त कर ली है।

वाणी के कार्यों के सम्बन्ध में मस्तिष्क विशेषज्ञ काफी ठीक-ठीक यह बता सकते हैं कि उनका सम्पादन कहाँ से होता है। प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) की अणु संरचना के अध्ययन के आधार पर विशेष रूप से वे इस चीज को बता सकते हैं। ललाटकीय पिण्डों (आई० पी कोनोनोवा) बीच के पार्श्विका प्रदेश (आई० जी० दवर्कोवो) श्रव प्रदेश (एस एम ब्लिन्कोव) कॉर्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के व्यक्ति इतिहास (जी आई पोल्याकोव) परच कपाल प्रदेश (आई एन० फिलीमोनाव) तथा पीनास (एम एम० कुरेपिना) के सम्बन्ध में सोवियत संघ की चिकित्सा-विज्ञानों की अकादेमी के मस्तिष्क संस्थानों ने विस्तार से अनुसंधान-कार्य किया है। ऐसे ही महत्त्व का दूसरा अध्ययन कार्य वह है जो कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के संवहनीय तंत्र (vascular system) के सम्बन्ध में सोवियत संघ की चिकित्सा विज्ञानों की अकादेमी के वास रोग संस्थान में बी० एन० क्लोसोव्स्की (1954) ने किया है।

मस्तिष्क के कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) का तथा वाणी के कार्यों के साथ उसके घनिष्ठ सम्बन्ध का अध्ययन करने के अलावा ध्वनि उत्पादक यंत्र की यानी वाणी की इन्द्रियों की जाँच-पड़ताल करने का कार्य भी महत्त्वपूर्ण है। हाल के वर्षों में स्वर-यंत्र (larynx) के सम्बन्ध में शारीरीय तथा मानव-शास्त्रीय दोनों प्रकार के कई ग्रन्थ निकले हैं। इस सम्बन्ध में बी० बी० बुनाक (1951) की रचना ध्यान देने योग्य है। बुनाक ने वाणी के विकास के सन्दर्भ में मानव तथा वानरों के स्वर-यंत्र की रचना का अध्ययन

किया है (ई० एन० क्रियासलकोवा के ग्रंथ को भी देखिए, 1956)।

मानवी मस्तिष्क के विकास कार्यों तथा उसकी संरचना के सम्बन्ध में तथा वाणी और चिन्तन के विकास के सम्बन्ध में समझदारी प्राप्त करने की दृष्टि से ये सारे अनुसंधान कार्य महत्वपूर्ण हैं। पवलोव के कथनानुसार, वाणी तथा मनुष्य की चिन्तनशक्ति का घनिष्ठ रूप पारस्परिक सम्बन्ध है। 1932 में उन्होंने लिखा था कि "मनुष्य की तंत्रिकाओं की क्रियाशीलता की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए उस परिशिष्ट को मान लेना आवश्यक है। इस परिशिष्ट का सम्बन्ध वाणी के कार्यों से है। प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्धों की गतिविधि में य काय एक नये तत्त्व का प्रवेश करा देते हैं। हमारी धारणाएं तथा आस पास की दुनिया के सम्बन्ध में हमारी सम्वेदनाएं वास्तविकता के सम्बन्ध में यदि हमारे प्रथम ठोस संकेतों का प्रतिनिधित्व करती हैं तो वाणी—विशेष रूप से वे प्राथमिक गति सम्वेदक संताप (उद्दीपन) जो वाणी की इन्द्रियों के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुँचते हैं—द्वितीय संकेत-प्रणाली का संकेतों के संकेतों का कार्य करते हैं। वास्तविकता से वे एक प्रकार का विषयान्तर होते हैं और सामान्यीकरण की क्रिया को सम्भव बनाते हैं। ये विशेषताएँ हमारी अतिरिक्त विशिष्ट रूप से मानवी उच्चतर चिन्तन क्रियाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं।"

मानव तथा उसके मस्तिष्क-विज्ञान के लिए पैवलोव के इस आधार-तत्त्व का कितना अधिक महत्त्व है इसे बढ़ा-चढ़ाकर बता सकना कठिन है।

सोवियत मानव शास्त्रियों को चाहिए कि मानव की उन शारीरीय तथा शरीर क्रिया सम्बन्धी (दैहिक) विशिष्टताओं के अपने संयोजित तथा वानरों बन्दरों एवं अन्य स्तन-धारियों के साथ तुलनात्मक अनुसन्धान-कार्य को और आगे बढ़ाएँ जो विकास के अध्ययन की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इस कार्य का सम्बन्ध सबसे पहले और सबसे अधिक मस्तिष्क अभिवाही तंत्रिकाओं (afferent nerves) वाणी-यंत्र (speech apparatus) तथा हाथों से है। इन चीजों के मानव शास्त्रीय अध्ययन का अर्थ है कि सीधे खड़े होकर चलने काय करने तथा बोलने के लिए मानव शरीर के अनुकूलन की क्रिया का उसी रूप में अध्ययन किया जाए जिसमें कि मानव के व्यक्ति-इतिहास तथा जाति-इतिहास के विकास क्रम में उसे देखा गया है।

जाति-इतिहास सम्बन्धी उनके घनिष्ठ रिश्ते के कारण मानवी तथा वर्बर वानरों के मस्तिष्क तथा सम्वेदक इन्द्रियों में शारीरीय तथा शरीर क्रिया सम्बन्धी जो जबर्दस्त सादृश्य है उसके आधार पर हम उनकी तंत्रिकाओं की उच्चतर क्रियाशीलता के अन्दर भी उल्लेखनीय सादृश्य को ढूंढ़ने का प्रयत्न कर सकते हैं—यद्यपि उनका अन्तर इसी क्षेत्र में खास तौर से बड़ा है। इस अन्तर का कारण यह है कि तंत्रिकाओं की उच्चतर क्रियाशीलता का विकास मानव श्रम द्वारा अपनाये गए विशिष्ट मार्ग से निर्धारित हुआ है।

इस बात का पता लगाने के लिए कि मानव की श्रम-सम्बन्धी विशिष्ट क्रियाशीलता

का प्रारम्भ किस प्रकार से हुआ होगा आवश्यक है कि उसके मूल-स्रोत को उत्तर-तृतीय काल के मानव-सभा के पुरा-जीवशास्त्र म देखा जाए। मानव के पूर्वज इन्ही मानव-सम वानरों में म थ और काम के प्राथ-स्वरूपों का विकास उन्ही म हुआ होगा।

मानव चूंकि वानरों के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है इसलिए मानवी श्रम के आदिम स्वरूपों के चिह्नों की तलाश भी उन्ही के बीच की जानी चाहिए।

हमारे पूर्वजों ने औजारों का उपयोग करना कैसे आरम्भ किया था इसका कुछ अनुमान वानरों के व्यवहार का कृत्रिम प्रयोगात्मक परिस्थितियों के अन्तर्गत अध्ययन करके प्राप्त किया जा सकता है। सोवियत वैज्ञानिकों ने जो अनेकों परीक्षण और प्रयोग किये ह उनसे स्पष्ट है कि जब वानरों को ऐसी स्थिति म रख दिया गया जिसमें अपने भोजन को अपने हाथ की सहायता से नही प्राप्त कर सकते थ तो उसको प्राप्त करने के सम्बन्ध म उन्होंने बाँसों तथा अन्य वस्तुओं का पर्याप्त रूप से उपयोग कर सकने की क्षमता प्रदर्शित की थी।

वानरों तथा मानवों के व्यवहारों की तुलना करते समय उनके सादृश्य तथा उनके बीच के अन्तरों को निर्धारित करते समय इस बात पर जोर देना हम नही भूलना चाहिए कि आधुनिक मानव का व्यवहार प्रधानतया उसके सामाजिक परिवेश के प्रभावों स निर्धारित होता है। मानवी व्यवहार की प्रकार्यात्मक विशिष्टता का ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है। आधुनिक मानव तथा अन्य पशुओं के व्यवहार के बीच जो मूलभूत अन्तर है उसकी ओर ध्यान दिलाना भी आवश्यक है क्योंकि इस अन्तर का कारण उनकी चिन्तन-क्रियाओं की प्रकृति के अन्तर ह।

वानरों के व्यवहार को व्यक्तियों के व्यवहार के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। ये पशु आम तौर से गोलों म रहते हैं और बहुत हद तक उनका व्यवहार उनके गोल के जीवन के ढंग के प्रभाव को प्रतिबिम्बित करता है। मानव प्रजनन की क्रिया को समझने के लिए इस चीज को जानना महत्त्वपूर्ण है। श्रम के विषय में निस्सन्देह यह कल्पना नहीं की जा सकती कि उस रूप में—जिसमें वह केवल मानव म मिलता है अर्थात् सामाजिक क्रियाशीलता के रूप में—उसका प्रारम्भ ऐसे वानरों ने किया होगा जो गोलों म नही रहते थे।

चेतना के विकास का बहुत कुछ श्रेय सामाजिक परिस्थितियों को दिया जाना चाहिए। विकसित होते हुए श्रम तथा विकसित होते हुए मस्तिष्क और वाणी के बीच चलने वाली घात प्रतिघात की प्रक्रियाओं पर य सामाजिक परिस्थितियाँ शक्तिशाली प्रभाव डालती ह। एकदम आरम्भ के मानवों में सामाजिक भावना का क्रम विकास हुआ था। इसकी जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें प्रधानकों के अन्दर मिलनसारी गोल म रहने की अन्तर्जात प्रवृत्ति के प्रकारप रूपों की जाँच-पड़ताल करनी चाहिए।

3

बन्दरों में गोल में रहने की अन्तर्जात प्रवृत्ति तथा श्रम के प्रारम्भिक स्वरूप

1 बन्दरों मे गोल में रहने की अन्तर्जात प्रवृत्ति

गोल (झुण्ड) में रहने की अन्तर्जात प्रवृत्ति बहुधा उच्चतर वर्ग के प्राणियों में देखी जाती है। लेमूर तथा बन्दर अधिकांशतया समूहों में रहते हैं। छछूंदर बन्दर (tree shrews) जो लेमूरों के नजदीकी सम्बन्धी हैं (चित्र 75-77) आमतौर से अकेले या जोड़ों में रहते हैं। कुछ लेमूर 6 से लेकर 12 तक के छोटे झुण्ड बना लेते हैं (जैसे कि लेमूर कट्टा एल० जिसकी दुम बाल धारीदार होती है) तथा लेमूर मेकाको एल० (काला लेमूर)। दूसरे, जैसे कि अधिकतर लेमूर वैरियगाटस कर बड़े समूहों में रहते हैं। लोरिसों तथा गलागों जैसों का एक तीसरा वर्ग जोड़ों या कुटुम्बों के रूप में रहता है और बौने लेमूर (चिरोगेलियस ई० ज्योफ्राय) पाट्टो (परा-डिक्टीकस बेनेट) तथा चूहे लेमूर (माइक्रोसीबस ई० ज्योफ्राय) अकेले रहते हैं। टार्सियर अधिकांशतया जोड़ों में रहते हैं (एस० जुकरमैन द्वारा दिये गए संक्षिप्त विवरण को देखिए 1032)।

गुच्छ कानों वाले मार्मोसेट (हापाल इक्वीगर) तथा खास तौर से साधारण मार्मोसेट (हापाल जैकस एल०) जैसे कुछ अमरीकी मार्मोसेट (हापालिड) 6 तक के छोटे-छोटे झुण्डों में रहते हैं। अमालसार टमारिन अथवा सिंह मार्मोसेट (लियोन्टोसीबस लैसमर) भी इसी तरह रहते हैं। दूसरे जोड़ों में या अलग-अलग रहते हैं।

सिबीडो कुटुम्ब (चित्र 78 80) के सदस्य जैसे चहरेवाले बन्दर अथवा हुक्कुसी (आमोटस ट्रिविरगाटस हमबोल्ट) टीटी बन्दरों (कैलिसीबस टामस) साकियों (पिथेसिया डेस्मारेस्ट एचिरोपोटिस बैसन) यौकारियों (कैकाजाओ लैसन) तथा उन बाल बन्दरों (सैमोमिरस ई० ज्योफ्राय) की ही तरह बहुत छोटे समूहों अथवा जोड़ों में रहते हैं।





चित्र 75 मुगाएं
1 सामान्य वृक्ष बद् दर (पुगमा हिकल् मामर्द) वितरणक्षेत्र भारत,
इंडोचीन मलय द्वीप समूह 2. भूविषम बैर्नी वृक्ष शाखा वृक्ष बद् दर (पेरेडोक्सरस
जार्डने थे), वितरणक्षेत्र मलावार तेलिंग कुमाऊ कमर।
पप मासुदेवे, 1918 (1) तथा डब्ल्यू मेमरी 1929 (2) के आधार पर।



चित्र 76 अनेक धारीदार लेमूरों (निशाचरियों) का झुण्ड (लेमूर कैटा मक०)। एफ० वलासुर 1915 के आधार पर।



चित्र 77 टिटमो (अनकपटो) का झुण्ड (पोन्टाबन्स बैटेमी ए० कार्टियिर) मिशडस्वन सौम्य मेकमास्कर। डॉ० कार्टियिर तथा डी० फॉल के आधार पर।



चित्र 78. [illegible] (पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस)
[illegible] पूर्वी [illegible]।
[illegible] 1904 के आधार पर।

कैपुचिन बन्दरों का दल जिसमें आम तौर से 10 से 12 सदस्य होते हैं (पर अकेले भी रहते हैं) कभी-कभी गिलहरी अथवा मौत का सिर वाले बन्दरों (साइमीरी ओरस्टेड) के 50 से 100 सदस्यों के गोलों में शामिल हो जाता है। ये काला अथवा मकड़ बन्दरों के गोलों में भी शामिल हो जाते हैं। इनमें से काले चेहरे वाले (Ateles ater F Cuvier) बन्दरों के दल में 30 से 40 तक और लाल चेहरे वाले मकड़ बन्दरों की दूसरी किस्म 10 से लेकर 20 सदस्यों के अपेक्षाकृत छोटे समूहों में रहती है।

लाल चेहरे वाले मकड़ बन्दरों की भीड़ में रहने की जन्मजात प्रवृत्ति के सम्बन्ध में 1932-1933 में सी. पी. कारपेंटर (1935) ने पनामा तथा कोस्टारिका के बीच के सीमा प्रदेश पर स्थित कोटो प्रान्त में कुछ अत्यन्त मनोरंजक चीजें देखी थीं।



चित्र 79 गिलहरी बन्दर (साइमीरी स्क्यूरियस एल.) चित्रकार स्वान— मार्टिन गायका। मनोविज्ञान के मास्को संग्रहालय के अभिलेखागार से।

रियो द ला काको के किनारे के जंगलों में लाल चेहरे वाले मकड़ बन्दरों की भारी संख्या मिलती है। वे झुण्डों (गोलों) में रहते हैं। इन झुण्डों में 32 बन्दर तक होते हैं। दिन में पेड़ों में घूमते-फिरते हुए वे भोजन की तलाश करते हैं। इस समय उनके बच्चे खेल-कूद में मग्न रहते हैं। अंधेरा होने पर रात के विश्राम के लिए उनका दल किसी

सुविधाजनक पेड़ के ऊपर टिक जाता है। बन्दर बहुत सुबह पौ फटने से पूर्व ही जाग जाते हैं।

माकाक बन्दर लगभग केवल फलों और काष्ठवत् फलों पर जिन्दा रहते हैं। वे दिन में दो बार खाते हैं। उनका मुख्य भोजन सुबह होता है पौ फटने के बाद से 10 बजे तक दूसरा भोजन तीसरे पहर होता है। भोजन की तलाश में कमोबेश एक निश्चित वन-क्षेत्र की सीमाओं के अन्दर ही वे घूमते-फिरते हैं। डालों पर चलते समय माकाक बन्दर परिग्रहण शक्ति रखनेवाली अपनी लम्बी पूँछों को अपनी पीठ के ऊपर रखे रहते हैं परन्तु जब वे एक शाखा से दूसरी शाखा पर जाते हैं तब पकड़ने तथा चढ़ने के काम में पाँचवीं देहशाखा की तरह वे उसका इस्तेमाल करते हैं। उनके चलने का तरीका गिब्बनों के एक शाख से दूसरी शाख पर झूलते हुए चलने के तरीके के ही समान है। अपने हाथों (और पूँछ) से शाखा को जब वे पकड़ते हैं तब उनका धड़ सीधा (ऊर्ध्वाधर स्थिति में) रहता है।

माकाक बन्दरों का गोल बहुधा दलों में बँट जाता है। ये दल दिन भर या हफ्ते भर तक अलग-अलग रहते हैं और फिर आकर गोल में पुन: मिल जाते हैं। इन अपेक्षाकृत छोटे दलों की रचना भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। कारपेंटर ने लिखा था कि उनके दलों में उसने निम्न व्यवस्था देखी थी (1) एक माता जिसके साथ एक दो या अधिक बच्चे थे (2) अपने बच्चों के साथ कई माताएँ (3) एक नर या कई नर जिनके साथ



चित्र 80। सात वर्ष का मादा रीसस बन्दर (मैकाका म्यूलाटा [illegible]), जिसमें स्तन-पूर्ण [illegible] अवस्था। डा० जुकरमैन 1933 के आधार पर।



चित्र 81। [illegible] (बानरजाति [illegible] में) [illegible]। सी० कारपेंटर 1934 के आधार पर।



चित्र 82. उष्ण कटिबंधीय भाग में भूरे हरे बन्दरों का झुण्ड (सरको पिथेकस
ग्रिसियोविरिडिस हेरमारेस—सी० एथियोप्स एल०)।
प० मैत्स, 1904 के आधार पर।

बहुत-सी माताएँ तथा उनके बच्चे थे (4) केवल नर (छोटे से लेकर बूढ़े तक भिन्न-भिन्न अवस्था के 10 बन्दर तक उनमें देखे गए थे)।

जंगलों में घूमते समय ये दल मुँह की ध्वनियों के ज़रिये एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध बनाए रखते हैं। बीच-बीच में वे एक-दूसरे को बुलाते रहते हैं। कभी-कभी वे काफ़ी समीप आ जाते हैं जिससे कि एक-दूसरे को देख लें।

मालूम होता है कि भारत माकक बन्दर की माताएँ सारे वर्ष बच्चे दे सकती हैं। इस बात से गोल में खास तौर से हर उम्र के बच्चों की उपस्थिति की सफ़ाई मिल जाती है। साथ-ही-साथ माताओं में लैंगिक क्रियाशीलता के निश्चित काल भी देखे गए हैं। ये कुछ-कुछ 'मैथुन ऋतु' की तरह के होते हैं।

जन्म के बाद लगभग एक महीने तक उनका बच्चा अपनी माँ के पेट से चिपका रहता है। उसके बाद वह माँ की पीठ पर रहता है। माँ के चलते-फिरते समय बच्चे की पूँछ माँ की



चित्र 83 रीसस बन्दरों (मिकाका मुलाटा) का झुण्ड (चित्रकार रासल कोल्बर्ट — मकाका मुलाटा विमर्शन)।
विज्ञान विहार संस्थान चिकित्सा विज्ञानों की अकादमी सौजन्य से।

पूँछ के मूल भाग को पकड़ रहती है और उसके हाथ तथा पैर उसके बालों को मजबूती से पकड़े रहते हैं। अपने बच्चों के शरीरों से अक्सर मादाएँ परजीवी प्राणियों तथा कांटों को निकालती हैं। कभी-कभी बन्दर एक-दूसरे के बालों को साफ करते हैं।

खेल केवल छोटे बच्चों के ही बीच देखा गया है। कारपेंटर ने लिखा था कि छोटे छोटे माकड़ बन्दर घंटों तक एक-दूसरे का पीछा करते रहते हैं। उनके खेलों में दौड़ना शाख से शाख पर कूदना अथवा एक ही जगह पर ऊपर-नीचे कूदते रहना और पूँछों तथा पेड़ शाखाओं की मदद से डालों पर लटकते रहना आदि होते हैं। टहनियों तथा अन्य वस्तुओं के साथ भी वे खेलते हैं। बहुत छोटे बन्दर अपने पैरों तथा पूँछों से भी खेलते हैं। खेल के समय वे एक-दूसरे को पकड़ते और खेल ही खेल में काटते हैं। चीखाचीखी तथा संघर्ष उनके खेल का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जिस समय वे पूँछों से लटके रहते हैं उस समय भी वे खेल खेलते हैं। ऐसे खेल में चार बन्दर तक भाग लेते हैं।

कारपेंटर ने नरों के बीच कई लड़ाइयाँ देखी थीं। शिकारियों द्वारा मार डाले गए कुछ नरों के हाथों कंधों तथा सिरों में घावों के निशान मिले थे। कुछ के कान भी फटे हुए थे। परन्तु मालूम होता है कि उनके बीच सख्त लड़ाइयाँ बहुत नहीं होतीं। लड़ाइयों की वजह मादाएँ भी हो सकती हैं यद्यपि माकड़ बन्दरों के गोल में आम तौर से नरों की अपेक्षा मादाओं की संख्या अधिक होती है। कारपेंटर ने कुल मिलाकर 181 बन्दरों का अध्ययन किया था। इनमें 46 नर थे और 76 मादाएँ (मादाओं में से 23 मादाएँ थीं जिनके बच्चे भी साथ थे), 37 बच्चे थे और 22 अपनी माताओं के साथ चिपके शिशु थे।

ऊनवाले कुछ बन्दर 14 तक के दलों में रहते हैं। भूरे ऊनी बन्दरों जैसे (Lagothrix infumata Spix) कुछ दूसरे बन्दर जोड़ों में रहते हैं। ई० बार्टलेट (1871) के कथनानुसार, कई-कई जोड़े एक ही पेड़ पर भी रह सकते हैं। कभी-कभी उनके दल बैगुचिन बन्दरों की दूसरी जातियों के साथ मिल जाते हैं। अन्त में हुक्नेवाले बन्दर (howling monkeys) होते हैं जो आम तौर से छोटे-छोटे ऐसे झुण्डों में रहते हैं जिनमें नरों की अपेक्षा मादाएँ अधिक होती हैं जैसे ही जैसाकि माकड़ बन्दरों के गोलों में होते हैं। दूसरे हुक्नेवाले बन्दर जोड़ों में या 3 से 6 तक के छोटे दलों में रहते हैं।

बारो कोलोराडो द्वीप (मध्य अमरीका) पर पाए जाने वाले हुक्ने वाले घास चोंगेदार बन्दरों (mantled howling monkeys) (चित्र 81) के सम्बन्ध में कारपेंटर की टिप्पणियाँ बताती हैं कि वे 4 से लेकर 29 - 35 बन्दरों तक के समूहों में रहते हैं। उनके औसत गोल में 17 या 18 बन्दर होते हैं। उनमें नरों और मादाओं का अनुपात 27 : 72 था।

कारपेंटर ने खास तौर से नोट किया था कि कोई मादा जब सक्रिय होती है तब बिना किसी ईर्ष्या-द्वेष के कई नर उसके साथ बारी-बारी से सम्भोग करते हैं। एक ही दल या गोल के अन्दर दल के नेतृत्व के लिए, अथवा मादाओं से उनकी रक्षा के समय किसी प्रकार का आपसी झगड़ा अथवा प्रतिद्वन्द्विता नहीं देखी गई थी।

कारपेंटर ने यह भी बताया था कि हूकनेवाले बन्दर 9 प्रकार के अलग-अलग वाक् संकेतों (vocal signals) का इस्तेमाल करते हैं। ये संकेत या तो उनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं या फिर सतरों की चेतावनी देते हैं। ऐसी भी कई ध्वनियाँ सुनने को मिलीं थी जिनके महत्त्व का पता नहीं लगाया जा सका था।

गोल में रहने की प्रवृत्ति निम्न वर्ग के अपोमासी बन्दरों में कुछ अधिक तीव्र होती है (एस० जुकरमैन 1032)। सबसे पहले हम गेनान बंदरों के सरकोपिथेकिस (पुच्छ-कपि) समूह को देखें। हरा दक्षिण अफ्रीकी गेनान बन्दर (cercopithecus pygerythrus F Cuvier) 1° से 100 सदस्यों तक के समूहों में रहता है। भूरा-हरा गेनान यानी ग्रिविट (C-us griseo-viridis Desmarest) 5 से 30 पशुओं के दल बनाता है। ग्राम हरा-गेनान बंदर (C-us sabaeus L.) पचास तक के गोलों में रहता है। परन्तु बन्दरों की ये तमाम जातियाँ बड़े-बड़े गोल भी बना सकती हैं या छोटे-छोटे कौटुम्बिक दलों में भी रह सकती हैं। यही दक्षिण अफ्रीकी गेनान हरा बन्दर किन्हीं स्थानों में बड़े गोलों में मिलता है तो अन्य स्थानों में वह छोटे-छोटे कौटुम्बिक दलों तथा जोड़ों में और अकेला तक पाया जाता है। स्पष्ट है कि कौटुम्बिक दल मिलकर एक गोल बना तो सकते हैं पर यह गोल सदैव स्थायी नहीं होता। प्रत्येक गोल अथवा कौटम्बिक दल में एक नेता होता है। यह सबसे बड़ा सबसे मजबूत तथा सबसे बदमिजाज नर होता है।

मगाबेयों (सफेद पलकोंवाले पश्चिम-अफ्रीकी बन्दर) के बारे में बहुत कम ज्ञात है। वे पाँच या छः के छोटे-छोटे दलों में रहते मालूम होते हैं। वे जोड़ों में भी पाए जाते हैं।

मेकाकों के गोल का आधार यह होता है कि हर नर अधिक-से-अधिक मादाओं को अपने साथ ले लेता है। कभी-कभी इनके छोटे-छोटे दल मिलकर गोल बन जाते हैं।

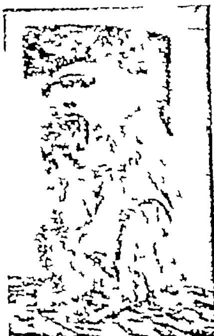
दुमरहित मेकाक अथवा मारबरी वानर (Macaca sylvana L. Inuus ecaudatus E. Geoffroy) छोटे-छोटे पारिवारिक दलों में रहता है। रीसस मेकाक (M mulatta Zimmermann) बड़े-बड़े गोलों में रहता है (चित्र 83)। फारमोसा का मेकाक (M cyclopis Swinhoe) साधारण या केकड़े खाने वाले (M Irus F Cuvier) तथा शेर जैसी दुम वाले (M silenus L) मकाक बारह से बीस या इससे अधिक तक के गोलों में रहते हैं। चोटी वाला मकाक (M nemestrina L.) अधिक बड़े गोलों में रहता पाया जाता है।

पुच्छहीनामा सेलीबीस बबून अथवा काला वानर (Cynopithecus niger Desmarest) जो मकाक बन्दरों की तरह होता है जोड़ों में अथवा आठ बन्दरों तक के छोटे छोटे कौटुम्बिक समूहों में रहता है। असली बैबूना (Papio Muller) की गोल में रहने की प्रवृत्ति अन्य किसी बन्दर की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होती है। यद्यपि उनमें से कुछ छोटे-छोटे दलों में रहते हैं, परन्तु आम तौर से वे दर्जनों या सैकड़ों तक के बड़े बड़े गिरोहों में ही रहते पाए जाते हैं। ईथियोपिया के धनुविस बेबून (Papio doguera Pucheran) 100 या 200 पशुओं तक के गोल बनाते हैं और चोगेदार बैबूनों (Papio

hamadryas L.) के गोल सौ या उससे भी अधिक के गोल होते हैं। परन्तु किलीमंजारो पर्वत (केनिया) के आस-पास के बैबून पीले बबूनों ((Papio cynocephalus L.) की तरह चौदह से बीस तक के छोटे-छोटे समूहों में पाए जाते हैं। इनसे कुछ बड़े गोल दक्षिण तथा मध्य ईथियोपिया में रहनेवाले जिलाडा बानरों (Theropithecus Is. Geoffroy) के होते हैं (चित्र 84)। अन्त में विशालकाय दक्षिण अफ्रीकी बैबून अथवा चक्मा (चित्र 85) होता है जो कई-कई सौ सदस्यों के विशाल गोलों में रहता है।



चित्र 84 जिलाडा बानर (थेरोपिथेकस गेलाडा रूपेल) निम्नस्थल एबिसीनिया। ब्रुकहाउस के ... द्वारा खींचा गया चित्र।



चित्र 85 चक्मा बैबून (स्फ-पापियो पोर्केरियस ब्रुनिख) विशालकाय-दक्षिण अफ्रीका। एल. हुकमैन 1933 के आधार पर।

बैबूनों के गोलों की बुनियादी इकाई उनका कौटुम्बिक दल होती है। यह चीज केवल गोल में साथ रहने की उनकी आम आदतों को देखने से ही नहीं स्पष्ट होती बल्कि इस बात से भी जाहिर हो जाती है कि जब बैबूनों के किसी गोल का पीछा किया जाता है तब वे अलग-अलग अपने कौटुम्बिक समूहों में विभक्त हो जाते हैं और फिर ये कौटुम्बिक समूह बिना साथवाले नरों की ही तरह अलग-अलग भाग जाते हैं। बाद में किसी सुरक्षित स्थान में अथवा चट्टानों के बीच गोल फिर इकट्ठा हो जाता है। कौटुम्बिक समूह में एक और नर भी हो सकता है। ऐसी हालत में इस नर को दल के लीडर की



आकांक्षाओं को मानना पड़ता है और दल की आशाओं के साथ अनिक सम्बन्ध रखने की अनुमति उसे नहीं होती।

दाढ़ीदार बैबूनों (चित्र 86, 87) के गोल में रहने की सहज प्रवृत्ति के सम्बन्ध में कुछ मूल्यवान बातें एन० वाई० वोयितानिस, नोना तिख तथा सोवियत संघ की चिकित्सा विज्ञानों की अकादमी के सुखुमी के चिकित्सा जीवशास्त्रीय केन्द्र की प्रयोगशाला में तंत्रिका की उच्चतर क्रियाशीलता के विकास का अध्ययन करनेवाले अन्य वैज्ञानिकों ने बताई हैं। अपने प्रेक्षणों से नोना तिख ने (1950) जो मुख्य निष्कर्ष निकाला था वह यह था "गोल में रहने की अपनी सहज (अन्तर्जात) प्रवृत्ति के विकास के दौरान वानरों ने जो सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि की है वह यह है कि अपनी जाति के परिरक्षण के लिए अपने अधिक महत्त्व को बनाए रखते हुए भी उनके गोल सम्बन्धी रिश्ते प्रत्यक्ष रूप से केवल भोजन-सम्बन्धी तथा सुरक्षा-सम्बन्धी प्रवृत्तियों के ऊपर ही निर्भर नहीं होते। वे इन सीमाओं से परे चले जाते हैं और एक स्वतन्त्र आवश्यकता बन जाते हैं।

बन्दरों के लिए उनकी निम्न विशेषताएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं: उच्च रूप से विकसित तंत्रिका-तन्त्र, ग्राहिकाएँ (receptors) तथा पेशियों के उपकरण, देखने की असाधारण तथा सुपरिवर्तनशील शक्ति, उन्नत स्मरणशक्ति तथा व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त करने तथा



चित्र 87 दाढ़ीदार बबून। मादाएँ अपने बच्चों के साथ। सुखुमी भौतिको-प्रयोगात्मक स्टेशन।

अनुकरण (अनुकृति) करने की प्रभूत क्षमता। मानव के तात्कालिक पूर्वगामियों में उनकी जटिल तथा विशिष्ट रूप से निर्मित तंत्रिकाओं की उच्चतर क्रियाशीलता के विकास क्रम को सामाजिक श्रम की शुरुआत को और बाद में वाणी के विकास को उनकी इन्हीं विशेषताओं ने निर्धारित किया था।

निम्न वर्ग के अधोगामी पर्ण बन्दर सेम्नोपिथेकीन अधिकांशतया गोलों में रहते हैं। बहुधा ये गोल 6 से 12 सदस्यों के होते हैं 30 से अधिक के ये कभी नहीं होते। बारबियन लंगूर (Semnopithecus or Presbytis barbei Pocock)-जैसी जातियाँ बड़े-बड़े गोल 50-60 सदस्यों तक के अपने गोल बनाती हैं। हनुमान की जाति का लंगूर (S. entellus Dufresne) हिन्दुओं का पुण्य बन्दर 100 या अधिक के झुण्डों में रहता है। बनारस के एक मन्दिर के पुजारियों ने लगभग 200 ऐसे बन्दरों को रख छोड़ा था। जुकरमैन (1932) बताते हैं कि भारत के अनेक भागों में इन बन्दरों के बड़े बड़े झुण्ड नदियों के तट पर पेड़ों में गाँवों के आस-पास तथा ग्रामीण घरों की छतों पर दिखलाई देते हैं। लंगूर के गोल में अनेक कौटुम्बिक समूह होते हैं। शुण्ड (proboscis) बन्दर अथवा कहाउ जो केवल बोर्नियो में मिलता है (चित्र 88) लगभग 40 प्राणियों



चित्र 88. नासा वानर

1. नासा वानर अथवा कहाउ (नासिका नासिक्स एट. डुर्विल्ल—नासालिस लार्वेटस वुर्म्ब); कुष्ठ मादा निवासस्थान—बोर्नियो। 2. चिपटनासा सुनहरा वानर (राइनोपिथेकस रॉक्सेलाने मिल्न एडवर्ड्स) निवासस्थान—तिब्बत पश्चिमी चीन। ए. ब्रेह्म 1904 (1) तथा एफ० कुविये और ई० ज्योफ्रा 1815 (2) के आधार पर।

के गोलों में रहता हुआ देखा गया है। यही बात अफ्रीका के गुरेजा बन्दरों (Colobus Illigera) के विषय में लागू होती है।

निम्न वर्ग के बन्दरों की गोल में रहने की अन्तर्जात प्रवृत्ति के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है उससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि केवल थोड़े-से ही बन्दर जोड़ों में रहते हैं और उनका अधिकांश छोटे-छोटे समूहों में, अथवा कई दर्जन प्राणियों के बड़े बड़े गोलों में रहता है। अन्त में सैम्नोपिथेकस की तरह के वृक्षों पर रहनेवाले कुछ बन्दर तथा जेभुमएा हमाद्रिया तथा अफ्रीका बैबूनों की तरह के भूमि पर रहनेवाले बन्दर अपने बड़े-बड़े गोल बनाते हैं। इन गोलों की बनावट का एक महत्वपूर्ण तत्व पारिवारिक इकाई होती है। इस इकाई में एक नर और एक या दो या अधिक मादाएं अपने बच्चों तथा शिशुओं के साथ होती हैं। छोटे गोल आम तौर से कौटुम्बिक समूहों के अतिरिक्त और कुछ नहीं होते। जब तक उन्हें मादा साथिन नहीं मिल जाती तब तक सभी जातियों के नर अकेले ही रहते पाए जाते हैं।

वानरों में से कुछ गिब्बन जैसेकि हुल्लुक या काला वानर (Hylobates hoolock Harlan) जोड़ों में रहते हैं। दूसरे जैसेकि सफेद हाथवाले गिब्बन अथवा लार (H. lar L.) छोटे-छोटे समूहों में जिनमें 20 से अधिक प्राणी नहीं होते रहते हैं। लार गिब्बन नरों के समूह अलग 'कुंआरे' दल बना लेते हैं। गिब्बनों के पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में सारे तथ्य प्राप्त नहीं हैं। सी॰ पी॰ क्लोस (1908) के कथनानुसार वे जोड़ों में रहते हैं। हाल में आई॰ डी॰ सैण्डरसन तथा जी स्टीनबाखर (1957) ने भी इसी राय का समर्थन किया है। परन्तु जुकरमैन मानता है कि एक नर कई मादाओं के साथ रह सकता है।

ओरंग-उटन (Pongo Lacepede) कहीं कम यूथचारी यानी गोलों में रहने के इच्छुक होते हैं। आम तौर से वे छोटे-छोटे कौटुम्बिक समूहों में रहते मिलते हैं। कभी कभी तो मादा तथा उसके बच्चे से नर अलग रहता भी पाया जाता है परन्तु, स्पष्ट है कि, उनका परिवार एक अभिन्न तथा स्थायी वस्तु है। बचपन में ओरंग-उटनों में गोल में रहने की प्रवृत्ति दिखाई देती है वे एक साथ मिल जाते हैं और कुछ समय तक साथ-साथ चलते रहते हैं। उसके बाद वे जोड़ों में बंट जाते हैं (चित्र 89)। ओरंग उटन को उसके प्राकृतिक वास-स्थान में दलदलवाले उष्ण-कटिबन्धीय वन में रहते हुए देख पाना बहुत कठिन होता है। डी॰ ई॰ पोस्कोव (1910) ने यह सम्मति प्रकट की थी कि जब तक लोग पेड़ पर चढ़ने की आदत नहीं बना लेते तब तक इस बात का पता लगाना असम्भव होगा कि मादा ओरंग-उटन जोड़ों में रहते हैं या कि नर कई-कई मादाओं के साथ रहता है (ए॰ आर वैलेस 1872)।

अफ्रीका का सबसे बड़ा वानर, गोरिल्ला (Gorilla Oken) आम तौर से एक या कई परिवारों के छोटे-छोटे समूहों में रहता है।

एक नर, एक मादा तथा उनके बच्चों के कौटुम्बिक समूह मिलते हैं किन्तु सामान्य



चित्र 89 ओरांग उटान

1 युवक नर पांच वर्ष 2. बच्चा मादा। मास्को राजकीय विश्वविद्यालय में मानवशास्त्रीय संग्रहालय के संग्रहागार (1) तथा मेडल ... में चित्र डा एम० ... के सौजन्य (2) से।

और एक नर के साथ कई (6 तक) मादाएं रहती हैं।

इसकी वजह से वयस्क नर बहुत बार अकेले रहते पाए जाते हैं। गोरिल्ला के गोल में 4 से लेकर 20 या 30 तक प्राणी होते हैं। बहुत ही विरल मौकों पर उनके गोल में 40 तक प्राणी हो जाते हैं। तट पर रहनेवाले गोरिल्लाओं की अपेक्षा पर्वतीय गोरिल्ला के गोल बड़े होते हैं (कोप एकस 1929)।

30 से 40 के बड़े समूहों में गोरिल्लों का एक साथ हो जाना एक अस्थायी वस्तु होती है। कहा जाता है कि पर्वतीय वानरों के कौटुम्बिक समूह (family groups) सारा दिन भोजन की तलाश में बिताने के बाद शाम को फिर इकट्ठे हो जा सकते हैं। स्मरण होगा कि मानव-सम महावानर रात बिताने के लिए पेड़ों पर बसेरा बना लेते हैं। दूसरे वानर ऐसा नहीं करते। परन्तु गोरिल्ला विशेष रूप से बड़े नर अपने घोंसला को केवल एक रात के लिए बहुधा जमीन पर ही बना लेते हैं। घोंसला बनाना एक अन्तर्निहित जटिल मनोपाधिक प्रतिवर्त है।

पर्वतीय गोरिल्ला के मुक्त जीवन के सम्बन्ध में सूचना प्रधानतया हेराल्ड सी० बिंघम (1932) के एक विशेष निबन्ध से मिलती है। बेल्जियन कांगो में कीवू झील के

उत्तर में एलबर्ट नेशनल पार्क के सुरक्षित जंगलों में गोरिल्ला का विशद अध्ययन करते हुए 1929 के 2 महीने (सितम्बर और अक्तूबर) उन्होंने बिताए थे (यह सुरक्षित वन मार्च 1922 में स्थापित किया गया था)। वहाँ पर गोरिल्ला मिकेनो, करासिम्बी, विसोकी, सबीनियो, मेबू तथा 4000 मीटर तक की ऊँचाई के अन्य बुझे हुए ज्वालामुखियों के ढलानों पर रहते हैं। वे उन उष्ण-कटिबन्धीय वनों में रहते हैं जो नीचे के ढलानों को ढके हुए हैं। ऊपर उन पहाड़ों में भी वे पाए जाते हैं जहाँ जमीन ज्वालामुखी के विस्फोटों के समय निकली हुई वस्तुओं की बनी हुई है। बाँस इस भाग का एक महत्त्वपूर्ण पौधा है और उसकी नई कोपलें गोरिल्लों का एक अत्यन्त प्रिय भोजन होती हैं।

नीचे के प्रदेश में लगभग 2300 मीटरों तक की ऊँचाई पर जमीन और पेड़ों दोनों में गोरिल्ला घोंसले बनाते हैं, परन्तु और ऊपर जाने पर वे रात जमीन पर ही बिताते हैं। अपने घोंसलों के लिए वे ऐसे स्थान चुनते हैं जो ओस, हवाओं तथा वर्षा से सुरक्षित होते हैं। बिंघम ने कुल मिलाकर 500 घोंसलों का अध्ययन किया था। एक जगह उसने भिन्न-भिन्न आकारों के 38 घोंसले एक साथ देखे—इनमें से 12 पेड़ों के ऊपर बने थे। 2 घोंसले बड़े कौशल से बाँस के ऊपर के सिरों पर बनाए गए थे। एक जगह एक घोंसले को बनाने के लिए 10 पेड़ों का और दूसरी जगह 12 पेड़ों का इस्तेमाल किया गया था, उनके ऊपर के हिस्सों को झुका दिया गया था और उनकी शाखों को एक-दूसरे से इस तरह फँसा दिया गया था कि उनकी हरियाली तथा पतली-पतली कमचियों से मिलकर एक घोंसला तैयार हो गया था। आम तौर से घोंसले 3 से 19 मीटर तक की ऊँचाई पर बनाए जाते हैं।

दिन के समय खाते अथवा विश्राम करते वक्त इसी प्रकार के घोंसले अथवा विश्राम गृह गोरिल्ला बना लेते हैं। मामूली तौर पर इनका नाम बिंघम ने दिन के घोंसले रख दिया था। जमीन के इन घोंसलों का इस्तेमाल मान के स्थानों के रूप में रात को भी गोरिल्ला कर सकते हैं। रात के घोंसले बनाने के तरीके अत्यधिक भिन्न-भिन्न होते हैं। वे जगह के रूप, मौसम, वनस्पति तथा सम्बन्धित पशु की अवस्था के ऊपर निर्भर करते हैं। कभी-कभी घोंसले एक बड़े पेड़ के नीचे बना लिए जाते हैं। बहुत ही विरले अवसरों पर वे ऊपर झुकी हुई किसी चट्टान की छाँह में भी बना लिए जाते हैं।

ऊँचे पर्वतीय क्षेत्रों में घोंसलों का निर्माण बहुधा सब भंगुर पेड़ों को तोड़कर और उनकी सहायता से एक ढाँचा तैयार करके किया जाता है। इस ढाँचे की बैठक में बड़े पेड़ों से तोड़कर पत्तियाँ रख दी जाती हैं। पशु स्वयं घोंसले के बीचोंबीच बैठकर या खड़ा होकर काम करता है और जब वह ढाँचे को तैयार कर लेता है तब उसमें पत्तियाँ बिछा देता है। घोंसला यदि अस्थिर सिद्ध होता है तो गोरिल्ला उसको तोड़ देता है और एक नये घोंसले का निर्माण करता है अथवा दूसरे किसी स्थान पर चला जाता है और वहाँ एक नया घोंसला बना लेता है।

दिन में गोरिल्ला भोजन की तलाश में वन में घूमते-फिरते हैं। वे कई-कई दिनों अथवा

कई-कई हफ्तों तक भी घूमते रह सकते हैं और फिर अपने मूल स्थान पर जहाँ से वे चले थे लौट आते हैं। जिस प्रदेश में भोजन की प्रचुरता होती है उस के समय के लिए बहुधा उसी को चुन लिया जाता है। कभी-कभी रात के विश्राम के लिए भी उसी स्थान को चुन लिया जाता है। अपनी यात्राओं के दौरान गोरिल्ला नदी-नालों को भी पार कर लेते हैं।

गोरिल्ला रसीली वनस्पतियों का भोजन करता है। पानी की उसे बहुत कम आवश्यकता होती है विशेषतया इसलिए कि वर्षा के बाद कुछ बड़े-बड़े पत्तों के खोखले हिस्सों में पानी भर जाता है। शैलर बताता है कि जिन पौधों और उनके भागों का भोजन के रूप में गोरिल्ला इस्तेमाल करता है, उनमें जंगली सिलेरी का गूदा, केले के तने, जंगली धागरे, भिन्न-भिन्न प्रकार के फल, रसभरे बांस, चमकदार हरे लोबेलिया की नई रसीली शाखाएं तथा बांस की नई कोंपलें होती हैं। पशुओं के भोजन का (कीड़ा-मकोड़ों, जंगली शहद की मक्खियों के शहद, चिड़ियों के अण्डों तथा बच्चों का) उपयोग केवल अपवाद रूप में ही किया जाता है। भोजन के लिए गोरिल्ला पेड़ों पर बहुत कम चढ़ते मालूम पड़ते हैं।

शैलर ने कई दिलचस्प बातें देखी थीं यद्यपि दुर्भाग्य से वे बहुत थोड़ी थीं। उसने नोट किया है कि गोरिल्लों को उसने अकेले जोड़ों में 5 या 6 के कौटुम्बिक समूहों में 10 से 25 तक के और यहाँ तक कि 30-40 प्राणियों तक के गोलों में रहते देखा था।

वन संयमों में गोरिल्ला का निरीक्षण करना और उनका चित्र खींचना अत्यन्त कठिन होता है। गोरिल्लों के पास 30 मीटर तक भी पहुँचना विरल ही सम्भव होता था। कुछ बार गोरिल्लों ने देख लिया कि उनकी निगरानी की जा रही थी परन्तु लोगों की उपस्थिति की ओर उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। निस्सन्देह निरीक्षकगण भी सावधान थे और जहाँ तक सम्भव था वहाँ तक छिपे ही रहते थे।

शैलर ने गोरिल्लों को भिन्न-भिन्न प्रकार की आवाजें करते हुए सुना था। सूअर की तरह घुरघुराते भौंकते रोते चिचियाते नथुना से घरघर करते तथा गर्जना करते हुए उसने उन्हें सुना था। घूंसों से अपनी छातियों को पीट-पीटकर जो आवाज़ वे पैदा करते हैं वे विशेष तरह की होती हैं। गोल का लीडर एक बड़ा नर होता है अक्सर उसकी पीठ और चूतड़ों के बाल सफेद होते हैं। जब उन्हें यह आभास मिला कि उनके समीप लोग छिपे हुए हैं तब चिन्ता प्रकट करते हुए समवेत स्वर से उन्होंने भिन्न भिन्न प्रकार की आवाजें कीं। गोल के दूसरे सदस्य ऐसे समय चुप रहे। छातियाँ पीटते समय नर अपनी कुहनियों को ऊपर उठा लेते थे।

आम तौर से चिम्पांजियों की अपेक्षा गोरिल्ला कम क्रियाशील तथा खिलाड़ी होते हैं। जब वे ज़मीन पर होते हैं तो गोरिल्ला आम तौर से अपनी चारों देह शाखाओं के सहारे चलते हैं परन्तु कभी-कभी कुछ कदम वे अपनी पीछे की देह-शाखाओं पर भी चल लेते हैं। ऐसे समय चलते-चलते वे अपनी छातियों को पीटते जाते हैं।

शैलर बताता है कि गोरिल्लों के गोलों में उनके लीडर होते हैं। एक बार मझोले

कालेबाला एक नर मीकर यह समझ गया कि उस पर नजर रखी जा रही थी। उसके बाद उसने पूरी कोशिश की कि अपने दल के 8 सदस्यों को लेकर वहाँ से चुपचाप खिसक जाए। शिपम ने लिखा है कि एक दूसरे मौके पर एक काली मद गाम 22 गोरिल्लो के गोल के भीतर ने अपने गोल की सुरक्षा को मजबूत करने के लिए यह कोशिश की थी कि बिना उनकी जानकारी के निगरानी करनेवाला के वह बिलकुल पास तक पहुँच जाए। उसने उन लोगों पर आक्रमण नहीं किया केवल उनकी निगरानी करता रहा।

उनके प्राकृतिक वास-स्थान में गोरिल्लों की पहली सफल तस्वीर 1932 में श्रीमती ब्राउटन ने खींची थीं। अभी झाड़ियों के अन्दर पर्वतीय गोरिल्लों के जीवन का उन्होंने अध्ययन किया था। उनके जितने समीप तक जा सकना सम्भव था उतने समीप तक वे गई थीं। इस काम में खतरा भी कम नहीं था। गोरिल्ले बहुत सावधान थे। लोगों को झाड़ी में देखकर एक नर ने उनके पीछे पहुँचकर उन पर हमला करने की भी कोशिश की थी। एक टेलीस्कोपिक लैन्स (दूरदर्शी लैन्स) की सहायता से श्रीमती ब्राउटन जमीन के एक घोसले के अन्दर के छोटे-छोटे गोरिल्लों की तस्वीर खींचने में सफल हो गई थीं। कैमरे की आवाज से एक माता चौकन्ना हो गई थी और यह पता लगाने के लिए कि आवाज कहाँ से आई है वह एक पेड़ पर चढ़ गई थी। उसकी भी एक तस्वीर खींच ली गई थी।

चिम्पजी (Pan Oken) छोटे-छोटे ऐसे गोलों में रहते हैं जो कभी-कभी एक साथ मिल जाते। गोरिल्लों की ही तरह इनका परिवार भी बहु-पत्नीवाला होता है। प्रत्येक नर के लिए कई मादाएँ होती हैं। इस चीज को अफ्रीका की झाड़ियों में (1892) गार्नर ने देखा था कि इसीके आधार पर उसने चिम्पजियों तथा दूसरे बन्दरों के बारे में लिखा था।

फ्रांसीसी गिनी में मुक्त चिम्पंजियों के जीवन का निरीक्षण करके हेनरी निसेन (1931) ने कुछ मूल्यवान सूचनाएँ प्राप्त की थीं। वह पैरीडियन पैस्च्योर इन्स्टीट्यूट की पेस्टोरिया प्रयोगशाला के समीप किन्डिया में काम करता था। किन्डिया में रेलवे की एक लाइन है जो उसका सम्बन्ध कोनाकरी के बन्दरगाह से जोड़ती है। सूखे मौसम में उष्ण-कटिबन्धीय झाड़ियों के अन्दर चिम्पंजियों के विभिन्न गोलों के जीवन का 62 दिन तक उसने प्रेक्षण किया था। उसने बताया है कि ये वानर अपना दिन किस प्रकार बिताते हैं।

चिम्पंजी अपने घोंसलों में पौ फटने से पहले से ही चलने-फिरने लगते हैं। भूख उनको जगा देती है और भोजन की तलाश में वे जंगल के अन्दर रवाना हो जाते हैं। 10 या 11 बजे तक चिम्पजी फिर जमीन पर वापस आ जाते हैं और झाड़ियों अथवा पेड़ों की छाँह में अपने घोंसलों के अन्दर विश्राम करते हैं। खास तौर से चिम्पजी सूर्य की सीधी किरणों से खास तौर से दोपहर में, बचते हैं। जंगल के अन्दर अपने घूमने-फिरने के दौरान वे खेलते हैं इधर-उधर दौड़ते हैं और मुख्यतया छायादार स्थानों में आराम करते हैं।

छोटे चिम्पंजी खेल खेलते हैं। ये खेल एक-दूसरे का पीछा करने के होते हैं। खेल-

वन में उनके बीच भयानक झगड़े होते हैं जिनमें वे चिल्लाते और शोर करते हैं। कभी कभी जब पेड़ों के तनों को अपनी हथेलियों तथा पैरों के तलुओं से चिम्पेंजी पीटते हैं तब एक भयानक आवाज पैदा होती है। एक दिन में अपने ही क्षेत्र के अन्दर इनके गोल 7 से 10 किलोमीटर तक घूम जाते हैं। शाम के क़रीब वे फिर भोजन करते हैं। खट्टे फलों को अथवा उनको जो हमें कड़वे लगते हैं वे फेंकते नहीं।

चिम्पैंजियों की दृष्टि बहुत तेज होती है। उन्हें कोई देख रहा हो तो लगभग हजार गज की दूरी से भी वे उस ताड़ लेते हैं और छिपने के लिए भाग खड़े होते हैं। जमीन पर इस समय अपने चारों हाथों-पैरों की मदद से वे भागते हैं और अपनी भुजाओं की सहायता से पेड़ों की चोटियों-चोटियों ही वे घने-से-घने जंगलों में पहुँचने की कोशिश करते हैं। शाम को सूर्यास्त से पहले चिम्पैंजी अपने घोंसले बनाते हैं। ये भासम 2 से लेकर 16 मीटर तक की ऊँचाई पर वे बनाते हैं (उनकी औसत ऊँचाई 6 से $6\frac{1}{2}$ मीटर तक होती है) चिम्पैंजी अपने लिए अलग-अलग घोंसले बनाते हैं। निसन का कहना है कि जिन स्थानों में वे रहते वहाँ के उष्ण-कटिबन्धीय भू-पटल पर चिम्पैंजियों के घोंसलों का एक विशिष्ट स्थान होता है—वे वहाँ के भू-दृश्य के एक खास अंग होते हैं।

एक प्रेक्षक ने एक पेड़ पर 11 घोंसले देखे थे। घोंसलों में वयस्कों के साथ-साथ छोटे बच्चे भी थे। घोंसले साफ तथा मलोत्सर्ग से मुक्त थे। अनपचे बीजों तथा उनके मलोत्सर्ग की अन्य वस्तुओं के आधार पर निसन का कहना था कि चिम्पैंजी 30 से ऊपर किस्म के पौधों को खाते हैं।

चिम्पैंजी के गोल में 8-9 (कम-से-कम 5 अधिक-से-अधिक 14) सदस्य होते हैं। उनका गोल ठीक एक पारिवारिक (कौटुम्बिक) समूह नहीं होता क्योंकि बहुत बार उसमें कम-से-कम दो वयस्क नर होते हैं। निसेन का विश्वास है कि आवश्यक नहीं है कि चिम्पैंजी के गोल में कोई नर और मादा अस्थायी रूप में भी सीमित वैवाहिक सूत्र में बँधे रहें। परन्तु चिम्पैंजियों के यौनिक तथा अन्य सम्बन्धों को उनके प्राकृतिक वास-स्थान में देख पाना बहुत कठिन होता है इसलिए कोई निश्चित निष्कर्ष निकालने में निसन हिचकिचाता है।

भोजन की तलाश तथा शत्रुओं से रक्षा करने की जैविक आवश्यकताओं के अतिरिक्त वानरों और बन्दरों के अन्दर गोल में रहने की प्रवृत्ति का विकास इसलिए भी होता है कि उनके नर और मादा दोनों सारे वर्ष पुनरुत्पादन का कार्य कर सकते हैं। उनके ऋतु-स्राव अथवा स्त्री-मद के चक्र नियमित होते हैं और पुरानासी बन्दरों की अनेक जातियों की मादाओं में रजःस्राव तथा रुधिर का स्राव भी होता है। उनमें से कुछ के ऋतु-स्राव सम्बन्धी बड़े बड़े पेड़ ('लैंगिक त्वचा') पैदा हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, भिन्न-भिन्न प्रकार के मकाक बन्दरों मण्डबेवों तथा बैबूना के भी ऐसा होता है। (पी० बी० जोमकरियान 1933, एम० एफ० मेस्गुर्स 1946 एम० बी० एमक्लियवा 1940 एम० बी० एमक्लियवा और एम० एफ० मेस्गुर्स 1953)। ये चक्र हर 30 से 35 दिन के बाद नियमित रूप से

जाते हैं। जुकरमैन द्वारा एकत्रित की गई आधार-सामग्री के अनुसार मादा चिम्पैंजी का ऋतु-चक्र औसतन 36 दिन का होता है गोरिल्लों का 45 दिन का ओरंग उटनों का 32 दिन का और निम्न वर्ग के अधोनासी वन्दरों का 31 से 40 दिन का। स्त्रियों में यह चक्र 27 से 29 दिन का होता है (प्रमानरों के सम्बन्ध में आधार-सामग्री जे० हाम्स 1956)।

नवजात बन्दर वर्ष के तमाम मासों में दिखलाई देते हैं यद्यपि कुछ जातियों के सम्बन्ध में जैसेकि मोरोवार बैबूनों के सम्बन्ध में यह बात देखी गई है कि किन्हीं मौसमों में उनके प्रजनन में तीव्रता आ जाती है। मनोरंजक चीज तो यह है कि ऋतु कालीन लैंगिक चक्र की अनुपस्थिति टार्सियरों लोरिसिओं तथा तुपाइयों में भी जो कि इस मामले में बन्दरों से इतना अधिक सादृश्य रखते हैं, देखी गई है। परन्तु मेडागास्कर के लेम्यूरों के अधिकांश स्तनधारियों की तरह स्त्री-मद के ऋतुकालिक चक्र होते हैं।

चिम्पैंजियों के स्त्री-मद चक्र के सम्बन्ध में यर्क्स तथा एल्डर (1936) ने जानकारी दी है। मादा चिम्पैंजियों के 158 प्रेक्षण उन्होंने किये थे। उन्होंने बताया था कि उनके चक्र की औसत लम्बाई 36.2 दिन होती है। उसकी कम-से-कम लम्बाई 23.8 दिन और अधिक-से-अधिक लम्बाई 44.4 दिन होती है। इस काल में आर्तव ऋतु-स्राव सम्बन्धी उपद्रवों का विकास डिम्बक्षरण तथा मैथुन ऋतु एक के बाद एक क्रमपूर्वक आती हैं। जिन माताओं के बच्चा हो चुका था वे नरों को अपने पास केवल तभी आने देती थीं जब कि उनके ऋतु-स्राव सम्बन्धी उपद्रव विकसित हो जाते थे अर्थात् डिम्बक्षरण हो जाता था यानी डिम्बाशय की पुटिका का पका हुआ अण्डा फूट जाता था।

बैबूनों के लैंगिक जीवन के प्रेक्षण के आधार पर, जुकरमैन लैंगिक आकर्षण को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे देता है। वह कहता है कि बन्दरों के गोलों के निर्माण में लैंगिक आकर्षण का बहुत अधिक हाथ रहता है। परन्तु बैबूनों की तरह सभी बन्दरों में इतना सुनिश्चित लैंगिक तत्त्व नहीं होता। बैबूनों के जीवन का बन्दी रहने की हालत में तथा मुक्ति की स्थिति में दोनों में उसने अध्ययन किया था। इसके आधार पर जुकरमैन स्वयं कहता है कि बन्दरों के कौटुम्बिक दल बहुधा भोजन की तलाश करते समय एक गोल बना लेते हैं। यह चीज पक्के तौर से सिद्ध हो चुकी है कि बन्दरों की मादाएँ आम तौर से अकेली नहीं मिलतीं वे हमेशा एक नर के साथ रहती हैं। अक्सर देखा गया है कि नर बन्दर आम तौर से बहुत दिनों तक कभी-कभी वर्षों तक उन्हीं मादाओं के साथ सम्भोग करते रहते हैं। मित्रों के कौटुम्बिक सम्बन्धों के साथ-साथ बन्दरों के गोल में अनियमित लैंगिक सम्बन्धों के लक्षण भी मिलते हैं। ऊपरी तौर से ये सम्बन्ध स्वच्छन्द यौन-सम्बन्धों से मिलते हैं। माना जाता है कि मानव के तात्कालिक पूर्वजों की और उनसे पहले के होमिनियाइडों (मानव-वंशिया) की यह यौन सम्बन्धी स्वच्छन्दता ही खास विशेषता थी। सम्भव है कि आधुनिक बन्दरों के यौन जीवन में अपने पूर्वजों के जीवन की तृतीय काल के आखिरी दिनों के वानरों के जीवन की झाँकी यद्यपि सीमित रूप में

प्राथमिक स्वरूपों को अपनाने की ओर संक्रमण की यह क्रिया केवल एक ही गोल में नहीं बल्कि अनेक गोलों में सम्पन्न हुई। कुछ गोलों में यह पहले शुरू हो गई कुछ में बाद में। श्रम-क्रियाशीलता का आरम्भ हमारे पूर्वजों के अनेक गोलों में स्वतन्त्र रूप से अलग-अलग हुआ था। मानव प्रजनन सम्बन्धी डारविनवादी सिद्धान्त से तथा इस क्रिया के सम्बन्ध में एंगेल्स की सम्पूर्ण संकल्पना से यही अनिवार्य निष्कर्ष निकलता है।

वास्तव में इस बात की बहुत ही कम सम्भावना है कि श्रम के प्राथमिक-स्वरूप केवल किसी एक ही गोल में केन्द्रीभूत थे। औजारों का उपयोग किसी एक गोल में शुरू होकर फिर दूसरे गोलों में फैल गया था। यह विचार उतना ही असम्भाव्य है जितना कि यह विचार कि हमारे पूर्वजों के केवल एक अति कुशल जोड़े ने ही मानव-जाति को औजारों का बनाना और इस्तेमाल करना सिखलाया था। यह एकदम हास्यास्पद विचार है। वास्तव में बाइबिल (इंजील) के विचार का ही यह एक दूसरा रूप है। इसके अतिरिक्त, तब जो श्रम था वह अभी तक वास्तविक रूप में मानवी श्रम नहीं था।

एक पूर्णतया नय प्रकार की क्रियाशीलता जिसमें ऐसे औजारों का इस्तेमाल होता था जो कृत्रिम अंगों की तरह प्राकृतिक अंगों की शक्ति को बढ़ा देते हैं एक ऐसी असाधारण चीज थी कि जल्दी ही पशु उसका अभ्यस्त नहीं बन पा सकता था। परन्तु प्रथम गोलों का प्रादुर्भाव उन्हीं गोलों में हुआ था जिनमें भोजन प्राप्त करने के लिए औजारों का इस्तेमाल किया जाना एक विशिष्टता बन गई थी।

भोजन प्राप्त करने के इस नये तरीके का बहुत-से गोलों के अन्दर विकास हुआ होगा और उसकी जड़ उनके अन्दर गहरे तक फैल गई होंगी। इसके बाद ही जाति के लिए एक बुनियादी आवश्यकता यह बन सका होगा। परन्तु यह भी मुश्किल से ही सम्भव है कि औजारों के इस्तेमाल का हमारे पूर्वजों के सभी गोलों में विकास हुआ था। सम्भवतः कुछ गोल श्रम-क्रियाशीलता की अवस्था तक कभी नहीं पहुँच सके थे। और शायद ऐसे गोलों के साथ—जो औजारों का इस्तेमाल करते थे और जिनमें श्रम के आदिम स्वरूपों के उपयोग के फलस्वरूप पृथ्वी के प्रथम गोलों का वानर-मानवों अथवा पिथकैन्थ्रोपसों का प्राविर्भाव हो गया था (चित्र 90)—बहुत दिनों तक साथ-साथ जीवित रहने के बाद उनका (उन गोलों का जिनमें श्रम-क्रियाशीलता की अवस्था तक नहीं पहुँचा था—अनु०) अन्त हो गया था।

सीधे खड़े होकर चलने अथवा आगे की देह-शाखाओं का शरीर को सहारा देने के काम से मुक्ति पा जाना, अत्यधिक विकसित मस्तिष्क का अस्तित्व में आ जाना तथा जीवन के एक सामाजिक तरीके का निर्माण हो जाना—मानव के पूर्वजों के बीच श्रम के शुभारम्भ के लिए यही सबसे महत्वपूर्ण पूर्व-आवश्यकतायें थीं। निस्सन्देह सबसे पहले उत्तर-तीय काल के उच्च वर्ग के मानव-सभा ने ही पत्थरों और कमचियों को औजारों तथा हथियारों के रूप में इस्तेमाल किया था। इसकी प्रेरणा उन्हें भोजन प्राप्त करने तथा शत्रुओं से अपनी रक्षा करने की आवश्यकता से प्राप्त हुई थी। जिन कार्यों के द्वारा



चित्र 90. पिथेकेन्थ्रोपस (वानर मानवों का निवास।)
चित्रकार वार्ड सेमर्चेंको-मास्कोस्केया मानवशास्त्र का म्यूज़ियम संग्रहालय।

प्राकृतिक वस्तुओं का इस्तेमाल किया गया था वे प्रारम्भ में निस्सन्देह प्रकृति-सिद्ध बुद्धि से (सहज-बुद्धि से) पैदा हुए थे। बाद में जब जीवन का वे एक नियमित अंग बन गए तब भी एक लम्बे काल तक वे वहाँ प्रकृति-सिद्ध थे।

भोजन की तलाश में अपने पूर्वजों के एक छोटे-से दल के एक जगह से दूसरी जगह घूमने फिरने की कल्पना हम भली भाँति कर सकते हैं। समय-समय पर किसी भक्ष्य जड़ को खोदने के लिए किसी जानवर को मारने के लिए, अथवा किसी जंगली पशु को भगाने के लिए रास्ते में पड़े हुए पत्थरों अथवा डालियों को उस दल या मण्डली के विभिन्न सदस्य उठा लेते हैं। परन्तु, सीधे खड़े होकर चलना सीखने के बाद हमारे पूर्वज की बुद्धि तथा अनुकूलन-क्षमता में अन्य तमाम वानरों से ऊँचे थे। केवल प्राकृतिक औजारों के ही इस्तेमाल से सन्तुष्ट नहीं रह सकते थे। उन्होंने कृत्रिम औजारों का बनाना शुरू कर दिया। श्रम की क्रियाएँ जैविक रूप से उपयोगी थीं इसलिए परिवेश के साथ हमारे पूर्वजों के अनुकूलन की क्रिया को उन्होंने और तीव्र बना दिया। फिर बाद में श्रम की इन क्रियाओं ने एक सामूहिक स्वरूप धारण कर लिया। तब उनकी वजह से नये सामाजिक नियमों का विकास हुआ। इस प्रकार श्रम के शुभारम्भ औजारों के निर्माण तथा प्राणी-जगत

के एक वर्ग द्वारा इन औजारों के इस्तेमाल से प्राणी-जगत् के विकास क्रम में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। एक ऐसे प्राणी का आविर्भाव हुआ जो तमाम अन्य प्राणियों से गुणात्मक रूप से भिन्न था—मानव का आविर्भाव हो गया।

हम मान सकते हैं कि श्रम के विकास-क्रम में अनेक संक्रमणात्मक अवस्थाएँ रही होंगी। सबसे प्रारम्भिक मानवों ने सबसे पहले सामाजिक रूप से काम करनेवाले पशुओं का रूप धारण करना शुरू किया। मानव प्रजनन की मूलभूत अवस्थाओं का विश्लेषण करते हुए एंगेल्स निर्माण की क्रिया से गुजरते हुए लोगों की बात बताते हैं। विकास के एक लम्बे काल के परिणामस्वरूप ये 'तैयार-शुदा' (ready-made) लोग तैयार हो गए। तब एक नये तत्त्व का जन्म हुआ जो मानव-जाति के भावी इतिहास के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण था। यह नया तत्त्व था—एक वास्तविक मानव-समाज।

हाथ, सीधे खड़े होकर चलने, पहले प्राकृतिक और फिर बाद में कृत्रिम औजारों की सहायता से श्रम करने, स्पष्ट वाणी, मस्तिष्क तथा चेतना, पूर्व-ग्रहण करने तथा निष्कर्ष निकालने की क्षमता—इन सब चीजों का विकास एक बहुत ही लम्बे काल में, लगभग 9 लाख साल के काल में हुआ था। इस काल में प्रारम्भिक मानवों ने जो अपने साथियों के समाज में रहते थे एक-दूसरे को प्रभावित किया था।

ऊपर बताये गए तत्त्वों के परिपक्व होने के फलस्वरूप एक नये तत्त्व का आदिम बिरादरी (या समुदाय) का आविर्भाव हुआ। इस नये तत्त्व के निर्माण-काल में मानव के विशिष्ट गुणों के विकास की गति में बहुत तेजी आ गई। आदिम बिरादरी के आविर्भाव के बाद वह आदिम मानवी भीड़ जिसमें—'तैयार-शुदा' मानव पैदा हुए थे छिन्न विच्छिन्न होने लगी।

मानव समाज की खास विशिष्टता जो वानरों के गोल से उसे अलग करती है बनाये गए औजारों की सहायता से किया जाने वाला उसका सामूहिक श्रम है। इस सामूहिक श्रम का आरम्भ वानर से मानव संक्रमण-काल में हो गया था।

श्रम-क्रियाशीलता की जीवाश्म वानरों तथा उन सबसे प्रारम्भिक मानवों के बीच की विभाजक रेखा माना जाना चाहिए जिनका अभी निर्माण ही हो रहा था। परन्तु प्रारम्भिक मानवों की शारीरिक रचना ठीक वैसी ही थी जैसी उनके पूर्वजों के दूसरे भागों के उनके उन भाइयों की थी जिन्होंने उस समय तक औजारों का इस्तेमाल करना नहीं शुरू किया था। उनकी शरीर रचना द्वि-पदी महावानरों के शरीरों की रचना की तरह थी।

मानव के विकास की प्राथमिक अवस्थाओं में उसके अन्दर वानरी तथा मानवी गुण के एक विचित्र योग का समावेश था। प्राचीन होमिनिडाइया (मानव-वंशियों) के अन्दर परस्पर-विरोधी तत्त्वों के इस योग को समझने में फिर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ही हमारी सहायता करता है मानव जाति के प्रथम प्रतिनिधि अपनी शारीरिक रचना की दृष्टि से चाहे वानर-मानव ही रहे हों परन्तु अपने सामाजिक गुणों की दृष्टि से वे मानव प्राणी

बन चुके थे यद्यपि यह सच है कि अभी तक वे विकास की एकदम भिन्न अवस्था में थे।

मानव प्रजनन के क्रम की प्रक्रिया को बिना किसी मोड़ की भिन्न आगे की ओर अमोघ की एक क्रमिक विकास प्रक्रिया मानना गलत होगा। निर्माण की उस प्रक्रिया को जिसने होमिनिडाइयों को पैदा किया था वानर के मानव बन जाने की सरल क्रिया नहीं समझा जाना चाहिए, यह नहीं समझा जाना चाहिए कि कुछ विशेषताओं की परिमाणात्मक अभिवृद्धि तथा कुछ अन्य विशेषताओं का ह्रास ही केवल इस क्रिया का सार है।

इस तरह की धारणाएं द्वन्द्ववाद की विरोधी हैं। ऐसी धारणाओं को आम तौर से वे लोग फैलाते हैं जो वानर के मानव में संक्रमण की धारणा को एकदम सरल रूप में प्रस्तुत करने के लिए उनके भेदों को कम-से-कम करके बताने की चेष्टा करते हैं। यह भूल डारविन ने भी की थी। जातियों की उत्पत्ति में उन्होंने कहा था कि प्रकृति कभी छलांग नहीं भर सकती।[1] यद्यपि इस बात को डारविन समझते थे कि अन्य तमाम प्राणियों की तुलना में मनुष्य एक गुणात्मक रूप से भिन्न प्राणी है फिर भी मानव-प्रजनन की क्रिया में श्रम तथा अन्य सामाजिक कारकों की निर्णायक भूमिका को वे नहीं देख पाये थे।

मानव-प्रजनन की सही संकल्पना एंगेल्स के मानव-प्रजनन सम्बन्धी श्रम सिद्धान्त में मिलता है। इस सिद्धान्त में स्वतःस्फूर्त विकास का महत्वपूर्ण भाग होता है। सीधे खड़े होकर चलना पैर और हाथ मस्तिष्क श्रम वाणी तथा सामाजिक प्रवृत्ति मानव प्रजनन सम्बन्धी ये तमाम तत्व एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। एक-दूसरे पर घनिष्ठ रूप से वे प्रभाव डालते हैं तथा आपस में एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। समाज और प्रकृति के विकास के साथ-साथ ये भी बदलते जाते हैं। होमिनिडाइयों (मानव-जातियों) के निर्माण की लम्बी तथा कष्टपूर्ण प्रक्रिया के दौरान आधुनिक मानव की क़िस्म के प्राणी का आविर्भाव हुआ। इसकी भौतिक तथा आध्यात्मिक संस्कृति अधिक प्राचीन मानवों की तुलना में उसके पूर्वजों और पूर्वगामियों की तुलना में अकूत रूप से अधिक सम्पन्न है।

---

1 चार्ल्स डारविन प्राकृतिक वरण के द्वारा जातियों की उत्पत्ति (*The Origin of Species by Means of Natural Selection*) लन्दन, 1950, अध्याय 6 पृष्ठ 167।

भाग तीन

मानव-निर्माण से सम्बन्धित आदि-मानव-युग की आधार-सामग्री

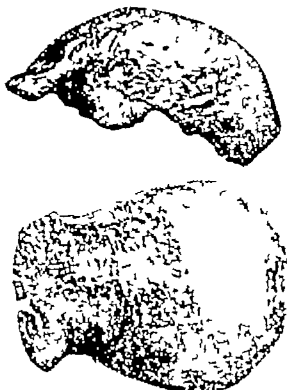
में अर्थात् 1 10 00 000 वर्षों तक बसा था अब भी कुछ ऐसे बड़े स्थल हैं जो अज्ञात हैं। इन अज्ञात स्थलों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना इसलिए और भी कठिन हो जाता है कि मध्य और युग के लगभग 80 00,000 वर्ष के लम्बे काल में हमारे जो पूर्वज थे उनके बहुत ही कम जीवाश्म अवशेष मिले हैं। निम्न उत्तर और युग (lower pliocene) से सम्बन्धित रामापिथेकस की तथा ओरियोपिथेकस (oreopithecus) जैसी कुछ अन्य जो खोज प्राप्त हुई हैं उन्होंने इन खाली स्थानों (अज्ञात स्थलों) को भरने में बहुत कुछ मदद की है।

पिथेकैन्थ्रोपस (वानर मानवों) की खोज का बहुत बड़ा वैज्ञानिक महत्त्व था। पिथेकैन्थ्रोपस में बर्बर-वानरी तथा मानवी शरीर की मिली-जुली विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। पिछली शताब्दी के नवें दशक में एम्सटर्डम विश्वविद्यालय के प्रोफेसर यूजेन दुबा-ग्रास (1858-1940) ने मलय द्वीप समूह के द्वीपों पर काम किया था। उस समय वे शरीर-विद्या के सहायक प्रोफेसर तथा फौजी सर्जन थे। वे मानव के पूर्वजों के जीवाश्म अवशेषों को ढूँढ निकालने का स्वप्न देखते थे। उन्होंने जावा द्वीप पर खोज-बीन का कार्य संगठित किया। 1880 में वाडजक नाम के गाँव के समीप उन्हें आधुनिक प्रकार के प्राचीन मानवों के दो कपालों के अवशेष मिल गए। इन कपालों के कर्पर बहुत बड़े (1550 तथा 1650 घन सेन्टीमीटर के) हैं। उनके अधि-नेत्र मुहा कूट आगे की ओर स्पष्ट रूप से निकले हुए हैं।

आखिरकार 1891 में दुबाग्रोस को वानर जैसे किसी प्राणी का एक कपरीय गुम्मज (चापप्रद) (चित्र 91) तथा ऊपर का दाहिने तरफ का तीसरा चर्वण दन्त मिल गया और 1892 में उसी प्राणी की ऊर्विका (उरु-अस्थि) तथा ऊपर का बाईं तरफ का दूसरा अग्रचर्वण दन्त (चित्र 92) प्राप्त करने में वे सफल हो गए। दुबाग्रोस का मत था कि ये समस्त अवशेष एक ही व्यक्ति के थे। कर्परीय गुम्मज (चाप-छत) की रचना सम्बन्धी विशिष्टताओं के आधार पर उसके अत्यधिक ढलावदार माथे, सुपुष्ट रूप से बने हुए अधि-नेत्र-मुहा के पीनाओं तथा कर्पर की असाधारण रूप से बड़ी धारिता (900 घन सेन्टीमीटर) के आधार पर उन्होंने परिणाम निकाला कि ये अवशेष उस प्राणी के थे जो वानर और मानव के बीच के काल में हुआ था अर्थात् वे मानव वंशावली की उस लुप्त कड़ी के अवशेष थे जिसे डार्विन तथा हैकेल की भविष्यवाणियों के अनुसार, गर्म देशों में ढूँढा जाना चाहिए था। अपनी खोज को दुबाग्रोस ने पिथेकैन्थ्रोपस एरेक्टस यानी सीधे खड़े द्विपदीय वानर-मानव का नाम दिया।

ये अवशेष बनावन नदी के तट पर त्रिनिल गाँव के समीप लगभग पन्द्रह मीटर की गहराई पर उन स्तरों में मिले थे जिन्हें दुबाग्रास ने निम्न अतिनूतन युग का बताया था। बाद में एम० जे० सी० बानएम (1931) ने पिथेकैन्थ्रोपस की इस भू-वैज्ञानिक आयु को सही सिद्ध कर दिया था।

1895 के बाद लियोनोर सुलस्का तथा एम० ब्लेन्कनहोर्न ने अन्य पिथेकैन्थ्रोपसों



चित्र 91 पिथेकैन्थ्रोपस 1 (वानर मानव-1) की खोपड़ी (दुबोआ),
का ट्रिनिल (जावा) 1891 में प्राप्त।
1—पार्श्विक पक्ष, 2 ऊपरी पक्ष।
आकार सहज का है। ई. दुबोआ 1894 के आधार पर।

(वानर-मानवों) की बहुत खोज-बीन की परन्तु 1806 तक उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। पर उसी वर्ष पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) का एक दूसरा दाँत नीचे के जबड़े (हनु) के बाएँ तरफ का प्रथम चर्वण-दन्त उन्हें मिल गया।

जावा में किसी मानव-जाति के प्राचीनतम प्रतिनिधियों की जीवाश्म अस्थियों की बात करते समय हमें जबोहनु के उस टुकड़े का भी उल्लेख करना चाहिए जो दुबोआ को केदुङ-ब्रूबस (Kedeen Broboes) में अद्भुत सौभाग्य से मिल गया था।

वानर-मानव के इन अवशेषों की खोज से सारी दुनिया के वैज्ञानिकों में जबर्दस्त हलचल मच गई। उनमें गर्मागर्म बहसें होने लगीं। अनेकों ने इस बात का विरोध किया

कि वे किसी बीच के स्वरूप के अवशेष थे। वर्कोस्क विरचाओ (1895) का कहना थ कि वानर-मानव (पिथकैन्थ्रोपस) कोई विशाल गिब्बन या बड़ा जीवाश्म वानर था विरचाओ के मत के अनुसार, यह वानर-मानव न तो होमिनिनियाइडी (मानव-अस्थियो की कोई नई किस्म (जाति) था न मानव और वानर के बीच की वह कड़ी जिसे ए जमाने से ढूंढा जा रहा था।

जावा की अस्थियों से पहले भी विरचाओ ने निएण्डरथल कपालों के सम्बन्ध में सन्दे प्रकट किया था। वह उन्हें आधुनिक प्रकार के किसी प्राणी के कपाल मानता था। उसक विश्वास था कि किसी रोग के कारण वे विकृत हो गए थे और जमीन में पड़े रहने बदरूप हो गए थे।

पी० ए० मिजाकाव (1923) ने ड्वाब्वास की सम्मिति को असत्य प्रमाणित करने की कोशिश की। उसका कहना था कि कपाल की उस आकृति का कारण यह था कि प्राणी के मरने के बाद वह बहुत बिगड़ गई थी। अपनी बात को सही सिद्ध करने के लिए उस एक आधुनिक कपाल में से पहले खनिज निकाले और फिर उसे दाब में रखा और इस तरह जावा के कपाल की आकृति तथा आकारों जैसी एक वस्तु उसने तैयार कर दी। मिजाकाव के उत्तर में रूस वैज्ञानिक न मानव-शास्त्र के मास्को सम्प्रहालय के नाम एक पत्र भेजा। उसमें उसने बताया कि उन प्राचीन स्तरों में तो वानर-मानव का ज कपरीय गुम्बज (चाप-छद) तथा हजारों जीवाश्मियो के जो अवशेष मिले थे उनमें से किसी का भी न तो खनिज निकाला गया था और न उनमें से किसी को विकृत किया गया था। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि किसी अस्थि को यदि मुलायम बनाया जाए और यथेष्ट दाब में रखा जाएगा तो वह असन्त नमनीय (सुघटनीय) बन जाएगी तथ अपनी आकृति को बदल देगी।

वानर और मानव के बीच की कड़ी के अस्तित्व के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न करने के एस प्रयत्न बहुधा वास करते हैं जो वानर से मानव की उत्पत्ति के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। इस सिद्धान्त को वे इसलिए अस्वीकार करते हैं कि उससे मानव की अलौकिक ईश्वरीय सृष्टि के सम्बन्ध में लाखों के विश्वास को धक्का पहुँचता है और इसके द्वारा धर्म को भाववादी दर्शन का जो एक सबसे सबल स्तम्भ है आघात पहुँचता है।

1932 में उस पुरानी सामग्री के बक्सों की जाँच-पड़ताल करते समय जिसे 1900 के अभियान में एकत्रित किया गया था ड्वाब्वास और उसके सहायकों को वानर-मानव की ऊर्विकास्थी के चार अस्थाश मिल गए। बाद में उन्हें एक और मिल गया (पूरी ऊर्विका से) प्राप्त हो गया। इन अस्थियों के अध्ययन के उपरान्त ड्वाब्वास ने (1933 में) यह मत प्रकट किया कि वानर-मानव सम्भवतः वृक्षों का जीवन बिताते थे। परन्तु इस मत का अधिकांश विद्वान खण्डन करते हैं क्योंकि ऊर्विका की आकृति तथा उसका आकार आधुनिक मानव की ऊर्विका की आकृति तथा उसके आकार से अधिक भिन्न नहीं है।

साथ-ही-साथ ड्वाब्वास ने एक प्रबंध प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने प्रमाणित

किया कि ऊर्विका 6 (जिसका उन्होंने विशेष रूप से अध्ययन किया था) मानवीय ऊर्विका से भिन्न होती है। यह भिन्नता उसकी अस्थि के सुदृढ़ बाह्य भाग की सूक्ष्म रचना में दिखाई देती है। एक सोवियत-मानव-शास्त्री एन० ए० सिनेलनिकोव (1934–1937) ने जिन्होंने आधुनिक मानवी ऊर्विका की रचना का विशेष अध्ययन किया था देखा कि यह वक्तव्य कि वानर-मानव की ऊर्विका में किसी विशेष प्रकार की रचना होती है आधारहीन है। उन्होंने कहा कि वानर-मानव (पिथकैन्थ्रोपस) को विकासक्रम दिखाने की एक विशेष जाति मानकर डुबायोस ने गलती की थी। होमिनिडाइमा (मानव-वंशियों) के विकास की प्रारम्भिकतम अवस्था का वानर-मानव काफ़ी अच्छा प्रतिनिधि है।



चित्र 92. पिथेकैन्थ्रोपस (वानर मानव) की ऊर्विका (जंघ अस्थि) आकार असल का $\frac{1}{4}$। ई० डुबायोस 1894 के आधार पर।

अद्भुत बात तो यह है कि डुबायोस के बाद के काम (1937) ने स्वयं सिनेलनिकोव के अन्वेषणों तथा निष्कर्षों को पूर्णतया सही सिद्ध कर दिया था। लेडेन की कब्रगाहों से 1752 और 1875 के बीच के काल की छह मानवीय ऊर्विकाओं को उन्होंने निकाला और उनके अस्थि-कणों (osteons) की दिशा तथा उनके कड़े (सुदृढ़) बाह्य आवरक के संरचनिक तत्त्वों (*structural elements*) का अध्ययन किया। उन्होंने देखा कि इन तमाम अस्थियों में इन तत्त्वों का वितरण ठीक उसी प्रकार का था जिस प्रकार का वानर-मानव (पिथेकैन्थ्रोपस) की ऊर्विका में मिलता है। इसलिए, श्री डुबायोस ने स्वीकार किया कि वानर-मानव की अस्थि के अन्दर अस्थि-कणों (osteons) के वितरण के सम्बन्ध में प्रारम्भ में जो निष्कर्ष उन्होंने निकाला था वह गलत था। आधुनिक मानवी ऊरु-अस्थियों की संहत रचना के संबंध में प्रकाशित जिस आधार-सामग्री का उन्होंने पहले उपयोग किया था वह गलत सिद्ध हुई थी।

डुबायोस जिस समय यह बता रहे थे कि वानर-मानव तथा महामानव-समों ख़ास तौर से गिब्बनों के दर्म्यान सादृश्य है, उसी समय हान्स वाइनर्ट (1925) ने यह प्रमाणित कर दिया कि वानर-मानव का आधुनिक अफ्रीकी वानरों के साथ अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। उसने यह बात स्थापित कर दी कि केवल वानर-मानव, मानव, गोरिल्ला तथा चिम्पैंजी की जाति के प्रतिनिधि लोगों के कपाल की ललाटकीय अस्थि में छिद्रएँ (नासी-वक्र) मिलती हैं।

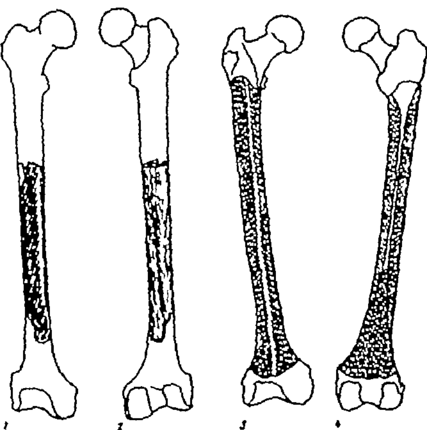
मिलनेवाली ओरंग-उटैनों तथा चिम्पैंजी वर्ग के बन्दरों के कपालों में आम तौर से न मिलाए नहीं बनती। मानव गोरिल्ला तथा चिम्पैंजी का घनिष्ठ सम्बन्ध एक बार फिर इससे प्रमाणित हो गया। इस सम्बन्ध के विषय में सबसे पहले डारविन ने बतलाया था। बाद में तुलनात्मक शरीर-विद्या के विशेषज्ञ गुस्ताव श्वाल्बे (1923) ने तथा अनेक अन्य जीव-शास्त्रियों ने डारविन की इस स्थापना का समर्थन किया था।

वाइनर्ट ने (1932) एक विषय निबन्ध में उन तमाम विशेषताओं का विस्तृत विश्लेषण किया था जो मानव के साथ-साथ चिम्पैंजी तथा अन्य उच्च वर्ग के वानरों में भी मिलती हैं। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला था कि मानव की उत्पत्ति किसी ऐसे जीवाश्म वानर से हुई होगी जो चिम्पैंजी से मिलता-जुलता रहा होगा। उत्तर तीव युग में मानव तथा चिम्पैंजी का एक ही पूर्वज रहा होगा। गोरिल्ला उसी सामान्य कबन्ध (मूल नाम) से और पहले के किसी युग में अलग हो गया था। यह खेद की बात है कि मानव तथा अन्य महावानरों विशेष रूप से गोरिल्ला के दरम्यान मिलनेवाली सादृश्य के सम्बन्ध में वाइनर्ट ने और अधिक विस्तार से विचार नहीं किया था। गोरिल्ला के पैर मस्तिष्क तथा कुछ अन्य अंग मनुष्य के इन्हीं अंगों के साथ खास तौर से मिलते हैं।

और जो भी हो वानर-मानव बहुत दिलचस्पी की चीज है क्योंकि ललाटकीय शिराओं के अलावा उसके कर्परीय चापछद (गुम्बज) में ऐसी और भी कई चीजें हैं जो चिम्पैंजी से मिलती जुलती हैं। इस रूप से उभरा हुआ अधि-नेत्र गुहा कूट तथा शिराओं के पीछे कपाल का संकरापन ऐसी ही कुछ चीजें हैं। परन्तु वानर-मानव का कपाल स्पष्ट रूप से चिम्पैंजी के कपाल से बहुत बड़ा है। उसकी कर्परीय धारिता भी अपेक्षाकृत अधिक है—वानर-मानव (पिथेकैन्थ्रोपस) के कर्पर की धारिता 900 घन सेण्टीमीटर होती है और चिम्पैंजी की केवल 350-400 घन सेण्टीमीटर।

एलेस ह्रर्डलिका (1930) का विचार है कि वानर-मानव का उक्त कर्परीय चापछद (गुम्बज) किसी ऐसी वय-प्राप्त मादा का था जिसकी ऊँचाई 165 सेण्टीमीटर थी। पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) की कर्परीय धारिता मानव तथा वानर की कर्परीय धारिता के बीच में होती है जिससे कि उसका वानर-मानव नाम सार्थक हो जाता है। उसकी ऊर्विका की संरचना से प्रकट होता है कि पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) सीधा खड़ा होकर चलता था।

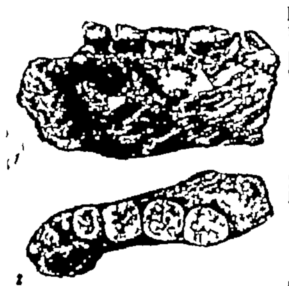
पिथेकैन्थ्रोपस (वानर मानव) होमिनिडाइयों (मानव-वंशियों) की श्रेणी में आता है यह बात 13 सितम्बर 1937 को मिले एक दूसरे कपाल से भी सिद्ध हो गई थी। इस कपाल को नीदरलैंड के पुरा-शास्त्रिकी-विद (palaeontologist) जी० एच० आर० फौन कोनिग्सवाल्ड ने खोज निकाला था। त्रिनिराम ग्राम के समीप जहाँ प्रथम कर्परीय चापछद (गुम्बज) मिला था उसके पास ही उन्हें पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) का एक कपाल तथा मानव जैसे दांतों के साथ एक बड़े अधोहनु का एक टुकड़ा मिल



चित्र 93. ऊर्विका के सघन स्तर में अस्थियों का वितरण
1, 2. पिथेकैन्थ्रोपस (वानर मानव) की ऊर्विका तथा 3, 4. आधुनिक मानव की ऊर्विका — अग्र पृष्ठ तथा पृष्ठभाग।
एफ. वाइडेनराइख 1937 के आधार पर।

गया था। अधोहनु के दाँत मानव जैसे तो थे, परन्तु उनका आकार उनसे कहीं अधिक बड़ा था (चित्र 94)। ये लगभग ज्वालामुखीय लावा के निम्न ट्रिनिल (Trinil) स्तरों में मिले थे। कोनिग्सवाल्ड को यह कपाल 30 टुकड़ों में टूटा हुआ मिला था, पर बाद में उसे जोड़ने में वे सफल हो गए थे।

पिथेकैन्थ्रोपस-II का कपाल पिथेकैन्थ्रोपस-I के कपाल से बहुत मिलता था परन्तु आकार में यह उससे कुछ छोटा था। पिथेकैन्थ्रोपस-I के विपरीत इसकी दोनों दंत-अस्थियाँ मौजूद थीं। इसकी संरचना मानव जैसी है और सिमियनों से एकदम भिन्न



चित्र 94 पिथेकैन्थ्रोपस II (वानर-मानव-II) के ऊर्ध्वहनु का तालु (1937 में प्राप्त)। 1. अन्दरूनी पक्ष तथा 2. बाहरी पक्ष।
प्राकृत आकार का ½, वाइडेनराइख 1938 के आधार पर।

है। परन्तु, यह चीज उल्लेखनीय है कि पिथेकैन्थ्रोपस II के कपाल का पश्च-भाग उसी प्रकार से कम विकसित है जिस प्रकार कि अधिकांश मानव-सभा में यह कम विकसित होता है (अधिकांशतर निअंडरथलों में तथा समस्त आधुनिक मानवों में यह अच्छी तरह से विकसित होता है)। पिथेकैन्थ्रोपस II की ललाटकीय अस्थि का दाहिना पार्श्व तथा उसका पश्च-कपालीय और मानवीय कंकाल नहीं मिला था।

इस भांति पिथेकैन्थ्रोपस II का कपाल भी अत्यन्त अपूर्ण है। फिर भी पिथेकैन्थ्रोपस I की अपेक्षा इससे कहीं अधिक पूर्ण निष्कर्ष निकालने में हमें सहायता मिलती है। उसकी सबसे अधिक ध्यान में आनेवाली चीज सम्भवतः उसके कपाल की अल्पधारिता है जो केवल 750 घन सेण्टीमीटर है। यह एक ऐसी विशेषता है जो पिथेकैन्थ्रोपस को वास्तव में मानव के तात्कालिक अग्र-गामियों तथा अन्य होमिनियाइयों (मानव-संबंधियों) के बीच की एक मध्यम अवस्था बना देती है।

दूसरे कपाल की अल्पधारिता के आधार पर कोनिग्सवाल्ड ने यह निष्कर्ष निकाला था कि यह कपाल एक मादा का था और जिस कपाल को दुबोआ ने ढूंढा था वह एक नर का था। दोनों की कपाल धारिताओं के बीच लगभग 130 घन सेण्टीमीटर का अन्तर

है। इसके अतिरिक्त दूसरे कपाल की अस्थियाँ पहले की अस्थियों की अपेक्षा कुछ पतली हैं।

जो भी हो पिथेकैन्थ्रोपस II का कपाल—जिसके कर्पर का आकार महामानव सर्मों के आकार के लगभग बराबर है—वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व रखता है। पिथेकैन्थ्रोपस के वानर-मानवी स्वरूप को यह सही सिद्ध कर देता है।

नए प्रधोहनु के टुकड़े का महत्त्व भी सम्भवत कुछ कम नहीं है। यह जावा के वानर मानव के वास्तविक स्वरूप को निर्धारित करने में सहायता करता है। चार दाँत तीन चर्वण दन्त तथा दूसरा प्रचर्वण दन्त उसमें मौजूद हैं। उसके चर्वण तथा प्रचर्वणदन्त मानव-सर्मों के दन्तों से मिलते हैं। उसके रद-दन्त के उथले कोटर को देखने से मालूम होता है कि उसका शिखर उतना बड़ा नहीं रहा होगा जितना कि मानव-सर्मों का होता है। तीसरा चर्वण दन्त दूसरे से बड़ा था दूसरा पहले से बड़ा था। तीसरा चर्वण-दन्त (प्रज्ञा दन्त) अन्य तमाम होमिनियाइडों (मानव-वंशियों) में, और आधुनिक मानवों में विशेष रूप से कमोबेश मात्रा में आमतौर से छोटा ही होता है। नव अधोहनु में ठुड्डी नहीं है और यह बहुत शक्तिशाली दिखलाई देता है। आकृति-तत्त्व सम्बन्धी इन विशिष्टताओं के आधार पर निश्चयात्मक रूप से यह कहा जा सकता है कि पिथेकैन्थ्रोपस एक वानर-मानव है।

1838 में कोनिग्सवाल्ड को उसी स्थान में किसी युवा व्यक्ति के कपाल का एक अंश मिल गया था—वह एक पार्श्विका अस्थि (parietal bone) थी जिसमें पश्चकपाल का भी एक भाग मौजूद था। 1939 में कोनिग्सवाल्ड को एक नर पिथेकैन्थ्रोपस के ऊपर का पार्श्विक-पश्चकपालीय भाग मिल गया। साथ-ही-साथ रद-दन्त तथा छेदक दन्तों के बीच के दन्तावकाश (diastema) के साथ उत्तर-हनु का एक टुकड़ा भी उसे मिल गया। 1937 में मिले अधोहनु के साथ इन भागों को जोड़कर वाइडेनरीख ने (1940) एक नर पिथेकैन्थ्रोपस के कपाल का निर्माण करने में सफलता प्राप्त कर ली। इस कपाल की कर्परीय धारिता 950-1000 घन सेन्टीमीटर थी (चित्र 95)।

इससे भी पहले 1036 में लगभग 6 वर्ष की अवस्था के एक अल्पायु व्यक्ति का कपाल जावा के पूर्वी भाग में सुराबाया कस्बे के समीप मोजोकर्टो में प्राप्त हुआ था। उस कपाल की लम्बाई 133 मिलीमीटर है तथा उसकी कर्परीय धारिता लगभग 630 घन सेन्टीमीटर है। डुबाय्रोस का विश्वास था कि यह किसी अल्पायु जावान्थ्रोपस (जावा मानव) का कपाल था परन्तु अधिक हाल के काल में उसे किसी अल्पायु पिथेकैन्थ्रोपस का कपाल माना गया है।

विरचाओ द्वारा पिथेकैन्थ्रोपस को यह बताए जाने का कि वह वानर है मानव नहीं—एक मुख्य कारण यह था कि उसके पास-पड़ोस में किसी प्रकार के औजार नहीं मिले थे। परन्तु, पाठकों को यह स्मरण होगा कि डुबाय्रोस ने जो चीजें प्राप्त की थी वे उन्हें एक गौण निक्षेप (secondary deposit) में मिली थीं। यहाँ पर उन्हें कोई जलधारा बहा से गई थी। आमतौर से इस बात का विश्वास करने के लिए बहुत ही विषद कल्पना की

जरूरत पड़ेगी कि उक्त जलधारा को चाहिए था पिथेकैन्थ्रोपस के पत्थर के औजारों को भी बहा ले जाकर यहीं—कंकाल के समीप—वह जमा कर देती। पिथेकैन्थ्रोपस औजारों का इस्तेमाल कर सकता था, अथवा नहीं और वह उन्हें बना भी सकता था या नहीं—यह प्रश्न ऐसा था जिसका सिद्धान्त रूप में हल करना आवश्यक था।

अभी बहुत हाल तक यह सवाल बिना हल हुए ही पड़ा था। पिथेकैन्थ्रोपस का मस्तिष्क चूंकि अच्छी तरह से विकसित होता है इसलिए डारविन के सिद्धान्त के समर्थकों



चित्र 95. पिथेकैन्थ्रोपस IV (वानर मानव-IV) का कपाल (1937 तथा 1939 में प्राप्त भग्नावशेषों के आधार पर पुनर्निर्मित किया गया है। मानव सदृश का ⅓। एफ. वाइडेनराइख 1940 के आधार पर।

को इस बात की अत्यधिक सम्भावना मालूम हुई कि वह औजारों का भी इस्तेमाल करता रहा होगा। 1939 में अप्रत्यक्ष रूप से उनके इस विश्वास को कोनिग्सवाल्ड ने सही साबित कर दिया। उसी क्षेत्र में जिसमें पिथेकैन्थ्रोपस–II, III और IV के कपालों के अंश प्राप्त हुए थे किसी अद्भुत सुसंयोग से उस वर्ष अत्यन्त अनगढ़ पत्थर के औजार भी मिल गए। इन औजारों में से एक प्राग्-ऐतिहासिक काल की कुल्हाड़ी से मिलता जुलता था।

इसलिए, जावा पिथेकैन्थ्रोपस (जावा वानर-मानव) के मानवी स्वरूप के सम्बन्ध में अब मुश्किल से ही कोई सन्देह हो सकता है (चित्र 96)। कुछ विद्वान् ऐसे भी हैं जिनका



संख्या में अथवा और भी भारी संख्या में एक साथ पड़े मिलते हैं। वैज्ञानिक बहुत दिनों से खोजते आए हैं। भूरत-प्रस्त में ये पत्थर के सरलतम औजारों से मिलते हैं। इनमें से अधिकांश पत्थरों का आकार मझोला है।

इस तरह के औजार ए० रूटोट ने फ्रांस के तृतीय तथा चतुर्थ कालीन निक्षेपों में ढूँढ निकाले हैं। अन्य वैज्ञानिकों को यूरोप के दूसरे भागों में भी ये प्राप्त हुए हैं। उनमें से अधिकांश को देखने से मालूम होता है कि उनके एक किनारे की काट-छाँट की गई है। इन पत्थरों का दूसरा किनारा ऐसा है जिसे आसानी से पकड़ा जा सके। इस प्रकार के पत्थर के औजारों को उप पाषाण (eoliths) का नाम दे दिया गया है।

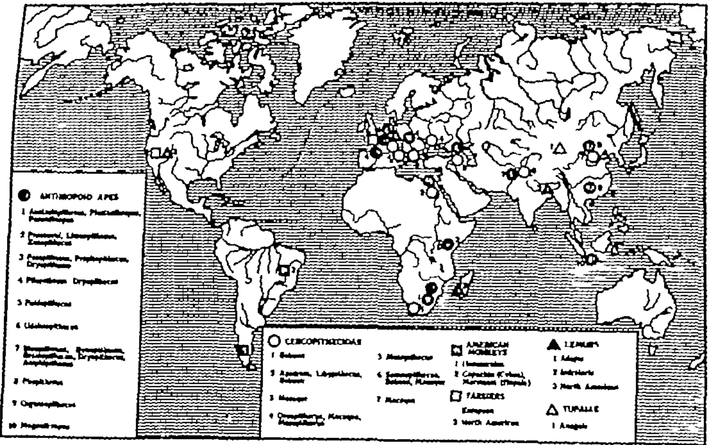
परन्तु, कई वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि उप-पाषाण की तरह दिखलाई देने वाले पत्थर प्रकृति में भी मिल सकते हैं। उदाहरण के लिए, प्रचण्ड जल-धाराओं के अन्दर जल के प्रभाव से उनका निर्माण हो सकता है। परन्तु इससे यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकलता कि तमाम उप पाषाणों की सृष्टि प्रकृति ने की थी। यद्यपि इस बात की बहुत सम्भावना है कि तृतीय काल में मिले उप-पाषाणों की रचना मानव ने नहीं बल्कि प्राकृतिक शक्तियों ने ही की थी।

क्या यह सम्भव नहीं है कि उत्तर तीय काल के आस्ट्रेलोपिथेकस-जैसे जमीन पर रहनेवाले मानव-सम प्राणी औजारों के रूप में प्राकृतिक वस्तुओं का ही इस्तेमाल करते थे? बहुत सम्भव है कि वे प्राकृतिक औजारों का इस्तेमाल करते रहे हों परन्तु इस बात की सम्भावना बहुत कम है कि वे उनका निर्माण करते रहे होंगे। कम-से-कम इस बात का कोई प्रमाण तो नहीं ही मिलता कि वे उनका निर्माण करते थे (इस विषय पर रमजडार्ट की पुस्तक देखिए)। एक सबसे पुराना पत्थर जिसे वैज्ञानिक निश्चित रूप से एक औजार बताते हैं चीन के वानर-मानव, सिनेन्थ्रोपस का था (एम० एफ० नेस्तुर्ख 1048)।

चीनी-मानव (सिनेन्थ्रोपस)

चीन में प्राप्त हुई अस्थियों से पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) का अस्तित्व पूर्णतया प्रमाणित हो गया था। चीन में हुई चीनी आदिम मानव सिनेन्थ्रोपस (नेस्तुर्ख 1937 1938 1030) की खोज मानव-शास्त्र के लिए अत्यन्त महत्त्व की थी। पिथकैन्थ्रोपस की ही तरह पश्चिम-मानव अथवा सिनेन्थ्रोपस चतुर्थ काल के पूर्वार्द्ध में उस काल के लगभग मध्य में तथा हिम-युग (ice age) के आरम्भ होने से कुछ ही पहले रहता था। उसमें कई ऐसी महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ थीं जो पिथकैन्थ्रोपस जैसी थीं।

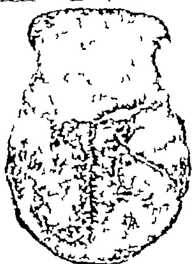
चाऊकाटिएन का ग्राम पश्चिम के दक्षिण-पश्चिम में लगभग 54 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है (चित्र 07)। यहाँ पत्थर की खुदाई का काम चल रहा था तभी एक पहाड़ी की गुफाओं में प्राचीन पशुओं तथा मानवों के जीवाश्म अवशेष मिल गए थे। 1027 में डॉ० बिर्गेर बोहलिन को एक बच्चे का चर्वण दन्त मिल गया। उसकी आकृति तथा रचना

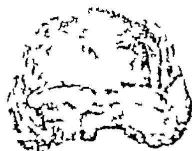

ANTHROPOID APES
CERCOPITHECIDAE
AMERICAN MONKEYS
2 Capuchin (Cebus), Marmoset (Hapale)
TARSIERS
European
2 North American
LEMURS
3 North American

चित्र 97 [illegible]

की विशिष्टताओं को देखकर ब्रिटिश शरीर-विज्ञ डेविडसन ब्लैक ने कहा कि उसका सम्बन्ध जीवाश्म होमिनिडाइयों (मानव-वंशियों) की अब तक अज्ञात एक नई जिन्स (जाति) से है। इस जिन्स को ब्लैक ने सिनन्थ्रोपस पेकिनेन्सिस (चीनी अथवा पेकिंग मानव) का नाम दे दिया।

इस खोज ने वैज्ञानिक जगत् में हलचल मचा दी। बोहलिन, पेई वेनचुंग तथा चीन की सीनोजियोलाजिकल प्रयोगशाला (जहाँ जीव विकास युग के प्राणियों का अध्ययन किया जाता था) के अन्य वैज्ञानिकों ने सिनेन्थ्रोपस के अवशेषों की खोज जोरों से शुरू कर दी। चोऊकोउतीन की गुफा में उनके अनुसंधान-कार्य को जबर्दस्त सफलता प्राप्त हुई—उसमें अनेक मानव अस्थियाँ तथा दाँत उन्हें मिल गए।





चित्र 95. सिनेन्थ्रोपस I (चीन मानव I) का कपाल 1929 में प्राप्त ऊपर का तथा बगल का दृश्य। आकार असल का है। एफ० वाइडनराइख, 1932 के आधार पर।

पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) के अवशेषों के साथ इनकी तुलना करने से पता चला कि दोनों में जबर्दस्त सादृश्यताएँ थीं।

पत्थर के औजारों तथा अलावों के अवशिष्टों के रूप में सिनन्थ्रोपस (चीन-मानव) की संस्कृति के अनेक अनु-चिह्नों का पता चला। इसके अतिरिक्त पशुओं की अनेक टूटी और जली हुई हड्डियाँ भी प्राप्त हुईं। प्रत्येक वस्तु यही जाहिर करती है कि सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) आदिम कालीन भौतिक शरीर रचना वाले एक प्रारम्भिक मानव थे जो अनगढ़ पत्थर के औजारों की रचना कर लेते थे, पशुओं का शिकार किया करते थे तथा आग को प्रयोग में लाते थे। वे सामूहिक रूप से जीवन-यापन करते थे।

सिनन्थ्रोपसों (चीन-मानवों) की जो अस्थियाँ हमें मिली हैं उनमें

केवल अपूर्ण कपाल अधोहनु दाँत मस्तक तथा उर्विकाएँ ही हैं। शुरू-शुरू में दो कर्परीय चापछत्र (गुम्मज) ही मिले थे फिर नीचे के हनु (जबड़े) के टुकड़े और कई दाँत मिले और फिर बाद में कई कपरीय चापछत्र (गुम्मज) तथा दूसरी हड्डियों के भग्नांश प्राप्त हुए (क्लेग वाइडेनरीश 1937)। प्रायः तो लगभग 50 व्यक्तियों के भग्नशेष ज्ञात हैं।

पहला कर्परीय चापछत्र (गुम्मज) जो एक थैले के कपाल के साथ 23 मीटर की गहराई पर मिला था एक लड़के का है (चित्र 98)। यह भग्नांश 1929 में पेयी वेन चुंग को मिला था। एक साल बाद 1930 में पेयी को सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) का दूसरा कर्परीय चापछत्र (गुम्मज) प्राप्त हुआ। यह 30-35 वर्ष की अवस्था की किसी औरत का मालूम पड़ता था। इस खोज के लिए पेयी को चीन की जियोलॉजिकल सोसाइटी (भूवैज्ञानिक सोसाइटी) का स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। डविडसन ब्लैक को भी कपालों का प्रथम विवरण प्रस्तुत करने के उपलक्ष में स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। सिनेन्थ्रोपस II के कपाल में सब अस्थियाँ सुरक्षित थीं। उसमें शंकु-वर्भ (styloid)—जो अच्छी तरह विकसित नहीं हुआ था—का एक अंश तथा नास्यास्थियों का एक अंश था। वायडेनरीश ने यह मत व्यक्त किया था कि सिनेन्थ्रोपस की नाक चौड़ी और चपटी थी। उसकी मस्तिष्क-पटिका (आवरण) की धारिता 1,045 घन सेन्टीमीटर है।

सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) के कपाल की आकृति तथा उसका छोटा आकार पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) के कपाल की आकृति तथा आकार से बहुत मिलते-जुलते हैं, किन्तु सिनेन्थ्रोपस के कपाल का चापछत्र (गुम्मज) अपेक्षाकृत कुछ ऊँचा है और उसका अधि-नेत्र मुद्रा कूट थोड़ा मोटा है। उसकी ये विशिष्टताएँ दिखलाती हैं कि सिनेन्थ्रोपस मानव विकास की अगली मंजिल के अधिक समीप था अर्थात् निएंडर थलों के बहुत नजदीक था (एम० एम० गिरासिमोव 1940 1955)।

सिनेन्थ्रोपस-I के अन्तर-कर्परीय (endocranial) साँचे से ब्लैक ने हिसाब लगाया कि उसके अन्दर की धारिता 900 घन सेण्टीमीटर है। साँचे की आकृति ने जाहिर किया कि उसमें आदिम विशेषताएँ स्पष्ट रूप से मौजूद थीं। उदाहरण के लिए उसके ललाटकीय पिंड बहुत कम विकसित थे। एक विशेष प्रकार की असमिति के आधार पर यह माना जा सकता है कि सिनेन्थ्रोपस दाहिने हाथ वाला प्राणी था (एम० एफ० नैस्तुर्ख 1941 ए एन० यूवेफोविच, 1939)।

उसके अमस्तिष्कीय भागाओं का पार्श्विका क्षेत्र बाद के होमिनियाइयों (मानव संबंधियों) की तरह, ऊँचा था। पिथेकैन्थ्रोपस के मस्तिष्क से यह भिन्न है। उसमें यह क्षेत्र नीचा होता है। इसी बात के आधार पर बुनाक्रोस कहते हैं कि सिनेन्थ्रोपस निएंडरथल के वर्ग का था। उनका मत है कि यह बात सिनेन्थ्रोपसों (चीन-मानवों) की मस्तकृति की किन्हीं विशिष्टताओं से भी सिद्ध होती है। ड्युबिका (1933) बुनाक्रोस के साथ सहमत है। परन्तु सिनेन्थ्रापस की आकृति-तत्त्व सम्बन्धी तमाम विशिष्टताओं को एक साथ लिया जाय तो वे पिथेकैन्थ्रोपस के कहीं अधिक समीप मालूम होती हैं। इन दोनों प्रकार

के प्राणियों को सबसे प्रारम्भिक अथवा 'आदिम' मानव मानना कहीं अधिक सही होगा।

एक महत्वपूर्ण खोज और भी थी—यह थी एक वयस्क सिनेन्थ्रोपस के अपूर्ण अधोहनु की खोज। इस अधोहनु में छेदक दन्त एक टूटा हुआ रदनक तथा चर्वण दन्त मौजूद थे। सिनेन्थ्रोपस के एक बच्चे का अधोहनु भी मिल गया था। बाद में विभिन्न अवस्थाओं के तथा दोनों लिंगों के व्यक्तियों के नौ अधोहनु मिल गए थे (चित्र 99)। वाइडेनरीख ने इनका विवरण एक निबन्ध में प्रस्तुत किया था। इसमें उन्होंने ठुड्डी के विकास के प्रारम्भिक लक्षणों तथा अधोहनु के जिह्वा प्रदेश के किन्हीं छोटे विशेष अंगों की चर्चा की थी।



1



2



3

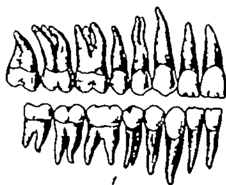
चित्र 99 सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) के अधोहनु 1 नर, 2 मादा, 3 बच्चा। आकार असल का $\frac{2}{3}$ वाइडेनरीख, 1939 के आधार पर।

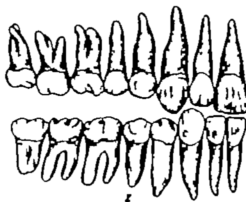
एक दूसरे निबन्ध में वाइडेनरीख (1937) ने सिनेन्थ्रोपस के दन्त-विन्यास का विवरण प्रस्तुत किया था और फिर उसकी तुलना अन्य जीवाश्म होमिनिडाइयों (मानव-वंशियों) तथा मानव सभों के दन्त-विन्यास के साथ की थी। इसमें उसने कई ऐसी बातों का उल्लेख किया था। जिनके कारण उनके दाँत मानव-सम वानरों के दाँतों से अद्भुत रूप से मिलते जुलते प्रतीत होते हैं। इन दाँतों में से एक उसके रदनकों

का काफ़ी विकास है। इन सब दन्तों के शिखर दूसरे दाँतों से ऊँचे हैं (चित्र 100)। वाइडेनरीख ने 32 व्यक्तियों के 147 दाँतों का अध्ययन किया था। इनमें से 12 दाँत लगभग 4 और 14 वर्ष की अवस्था के बीच के बच्चों के थे। दाँतों का साइज़ों (आकारों) के अन्तर को देखने से मालूम होता है कि उनमें से 16 मादाएँ थीं (जिनमें 6 बच्चियाँ थीं) तथा 16 नर थे (इनमें भी 6 बच्चे थे)।

सिनेन्थ्रोपस के दाँत निमडरथल के दाँतों अथवा आधुनिक मानव के दाँतों से बड़े हैं। उनकी जड़ें बहुत लम्बी हैं विशेषरूप से उनके छेदकों तथा श्ववन्तों की जड़ें। दाँत की गुहा आमतौर से नीचे के चर्वण दन्तों की गुहा बहुत बड़ी है, उतनी ही बड़ी जितनी निनडरथलों तथा अन्य प्राचिम जीवाश्म होमिनियाइयों (मानव-वंशियों) की होती है। इस प्रकार का वृषदन्तवाद (Taurodontism) (वृष दन्त') आधुनिक लोगों में मिलता है (उनके किन्हीं-किन्हीं दलों में तो यह 30 प्रतिशत लोगों तक में मिलता है)। चिम्पाजियों तथा माया ओरम-उटैनों में भी यह पाया जाता है। यह मान लेने में किसी ग़लती का खतरा नहीं है कि होमिनियाइयों (मानव वंशियों) में काफ़ी प्राचिम काल से वृषदन्तवाद मिलता है।

सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) की दूसरी प्राचिम कालीन विशेषता उनके मध्य वाले दाँतों के अन्दर दन्तावकाश की उपस्थिति है। ये अवकाश श्ववन्त तथा पड़ोस के छेदक दन्त (ऊपर वाले) के बीच मिलते हैं अथवा श्ववन्त और (नीचे के) अग्रचर्वण दन्त के बीच। आमतौर से सिनेन्थ्रोपस के दाँतों की आकृति निनडरथलों के दाँतों की आकृति से कहीं अधिक प्राचिम कालीन है। निनडरथलों के दाँतों की आकृति आधुनिक मानव के दाँतों से कहीं





चित्र 100 होमिनिडों (मानव-वंशियों) का दन्तविन्यास
1 आधुनिक मानव 2. सिनेन्थ्रोपस (चीन मानव)। आकार सहज का ½।
एफ० वाइडेनरीख, 1937 के आधार पर।

अधिक सादृश्यता रखती है। दाँतों की ये रचना-सम्बन्धी खास विशिष्टताएँ तथा कुछ और विशिष्टताएँ सिनेन्थ्रोपस (चीनी मानव) को 'सबसे प्रारम्भिक मानवों' की श्रेणी में रख देती हैं।

वाइडेनरीख का मत था कि अन्य किसी भी जीवाश्म मानव-सम की अपेक्षा आस्ट्रेलोपिथेकस सिनेन्थ्रोपस के अधिक समीप है। यहाँ तक कि ड्रायोपिथेकस का सम्बन्ध है वाइडेनरीख की यह धारणा प्रबल थी कि अविकासी स्वरूपों तथा तेज धार के प्रवर्धन दन्तों वाले ड्रायोपिथेकसों (वृक्ष-मानवों) के विकास से पहले ही मानव शृंखला (वंशावली) जीवाश्म मानव-समों के सामान्य कबन्ध से अलग हो गई थी।

वाइडेनरीख के कार्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग उसकी यह स्थापना थी कि अपनी जड़ों (जो दो और यहाँ तक कि तीन भागों में विभाजित होती हैं) तथा अपने दन्त शिखरों की दृष्टि, से सिनेन्थ्रोपस के नीचे के प्रवर्धन दन्त मानव-समों के प्रवर्धन दन्तों से बहुत मिलते-जुलते होते हैं। यह एक ऐसी चीज है जो इस सिद्धान्त के समर्थन में एक और प्रमाण प्रस्तुत करती है कि मानव तथा वानर एक ही स्रोत से पैदा हुए हैं।

कपाल की अस्थियों को छोड़कर, सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) के कंकाल के अन्य भागों के बहुत ही थोड़े अवशेष प्राप्त हुए हैं, ये हैं एक प्रबाहु तथा कलाई की एक अर्द्ध चन्द्राकार हड्डी। शुरू-शुरू में जब केवल कपाल के अवशेष प्राप्त हुए थे एक फ्रान्सीसी वैज्ञानिक पादरी एच॰ ब्रिउल (1032) ने यह मत व्यक्त किया था कि सिनन्थ्रोपस के अवशेषों के साथ जो सांस्कृतिक वस्तु चिह्न प्राप्त हुए थे उनका सम्बन्ध किन्हीं दूसरे वास्तविक ऐसे मानवों से रहा होगा जो सिनेन्थ्रोपसों (चीन-मानवों) का शिकार करते थे और शिकार के बाद विजय-चिह्न के रूप में अपनी गुफाओं में केवल उनके सिरों अथवा कपालों को साथ वापस ले आते थे। वाइडेनरीख का मत था कि सिनेन्थ्रोपस एक-दूसरे का शिकार करते थे और न ही सबसे पहले नर-भक्षी थे।

वाउल (1037) ने वाइडनरीख के मत का विरोध किया और ब्रिउल की राय का समर्थन किया। उसकी राय थी कि वास्तविक मानव सिनेन्थ्रोपसों (चीन-मानवों) का शिकार करते थे और चाऊकोटिएन की गुफाओं में जो चीजें मिली थी वे पत्थर के औजार बनाने के उन्हीं के उद्योग से सम्बन्धित थी। तब फिर गुफाओं में इन वास्तविक लोगों की अस्थियों के अवशेष क्यों नहीं मिले हैं? परन्तु चूँकि उनके ऐसे कोई अवशेष नहीं मिले हैं इससे स्पष्ट है कि ब्रिउल की परिकल्पना का कोई आधार नहीं है। वाइडनरीख की बात भी मुश्किल से ही सही हो सकती है, क्योंकि पशुओं तथा वनस्पति के (काष्ठ-फलों के) भोजन के बचे-खुचे जो अंश मिले हैं वे जाहिर करते हैं कि सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) सर्व भक्षी था।

ब्रिउल के इस कथन के पीछे कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है कि बहुत पहले मानव-युग (pleistocene) की अवस्था से ही आधुनिक मानव मौजूद था। यह पादरी महोदय

इस सिद्धान्त के विरोधी हैं कि आधुनिक मानव की उत्पत्ति वानर से हुई है। इसलिए वे इस परिकल्पना का प्रचार करते हैं कि होमो सेपियन्स (मेधावी मानव) हमेशा से ही बसे आए हैं।

1936 में हुई खुदाई में सिनैन्थ्रोपसों के चार नये कपालों के रूप में और भी बहुमूल्य सामग्री मिल गई थी। कोउकेटीन की उसी गुफा के एक भाग में एक कपाल के कुछ अवशेष मिल गए थे। आकार में ये अवशेष यद्यपि छोटे थे परन्तु स्पष्ट था कि वे किसी वयस्क के कपाल के थे। उस कपाल की कर्परीय धारिता 850 घन सेन्टीमीटर थी। वाइडेनराइख की राय थी कि यह पिथेकैन्थ्रोपस-I के कपाल से भी कम थी।







चित्र 101 सिनैन्थ्रोपस (चीन-मानव) के कपाल 1936 में प्राप्त
1 नर कपाल I से 2 मादा कपाल II से 3 नर कपाल-III से। आकार सहज का ½।
एफ० वाइडेनराइख, 1937 के आधार पर।

अपनी इस परिकल्पना के अनुसार कि सिनैन्थ्रोपस (चीन-मानव) के जो कपाल अपेक्षाकृत तथा अति बड़े होते हैं वे नर के होते हैं, और जो छोटे होते हैं वे मादाओं के होते हैं वाइडेनराइख ने कहा कि यह कपाल किसी औरत का था। उसका कहना था कि 1891 में जावा में पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) का जो कपाल मिला था वह भी सम्भवतः किसी औरत का ही था। यही बात पहले डुबायोस ने कही थी और बाद में हर्लिका ने भी उसे सही बताया था।

इससे भी कहीं महत्त्वपूर्ण अस्थि की वयस्क सिनेन्थ्रापसों के खूब अच्छी हालत में परन्तु अपूर्ण तीन कपालों की प्राप्ति (चित्र 101)। 1936 के पतझड़ में ये भी उसी स्थान पर मिले थे (उनमें दो नर के हैं और एक मादा का)। उनके साथ मानवीय कंकाल के जो कुछ भाग मिले हैं उनमें मध्य अस्थि तथा नासा अस्थि और एक ऊर्ध्वहनु-अस्थि के कुछ अंश भी शामिल हैं। कपाल 'एल I' नर का था। उसकी कर्परीय—धारिता लगभग 1,200 घन सेण्टीमीटर थी। कपाल 'एल II' किसी मादा का है और उसकी कर्परीय धारिता 1 050 घन सेण्टीमीटर है। 'एल III' किसी नर का कपाल है जिसकी धारिता लगभग 1 000 घन सेण्टीमीटर है। तीनों कपालों की आधारिक अस्थियाँ (basal bones) गायब हैं। सबसे अच्छी हालत में कपाल 'एल III' है। उसका पश्च-कपाल मौजूद है और उसके महारंध्र (foramen magnum) का पीछे का छोर भी बना हुआ है। आमतौर से देखने पर 'एल' भाग के तीनों वयस्क कपाल 'ई' भाग के कपाल I की तरह के मालूम होते हैं। यह कपाल I आठ-नौ वर्ष के एक लड़के का था। परन्तु 'एल' भाग के इन तीनों कपालों के अधिनेत्र-गुहा कूट अधिक दृढ़ता से उभरे हुए हैं और 'एल I' में एक स्पष्ट अग्र-पश्च शिखर है तथा उसका तल खुरदुरा है। ये चौड़े अंश अस्थियों के साथ पेशियों का सम्बन्ध जोड़ने के काम के लिए हैं।

इन तीनों 'एल' कपालों तथा कपाल 'ई I' के आयामों और उनकी विशिष्टताओं की



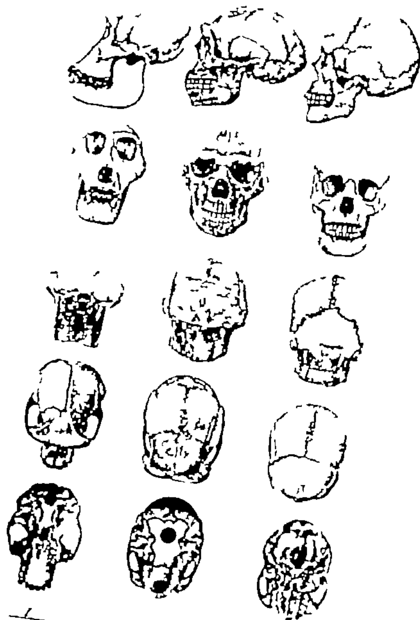
चित्र 102. सिनेन्थ्रापस (पीकिंग मानव)
एम. गिरासिमोव द्वारा पुनर्निर्मित।
मानवशास्त्र का संग्रहालय, मास्को राजकीय विश्वविद्यालय

तुलना वाइडेनरीख ने पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) तथा निअंडरथल (परवानुगो मानव) के कपालों के साथ की। इससे वाइडेनरीख की यह धारणा बनी कि उन विशिष्ट विशेषताओं के आधार पर जो विकास के सोपान में उसके स्थान को निर्धारित करती है अन्य समस्त होमिनियाइयों (मानव-वंशियों को तुलना में सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) सबसे नीचे आता है यद्यपि कपाल 'एल I' में ऐसी विशेषताएँ मौजूद हैं जो उसे निअंडरथलों (परवानुगो-मानवों) की श्रेणी में रख देती हैं। 'एल I' कपाल न केवल सबसे बड़ा है बल्कि सबसे ऊँचा भी है।

वाइडेनरीख का विश्वास था कि सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) जावा में मिले निअंडरथल (परवानुगो मानव) के साथ तथाकथित जावा-मानव (जावान्थ्रोपस) के साथ सबसे अधिक साम्य रखता था। इस जावा-मानव के कपाल की रचना अत्यन्त आदिम है। साथ-ही-साथ सिनेन्थ्रोपस पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) से भी कुछ-कुछ मिलता है। जावा-मानव तथा सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) के कपालों से तयार किये गए कपरीय साँचों में जो सादृश्य दिखलाई देता है वह भी इसी बात को प्रकट करता है। सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) के मस्तिष्क का रूप अपेक्षाकृत अधिक आदिम है—यह इस बात से जाहिर होता है कि उसके ललाटकीय पिण्ड के अग्रभाग से नीचे की ओर एक चोंच-जैसा वर्ध (तुण्ड) निकलता दिखलाई पड़ता है। इस चीज की उपस्थिति चिम्पैंजी तथा गोरिल्ला के मस्तिष्क की रचना का स्मरण कराती है। सिनेन्थ्रोपस को निअंडरथलों से यही चीज अलग करती है।

सबसे ज्यादा में मिले कपालों के आधार पर यदि हम देखें तो सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) तथा पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) आमतौर से एक-दूसरे से बहुत मिलते हैं (चित्र 102)। वाइडेनरीख का कहना था कि उनका मुख्य अन्तर उनके अधि-नेत्रगुहा कूट तथा उनकी ललाटकीय शिराओं की आकृति तथा उनके विकास की मात्रा में निहित है। वह कहता था कि सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) में चीजों का विकास कम हुआ था और पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) में वे अधिक मुखर रूप से विकसित हो गई थीं। इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि सिनेन्थ्रोपस अपेक्षाकृत अधिक आदिम-कालीन है। जो भी हो यह तो स्पष्ट है कि ये सबसे प्रारम्भिक स्वरूप वाले होमिनियाइयों (मानव-वंशियों) के विकास की प्रथम अवस्था का प्रतिनिधित्व करते थे। मानव-विकास की प्रथम अवस्था की समझदारी प्राप्त करने के सिलसिले में सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) के जीवाश्मों का हमारे लिए बहुत बड़ा महत्व है (चित्र 103)।

अभी हाल में तीन भिन्न-भिन्न सिनेन्थ्रोपसों (चीन-मानवों) की जो दो ऊर्विकाएँ (femurs) तथा एक अक्षक (clavicle) (सब प्रथम अवस्था में) मिले हैं उनका बहुत भारी वैज्ञानिक महत्व है। अस्थियाँ अभी चिन-चुम को उस सामग्री में मिल गई थीं जिसे 1936-37 में चोउ्कउतिएन की गुफा के 'ई' भाग की खुदाई के समय इकट्ठा किया



चित्र 103. कपालों की तुलना
I मादा गोरिल्ला II. सिनेन्थ्रोपस I मादा ... वाइडेनराइख द्वारा पुनर्निर्मित
III. आधुनिक मानव पार्श्विक ललाटकोण ऊपर का तथा नीचे का पक्ष।
आकार लगभग $\frac{1}{3}$।
एफ० वाइडेनराइख, 1943 के आधार पर।

गया था। बाद में होमिनिडाइयों (मानव-जातियों) की अस्थियों के साथ जिनमें आधुनिक मानव की अस्थियां भी शामिल हैं वे बहुत सादृश्य रखती हैं। ऊर्विकाओं की रचना को देखने से मालूम होता है कि सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) की चाल काफ़ी सीधी थी और उसकी ऊपर की देह-शाखाएँ ज़मीन का स्पर्श नहीं करती थीं।

1938 में वाइडेनरीख ने जब इन तीनों अस्थियों का विवरण दिया था तब उसने कहा था कि विकास की क्रिया और भी आगे तक पहुँच गई थी। कपाल की खास तौर से उसकी रक्त-व्यवस्था को अपेक्षा देह-शाखाओं के विकास में कहीं अधिक स्पष्ट रूप से यह क्रिया अभिव्यक्त हुई थी। मस्तक लगभग 31 सेन्टीमीटर लम्बा था और ऊर्विका 40 सेन्टीमीटर लम्बी। वाइडेनराख का अनुमान था कि मादा सिनन्थ्रोपस की ऊँचाई 152 सेन्टीमीटर और उनके नर की ऊँचाई 163 सेन्टीमीटर रही होगी।

ऊर्विकाओं में से एक जली (झुलसी) हुई थी। इस खोज को लेकर तथा इस बात को लेकर कि अस्थियां इधर-उधर बिखरी हुई हालत में मिली थीं वाइडेनरीख ने अपनी उसी अत्यन्त असम्भावित मान्यता को फिर दोहराया था कि सेनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) स्व-जाति भक्षक (cannibals) थे।

गुफा के उसी स्तर पर, जिसमें सिनेन्थ्रोपसों की अस्थियां मिली थीं उनकी संस्कृति के भी कई अनुचिह्न प्राप्त हुए थे। ऐसा लगता है कि अपने पत्थर के औज़ारों के लिए जलधारा के सामने के ढलान से तथा उस जलधारा के तल से आवश्यक सामग्री सिनेन्थ्रोपस लाते थे। अन्य अधिक दूर के स्थानों से भी वे उनकी सामग्री प्राप्त करते रहे होंगे।

गुफा के अंदर और भी ऐसे पत्थरों की काफ़ी बड़ी संख्या मिली थी जो वहां लाए तो गए थे परन्तु जिन पर कोई काम नहीं किया गया था। एक स्फटिक तथा स्फटकाश्म के टुकड़े भी वहां मौजूद थे। यह इतनी बहुत-सी सामग्री इस बात को दिखाने के लिए काफ़ी है कि औज़ारों का निर्माण गुफा में किया जाता था। काम सामूहिक रूप से किया जाता था। एक पत्थर से दूसरे पत्थरों को काट-छाँटा (तराशा) जाता था।

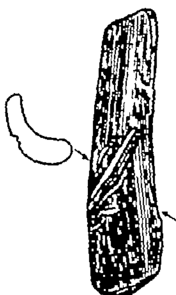
अधिकांशतया इन औज़ारों की साइज़ (आकार) छोटी है। उनमें जो सबसे बड़ा है उसकी लम्बाई केवल 15 सेन्टीमीटर है। जो औज़ार वहां मिले थे उनका रूप त्रिकोणात्मक है आयताकार है तथा और भी कितने ही प्रकार का है। उनका वर्गीकरण करना कठिन है और वे ठीक-ठीक किस काम के लिए इस्तेमाल होते थे यह बताना भी मुश्किल है (चित्र 104)। उन पर जो काम किया गया है वह बहुत भुद्दा है। स्पष्ट है कि चीन-मानवों के लिए यह काम कठिन था। जैसा कि ब्रूक ने अपने एक निबन्ध में कहा है प्राकृतिक सामग्री ही चीन-मानवों (सिनन्थ्रोपसों) की स्वामिनी थी व उसके स्वामी नहीं थे। कुछ विद्वानों की राय है कि प्राचीन पेकिंग-मानव के भुद्दे औज़ारों का सम्बन्ध प्रारम्भिक पूर्व पाषाण काल (early palaeolithic) की प्रविधियों के विकास की सबसे शुरू की अवस्थाओं से है और वे पूर्वी एशिया के क्लैक्टन नामक स्थान में मिले शिल्पका

श्येल प्रकृति के औजारों से (Acheulian tools से) समरूपता रखते हैं (पी० पी० येफ़ीमेन्को 1953)। दूसरे विद्वानों का जैसे कि ए० पी० ओक्लाडनिकोव का विश्वास है कि ये प्रारम्भिक मुस्तेरी काल (Mousterian) की प्रविधि से अधिक साम्य रखते हैं।









चित्र 104 सिनैन्थ्रोपस (चीनी-मानव) के पत्थर के औजार।
(सामने का दृश्य)
1 क्वार्ट्ज का हाथ का काटनेवाला औजार (क्रमानुसार अग्र भाग है)
2 स्फटिक पत्थरी से निर्मित नुकीला औजार,
3 चित्र नुकीली छुरी का किस्म।
आकार मूल का ½, ½ तथा ½।
पी० टेलहार्द दि शार्दिन तथा पेई वेन-चुङ, 1933 के आधार पर।

चित्र 105 हड्डी जिस पर पत्थर काटनेवाले औजार के निशान बने हुए हैं। सिनैन्थ्रोपस (चीनी-मानव) के पत्थर के औजारों के साथ यह चोउकोउतिएन की गुफा में मिली थी। (दाईं तरफ़—यह भाग को दिखलाते हुए बताया गया)। डी० ब्लैक 1933 के आधार पर।

पत्थर के औजारों के अतिरिक्त अस्थियों के बहुत-से अवशेष भी प्राप्त हुए थे। कुछ विद्वानों की धारणा है कि ये हड्डी के औजार हैं। यह निष्कर्ष बहुत ही महत्वपूर्ण था क्योंकि अभी तक मानों का यही ख्याल था कि हड्डी के औजारों का निर्माण बहुत बाद के युगों में ही हुआ था — उसका आविष्कार मुस्तेरी काल में हुआ था। परन्तु, इस बात को

माना जा सकता है कि सिनन्थ्रोपस लोग (चीन-मानव) हड्डी के औजारों का इस्तेमाल करते थे (चित्र 105)। जो अनेक हड्डियाँ मिली हैं जिनमें से अनेक जली (झुलसी) हुई हैं वे स्तनधारी प्राणियों की सत्तर भिन्न-भिन्न जातियों की हैं। वे साबित करती हैं कि सिनन्थ्रोपस मिल-जुलकर सामूहिक रूप से शिकार करते थे। जिन जानवरों का वे शिकार करते थे उनमें हिरण और भूम सहित भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राणी होते थे। उनके अन्दर के गूदे को खाने के लिए लम्बी हड्डियाँ तथा कपालों को तोड़ते समय सिनन्थ्रोपसों ने अवश्य ही अनुभव किया होगा कि हड्डियों के टुकड़ों तथा नुकीले मृग-शृंगों का औजारों के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

हर कोई जानता है कि किसी तेज हड्डी से अपने को काट लेना अथवा अपने किसी अंग को काट लेना कितना सरल है। चीन-मानव (सिनन्थ्रोपस) सम्भवतः हड्डियों का इस्तेमाल औजारों और हथियारों दोनों के रूप में करते थे। उदाहरण के लिए, आपस में जब उनमें लड़ाई हो जाती और पत्थर की अपेक्षा हड्डी अधिक आसानी से उनके हाथ में आ जाती तब सम्भवतः वे उसी का इस्तेमाल करते थे। मृग के बच्चों के सींग उनके लिए हथियारों का काम दे सकते थे। ब्रिउल का ख्याल है कि ऐसी स्थिति में सींग के साथ जुड़े हुए कपाल के भाग का इस्तेमाल हैंडिल या मूठ की तरह किया जाता रहा होगा। जंगली बकरों अथवा मृगों तथा हिरनों के सींग गदाओं और हथौड़ों का काम दे सकते थे। इन पशुओं की कुछ हड्डियाँ तथा सींग फटे हुए हैं और ऐसा मालूम होता है कि जिन स्थानों पर वे फटे हुए हैं वहाँ उनको आँच में सेंका गया था। ब्रिउल का यह भी विश्वास था कि कपाल के कटोरे जैसे भागों का इस्तेमाल सिनन्थ्रोपस (चीन-मानव) पानी पीने के बर्तनों के रूप में करते रहे होंगे। उनमें से कुछ के किनारों को चिकना बनाया गया है और बहुत दिनों तक इस्तेमाल किए जाने की वजह से उनमें एक पालिश या सफाई-जैसी आ गई है।

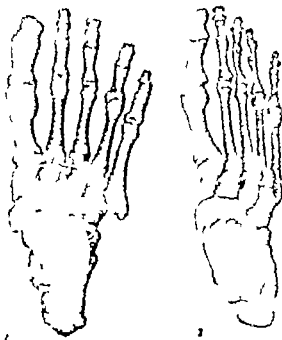
सम्भवतः सबसे अद्भुत चीज तो यह है कि सिनन्थ्रोपस (चीन-मानव) आग का नियमित रूप से उपयोग करते थे। राख तथा छोटी-मोटी जली हुई चीजें और उनके बीच यत्र-तत्र अधजली हुई लकड़ियाँ काफी संख्या में मिली हैं। एक जगह तो ऐसे अवशेषों के साथ राख की सात मीटर मोटी तह मिली थी। इस तह के अन्दर ऐसे पत्थर तथा अस्थियाँ भी मिली थीं जिन्हें आग में तपाया गया था।

स्पष्ट है कि कई शताब्दियों से सिनन्थ्रोपस उसी गुफा में रहते आए थे। इन सबसे प्रारम्भिक प्राणियों की अनेक पीढ़ियों ने अपने आदिम कालीन जीवनों को—ऐसे जीवनों को जो कठिनाइयों, खतरों तथा बीमारियों से भरे हुए थे—वहीं पर बिता दिया था। खराब मौसम में गुफा उन्हें आश्रय देती थी और वन्य पशुओं से वह उनकी रक्षा करती थी। अपने औजारों के लिए सामग्री की तलाश में वे बाहर जाते थे और फिर उसे लाकर सामूहिक रूप से गुफा के अन्दर उससे औजार तैयार करते थे। शिकार करने के लिए वे बाहर जाते थे फिर गोश्त को वे गुफा में ले आते थे (चित्र 106) और आग में वहाँ पर

के जीवाश्म कंकाल से बोन्च-ओस्मोलोव्स्की यह निष्कर्ष निकालता है कि कीक-कोबा मानव के हाथ (चित्र 128) तथा पैर उतने अधिक विकसित नहीं थे जितने आधुनिक मानव के होते हैं। उसकी तथा वी० वी० बुनाक दोनों की राय है कि कीक-कोबा की बहु-शाखाओं की रचना इस परिधारणा का खण्डन कर देती है कि मानव का प्राचीन स्वरूप वृक्षों पर रहने वाले एक पशु का था। अपने विचार के समर्थन में वे कई तथ्य उद्धृत करते हैं। इन तथ्यों में से एक यह है कि कीक-कोबा का हाथ तथा मानवी गर्भ का हाथ बाना एक जैसे होते हैं।

परन्तु जी० ए० बोन्च-ओस्मोलोव्स्की की इस स्थापना के लिए काफी आधार नहीं है।

कुछ मानवशास्त्री तथा पुरा-शास्त्रिकी विद इस बात को नहीं मानते कि कन्दरा



चित्र 128. समकक्ष राशी के दाहने पैर का जोड़कर तैयार किया गया ढांचा
1 कीक कोबा-मानव 2 आधुनिक मानव शरीर पर।
आकार मान का $\frac{1}{3}$।
बुनाक, 1954 के आधार पर।

के निम्न तथा ऊपर के स्तरों की तथा उनके शिल्प-तथ्यों (हाथ से बनाए गए औजारों) की भूवैज्ञानिक आयु प्लिमियम तथा मध्यूलियन है (डी० एन० वडर, 1940)। जहाँ तक बोध भोस्मोसामको (तथा बी० बी० बुनाक 1954) द्वारा हमारे वानर-मानवी पूर्वजों के विकास क्रम में से वृक्षों पर रहने की उनकी मंजिल के निकाल देने की बात है तो इस मंजिल के अस्तित्व के सम्बन्ध में डारविन ने इतने अधिक प्रमाण प्रस्तुत कर दिए हैं कि ऐसे अपर्याप्त तथ्यों से उसका खण्डन नहीं किया जा सकता।

इस सम्बन्ध में यहाँ पर मानव पैर के अंगूठे का अपवर्तन करने वाली मांस-पेशी के तिर्यक सिर (तिर्यक शिरस्था) का स्मरण कर लेना ही पर्याप्त होगा। तमाम बन्दरों में भी यह लक्षण मिलता है। यही उन्हें दूसरे स्तनधारियों से भिन्न बनाता है। यह इस बात का पक्का प्रमाण है कि हमारे पूर्वजों में वृक्षों में रहने वाले लोग भी रहे होंगे जिनकी शारीरिक रचना बन्दरों की शारीरिक रचना के समान रही होगी। इस सिद्धान्त के समर्थन में और भी बहुत-से तथ्य पेश किए जा सकते हैं। परन्तु यह सम्भव है कि भूविज्ञान के सम्बन्ध में अब तक जो समय माना जाता है उससे बहुत पहले ही मानव के पूर्वजों में सीधे खड़े होकर चलने की आदत का विकास शुरू हो गया था।

4 फिलिस्तीन (पलस्टाइन) के निनडरथल

फिलिस्तीन के निनडरथल जीवाश्म होमिनिडाइयों (मानव-वंशियों) के उस दल में आते हैं जिसके सदस्यों की शारीरिक रचना उन्हें आधुनिक मानव की ओर संक्रमण करते हुए प्रकारों की श्रेणी में रख देती है। 1931 और 1936 के बीच हैफ़ा तथा एथलिथ नाम के कस्बों के समीप माउण्ट कार्मेल के ढालों पर स्थित अस-सखूल तथा एत्-तबून की गुफाओं में लगभग 20 निनडरथलों के कंकालों के अवशेष मिले थे। इन अवशेषों में एक बच्चे का कंकाल भी था (एम० एफ० नेस्तुर्ख 1940 जी० आई० पदोल 1941)।

अस-सखूल की गुफा में कई कंकाल मिले थे जिससे जाहिर होता था कि यह वास्तव में एक सामूहिक कब्रगाह थी। अधिकांश कंकाल 1932 में अमेरिकी वैज्ञानिक थियोडर मैक्काउन ने निकाले थे। अपनी इन अस्थियों में से कुछ को मैक्काउन ने लन्दन में उसी वर्ष हुई पुरातत्ववेत्ताओं की विश्व-कांग्रेस में प्रदर्शित किया था।

इन अस्थियों का मकर खोजा में जो जबरदस्त दिलचस्पी पैदा हुई थी वह उनकी मात्रा को देखते हुए बिलकुल सही थी। इसके अलावा बाद के परीक्षणों ने जाहिर किया था कि फिलिस्तीन के कंकालों में कुछ ऐसी विशेषताएँ मौजूद थीं जो इस बात पर प्रकाश डालती हैं कि निनडरथल से आधुनिक रूप के मानव का ओर संक्रमण कैसे हुआ है।

फिलिस्तीनी जनों की विशिष्ट विशेषताएँ अस-सखूल गुफा से मिले वयस्कों के कंकालों में स्पष्ट दिखाई देती हैं। वे लम्बे थे और उनकी टाँगों की हड्डियाँ, आमतौर से हमेशा सीधी होती थीं। उनके कपाल (चित्र 129) में शुरू रूप से उभरा हुआ एक





चित्र 129 सिनान्थ्रोपस कपाल

1 कपोल [illegible] V में मिला कपाल 2 क्रमशः पुनर्निर्मित । (कर । आकार मरम का लगभग ½ तथा ⅓ । [illegible] 1939 के आधार पर ।

अधि-नेत्रगुहाकूट तक था। मक्काउन ने तो उसे 'छाते की आकृति वाला' कूट तक कहा था। उनका अधोहनु भारी शक्तिशाली तथा चौड़ा है।

परन्तु ठेठ निनडरथलों के अधो-हनुओं के विपरीत उनमें से कुछ के ठुड्डी का एक छाया-सा कूट भी है। यह चीज फ़िलिस्तीन-मानव को आधुनिक मानव के समीप ले आती है। इसके अतिरिक्त आधुनिक मानव के साथ उनकी तुलना करना इसलिए भी सही प्रतीत होता है कि उनका कपालीय गुम्बज (वाल्ट) अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा और गोल है तथा उनके पार्श्विका के तथा ललाटकीय प्रदेश निनडरथलों की तुलना में अधिक विकसित हैं। किन्तु उनके दाँत निनडरथलों के दाँतों से मिलते हैं। फिर भी उनके चवण दन्तों में एक छोटी-सी गुहा है जिससे जाहिर होता है कि वे नृप दन्तों की किस्म के नहीं हैं बस केवल उनकी जड़ें कुछ-कुछ उनसे मिलती हैं। ऐसा लगता है कि उनके कपाल के साथ एक अत्यन्त मज़बूत पेशी-न्यास सम्बद्ध रहा होगा। एक विपुल पश्च कपालीय कूट उनमें बना हुआ है ग्रीवा की पट्टियाँ उसी से जुड़ी रही होंगी।

अधिकांश कंकाल ऐसी स्थिति में मिले थे कि उनके घुटने ऊपर तक मुड़े हुए थे। बच्चे का कंकाल भी ऐसी ही स्थिति में था। उनके पास पत्थर के जो औज़ार मिले थे उनसे ज़ाहिर होता है कि सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से ये लोग मुस्तेरी संस्कृति की मंज़िल में थे।

कीथ के साथ मिलकर, मक्काउन ने इन कंकालों उनकी अलग-अलग अस्थियों तथा कपालों का अत्यन्त ब्यौरेवार विवरण तैयार किया था। यह उसने एक विशेष निबन्ध में किया था (1939)। तबून के पुरातत्त्वीय पक्ष का विवरण डोरोथी गैरोड तथा डी० ए० ई० बेट ने (193~ में) प्रस्तुत किया था।

कंकाल के जो अवशेष हमारी सबसे अधिक दिलचस्पी की वस्तु हैं वे मुख्यतया अस-सखूल की छोटी गुहा से प्राप्त हुए थे यद्यपि उनमें से कुछ अपेक्षाकृत बड़ी इत्-तबून की गुफा में भी मिले थे। उनकी खोज तथा खुदाई डोरोथी गैरोड ने की थी। अभियान के वही नेता थे।

अस-सखूल की गुफा में पत्थर जैसे कठोर संकोणाश्म (breccia) के अन्दर, निम्न चीज़ें मिली थीं एक बच्चे का जो लगभग 4½ वर्ष की लड़की मालूम होती है, लगभग पूर्ण कंकाल चार कंकालों के भाग जिनमें 30-35 तथा 50 वर्ष के दो नर, 35-50 वर्ष की एक मादा तथा एक बच्चा—सम्भवत 8-10 वर्ष का एक लड़का—है एक वयस्क नर, 30-40 वर्ष की एक मादा तथा 5-5½ वर्ष के एक बच्चे सम्भवत एक लड़के के कपाल दाँत तथा अलग-अलग हड्डियाँ (चित्र 130-131)।

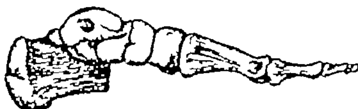
इत्-तबून की गुफा के फ़र्श में निम्न चीज़ें निकली थीं लगभग 20 वर्ष की अवस्था की एक मादा का लगभग पूर्ण कंकाल 30-35 वर्ष के एक नर का लगभग पूर्ण अधोहनु जिसकी गर्तिकाओं (sockets) के दाँत मौजूद थे तीन अस्थि-मात्राएँ (जिनमें दाहिनी कर्णिका की अस्थि भी थी) तथा दाँत (जिनमें नीचे का पहला और दूसरा चवणदन्त

भी था)। ये सब वस्तुएँ मौस्तेरियन युग के ऊपरी स्तर से निकली थीं।

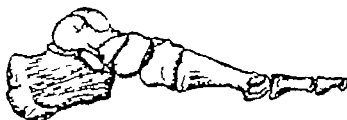
इस भाँति दोनों गुफाओं में भिन्न-भिन्न अवस्थाओं और लिंगों के 23 व्यक्तियों के अवशेष मिले थे। मग-सखूल की गुफा में मिले 3 कंकालों के तथा एत्-तबून की गुफा से



1



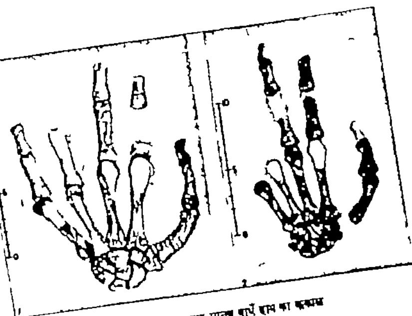
2



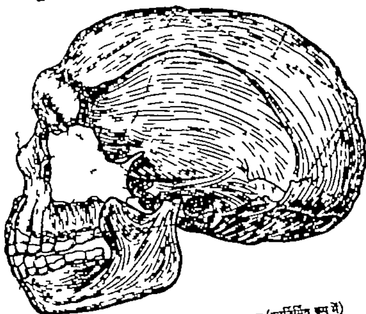
3

चित्र 130. निअंडरथल मानव के पैर का कंकाल
1 सखूल-I 2 तबून-VI 3 आधुनिक मानव।
आकार सहज का $\frac{1}{2}$।
मैक्कॉउन तथा कीथ 1939 के आधार पर।

मिले भागों कंकाल के अवशेष बहुत अच्छी दशा में थे (चित्र 132)। चट्टान के अवयवों का निरीक्षण का विशेष जोड़ने वाले पदार्थों की सहायता से उन्हें जोड़ने का, उनके भिन्न-भिन्न भागों को लेकर प्रत्येक कंकाल का पुनर्निर्माण करने का, अन्य जीवाश्म अस्थियों के साथ उनकी तुलना करने का, उनकी अस्थियों का मापन, उनका विवरण तैयार करने, चित्र-पत्र करने तथा एक-दूसरे के साथ अन्य निअंडरथल अस्थियों के साथ और आधुनिक मानव की अस्थियों के साथ उनकी तुलना करने का कार्य—यह सारा कार्य अत्यन्त



चित्र 131 निएंडरथल मानव बायें हाथ का कंकाल
1 तबून-I 2. सखूल V पृष्ठभाग।
आकार सहज का [illegible]।
डी० मैक्कावन तथा ए० कीथ 1939 के आधार पर।



चित्र 132. तबून की गुफा से प्राप्त स्त्री का कपाल (पुनर्निर्मित रूप में)
आकार सहज का [illegible]।
डी० मैक्कावन तथा ए० कीथ, 1939 के आधार पर।

परिपूर्णता के साथ किया गया था। यह इस महत्त्वपूर्ण खोज का चित्र अत्यन्त स्पष्ट रूप से सामने प्रस्तुत कर देता है।

इन उपलब्धियों में एक खास स्थान तबून की गुफा से मिले मादा के कंकाल का है क्योंकि उसके कपाल में निअण्डरथलों के अत्यन्त स्पष्ट लक्षण मिलते हैं और आमतौर से मादा कपाल जिब्राल्टर I (जो 1848 में मिला था) से मिलता-जुलता है। 1925 में माउण्ट कार्मेल के उत्तर-पश्चिम में लगभग 85 किलोमीटर के फ़ासले पर गैलीली में अम् जुत्तिय की गुफा में एक मानवी कपाल का भग्नांश (चित्र 133) मिला था। मैककाउन तथा कीथ का विश्वास है कि यह फ़िलिस्तीनी-मानवों की उसी नस्ल का है।

अस-सखूल की गुहा से प्राप्त हुए कंकालों के अवशेष अपनी आकृति तथा रचना की दृष्टि से निअण्डरथल तथा नियो-ऐंथ्रोपस मानवों के लक्षणों का मिश्रित स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। इन दोनों के लक्षणों का इस तरह का सम्मिश्रण और कहीं कभी नहीं मिला है— न इससे पहले और न इसके बाद।

परन्तु अस-सखूल तथा तबून के ये दोनों प्ररूप लेवलोइसियन-मुस्तेरी सांस्कृतिक युग (levalloiso mousterian cultural epoch) की प्रायः एक ही अवस्था से सम्बन्ध रखते हैं (उनके साथ जो जीव-जन्तु थे वे भी आमतौर से एक ही जैसे थे—यद्यपि अस-सखूल के अवशेषों में बैलों की अस्थियों का बाहुल्य है और तबून के अवशेषों में कुरंगों की अस्थियों का)। हम मान ले सकते हैं कि माउण्ट कार्मेल की गुफाओं में जो फ़िलिस्तीनी मिलते थे वे एक ही समूह के थे यद्यपि उनमें व्यक्तिगत उत्परिवर्तनों (mutations) की प्रबल मात्रा थी। इन व्यक्तिगत उत्परिवर्तनों का कारण सम्भवतः गुफा में रहनेवालों का मिश्रित स्वरूप था।



चित्र 133. गैलिली में उत्तर-पश्चिम भाग के उत्खनन से प्राप्त फ़िलिस्तीनी मुखपृष्ठ ... में प्राप्त निअण्डरथल मानव के कपाल का भग्नांश। आकार मात्र का ⅓। डी. गैरोड 1932 के आधार पर

उल्लिखित निबन्ध के लेखकों ने अस-सखूल के फ़िलिस्तीनियों के स्वरूप वर्णन करते समय देखा था कि उनके कपाल के मस्तकीय प्रदेश ढाँचा तथा मेरु-दण्ड में निअण्डरथलों की विशिष्टताएँ मौजूद हैं और उनके पैर की लम्बाई तथा देह शाखाओं की रचना उन्हें नियो-ऐंथ्रोपसों की तरह के मानवों का रूप प्रदान कर देती है।

दोनों के गुफाओं के अन्दर मिले मनुष्यों का कद 170 और 178 सेन्टीमीटर निकला था। यूरोपीय मर्दों से बहुत नाटी हैं। वे नाटे अथवा मझोले भागों को श्रेणी में आती हैं। क्रो-मैगनन स्त्रियाँ नाटे की अपेक्षा मझोले कद की स्त्रियों के अधिक करीब हैं। उनके मस्तिष्क में निअन्डरथलों के कुछ लक्षण दिखलाई देते हैं और नीचे की देह-शाखाएँ लम्बी हैं। सिर बड़ा है। तीनों वयस्क नरों के कपालों की कपरीय धारिता 1,518 और 1,587 घन सेन्टीमीटर के बीच अलग अलग है। मस-सखूल की गुफा से मिले मादा कपालों की धारिताएं 1,300-1,350 घन सेन्टीमीटर हैं और इत्-तबून की गुफा से मिले मादा कपाल की धारिता 1,270 घन सेन्टीमीटर है। इसका अर्थ हुआ कि आमतौर से उनकी धारिताएँ उतनी ही हैं जितनी क्रो-मैगनन स्त्रियों के कपालों की होती है।

मस-सखूल के कपाल बहुत लम्बे दीर्घमुखी किस्म (dolichocephalic types) के हैं उनका मूर्धांक 75 से काफी नीचे है। इसके विपरीत इत्-तबून के कपाल मध्यम लम्बाई के मध्यममुखी (*mesocephalic type*) के हैं उनका मूर्धांक 77 है। क्रो-मैगननों के अधिकांश कपाल दीर्घमुखी होते हैं। मस-सखूल के कपालों के गुम्बज (वाल्ट) औसत ऊँचाई के हैं। इस दृष्टि से वे एक बीच का स्थान रखते हैं (कपाल सखूल V के नए निर्माण के सम्बन्ध में स्नो' का निबन्ध देखिए, 1953)।

कपरीय गुहाओं के बीच बतलाते हैं कि उनका मस्तिष्क आकृति तथा सामान्य आयामों में क्रो-मैगनन किस्म के मस्तिष्क से बहुत मिलता जुलता है यद्यपि उनके कलमों (gyri) तथा परिखाओं (sulci) की विन्यासाकृति अपेक्षाकृत कुछ सरल है।

माथा साधारण मात्रा में उत्तल (convex) है नेत्र-गुहाएँ चौड़ी हैं परन्तु ऊँची नहीं (अधिकांश क्रो-मैगनन कपालों में वे बहुत नीची होती हैं)। अक्षि-नासगुहा का एक अस्थिमय कूट है जो पूर्ण रूप से अभिमध्य तथा पार्श्विक भागों में बँटा हुआ है। क्रो-मैगनन लोगों में यह विभाजन एकदम पूर्ण था।

मस-सखूल से प्राप्त अधिकांश फिलिस्तीनिया के कपालों में आनन प्रदेश है जो बहुत आगे बढ़ा हुआ नहीं है। उनका चहरा ऊर्ध्व-हनु (orthognathous) है और क्रो मगनन किस्म के चेहरे के समान औसत लम्बाई का है। परन्तु मस-सखूल कपाल V निश्चित रूप से उद्गतहनु (prognathous) वाला है। ऊर्ध्वहनु में श्वदन्त विवरक (canine fossae) अनुपस्थित है गण्डास्थि (zygomatic bone) की ऊपरी कोर मोटी है और नास्य प्रदेश अपने विस्तार की मात्रा तथा नासिका रन्ध्र की चौड़ाई दोनों की दृष्टि से भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है।

अब हम अधोहनु का देखें। यह साइज (आकार) तथा महास्थूलता दोनों की दृष्टि से भिन्न-भिन्न रूपों में मिलता है। हनु-अस्थियाँ (jaw bones) बड़ी और छोटी दोनों तरह की मिली थीं जो छोटी थीं वे अधिक स्थूलता लिए हुए थीं और जो बड़ी थी वे अपेक्षाकृत अधिक पतली थीं। हनुशाखाएँ (rami) बहुत चौड़ी हैं निअन्डरथलों और कुछ क्रो-मैगनना की किस्म के लोगों की हनुशाखाओं की तरह। अधोहनु का कोण कुछ

में क्रो-मैगनन के कपालों की तरह सशक्त रूप से विकसित है परन्तु दूसरों में वह सुपुष्ट रूप में उन्नत है। इन (फ़िलिस्तीनी) कपालों की ठुड्डी का कूट या तो ग़ायब है या थोड़ा ही विकसित है परन्तु क्रो-मैगनन कपालों में या तो सामान्य रूप से या अच्छी तरह से वह विकसित होता है। अन्त में फ़िलिस्तीनी कपालों के दाँत सामान्यतया बड़े अथवा उतने ही बड़े हैं जितने निअण्डरथलों के होते हैं (क्रो-मैगनन किस्म के लोगों के दाँत सामान्यरूप से कम होते हैं)। चर्वण दन्तों के चर्वण तलों (grinding surfaces) की आकृति में क्रो-मैगनन किस्म के लोगों की अपेक्षा अधिक आदिम कालीन विशेषताएँ मिलती हैं।

मुख्य-मुख्य तुलनात्मक चिह्नों के विश्लेषण से मैक्काउन तथा कीथ इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि मग़-सखूल गुफा के निवासियों में निअण्डरथलों के तीन महत्त्वपूर्ण लक्षण मौजूद हैं अधि-नेत्रगुहा कूट, गालों की चपटी अस्थियाँ तथा दाँतों की आकृति। क्रो-मैगनन किस्म के लोगों के साथ समानता के 8 चिह्न उनमें मिलते हैं और 13 चिह्न बीच के हैं। इन तमाम चिह्नों में विश्लेषण के लेखक अपेक्षाकृत कम महत्त्व के 86 लक्षणों को और जोड़ देते हैं। परिणामस्वरूप हम देखते हैं कि कुल 111 लक्षणों में से फ़िलिस्तीन किस्म के लोगों तथा निअण्डरथलों के बीच केवल 10 समान लक्षण मिलते हैं, 32 लक्षण उन्हें क्रो-मैगनन मानव की (और यहाँ तक कि सिनान्थ्रोपस की) श्रेणी में पहुँचा देते हैं, 48 लक्षण बीच की अवस्था के हैं, 17 अस्पष्ट हैं और 4 में विभेदीकरण हुआ मालूम होता है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि फ़िलिस्तीनी मानवों में आधुनिक रूप के मानव की दिशा में एक झुकाव था और एक काफ़ी बड़ा झुकाव था। इसके बावजूद मैक्काउन और कीथ—जो अधि-नेत्रगुहा कूट, कपाल की विशिष्ट-रचना-सम्बन्धी—अन्य विशेषताओं, दाँतों तथा कंकाल को सर्वाधिक महत्त्व का मानते हैं—फ़िलिस्तीन के अवशेषों को निअण्डरथलों के समूह में रखते हैं। वे कहते हैं कि फ़िलिस्तीनी मानव आधुनिक रूप के लोगों तथा निअण्डरथलों के बीच की एक विशेष कड़ी था।

परन्तु मैक्काउन और कीथ इस कड़ी को जाति-इतिहास (phylogenic) की कड़ी मानते हैं। वे इस बात को मान लेते हैं कि निअण्डरथल तथा आधुनिक मानव एक ही पूर्वज के पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) के वंशज हैं। हमारा मत है कि फ़िलिस्तीनी लोग प्रत्यक्ष रूप में निअण्डरथल किस्म के लोगों से क्रो-मैगनन किस्म के लोगों की ओर (इस धारणा के व्यापकतम अर्थ में) होते हुए विकास की एक मंज़िल का प्रतिनिधित्व करते हैं।

निअण्डरथल रूप की एक महत्त्वपूर्ण शारीरिक विशेषता है—ठुड्डी-कूट की अनुपस्थिति। और फ़िलिस्तीनी मानवों के रूपों में हम ठीक यही चीज़ देखते हैं—ठुड्डी विहीन कपाल का संक्रमण ठुड्डीयुक्त कपाल की दिशा में हो रहा है। आधुनिक मानव के शरीर सम्बन्धी लक्षणों का निअण्डरथल मानव के शारीरिक लक्षणों के साथ यह मिश्रण ही इस बात को आवश्यक बना देता है कि उन्हें (फ़िलिस्तीनी मानवों को) एक संक्रमण-कालीन रूप माना जाए। उनके अन्दर चूँकि आधुनिक मानव के विशिष्ट लक्षणों का प्राधान्य है इसलिए कुछ विद्वानों ने मत व्यक्त किया है कि फ़िलिस्तीनी जन ही प्रथम वास्तविक मानव थे,

होमो सपियन्सों (मेधावी मानवों) के वही प्राचीनतम प्रतिनिधि थे।

जो भी हो मानव प्रजनन शास्त्र के क्षेत्र में फिलिस्तीन की खोज पिछली कुछ दशाब्दियों की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। यह उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि जावा में निनडरथल किस्म के मानव की खोज थी अथवा पेकिंग-मानव की सिनेन्थ्रोपस तक की खोज थी। यह भी ध्यान देने योग्य है कि बीच के किस्म का यह मानव फिलिस्तीन में तीन महाद्वीपों—यूरोप-एशिया और अफ्रीका—के मिलन स्थान पर मिला था और उसके जीवाश्म अवशेषों में न केवल ऐसे लक्षण मौजूद हैं जो निनडरथलों से सादृश्यता रखते हैं बल्कि उनमें ऐसे भी लक्षण मौजूद हैं जो यूरोप के क्रो-मैंगनन जनों के साथ साम्य रखते हैं।

निनडरथलों तथा उनके जैसे ही दूसरे रूपों के जीवाश्म अवशेष पुरानी दुनिया के अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र पर मिले हैं। इससे इस बीच को मान लेने का पूरा औचित्य हमारे पास हो जाता है कि निनडरथल की किस्म के मानव आधुनिक मानवों के पूर्वज थे। इस बात की कल्पना करना मुश्किल है कि निनडरथलों की इतनी बड़ी जनसंख्या बिना कोई चिह्न छोड़े ही एकदम लुप्त हो गई होगी क्योंकि निरन्तर बढ़ते शीत की परिस्थितियों के अन्तर्गत अपने अस्तित्व के लिए उनके समूह सफलतापूर्वक संघर्ष कर सकते थे वे पशुओं का शिकार कर सकते थे वे अलावों को जलाए रख सकते थे और स्थायी आदिम यूथों में रहते आ सकते थे।

निनडरथलों के शारीरिक प्रकार (चित्र 134 136) ऐसे थे कि उनमें से अधिकांश आधुनिक मानव के पूर्ववर्ती तथा पूर्वज, हो सकते थे। वास्तव में तो आधुनिक रूप के मानव की और किसी अन्य प्रकार से उत्पत्ति होने की कल्पना करना भी कठिन होगा। आदमी को मानना पड़ेगा कि मानव की उत्पत्ति उदाहरण के लिए, एशिया के किसी छोटे से क्षेत्र में सबसे पहले हुई थी और फिर वह पुरानी दुनिया के सम्पूर्ण विस्तार में तेजी से फैल गया था परन्तु इस मानने के लिए आदिम मानव के प्रव्रजन (देशान्तर-गमन) के सिद्धान्त को मानना पड़ेगा जिसका अब कोई भी समर्थन नहीं करता।

बाद की रचनाएँ प्रगतिशील अमेरिकी मानवशास्त्री एलस हर्डलिका द्वारा 1927 में सर्वप्रथम प्रस्तुत की गई इस परिकल्पना का अब अधिकाधिक समर्थन कर रही हैं कि क्रो मैंगनन मानव का विकास निनडरथल मानव से हुआ था।

उसके बाद से यूरोप और एशिया में जो और कुछ खोजें हुई हैं वे भी इसी परिकल्पना का समर्थन करती हैं (एम० एफ० नैस्तुर्ख 1937 एम० ए० अमियात्स्की 1948)। उदाहरण के लिए, 1933 में जर्मनी में स्टुटगार्ट के समीप स्टीनहाइम में एक मादा निनडरथल का ऐसा कपाल प्राप्त हुआ था जिसकी कपरीय-धारिता अल्प थी तथा अधि-नेत्र पुहाकूट भारी था। उसका महार प्रायः लगभग उसी स्थान में है जिसमें आधुनिक मानवों का होता है (जी० एफ० बविद्स 1934 जी माई पद्रोव 1940)। उसके कनपटी शल्क (temporal squama) का ऊपरी प्रान्त अधिकांश निनडरथलों बाहर





1 2

चित्र 134. जीवाश्म मानव
1 सिनेन्थ्रापस (चीनी मानव) 2 निएण्डरथल मानव।
एम. गिरासिमोव द्वारा पुनर्निर्मित 1948।





चित्र 135 निएण्डरथल मानव: पूरा चेहरा तथा पार्श्व दृश्य।
एम. गिरासिमोव द्वारा पुनर्निर्मित 1948।

मानवों तथा वानरों की तरह क्षैतिज नहीं है बल्कि आधुनिक मानव का जैसा होता है वैसा ही मोलाकार है।

एम० ए० येमियास्की (1948) ने प्रस्ताव रखा था कि निएंडरथल के अवशेषों का दो सामान्यीकृत प्रकारों ((generalised types) में वर्गीकरण कर दिया जाए। उनमें जो आधुनिक मानव के पूर्वज थे और उनमें जिनमें विशेषीकृत 'यूरोपीय' लक्षण मिलते हैं। होमो सेपियन्स (मनस्वी मानवों) के तात्कालिक पूर्वजों के इस विभाजन और बहुरंगी समूह के वर्गीकरण की आवश्यकता के सम्बन्ध में हाल में जो विचार व्यक्त किए गए हैं वे इसी परिकल्पना पर आधारित हैं, परन्तु उनमें निएंडरथलों के दूसरे ऐसे अवशेष भी सम्मिलित हैं जो साफ-साफ बताते हैं कि आधुनिक रूप के मानव की उत्पत्ति आदिम रूप के मानव से हुई थी (वी० पी० याकीमोव 1949)।

मानव-जाति के जीवाश्म प्रतिनिधियों की आकृति तत्त्व सम्बन्धी विशिष्टताएँ दिखलाती हैं कि आधुनिक शरीर वाला रूप अपने निर्माण क्रम में तीन अवस्थाओं से गुज़रा है। हमारा अपना मत है कि होमिनिडाइयों (मानव-वंशियों) के परिवार में केवल एक ही जिनस (genus) के साथ मानुष (Homo) जिनस के लोग हैं। इसकी तीन उप जिनसें (sub-genera) हैं जो मनुष्य के विकास की तीन अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं (एम० एफ० नेस्तुर्ख, 1941 साथ ही जी० एफ० डेबिट्स का मत 1948 भी देखिए)।

प्रथम उप-जिनस पिथेकेन्थ्रोपस (वानर-मानव) की है। इसमें आदिम-मानव की दो सुविकसित तथा सुप्रतिनिधिपूर्ण जातियाँ (species) हैं। ये हैं

(1) जावा अथवा त्रिनील वानर-मानव (trinil ape men) सीधा खड़ा होनेवाला मानुष (पिथकेन्थ्रोपस)

(2) पेकिंग वानर-मानव अथवा सिनेन्थ्रोपस पेकिंग चीन मानुष (पिथेकेन्थ्रोपस)।

दूसरी उप-जिनस पलिओन्थ्रोपस (आदि-मानव) की अथवा प्रारम्भिक मानव की है। यह निएंडरथलीय प्रक्रम से जुड़ी हुई है। उदाहरण के लिए पश्चिम यूरोपीय निएंडरथल रोडेशियाई मानव फ़िलिस्तीन के निएंडरथल प्राचीन जावा मानव आदि अनेक जातियाँ और उपजातियाँ इसी उप-जिनस के अन्तर्गत आती हैं।

तीसरी उप-जिनस नव मानव की नियान्थ्रोपस की है। इसमें क्रो-मैगनन रूप वाले तथा जीवित प्रकारों जैसे आधुनिक मानव के जीवाश्म स्वरूप सम्मिलित हैं। इन सबका सम्बन्ध एक ही जाति से है—होमो (नियान्थ्रोपस) सेपियन्स (मनस्वी मानुषों) की जाति से।

6. आदिम मानव के जीवन का ढंग

अनेक निएंडरथल गुफाओं में रहते थे। हिम-युग में इन गुफाओं में ठंड से उनकी रक्षा होती थी। निएंडरथलों के जीवाश्म अवशेषों के साथ गुफा में रहने वाले मानुषों जिन्हें

तथा मकड़बग्घों की हड्डियाँ भी बहुधा एक ही जगह मिली हैं। इससे मालूम होता है कि रहने के स्थान के लिए आदिम मानव को वन्य पशुओं के साथ संघर्ष करना पड़ता था। दूसरे जानवरों के अवशेष जिनमें भीमगज तथा गैंडे के अवशेष भी हैं बतलाते हैं कि शिकार का व्यसन कितना व्यापक था। मुस्तरी काल में शिकार का व्यसन विशेष रूप से अधिक व्यापक हो गया था। इससे पहले के लोगों के झुण्ड मुख्यतया कन्द-फल इकट्ठा करके तथा छोटे-छोटे पशुओं को पकड़कर उनके ऊपर जिन्दा रहते थे।

मुस्तेरी जन केवल खुले मैदानों में ही नहीं शिकार करते थे बल्कि शिकार के लिए जंगलों में भी वे जाते थे। मुख्यतया वे मझोले आकार के जानवरों का ही शिकार करने की कोशिश करते थे। अक्सर, मिल-जुलकर सामूहिक रूप से वे बड़े जानवरों का भी शिकार करते थे। गड्ढों और दलदलों में गिर पड़े छोटे अरक्षित बहुत बूढ़े अथवा बीमार मनुष्यों को वे मार डालते थे और मरे ढोरों के मांस को भी वे खाते थे। जानवर को मार डालने के बाद उसकी खाल को हटाने, हड्डियों पर से मांस उतारने, मज्जा के पोषक गूदे को निकालने के उद्देश्य से लम्बी हड्डियों को तोड़ने आदि के लिए निअण्डरथल मानव पत्थर के औजारों का इस्तेमाल करते थे। खाने के लिए मस्तिष्क (भेजा) को निकालने के उद्देश्य से कपाल को वे तोड़ डालते थे। गोश्त या तो कच्चा खा लिया जाता था या आग के ऊपर भून लिया जाता था। इस बात की बहुत सम्भावना है कि पशुओं की खालों का इस्तेमाल निअण्डरथल अपने शरीर को ढकने और खाने के लिए करते थे (पी० पी० एफीमेन्को 1933 एच० एफ० आसबोर्न 1924)।

शिकार पर आधारित मुस्तरी युग की अर्थव्यवस्था के लिए काफी प्राविधिक तथा संगठनात्मक प्रगति की आवश्यकता थी। श्रम का और भी विभाजन उस युग में हुआ था और जो सबसे अनुभवी शिकारी थे वही उस आदिम मानव झुण्ड (गोल) के नेता बन गए थे। यद्यपि पुरापाषाण निअण्डरथल मुस्तरी युग की कठिन परिस्थितियों में भी जीवन के आदी अभ्यस्त हो गए थे परन्तु मालूम ऐसा होता है कि बीमारियों और जीवन के कठिन संघर्ष ने उन्हें अल्पायु बना दिया था (वी० आई० येगार 1928)।

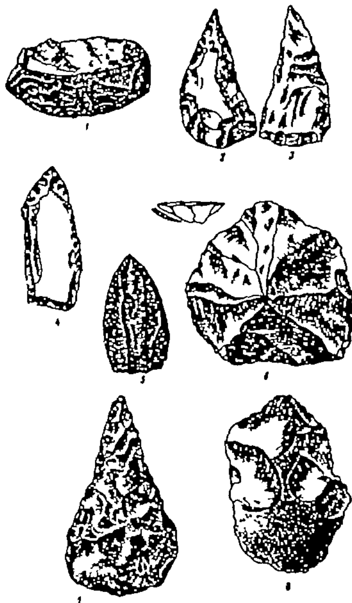
आदिम मानव का जीवन आमतौर से खतरों बीमारियों और कठिनाइयों से भरा हुआ था। इस दूर के काल का जिसमें मानव का रूप विकास हो रहा था मूल्यांकन हमें लेनिन के इन शब्दों में मिलता है

यह बात कि आदिम मानव को अपनी आवश्यकता की तमाम चीजें प्रकृति से उपहार के रूप में निर्मूल्य मिल जाती थीं एक बचकानी कल्पना है हमारे युग के पहले स्वर्ण युग जैसी कोई चीज नहीं हुई था और जीवन के बोझ से प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष की कठिनाइयों से आदिम मानव बिलकुल दबा रहता था।"[1]

पिछले युग की अपेक्षा यहाँ अधिक प्रकार के और बेहतर पत्थर के औजार

---

1 वी० आई० लेनिन, कृषि प्रश्न तथा मार्क्स के आलोचक, मास्को, 1954, पृष्ठ 11 12।



चित्र 136. मध्यमिक पूर्व पाषाण काल के पत्थर-औज़ार

1 मुस्तेरियाई खुरपी, फ्रांस 2, 3 4 आरमेनिया की येरेवान कन्दरा से प्राप्त पत्थर के दो कुल्हाड़ी-जैसे औज़ार 5 मुस्तेरियाई कुल्हाड़ी, फ्रांस। 6. तश्तरी की शक्ल का मुस्तेरियाई चिप्पड़ (पत्थर को टुकड़ा नहीं की टाबेल्स-छोर्की में पहाड़ के स्थान पर मिला था। असर इस पत्थर से तहें निकालने का तरीका। 7 चकमक उखाड़ने का औज़ार, अच्युलियन प्रकार का (इंगलिस्तान)। 8. प्रारम्भिक प्रकार का मारने का पैलाक्स हथियार (बेल्जियम)। औज़ारों का आकार 1—70 मि० मी। 2, 3, 4 का साइज़ आधा। 5—74 मि मी 6 7 का साइज़ का ⅓ 8 साइज़ का लगभग ½। पन मोर्टीलत, 1910 (1 और 5) तथा पी बर्गीयेन्को, 1953 (2, 3, 4 6, 7, 8) के आधार पर।

निमफरपस बनाते थे (चित्र 130)। उत्तर चैलियन जन की छैनी-जैसी कुल्हाड़ियाँ अथवा हथियारों की अपेक्षा पूर्व चैलियन संस्कृतियों के औजार कहीं अधिक सरल थे। चैलियन कुल्हाड़ियों को बनाने का तरीका यह था कि स्थानीय चकमक पत्थर की किसी बड़ी चट्टान से एक छोटा टुकड़ा इस तरह से काट लिया जाता था कि उसका एक सिरा तेज हो और काटने अथवा मारने के लिए धार की तरह काम कर सके तथा दूसरा सिरा जो कुन्द होता था एक ऐसी मूठ का काम दे जिसे मुट्ठी में अच्छी तरह पकड़ लिया जा सके (चित्र 131)। यह भी ज्ञात है कि चैलियन युग में दूसरी किस्मों के औजार भी होते थे।

अश्युलियन संस्कृति में और अधिक समिमितिपूर्ण औजारों का उपयोग किया जाता था। इन औजारों का पूरा तल छीलकर (या तराश कर) बराबर कर लिया जाता था। यह एक बिलकुल नई प्रविधि थी। इस युग में स्थानीय चट्टानों से तोड़े चकमक के टुकड़ों के बने हुए औजार भी मिलते हैं परन्तु ये औजार वास्तव में बाद की मुस्तेरी पूर्व पाषाण युग की संस्कृति के विशेष प्रतिनिधि हैं।

मुस्तेरी युग के सबसे विशिष्ट औजार पत्थर के बड़े टुकड़े से नहीं बल्कि खपचियों (splinters) से बनी पत्थर की खुरपियाँ तथा छुरे हैं।

यूरोप की पुरातत्त्वशास्त्रीय खोजों की कसौटी पर परखने से मालूम होता है कि मुस्तेरी युग की औजार बनानेवाली प्रविधि अश्युलियन युग की प्रविधि से अत्यन्त भिन्न थी।

प्राचीन औजारों की आकृति तथा उनके आकार बहुधा यह समझने में हमारी काफी सहायता करते हैं कि ठीक-ठीक किन कामों के लिए उनका इस्तेमाल किया जाता था। ये सब अक्सर पशुओं की उन हड्डियों के साथ मिलते हैं जिनको लम्बा-लम्बा या सीधे-सीधे तोड़ा गया है। उनके पास अलावों तथा मानवीय अस्थियों के अवशेष भी मिलते हैं। वे जिन शस्त्रों का उपयोग करते थे उनकी तथा उनकी क्रियाशीलता की अन्य साक्षियों के आधार पर, आदिम मानवों के उनके सामाजिक आर्थिक विकास के स्तर के सम्बन्ध में हम कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

मार्क्स कहते हैं "समाज के लुप्त हो गए आर्थिक रूपों का पता लगाने की दृष्टि से श्रम के पुराने औजारों के अवशेषों का वही महत्त्व होता है जो प्राणियों की लुप्त हो गई जातियों (species) का पता लगाने के सम्बन्ध में जीवाश्म अस्थियों का होता है। भिन्न-भिन्न आर्थिक युगों का विभाजन करने में बनी हुई वस्तुएँ नहीं बल्कि यह जानकारी हमारी सहायता करती है कि वे वस्तुएँ किस तरह से बनी थीं और किन औजारों की मदद से बनाई गई थीं।"[1]

1. मार्क्स—पूंजी, खंड 1, पृष्ठ 179 मास्को 1954।

स्वाभाविक है कि आदिम आदमी के सामाजिक श्रम में केवल पुरुष ही नहीं बल्कि स्त्रियाँ भी हाथ बटाती थीं। स्पष्ट है कि जिस ढंग से वे उस श्रम में भाग लेती थीं वह भिन्न था क्योंकि स्त्री की शारीरिक तथा दैहिक विशिष्टताएँ उसे बड़े पशुओं का शिकार करने में पुरुष की तरह आसानी से भाग लेने से रोकती थीं। शिकार के लिए बहुत दूर दूर तक और तेजी के साथ पशुओं का पीछा करना पड़ता था जो स्त्रियाँ स्पष्टतया नहीं कर सकती थीं। पत्थर फेंकना तथा अन्य पशुओं के साथ संघर्ष करना भी स्त्री के लिए अधिक कठिन होता था।

केवल शिकार ने ही नहीं बल्कि आदिम मानवों के जीवन की दूसरी विशेषताओं ने भी पुरुषों और स्त्रियों के बीच श्रमविभाजन आवश्यक बना दिया था। यह मान्यता मार्क्स की निम्न स्थापना से पूर्णतया मेल खाती है :

"एक परिवार के अन्दर और अधिक विकास के बाद एक कबीले के अन्दर, लिंग और अवस्था के भेदों के कारण स्वाभाविक रूप से श्रम विभाजन उत्पन्न हो जाता है। फलतः यह विभाजन केवल दैहिक आधार पर निर्भर करता है। समुदाय के विस्तार, जन-संख्या की वृद्धि और इससे भी अधिक विशेष रूप से विभिन्न कबीलों के दरम्यान होने वाले संघर्षों तथा एक कबीले के लोगों द्वारा दूसरे कबीले के लोगों को गुलाम बनाये जाने के परिणामस्वरूप इस विभाजन का आधार और व्यापक होता जाता है।"[1]

आदिम निएण्डरथल मानव के अन्दर भी जैसे जैसे उसकी सामूहिक कार्यशीलता तथा सामाजिक सम्बन्ध अधिक जटिल होते गए, वैसे ही वैसे मस्तिष्क के विकास पर भी उनका प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

इन्हीं की वजह से प्रथम होमिनिडाइया (मानव-वानरों) अथवा वानर मानवों की अस्पष्ट ध्वनियों का स्थान संवाद-संचार के एक नए तरीके ने ले लिया। संवाद-संचार का यह तरीका स्पष्ट वाणी थी। स्पष्ट वाणी की रचना का आरम्भ सम्भवतः निएण्डरथलों के बीच हुआ था (यदि वह सिनन्थ्रोपसों—चीन-मानवों—के बीच ही नहीं हो गया था) परन्तु उसका पूर्ण विकास केवल नव-मानवों के काल में जाकर हुआ था।

अनेक विद्वानों का विचार है कि प्राकृतिक शक्तियों की और बाद में सामाजिक शक्तियों की आरम्भिक मिथ्या-विश्वासी धारणाओं का सूत्रपात उदाहरण के लिए ऐसी धारणाओं का सूत्रपात जिनका सम्बन्ध शिकार, जादूगरी अथवा टोने-टोटके से था—मानव-विकास की निएण्डरथल की अवस्था में ही हुआ था। बाद में इन्हीं धारणाओं ने बीज रूप में धर्मों का रूप ले लिया था। धर्म के जन्म के सम्बन्ध में एंगेल्स ने कहा था :

"किन्तु तमाम धर्म मनुष्यों के मस्तिष्क में उन बाह्य शक्तियों के, जो उनके दैनिक जीवन का नियमन करती हैं, कल्पनापूर्ण प्रतिबिम्ब के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह प्रतिबिम्ब ऐसा है जिसमें लौकिक शक्तियाँ अलौकिक शक्तियों का स्वरूप ग्रहण कर

1 कार्ल मार्क्स—पूँजी, खण्ड 1, पृष्ठ 351।



चित्र 137 निएण्डरथल मानव
[illegible]
[illegible], 1941

लेती है। इतिहास के प्रारम्भिक दिनों में प्रकृति की शक्तियाँ ही सर्वप्रथम इस प्रकार से प्रतिबिम्बित हुई थीं। बाद में विकास क्रम में भिन्न-भिन्न कौमों (peoples) के बीच इन शक्तियों ने अनेकों और नानाविधि दैवरूप धारण कर लिए थे—परन्तु बहुत समय बीतने के पहले ही प्रकृति की शक्तियों के साथ-साथ सामाजिक शक्तियाँ भी सक्रिय होने लग गई थीं।"[1]

गुफाओं में निअण्डरथलों की समाधियाँ मिलने की वजह से कई विद्वानों ने कहा है कि इन लोगों को धार्मिक रूप से दफनाया जाता था। परन्तु इन लोगों के इस विचार की तीव्र आलोचना की गई (ए. पी. ओक्लाडनिकोव तथा पी. आई. बोरिस्कोव्स्की 1956 तथा एम॰ एफ॰ ल्योसेद्स्की, 1957 के लेख देखिए)।

6 जीवाश्म मानव के मस्तिष्क का विकास

श्रम के औजारों का निर्माण करने वाले सामाजिक प्राणियों के रूप में होमिनियाइयों (मानव-वंशियों) के विकास का एक सबसे महत्त्वपूर्ण फल आधुनिक मानव का मस्तिष्क है। मानव-समाज में उसकी नितान्त प्रारम्भिक अवस्थाओं से ही व्यक्ति की वे ही मानसिक क्षमताएँ अधिकाधिक प्रमुख स्थान प्राप्त करती गई हैं जो मानव के स्वयं अपने जीवन के लिए तथा समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

मानव के विकास-पथ का निर्धारण करने में न केवल औजारों के बनाने की क्रिया ने बल्कि औजारों के उपयोग ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। श्रम स्पष्टवाणी तथा सामूहिक शिकार करने की प्रथा—इन सबने जीवित रहने में उन व्यक्तियों की सहायता की थी जिनके मस्तिष्क सर्वोच्च रूप से विकसित थे।

पिथकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) का मस्तिष्क गोरिल्ला के मस्तिष्क से आकार में डेढ़ गुना बड़ा था और उसका आपेक्ष भार तो उससे 3 या 4 गुना बड़ा रहा होगा। 5 लाख वर्षों के दौरान में वानर-मानव के मस्तिष्क ने विकसित होकर निअण्डरथल के मस्तिष्क का रूप ले लिया था। आकार और भार में निअण्डरथल का मस्तिष्क आधुनिक मानव के मस्तिष्क से अत्यधिक मिलता है (चित्र 138)।

परन्तु, निअण्डरथल मस्तिष्क की रचना आधुनिक मानव के मस्तिष्क की रचना से कहीं अधिक आदिम थी, जैसा कि उसके अल्प विकसित ललाटकीय पिण्डों से देखा जा सकता है।

मस्तिष्क के विकास पर श्रम का उत्तरोत्तर प्रभाव पड़ा था। हमारे पूर्वजों के वानर भुजों के अन्दर श्रम का महान् उद्दीपन अनुपस्थित था। इस शक्ति का आविर्भाव वानर मानवों के यौर्थों में हुआ था और फिर, सामाजिक श्रम की क्रियाशीलता के प्रभाव के फलस्वरूप मस्तिष्क का तीव्र विकास होने लगा तथा आकार में भी वृद्धि हो गई।

---

1 एफ॰ एंगेल्स—मिस्टर यूजन ड्यूरिंग की विज्ञान में क्रान्ति मास्को 1954, पृष्ठ 438।

जावा के पिथक्रैन्थ्रोपसों (जावा के वानर-मानवों) की औसत कर्परीय धारिता लगभग 900 घन सेन्टीमीटर थी पीकिंग मानव (सिनन्थ्रोपस) की औसत धारिता

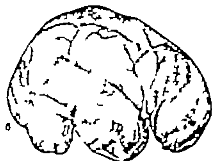












चित्र 138 कर्परीय मांच

1 [illegible] 2 [illegible] (वानर मानव), 2. [illegible] (पीकिंग-मानव) 3. [illegible] 4 [illegible] 5 [illegible] मानव [illegible] 6 [illegible] 19-8 (1 3 4 5 6) [illegible] 1933 (2 [illegible])

1050 घन सन्टीमीटर थी। दूसरी ओर, निमडरथल की कपालीय धारिता 1,300–1400 घन सन्टीमीटर थी अर्थात् वह लगभग उतनी ही थी जितनी आधुनिक मानव की होती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि चतुर्थ काल के लगभग दो तिहाई भाग के दौरान में मस्तिष्क का आयतन 400 घन सेन्टीमीटर बढ़ गया था। उसके आकार की यह वृद्धि इतनी बड़ी है जितनी के लिए होमिनियाइयों (मानव-वंशियों) के पूर्वजा न ड्रायोपिथेकस (वृक्ष-मानव) के विकास के उच्चतम् शिखर से लेकर प्रथम मानवों के आविर्भाव के समय तक—अपेक्षाकृत कहीं अधिक समय लिया होगा।

पिथकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) से निमडरथल (पराश्रुपो मानव) के काल तक प्रमस्तिष्कीय विकास की गति निरपेक्ष और सापेक्ष दोनों ही रूपों में अत्यन्त तीव्र रही होगी यद्यपि इन्हीं सैकड़ों-हजारों वर्षों के दरमियान मानव-समाज की आदिम कालीन प्रविधियों तथा उसके आदिम स्वरूप में तमनात्मक रूप से केवल नाममात्र का ही परिवर्तन हुआ था।

परन्तु मानव-शरीर के ऊपर श्रम के तथा समस्त प्रभाव ने मस्तिष्क के विकास की गति को इतनी तेज बना दिया था जितनी इससे पहले वह कभी नहीं दिखलाई दी थी और न कभी किसी और प्राणी में दिखलाई दे सकती थी। हमारे मध्यजीव काल (miocene) के पूर्वजा ड्रायोपिथेकसों (वृक्ष-मानवों) के मस्तिष्क की धारिता 400–500 घन सेन्टीमीटर के आसपास थी पिथकैन्थ्रोपसों (वानर-मानव) की उसकी लगभग दुगुनी थी परन्तु उसमें अनेक आदिम कालीन चिह्न भी मौजूद थे। इसके विपरीत आधुनिक मानव के मस्तिष्क की धारिता आकार में लगभग 3 गुनी बढ़ गई है और मस्तिष्क की आकृति तथा उसकी बनावट की सूक्ष्मता काफी बदल गई है।

पूरे चतुर्थ काल के दौरान में होमिनियाई, (मानव-वंशी) के मस्तिष्क के निरपेक्ष आयामों का उसकी आकृति का, तथा उसकी संरचना का निरन्तर विकास होता गया था। इस विकास के साथ-साथ उसके कुछ प्रदेश छोटे भी होते गए थे। होमिनियाई मस्तिष्क की आकृति तथा संरचना में होने वाले परिवर्तनों की निश्चित जानकारी जीवाश्म कपालों के कर्परीय साँचों के अध्ययन से प्राप्त की गई है।

जीवाश्म मानव के कपालों की अन्दर की भित्तियां के ऊपर उन रुधिर वाहिकाओं के एकदम स्पष्ट अनुचिह्न मौजूद हैं जो किसी समय मस्तिष्क तल पर फैली हुई थीं परन्तु वलनों (convolutions) अथवा वल्लिकाओं (gyri) की अस्थि के ऊपर जो छाप है वह कमजोर है। हमेशा यह सम्भव नहीं होता कि मस्तिष्क के विभाजनों को किसी सही मात्रा में अलग-अलग पहचान लिया जाए। आधुनिक मानव के कर्परीय साँचों का अध्ययन करते समय भी इन्हीं कठिनाइयों का अनुभव होता है। इन सबके कारण चालक (motor) वाणी (speech) तथा निम्न पार्श्विका प्रदेश (lower parietal regions) जैसे मस्तिष्क के छोटे किन्तु महत्त्वपूर्ण स्थानों का अध्ययन करना कठिन और

कभी-कभी तो असम्भव हो जाता है। यद्यपि विकास की दृष्टि से उसके ये रूपक अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

मानव मस्तिष्क एक आवरण (मस्तिष्क छदों = meninges) में बन्द रहता है जो वयस्क की अपेक्षा बच्चे के कर्पर की भित्तियों को अधिक समीप से ढाँके रहते हैं। इसके परिणामस्वरूप बच्चे के मस्तिष्क के तल की अस्थि के ऊपर उसकी अधिक स्पष्ट छाप होती है। टिली एडिंगर (1920) ने दिखलाया था कि मानव वानरों हाथी और ह्वेल की कर्परीय गुहा के साँचे का तल अथवा ब्लिकायो से ढके बड़े मस्तिष्क वाले किसी भी दूसरे प्राणी की कर्परीय गुहा के साँचे का तल प्राय बिलकुल चिकना होता है। एडिंगर का कहना है कि यदि कर्परीय साँचे के आधार पर मस्तिष्क का कोई व्यक्ति अध्ययन करना चाहता है—जैसा कि प्रत्येक पुरा-तंत्रिकी विज्ञ (palaeoneurologist) को करना पड़ता है—तो वह अन्धकार में ही टटोलता रहेगा।

इस दृष्टि से एडिंगर जे० समिथटन (1915) से सहमत है। जे० समिथटन का कहना है कि

(1) मानव कपाल में तैयार किये गए कर्परीय साँचे में मस्तिष्क के उभार की सरलता अथवा सहमता (सूक्ष्मता) का पता अन्वेषक को नहीं चल पाता

(2) ला चापेल ओसों से प्राप्त हुए निनडरथल कपालों के साँचे से तो कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के सम्वेदक तथा सम्बद्ध क्षेत्रों के आपस विकास के सम्बन्ध में मोटी राय भी नहीं कायम की जा सकती

(3) कर्परीय साँचों के अध्ययन के आधार पर कुछ प्राग् ऐतिहासिक मानवों के मस्तिष्कों की आदिम तथा बर्बर-वानरी विशेषताओं के सम्बन्ध में बाउस एप्सी इलियट स्मिथ तथा दूसरों ने जो विभिन्न परिणाम निकाले हैं वे अत्यन्त परिकल्पी तथा अमत हैं।

इसके बावजूद जैसा कि एडिंगर भी मानता है इन साँचों से मस्तिष्क की आकृति तथा मुख्य विशेषताओं के सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष निकालने में निश्चय ही हमें सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए, उनसे ललाटकीय तथा पश्च-कपालीय प्रदेशों के विकास की मात्रा मालूम हो जाती है। पिथिकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) के कर्परीय साँचे का ई० डुबायोस ने जो वर्णन किया है (1899) उसमें इस बात पर उसने जोर दिया है कि मानवी मस्तिष्क की आदिम आकृति की ठेठ विशिष्टताओं के यदि प्रत्यक्ष नहीं तो महत्वपूर्ण संकेत तो साँचे में मिल ही जाते हैं। साँचे के आधार पर देखने से मालूम होता है कि पिथेकैन्थ्रापस (वानर-मानव) के मस्तिष्क के ललाटकीय पिंड अत्यन्त छोटे थे और उनके नीचे के ललाटकीय वलय उच्च रूप से विकसित थे। डुबायोस कहता है कि यह सम्भवतः वाणी के विकास का सूचक है।

डुबायोस के विवरण के अनुसार पिथकैन्थ्रापस के मस्तिष्क का पार्श्विका प्रदेश में चपटा हो जाना उसकी बहुत विशिष्ट बात है। दूसरे होमिनिडाई (मानव-वंशी) मस्तिष्कों

से एक बात में यह मिलता है—इसका सबसे चौड़ा भाग पार्श्व (margin) से ललाटकीय प्रदेश के पीछे के ... भाग पर स्थित है। दुबाग्रास का कहना है कि आमतौर से पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) का मस्तिष्क एक प्रकार से मानव-सम (anthropoid) के मस्तिष्क की एक बड़ी प्रतिलिपि के समान है। उसमें कुछ ऐसी विचित्रताएँ हैं जिनकी वजह से यह चिम्पन्ज़ी के मस्तिष्क जैसा लगता है। दुबाग्रास कहता है कि ऊपर के मध्य पूर्व (precentral) वलय की स्थिति तथा अन्य विशेषताएँ इस बात का प्रमाण हैं।

निएंडरथल के रूप का पता लगाने के लिए आमतौर से निम्न प्रकार के कपालों के कर्परीय साँचों का उपयोग किया जाता है निएंडरथल ला चपेल ओसों जिब्राल्टर, ला कुइना। निएंडरथल मस्तिष्क की एंडिमर निम्न विशेषताएँ (भारतवर्षों के साथ) बताता है—उसकी रचना का प्रकार मानवी मस्तिष्क जैसा है परन्तु वनर-वानरी विशेषताएँ भी उसमें स्पष्ट रूप से परिलक्षित हैं। वह लम्बा और नीचा है, सामने की तरफ सँकरा और पीछे की तरफ चौड़ा है आधुनिक मानव की अपेक्षा उसके पार्श्विका प्रदेश की उठान अपेक्षाकृत नीची है परन्तु वानरों की उठान से अधिक ऊँची है। उसकी वल्लिकाओं (gyri) की छोटी संख्या तथा उनका वितरण किसी हद तक वानर-मस्तिष्क की वल्लिकाओं तथा उनके वितरण से मिलते हैं। उसके मस्तिष्क पुच्छ (medulla oblongata) के विभाजन के कोण ललाटकीय पिंड (लंड) के आगे की ओर अधिकाधिक सँकरे होते जाते चोंच जैसी आकृति वाले भाग तथा दार्ष्टिक प्रदेशों वाले अविकसित पश्च-कपालीय पिंड से भी इसी चीज़ का प्रमाण मिलता है। उसके अनुमस्तिष्क का परिकृमिका (vermiform) भाग आधुनिक मानव की तुलना से अपेक्षाकृत अधिक

तालिका 5

होमिनिडाइयों (मानव-वंशियों) के कपालों तथा कर्परीय साँचे के आयाम

(डिंडो एंडिमर के अनुसार 1929)

होमिनिडाइ (मानव वंशी)	लम्बाई (सेन्टीमीटर)	चौड़ाई (सेन्टीमीटर)
कपाल		
आधुनिक मानव सर्वेक्षित सिमेत (की मात्रा दी हुई है)	14 3-22.5	10 1-17.3
ला चपेल ओसों मानव	20.8	15 6
ला कुइना	20.3	13.2
निएंडरथल	10 9	14.7
कर्परीय साँचा		
ला चपेल ओसों मानव	18.5	14.5
ला कुइना	17 75	13.1
निएंडरथल	17.5	13 8

कभी-कभी तो असम्भव हो जाता है। यद्यपि विकास की दृष्टि से उसके य स्वस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

मानव मस्तिष्क एम आवरणा (मस्तिष्क छदों—meninges) में बन्द रहता है जो वयस्क की अपेक्षा बच्चे के अपर का भित्तियों को अधिक समीप से ढाँके रहते हैं। इसके परिणामस्वरूप बच्चे के मस्तिष्क के तल की आकृति के ऊपर उसकी अधिक स्पष्ट छाप होती है। टिली एडिंगर (1929) ने दिखलाया था कि मानव वानरों हाथी और ह्वेल की कर्परीय गुहा के साँचे का तल अथवा बस्तिकाओं से उक बड़े मस्तिष्क वाले किसी भी दूसरे प्राणी की कपरीय गुहा के साँचे का तल प्राय बिलकुल चिकना होता है। एडिंगर का कहना है कि यदि कपरीय साँचे के आधार पर मस्तिष्क का कोई व्यक्ति अध्ययन करना चाहता है—जैसा कि प्रत्येक पुरा-तंत्रिकी विज्ञ (palaeoneurologist) को करना पड़ता है—तो वह अन्धकार में ही टटोलता रहेगा।

इस दृष्टि से एडिंगर जे सेमिगटन (1915) से सहमत है। जे० समिगटन का कहना है कि

(1) मानव कपाल से तैयार किये गए कर्परीय साँचे से मस्तिष्क के उभार की सरलता अथवा बहुलता (सूक्ष्मता) का पता अध्यापक को नहीं चल पाता

(2) मर चर्मीय भागों से प्राप्त हुए बिनयरवल कपालों के साँचे के तो कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के बन्धेयक तथा समवाऊ भागों के सापेक्ष विकास के सम्बन्ध में मोटी मोटी राय भी नहीं कायम की जा सकती

(3) कपरीय साँचों के अध्ययन के आधार पर कुछ प्राग् एतिहासिक मानवों के मस्तिष्कों की आकृति तथा बर्बर-वानरी विशेषताओं के सम्बन्ध में बाउस एन्स्टनी इलियट स्मिथ तथा दूसरों ने जो विभिन्न परिणाम निकाले हैं वे अत्यन्त परिकल्पी तथा असत हैं।

इसके बावजूद जैसा कि एडिंगर भी मानता है इन साँचों से मस्तिष्क की आकृति तथा मुख्य विशेषताओं के सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष निकालने में निश्चय ही हमें सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए, उनमें ललाटकीय तथा पश्च-कपालीय प्रदेशों के विकास की मात्रा मालूम हो जाती है। पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) के कपरीय साँचे का ई० दुबायोस ने जो वर्णन किया है (1930) उसमें इस बात पर उसने जोर दिया है कि मानवी मस्तिष्क की आदिम आकृति की ठठ विशिष्टताओं के यदि प्रत्यक्ष नहीं तो महत्त्वपूर्ण संकेत तो साँचे में मिल ही जाते हैं। साँचे के आधार पर देखने से मालूम होता है कि पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) के मस्तिष्क के ललाटकीय पिंड अत्यन्त छोटे थे और उनके नीचे के ललाटकीय वलय उच्च रूप से विकसित थे। दुबायोस कहता है कि यह सम्भवत वाणी के विकास का सूचक है।

दुबायोस के विवरण के अनुसार पिथेकैन्थ्रोपस के मस्तिष्क का पार्श्विका प्रदेश मे भारी हो जाना उसकी बहुत विशिष्ट चीज है। दूसरे होमिनियाई (मानव-वंशी) मस्तिष्कों

में एक बात में यह मिलता है—इसका सबसे चौड़ा भाग पार्श्व (margin) में ललाटीय प्रदेश के पश्च के ⅓ भाग पर स्थित है। ड्यूबॉयस का कहना है कि आमतौर से पिथेकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) का मस्तिष्क एक प्रकार से मानव-सम (anthropoid) के मस्तिष्क की एक बड़ी प्रतिलिपि के समान है। उसमें कुछ ऐसी विशिष्टताएँ हैं जिनकी वजह से वह गिब्बन के मस्तिष्क जैसा लगता है। ड्यूबॉयस कहता है कि ऊपर के मध्य पूर्व (precentral) वलय की स्थिति तथा अन्य विशेषताएँ इस बात का प्रमाण हैं।

सिनैन्थ्रोपस के रूप का पता लगाने के लिए आमतौर से निम्न प्रकार के कपालों के कर्परीय साँचा का उपयोग किया जाता है सिनैन्थ्रोपस या पेकिंग मानव जिनजान्थ्रोपस या गुहना। सिनैन्थ्रोपस मस्तिष्क की एडिंगर निम्न विशेषताएँ (आरक्षणों के साथ) बताता है—उसकी रचना का प्रारूप मानवी मस्तिष्क जैसा है परन्तु बन्दर-वानरी विशेषताएँ भी उसमें स्पष्ट रूप से परिलक्षित हैं। यह लम्बा और नीचा है सामने की तरफ सँकरा और पीछे की तरफ चौड़ा है आधुनिक मानव की अपेक्षा उसके पार्श्विका प्रदेश की उठान अपेक्षाकृत नीची है परन्तु वानरों की उठान से अधिक ऊँची है। उसकी वलिकाओं (gyri) का ढोंगी समस्या तथा उनका वितरण किसी हद तक वानर-मस्तिष्क की वलिकाओं तथा उनके वितरण से मिलता है। उसके मस्तिष्क पुच्छ (medulla oblongata) के विकसन के कारण, ललाटीय पिंड (खंड) के आगे की ओर अधिकाधिक सँकरे होते जाने चोंच जैसी आकृति वाले भाग तथा दार्शनिक-प्रदेश वाले अधिक विकसित पश्च-कपालीय पिंड से भी इसी चीज का प्रमाण मिलता है। उसके अनुमस्तिष्क का परिमापिका (vermiform) भाग आधुनिक मानव की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक

तालिका 5

होमिनिडों (मानव-कपियों) के कपालों तथा कर्परीय साँचे के आयाम

(विली एडिंगर के अनुसार, 1929)

होमिनिड्स (मानव वंश)	लम्बाई (सेन्टीमीटर)	चौड़ाई (सेन्टीमीटर)
कपाल		
आधुनिक मानव (यूरोपियाई विभेद की मध्य ही हुए हैं)	14.3-22.5	10.1-17.3
आ नीएन्डरथल मानव	20.8	15.6
ला शापेल	20.3	13.8
सिनैन्थ्रोपस	10.9	14.7
कर्परीय साँचा		
आ नीएन्डरथल मानव	18.5	14.5
ला शापेल	17.75	13.1
सिनैन्थ्रोपस	17.5	13.8

विकसित होता है। यह उसका अधिक आदिम कालीन लक्षण है।

एडिंगर कहता है कि जीवाश्म होमिनिडाई (मानव-वंशी) मस्तिष्कों के भूम आधारों पर (तालिका 3 देख पृष्ठ 343) अधिक भरोसा किया जाना चाहिए।

तालिका 3 यह भी प्रकट करती है कि कुछ निअण्डरथलों के सिर अपेक्षाकृत बड़े थे और उनका मस्तिष्क भी बड़ा था।

दूसरे होमिनिडाइया (मानव-वर्तिया) की भी कर्परीय धारिता निर्धारित करने के लिए काफी सही मान को प्राप्त कर लेना सम्भव होगा (यद्यपि सदैव नहीं)। तमाम आज तक खोजों में प्राप्त हुए निअण्डरथल की कर्परीय धारिता आदिम कालीन और आरम्भिक बनते हुए मानवों में स्पष्टतया सबसे अधिक (1 600 घन सेण्टीमीटर) और पिथकैन्थ्रोपस II (वानर-मानव II) की सबसे कम (30 घन सेण्टीमीटर)। निअण्डरथलों के दरम्यान कर्परीय धारिता के विभेद अपेक्षाकृत कम थे—300 घन सेण्टीमीटर तक। इसकी तुलना में आधुनिक मानव में इन विभेदों की मात्रा 000 घन सेण्टीमीटर तक मिलती है। यह चीज भी नहीं भुलाई जानी चाहिए कि अधिकतम तथा न्यूनतम यानी विभेद की मात्रा उन व्यक्तियों की संख्या पर भी निर्भर करती है जिनका अध्ययन किया गया है। आधुनिक मानव के कपाल में तैयार किए गए कर्परीय खोल की लम्बाई लगभग 166 मिलीमीटर है और चौड़ाई लगभग 134 मिलीमीटर (वी० वी० बुनाक 1953)।

जीवाश्म होमिनिडाइया (मानव-वर्तिया) के कपालों की खास विशेषता उनकी सुविकसित असममिति है। आमतौर से उनका बायां प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध अधिक सबल रूप में विकसित होता है। यह इस बात का संकेत हो सकता है कि दाहिने हाथ का अधिमान्य (preferential) उपयोग किया गया है। दाहिने हाथ वाला और बाएं हाथ वाला होना मानव की अपनी खास विशिष्टता है जो उसे स्तन-धारियों में भिन्न बना रही है। ऊपर की देह-शाखाओं में जो काफी असममिति होती है उसका आविर्भाव हमारे पूर्वजों में सीधे खड़े होकर चलने की आदत का विकास हो जाने तथा श्रम क्रियाशीलता का श्रीगणेश हो जाने के बाद ही हुआ होगा।

शाखाओं के आकार में शुद्ध कुछ असममिति पिथकैन्थ्रोपसों (वानर-मानवों) में भी देखी गई थी। एलियट स्मिथ के कथनानुसार (1923) पिथकैन्थ्रोपस बाएं हाथ वाले रहे थे। इसके विपरीत फ्रेडरिक हिमली (1928) का कहना है कि पिथेकैन्थ्रोपस के मस्तिष्क का बायां समार्धगोल अधिक उत्तमरूप में विकसित होता है जिससे जाहिर होता है कि पिथकैन्थ्रोपस दाहिने हाथ वाला होता है। आमतौर से बाएं प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध के अग्रभाग में अधिक विकास को उसके ललाट में देखा जा सकता है क्योंकि बाएं तरफ को ऊपरी ललाटीय अस्थि के आन्तरिक तल में एक काफी स्पष्ट गड्ढा जैसा होता है। सिनेन्थ्रोपस (चीन मानव) के कर्परीय खोल में भी कुछ असममिति दिखाई देती है। निअण्डरथल का मस्तिष्क स्पष्ट रूप में असममिति पूर्ण है—उसी तरह जिस तरह

प्राधुनिक मानव का होता है। ला चपेल के कपाल से जो कपरीय साँचा बनाया गया है उसका बाँया गोलार्द्ध अपेक्षाकृत दाहिने गोलार्द्ध से सात मिलीमीटर छोटा 7 मिलीमीटर अधिक चौड़ा तथा ऊँचा है और उसका पार्श्विक-शखीय प्रदेश (parieto-temporal region) अधिक माप तक बाहर निकला होता है। इसी में यह बात भी जोड़ दी जानी चाहिए कि दाहिने प्रसक (clavicle) के प्रायाम बाएँ प्रसक के प्रायामों से अधिक बड़ होते हैं।

जिबराल्टर कपाल के कपरीय साँचे म बाएँ गोलार्द्ध का पश्च-कपालीय पिण्ड दाहिने की अपेक्षा काफ़ी स्पष्टरूप से अधिक आगे तक बढ़ा हुआ दिखलाई देता है। ला फ़ुरमा क साँचे म बायाँ गोलार्द्ध अधिक लम्बा है परन्तु दाहिना गोलार्द्ध उसमे विकसित अधिक है। अन्त मे मिनडरथल के साँचे का दाहिना गोलार्द्ध बाएँ से बड़ा है।

इन विवरणों से देखा जा सकता है कि दाहिने हाथ वाले व्यक्ति प्रादिम तथा प्रारम्भिक मानवों में भी मिलते थे। अगर बाएँ हाथ वाले व्यक्तियों से अधिक नहीं तो उनके बराबर तो वे मिलते ही हैं। पत्थर के औज़ारों की प्राकृति तथा उनके बनाने का तरीका और चट्टानों पर प्राचीन मानव की चित्रकारी भी इस बात को सिद्ध करती है कि दाहिने प्रथवा बाएँ किसी एक हाथ का अधिमान्य (अधिक) उपयोग होता था। प्रार० कौवसर (1932) के कथनानुसार, मानव प्रारम्भ में बाएँ हाथ वाले थे बाद में अधिक जटिल किस्म के हथियारों के इस्तेमाल के सिलसिले में (उदाहरण के लिए ढाल-जैसे सुरक्षा के हथियारों के इस्तेमाल के सिलसिले म) दाहिने हाथ का अधिक उपयोग होने लगा। कौवसर इस बात का उल्लेख करता है कि अधिकांश प्राचीन पत्थर के औज़ारो स ऐसा ज़ाहिर होता है कि वे बाएँ हाथ से बनाये गए थे। परन्तु एडिगर बताता है कि प्रारम्भिक पूर्व पाषाण काल में आदिम मानव ने चकमक के जो औज़ार बनाये थे उनमें से दो-तिहाई दाहिने हाथवाले लोगों की रचना थे। वह कहता है कि यही बात गुफाओं के चित्रों के ऊपर लागू होती है। प्राधुनिक प्रकार के जीवाश्म मानवों तथा उनके वंशजों के कर्परीय साँचे तमाम महत्त्वपूर्ण विशिष्टताओं की दृष्टि से एक ही जैसे हैं।

इसलिए लगता है कि प्रादमी डी० जे कनिंघम (1902) की इस बात से सहमत हो सकता है कि विकास की बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था से ही दाहिना हाथपन (right handedness) मानव की विशेष विशिष्टता थी। सम्भवतः स्पष्टवाणी का उपयोग कर सकने की क्षमता प्राप्त करने से पहले ही वह दाहिने हाथ वाला बन गया था। डी जे० कनिंघम ने यह बात तब लिखी थी जबकि जीवाश्म मानवों के कर्परीय साँचे अज्ञात थे। उसने यह भी नोट किया था कि अधिकांश प्राधुनिक लोगों के बाएँ प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध दाहिने की अपेक्षा अधिक विकसित होते हैं।

तो फिर बन्दर से मानव के विकास की लम्बी राह के दौरान में पिछले कुछ दसियों लाख वर्षों के दौरान में हमारे पूर्वजों का मस्तिष्क मध्यनूतन कालीन (miocene) और फिर उत्तर-नूतन कालीन (pliocene) मानव-सभों का मस्तिष्क बड़ा होता गया है और अपनी प्राकृति को बदलता गया है। फिर मानव युग (pleistocene) में जीवाश्म

होमिनिडाइया (मानव-वंशियों) के दरम्यान उसके विकास में आमतौर से तेजी आ गई थी। आधुनिक मानव में विकास का जो ऊँचा स्तर हम देखते हैं वह उसी का परिणाम है।

जैव जगत के विकास से सम्बन्धित डारविन के सिद्धान्त तथा मानव के निर्माण में श्रम की भूमिका के सम्बन्ध में एंगेल्स के सिद्धान्त को लागू करने से मानव मस्तिष्क के विकास की क्रिया अधिक अच्छी तरह से समझ में आ जाती है। होमिनिडायडों (मानव वंशियों) के तात्कालिक पूर्वगामियों में अर्थात् आस्ट्रेलोपिथेकसों में मस्तिष्क विकास के उच्चस्तर पर पहुँच गया था परन्तु उसके विकास को सबसे अधिक उद्दीपन पिथकैन्थ्रोपसों (वानर-मानवों) के दरम्यान श्रम-क्रियाशीलता का आरम्भ हो जाने से मिला था।

यदि मानव के तात्कालिक पूर्वज का मस्तिष्क इतने उच्च रूप से विकसित न होता तो वानर से मानव में संक्रमण हो सकना असम्भव ही बना रहता। इस संक्रमण में अत्यधिक सहायता उस प्रधान परिवर्तन ने दी थी जो हमारे पूर्वजों के व्यवहार में, नये प्रकार मूलभूत क्रियाशीलता के पैदा हो जाने से भोजन प्राप्त करने तथा शत्रु से रक्षा करने के नये तरीकों के पैदा हो जाने से मानव निर्मित औजारों के रूप में कृत्रिम अंगों की सहायता से जीवनावश्यक कार्यों के करने लगने से हो गया था।

मानव के पूर्वजों के उच्च मानसिक विकास को डारविन ने बहुत ऊँचा स्थान दिया था। उनके मत के अनुसार यह चीज बहुत दूर के काल में भी प्रमुख महत्त्व की रही होगी क्योंकि इसी वजह से स्पष्टवाणी का आविष्कार करने और उसका उपयोग करने में तथा हथियारों औजारों जालों आदि का निर्माण करने में उन्हें सहायता मिली होगी। इसके परिणामस्वरूप अपनी सामाजिक आदतों की सहायता से अत्यन्त प्राचीन काल से ही तमाम जीवित प्राणियों के बीच मानव प्रभुतापूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित रहा है।

उसके बाद डारविन कहते हैं 'ज्यों ही अर्द्धकला (half art) तथा अर्द्ध सहजात प्रवृत्ति (half instinct) के रूप में भाषा उपयोग में आने लगी त्यों ही बुद्धि के विकास में एक भारी अग्रिम कदम उठ गया होगा क्योंकि अनिवार्य रूप से मस्तिष्क के ऊपर भाषा के निरन्तर उपयोग की प्रतिक्रिया हुई होगी और उसके ऊपर उसने एक सहज प्रभाव डाला होगा और फिर भाषा उन्नति पर इसका पुनः प्रभाव पड़ा होगा। जैसा कि मिस्टर चान्सी राइट ने अच्छी तरह से कहा है— 'निम्न वर्ग के प्राणियों की तुलना में मानव का मस्तिष्क उसके शरीर के अनुपात में जो इतना बड़ा होता है उसका मुख्य कारण यह हो सकता है कि बहुत पहले से ही भाषा के किसी प्रकार स्वरूप का वह उपयोग करता आया है। भाषा वह मानसिक इंजन है जो विचारों की ऐसी तरंगों को जन्म देता है जैसी कभी इन्द्रियों की अनुभूति के आधार पर कभी नहीं पैदा हो सकती थीं अथवा यदि वे पैदा होती भी तो उनकी अभिव्यक्ति न हो पाती।'[1]

स्पष्टवाणी का आरम्भ और विकास मानव-जीवन में सम्भवतः बहुत ही शुरू की

1 चार्ल्स डारविन—मानव का वंशोद्भव, न्यूयार्क 1901, पृष्ठ 785।

अवस्था में हो गया था। फिर मानवी मस्तिष्क के विकास में इसने असाधारण महत्व की भूमिका अदा की थी। एंगेल्स के मत में स्पष्टवाणी का शुभारम्भ उस समय हुआ था जिस समय वानर मानव की ओर संक्रमण कर रहा था अर्थात् उसका शुभारम्भ बनते हुए मानवों (men in the making) में हुआ था। संस्कृति की ऐतिहासिक अवस्थाओं का वर्णन करते हुए, जांगलयुग (प्राकृतावस्था) को प्रथम अर्थात् निम्न अवस्था के सम्बन्ध में एंगेल्स कहते हैं

यह मानव जाति का शिशु काल है। मानव तब भी अपने मूल वास-स्थान अर्थात् उष्ण-कटिबन्धीय या उष्ण-सम कटिबन्धीय जंगलों में रहता था और कम-से-कम आंशिक रूप में पेड़ों के ऊपर निवास करता था। केवल यही कारण है कि बड़े बड़े हिंस्र पशुओं का सामना करते हुए वह जीवित रह सका। फल, काष्ठफल तथा कन्दमूल उसके भोजन थे। इस काल की मुख्य उपलब्धि यह थी कि स्पष्ट वाणी का निर्माण हो गया था। ऐतिहासिक काल में जिन जन-समूहों का पता लगा है उनमें से कोई भी अब इस आदिम अवस्था में नहीं था। यद्यपि सम्भव है कि यह अवस्था हजारों वर्ष तक रही हो परन्तु उसके अस्तित्व का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे पास नहीं है। किन्तु एक बार यह स्वीकार कर लेने पर कि मानव का उद्भव पशु-जगत् में हुआ है इस संक्रमण कालीन अवस्था को मानना अनिवार्य हो जाता है।[1]

कुछ विद्वान बोली की शुरुआत को और भी बहुत पुराना बताते हैं। वे कहते हैं कि उत्तर अथवा माध्यमिक पूर्व पाषाण काल (lower or middle paleolithic) में ही उसकी शुरुआत हो गई थी। सम्भव है कि चीन-मानव (सिनेन्थ्रोपस) ने ही बोली के यही टूटे-फूटे प्रारम्भिक रूपों का इस्तेमाल करना शुरू कर दिया हो। बोली के असली विकास की प्रथम अवस्था निअण्डरथलों के जमाने में रही होगी।

संदेह का सवाल है सिनेन्थ्रोपस (चीन-मानव) साफ-साफ बोल सकता था। इस बीच का मान लिया जा सकता है कि जावा पिथेकैन्थ्रोपस बोलने वाले लोग नहीं थे। अधिकांश पशुओं की ही तरह वे कुछ अस्पष्ट ध्वनियाँ करते थे। ये ध्वनियाँ उनकी किसी आन्तरिक स्थिति को बताती थीं और श्रम क्रियाओं से सम्बन्धित संकेतों का काम करती थीं। ये ध्वनियाँ चिम्पैंजी द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली ध्वनियों की अपेक्षा अधिक वैविध्यपूर्ण थीं। मुमकिन है कि मुँह की अपेक्षाकृत असमर्थ बनावट के कारण उनकी ध्वनियों का 'जीवनात्मक भावाभिव्यक्तियों' का इस्तेमाल आदिम मानव भी करते रहे हों। वी० वी० बुनाक (1951) के अनुसार, जीवनात्मक भावों का वाणी के विकास के लिए विशेष महत्व था।

अमरीकी वैज्ञानिकों रोबर्ट यर्क्स और ब्लांश लर्नेड (1925) ने चिम्पैंजियों द्वारा की जाने वाली ध्वनियों का विशेष अध्ययन किया था। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि चिम्पैंजी लगभग 30 प्रकार की ध्वनियों का इस्तेमाल करते हैं। इनमें से प्रत्येक का संकेत

1 फ्रेडरिक एंगेल्स—परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा राज्य की उत्पत्ति, मार्क्स, एंगेल्स संकलित रचनाएँ खण्ड 2, मास्को 1958 पृष्ठ 185-186।

के रूप में एक विशेष अर्थ होता है जो परिवेश में सम्बन्धित घटना प्रवाहों के सम्बन्ध में उसकी किसी आन्तरिक स्थिति अथवा दृष्टिकोण की परिचायक होती है। यह भी सम्भव है कि इन ध्वनियों की संख्या इतनी न हो वे केवल 20 या 25 प्रकार की ही हों।

गोरिल्ला द्वारा पैदा की जाने वाली भाषाओं के बारे में बहुत कम ज्ञात है। आमतौर से मनुष्य के ऊपर आक्रमण करते समय उसका नर जो गर्जना करता है उसी का वर्णन मिलता है। एक पहाड़ी नर गोरिल्ला को दो मादाओं के साथ एक पेड़ के पास पर अच्छी तरह रखने में एक वैज्ञानिक सफल हो गया था। उसने उन्हें हल्की शान्तिपूर्ण ध्वनियों के माध्यम में बात करते हुए सुना था। ओरंग उटैन बहुत कम ध्वनियों का उपयोग करता है। ये खामोश किस्म के पशु होते हैं। भय, क्रोध अथवा पीड़ा जैसी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए विशेष मुसीबत के समय वे घुघुआते हैं, गरजते हैं और भौंकने लगते हैं। चिम्पैंजी द्वारा पैदा की जाने वाली शोर की आवाजों को अनेक किलोमीटर दूर तक सुना जा सकता है।

रौबर्ट यर्कस ने अपने चिम्पैंजी को बोलना सिखाने की बहुत कोशिश की थी और सिखाने के लिए भिन्न-भिन्न तरीकों का इस्तेमाल किया था परन्तु उसकी सारी कोशिशें बेकार हुई थीं। अपने चिम्पैंजियों की शिक्षा के सम्बन्ध में यर्कस उन तरीकों का भी इस्तेमाल करना चाहता था जिनका बहरे और गूंगे बच्चों को बोलना सिखाने के लिए शिक्षक इस्तेमाल करते हैं। इस प्रकार के तरीकों को यदि कुछ भी सफलता मिल सकती है तो वह केवल तभी मिल सकती है जब कि उनका प्रयोग चिम्पैंजियों के बच्चों को लेकर किया जाए, क्योंकि चिम्पैंजी के मस्तिष्क का व्यक्तिगत विकास (ontogenic development) मनुष्य के विकास से पहले ही पूरा हो जाता है।

इस बात को याद रखना चाहिए कि वानरों को कुछ शब्द सिखलाने में भी जो मुख्य कठिनाई पड़ती है उसका कारण उनकी वाणी की इन्द्रियों की आरम्भिक अविकसित अवस्था है। दूसरी चीज जिसे ध्यान में रखना चाहिए यह है कि वानरों तथा मानवों की स्वर-इन्द्रियों की रचना में पर्याप्त अन्तर होता है (जुनाक के उल्लिखित लेख को देखिए, 1951)।

चिम्पैंजी के अग्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के उच्च विकास को देखकर युरकिंग एडिंगर (1911) कहता है कि यह सम्भव है कि कोई धैर्यवान शिक्षक किसी वानर को कुछ शब्द सिखाने में सफल हो जाए, परन्तु तब भी वह वानर मानव से असीम दूरी पर रहेगा क्योंकि स्पष्ट समझदारी के जो आधार हैं उनका अर्थात् मस्तिष्क के सम्बन्धित प्रदेशों का उसके अन्दर अभी तक विकास नहीं हुआ है।

बहुत-से वैज्ञानिकों का विश्वास है कि मनुष्य की वाणी के विकास की शारीरिक आवश्यकता यह है कि उसकी ठुड्डी का कूट मौजूद हो। यह एक ऐसी विशेषता है जो केवल आधुनिक प्रकार के मानवों में पाई जाती है। निअण्डरथलों में आमतौर से यह नहीं मिलती थी न यह वानर मानवों में अथवा किसी भी आधुनिक या जीवाश्म मानव में होती थी (इस सम्बन्ध में जास-भक्त मिम्मन मानो सियामीप ही एकमात्र अपवाद है)।

परन्तु वाणी के जन्म को ठुड्डी के कूट की उपस्थिति के साथ नहीं सम्बद्ध किया जाना चाहिए, क्योंकि स्पष्ट ध्वनियों के उच्चारण के लिए प्राथमिक आवश्यकता यह है कि बोलने के पूरे उपकरण (speech apparatus) का कार्य एकदम सही-सही ढंग से सह सम्बन्धित हो। वाणी के इस उपकरण में शब्द रचना सम्बन्धी तथा स्मरण सम्बन्धी मस्तिष्क के वे प्रदेश भी सम्मिलित हैं जो पार्श्विक तथा ललाटीय पिण्डों के जाति इतिहास की दृष्टि से (Phylogenetically) नव क्षेत्रों में स्थित हैं।

लुई बोल्क के अनुसार मानव की ठुड्डी के विकास का मुख्य कारण उसके कोष्ठिका प्रवर्ध (limbus alveolaris) के आकार का अधोहनु के उस भाग के आकार से छोटा हो जाना है जिसमें दाँत रहते हैं। उसके नीचे के भाग पर हनु के पिण्ड पर छोटे होने की इस क्रिया का कम असर पड़ा था और इसी कारण ठुड्डी के कूट का निर्माण हो गया था।

एक-दूसरे स्तनधारी प्राणी में इसकी कुछ-कुछ मिसाल हाथी के अधोहनु के आगे निकले हुए नीचे के भाग में मिलती है। हाथी का दन्त-तन्त्र और भी छोटा हो गया था जिससे कि अब उसमें कुल जमा चार चर्वण दन्त और दो ऊपर के छेदक दन्त उदन्त (tusks) अर्थात् गज दाँत रह गए हैं।

ठुड्डी के निर्माण की मूल क्रिया पर बोलने की क्रिया का केवल गौण प्रभाव ही पड़ा होगा (एम॰ ए॰ गमियास्की 1922)। मनुष्य की बोलने की क्षमताओं के विकास में जिन चीज़ों का अधिक महत्त्व था वे हैं अधोहनु का रूपान्तरण जिससे उसकी आकृति लम्बा होने के स्थान पर घोड़े की नाल के स्वरूप की हो गई थी मुँह की गुहा—जिसमें जिह्वा काम करती है—के आकार की वृद्धि तथा दन्तपंक्ति के छोटे हो जाने के कारण नीचे के हनु की नई दिशाओं में होने लग गई अधिक मुक्त गति।

स्पष्ट वाणी के विकास में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका (पार्श्विक तथा ललाटीय प्रदेशों के विकास के साथ) प्रमस्तिष्कीय कार्टेक्स (प्रान्तस्थ भाग) के ललाटकीय विभाजनों की आंतरिकी तथा दैहिक विशिष्टताओं की होती है। प्रयत्न किए गए हैं कि महत्त्वपूर्ण अंग की जीवाश्म कपालों के कपालीय साँचों में मिलने वाली छाप के आधार पर स्पष्ट वाणी के विकास की मात्रा निर्धारित कर दी जाए। परन्तु दुर्भाग्य से स्पष्ट वाणी के उपयोग के सम्बन्ध में कपालीय साँचे के आधार पर कोई निष्कर्ष निकाल सकना कठिन है। इस साँचे की आधुनिक मानव के कपालीय साँचों के साथ तुलना करने पर भी इस सम्बन्ध में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता (एरियर 1929)। इसके अतिरिक्त स्वयं मस्तिष्क का अध्ययन करने पर भी इस चीज़ को बता सकना अत्यन्त कठिन है। मस्तिष्क की आकृति का कपालीय साँचा उसकी बाह्य झिल्लियों अथवा मस्तिष्क-आवरणों के साथ ही बनाता है। इन बाह्य झिल्लियों अथवा मस्तिष्क-आवरणों से ऐसा सम्पूर्ण आवरण बन जाता है कि मस्तिष्क के परिवलन (convolutions) तथा उसकी सीताएँ (दरारें) छिप जाती हैं और केवल उसकी सबसे बड़ी रुधिर-वाहिकाओं का ही चिह्न रह जाता है। मानव शरीर के मास्को संस्थान की मस्तिष्क प्रयोगशाला (Brain Laboratory of the

Moscow Institute of Anthropology) में सामग्री की काफ़ी बड़ी मात्रा के आधार पर, ऑस्ट्रालो हामिनियाइयों (मानव-वानरों) के कर्णपीठ छापों का अध्ययन करने का एक नया प्रयास किया गया है (बी० आई० कोचटकोवा)।

साफ़-साफ़ बोलना कोई जन्म-जात गुण नहीं है। यह चीज़ उन विरले उदाहरणों से विशेष रूप से सिद्ध हो चुकी है जिनमें बच्चे मानव-समाज से दूर, एकदम अलग अथवा पशुओं के बीच कहीं बड़े हुए थे। उसके बाद वे बच्चे जब मिले हैं तो आमतौर से देखा गया है कि वे बोलने में असमर्थ थे।

आदिम हामिनियाइयों (मानव-वानरों) के बीच व्यक्ति और समूह के रूप में जितने भी बन्धन तथा पारस्परिक सम्बन्ध थे उनमें वाणी के शुभारम्भ के लिए सर्वाधिक महत्व के वे बन्धन तथा पारस्परिक सम्बन्ध थे जिनका विकास श्रम के माध्यम से हुआ था। पूरे गोल द्वारा पशुओं का शिकार करते समय तथा बाद में समुदाय के सदस्यों के दरम्यान गोश्त का बँटवारा करते समय औज़ारों का संयुक्त रूप से निर्माण करते समय वह दिन को सारा का सारा जीवन-संघर्ष में ही बीत जाता था की समस्त क्रियाशीलता के समय इन सारे समयों में अपनी गतिविधियों का विनियमित करने तथा उनका संयुक्त संचालन करने के लिए आदिम मानवों को ध्वनि के द्वारा संवाद-संचरण की आवश्यकता का अनुभव हुआ था और इस प्रकार, विभिन्न ध्वनियाँ और उनके सहायकों के रूप में अंग-विक्षेप तथा हाव भाव उनके लिए एक जीवनावश्यक वस्तु बन गए थे। ये ध्वनियाँ (तथा हाव भाव) आसानी से समझ लिए जा सकने वाले उपायों से उन्हें उन कामों अथवा कार्रवाइयों की आवश्यकता जतला देती थीं जिनके सम्बन्ध में गोल के सदस्यों में पहले से एकमत होना आवश्यक था। वाणी की ध्वनियों का अँधेरे में खासतौर से महत्व होता था। उसके बाद अपनी गुफाओं में अलावों के चारों तरफ़ जब हमारे पूर्वज जमा होते थे तब बोलने की आदतों का विकास करने के और नये अवसर उनके सामने उत्पन्न हो जाते थे। आग का इस्तेमाल तथा उसे प्राप्त करने के तरीकों के आविष्कार ने स्पष्ट वाणी के विकास में अवश्य ही और भी अधिक सहायता पहुँचाई होगी। यह चीज़ बहुत पहले निअन्डरथलों के ही काल में हुई होगी।

साफ़-साफ़ बोली का विकास कैसे हुआ इसकी मार्क्सवादी व्याख्या एंगेल्स ने की थी। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि लोगों के बीच संचारण के साधन के रूप में बोली की शुरूआत आदिम मानव की श्रम-क्रियाओं तथा उसकी अन्य संयुक्त कार्रवाइयों के साथ साथ अथवा उनसे पहले मुँह की ध्वनियों के रूप में हुई थी। एंगेल्स ने लिखा था

"प्रकृति के ऊपर मानव की प्रभुता का आरम्भ हाथ के विकास से श्रम से होता है इसके बाद प्रत्येक नई प्रगति से मानव का क्षितिज व्यापक बना है। निरन्तर प्राकृतिक वस्तुओं के नए, अब तक अज्ञात गुणों की वह खोज करता आया है। दूसरी ओर, पारस्परिक आलम्बन (तथा) संयुक्त क्रियाशीलता के उदाहरणों की संख्या में वृद्धि करते जाकर, तथा इस संयुक्त क्रियाशीलता के लाभ को प्रत्येक

व्यक्ति को स्पष्ट करते जाकर, श्रम के विकास ने समाज के सदस्यों को एक-दूसरे के और समीप लाने में अनिवार्य रूप से सहायता दी है। संक्षेप में, मानव बनते हुए प्राणी एक ऐसे स्थल पर आ गए थे जहाँ उन्हें एक-दूसरे से कुछ कहना था। आवश्यकता ने उसकी पूर्ति की इन्द्रिय की सृष्टि कर दी। मूर्च्छना (ध्वनि के उतार-चढ़ाव) के द्वारा वानर का अविकसित कण्ठ धीरे-धीरे, परन्तु निश्चित रूप से अधिकाधिक विकसित मूर्च्छना के योग्य बनता गया और मुँह के अंग धीरे-धीरे एक के बाद एक स्पष्ट अक्षर का उच्चारण करना सीखते गए।[1]

वाणी के प्रादुर्भाव के लिए सीधे खड़े होकर चलने तथा हाथ का इस्तेमाल करने की क्रियाओं के साथ-साथ मस्तिष्क का उच्चस्तर से विकसित होना नितान्त आवश्यक था परन्तु मस्तिष्क के ऊपर वाणी का प्रभाव भी कम महत्त्वपूर्ण न था। इस सम्बन्ध में एंगेल्स ने लिखा था

"पहले श्रम, उसके बाद और फिर उसके साथ-साथ स्पष्ट वाणी यही वे दो सबसे आवश्यक उत्तेजन थे जिनके प्रभाव के अन्तर्गत वानर का मस्तिष्क धीरे-धीरे मानव के मस्तिष्क में बदल गया था।"[2]

वाणी (बोली) अत्यन्त लाभदायक वस्तु थी, समाज के लिए वह उपयोगी थी और, इसलिए, उसका विकास अनिवार्य रूप से जारी रहा।

श्रम के द्वारा वाणी के विकास के प्रथम सिद्धान्त के समर्थन में एंगेल्स पशु-जीवन से उदाहरण देते हैं। जंगली जानवरों के लिए मनुष्य की आवाज़ का अर्थ अधिक से अधिक खतरे का संकेत हो परन्तु पालतू पशु, उदाहरण के लिए कुत्ते, आदमी की वाणी की ध्वनियों को, चाहे वह किसी भी भाषा में बात करता हो, एक हद तक समझ लेते हैं। यह ठीक है कि यह चीज क्रमशः पशु के मस्तिष्क की सम्भाव्य-क्षमता के अन्दर ही होती है।

पालतू जानवरों के लिए मनुष्य द्वारा बोले गए शब्द किन्हीं निश्चित कामों के संकेत बन जाते हैं—ऐसे कामों के जिन्हें या तो मनुष्य स्वयं करता है या जानवरों को करने पड़ते हैं। जिन पशुओं में औपाधिक प्रतिवर्तों (conditioned reflexes) का तीव्र तथा स्थायी विकास करने की क्षमता होती है (अर्थात् जो जानवर प्रशिक्षित किए जा सकते हैं) वे पालतू बन जाने पर या पालतू बना लिए जाने पर, यह दिखलाते हैं कि संकेतों को उस समय वे अधिक अच्छी तरह समझने लगते हैं जब संकेतों को मानने पर उनकी तारीफ़ की जाती है और न मानने पर उन्हें सजा दी जाती है।

साफ़-साफ़ बोली की ध्वनियाँ जिन्होंने शुरू-शुरू में सम्बद्ध कामों के संकेतों का काम किया था धीरे-धीरे वस्तुओं और घटना-प्रवाहों का सूचक बन गईं। ध्वनि संकेतों

---

1 एफ़. एंगेल्स, प्रकृति में द्वन्द्ववाद, मास्को, 1954, पृष्ठ 231।
2 वही, पृष्ठ 233।

प्रतिनिधियों को ही केवल वह लोग मानता है।

आदिम तथा प्रारम्भिक मानव का श्रम जो अपने औजारों को स्वयं बनाता था ऊदबिलावों, चींटियों, मधुमक्खियों अथवा उन पक्षियों के श्रम से गुणात्मक रूप से तथा सिद्धान्ततः भिन्न था जो अपने घोंसले बनाते हैं। पशुओं के विकास में केवल प्राकृतिक जैविक कारक ही काम करते हैं।

वानर का मानव में रूपान्तरण सामाजिक तथा जैविक कारकों के एक सम्पूर्ण समूह के प्रभाव के अन्तर्गत हुआ था। पशु-जगत् के विकास की क्रिया से गुणात्मक रूप से भिन्न इस निर्माणी क्रिया को श्रम की निर्णायक भूमिका से सम्बन्धित एंगेल्स की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी धारणा के दृष्टिकोण से ही सिर्फ समझा जा सकता है।

मानव, उसके मस्तिष्क, उसकी वाणी और चिन्तन के निर्माण से सम्बन्धित द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी धारणा सोवियत मानवशास्त्र के लिए एक दृढ़ आधार का काम करती है। मानव-उद्भव से सम्बन्धित गहन शोध-काम में, मानव के विज्ञान की इस शाखा के अन्दर हर प्रकार की भाववादी परिकल्पना के विरुद्ध संघर्ष में तथा नस्लों के अध्ययन में और भाव-शास्त्रीय न्यायों के आधार पर नस्लवाद का पर्दाफाश करने के काम में यह धारणा सोवियत मानवशास्त्र की सहायता करती है।

3

आधुनिक मानव (नियान्थ्रोपस)

1 प्रारम्भिक पूर्व पाषाण-कालीन मानव

बाद की अथवा प्रारम्भिक पूर्व पाषाण-कालीन संस्कृतियों की जिन प्राणियों ने सृष्टि की थी उनकी भौतिक रचना निअण्डरथल मानवों की रचना से भिन्न थी। प्रारम्भिक पूर्व पाषाण काल के पत्थर के औजारों के साथ निअण्डरथल की जीवाश्म अस्थियाँ कहीं भी नहीं पाई गई हैं। क्रो-मैगननों तथा आधुनिक किस्म के अन्य जीवाश्म मानवों के कपालों का माथा सीधा होता था, उनमें अक्षि-नेत्रगुहा चापें (कूट के स्थान में) होती थीं और एक ठुड्डी अथवा चिबुक बना होता था। ये सब विशेषताएँ ऐसी हैं जो उन्हीं मानवों के कपालों में मिलती हैं जिनके शारीरिक विकास का स्तर ऊँचा है। क्रो-मैगनन भी अपने उच्च सांस्कृतिक स्तर के कारण निअण्डरथल मानवों से भिन्न होता है। नई प्रविधियों की सहायता से जो औजार वे बनाते थे उनमें कहीं अधिक कौशल होता था। उनमें से कुछ हड्डी अथवा सींग के बने होते थे (चित्र 130)। कुछ औजारों में वे हत्थे (मूठ) भी लगा सकते थे। मूठों का लगाया जाना सचमुच एक बड़े और महत्त्वपूर्ण कदम का परिचायक था।

प्रारम्भिक पूर्व पाषाण-काल तीन युगों में बंटा है—ओरिग्नेशियन (Aurignacian) सोल्यूत्री (Solutrian) तथा मग्दाली (Magdalenian)। इन युगों का सम्बन्ध सर्वाधिक हिमानीकरण काल के उत्तरार्ध हिमानी युग के अन्त तथा काफ़ी हद तक उत्तर हिमानी युग के साथ है। इस उत्तर हिमानी युग के अन्त के समीप पहुँचकर ही नया महान् सांस्कृतिक विकास आरम्भ होता है नव पाषाण युग अथवा उत्तर पाषाण काल शुरू होता है।

प्रारम्भिक पूर्व पाषाण काल का जिस समय आरम्भ हुआ था उस समय तक ठण्ड बहुत ज़्यादा थी। उसका आरम्भ सर्वाधिक हिमानीकरण काल के उत्तरार्द्ध में हुआ था। बारहसिंगे, मैमथ, बालोंदार दरियाई घोड़े और जंगली घोड़े उस समय के जीव

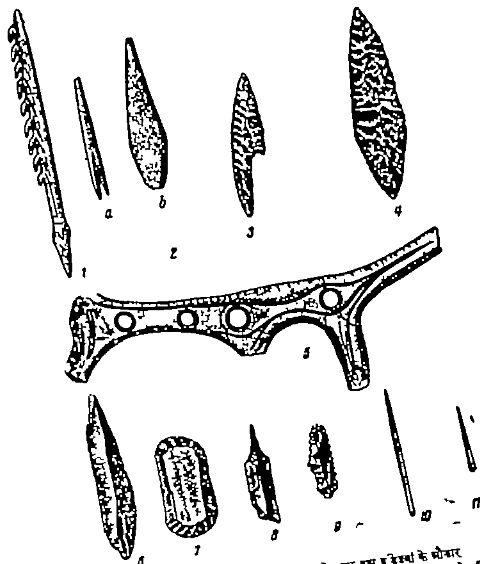
जन्तुओं में से थे। गुफाओं, कन्दराओं तथा बाहर निकली हुई चट्टानों के नीचे बैठने के स्थानों की संख्या ऑरिग्नेसी युग में मूस्तेरी युग की अपेक्षा कहीं अधिक थी। बाद में ज्यों-ज्यों गर्मी बढ़ती गई, त्यों-त्यों खुले स्थानों में लोग अपने पड़ाव डालने लगे (चित्र 140)। जंगली घोड़े का जमकर शिकार करना भी उन्होंने इसी उष्ण युग में आरम्भ किया था (चित्र 141)। घोड़े का शिकार उन दिनों कितना अधिक प्रचलित हो गया था इसका अनुमान इसी से हो सकता है कि सोल्युत्री (फ्रांस) के ढलुए के एक स्थान में लगभग एक लाख घोड़ों की हड्डियों के अवशेष पाये गए थे। क्रो-मैगनन जन जंगली सांडों (चित्र 142) का भी शिकार करते थे।

सोल्युत्री युग में खुले स्थानों के डेरों का बाहुल्य मिलता है। जयपत्र (लोरल के पत्ते) की शक्ल के भाले और हड्डी की बनी चीजें उस युग के औज़ारों की खास प्रतिनिधि होती थीं।

मग्दालेनी युग में ठण्डा मौसम किसी हद तक फिर लौट आया—इस युग का सम्बन्ध वुर्म हिमानी युग से है। क्रो-मैगनन जन फिर अपनी गुफाओं में जाने के लिए बहुधा बाध्य होने लगे। इन गुफाओं के लिए उन्हें वन्य पशुओं के साथ संघर्ष करना पड़ता था क्योंकि निवास-स्थान की तलाश में वे उनके प्रतिद्वन्द्वी थे। मग्दालेनी युग में औज़ार बनाने की कला और प्रविधि में एक मूलभूत परिवर्तन आ गया। बारहसिंगा का शिकार इस युग की खास विशेषता थी। इस युग के खास औज़ार छोटे-छोटे पत्थर के यन्त्र (लघु-यंत्र) तथा हड्डियों और सींगों की हाथ से बनाई गई चीजें होती थीं।

क्रो-मैगनन मानव की जीवाश्म अस्थियों का सबसे महत्त्वपूर्ण ढेर फ्रांस के डोर्डोन ज़िले (डिपार्टमेंट) में ल आइज़ो के समीप वेज़ियर नदी के तट पर क्रो-मैगनन गुफा में 1868 में मिला था। गुफा में पाँच कंकाल थे। इनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि उसकी नस्ल लम्बे लोगों की नस्ल थी जिनका कद 180 सेंटीमीटर (6 फुट) तक का था। उनके कपाल की कपालीय-धारिता बहुत अधिक है एक की तो 1,590 घन सेण्टीमीटर है। उनका चेहरा बहुत चौड़ा है अधि-नेत्रगुहा चापें काफी प्रमुख हैं परन्तु उनके बीच (भ्रूमध्य में) जैसा आधुनिक कपालों में होता है उसी तरह का एक गड्ढा-सा (अवनति) है दूसरे शब्दों में अधि-नेत्रक हड्डी कूट अथवा वह पीनाक्ष उनमें नहीं है जो निअण्डरथल किस्म के लोगों में इतने पुष्ट रूप से निकला रहता है। गुफा के अन्दर क्रो-मैगनन संस्कृति के अनुचिह्न भी मिले थे—इनमें प्रारम्भिक पूर्व पाषाण काल के पत्थर के औज़ारों के अलावा हड्डी के मछली मारने के नेज़े (हारपून) भी थे।

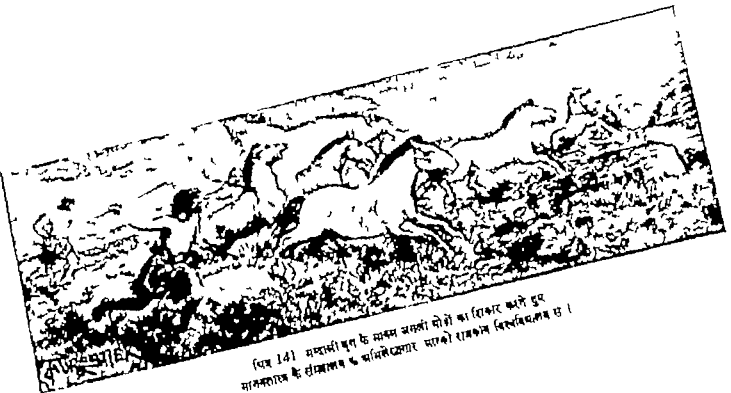
1909 में मोनफ़रान (डोर्डोन, फ्रांस) के नज़दीक कोम्बे-कापेल में आये एक ऊँची चट्टान के नीचे आधुनिक किस्म के मानव का एक कंकाल मिला था। कंकाल ऑरिग्नेसी सांस्कृतिक स्तर में एकदम नीचे सर्वथा अक्षत अवस्था में पड़ा हुआ था। उसके साथ चकमक पत्थर के औज़ारों तथा बींधी हुई सीपियों की एक भारी संख्या मिली थी। कंकाल की हड्डियाँ ऊपर छत से चूकर आने वाले पानी में मौजूद चूने की वजह से चूनमित



चित्र 139 प्रारम्भिक पूर्व मानव काल के पत्थर तथा हड्डियों के औजार
1 सींग का नेजा 2. हड्डी के भालों के सिरे 3 4 चकमक पत्थर के भाले 5
भालों के सिरों को सीधा करने का औजार 6 चाकू 7 खुरपी 8 बरमा 9 सूराख
छेद करने का बरमा 10, 11 हड्डी की सूइयां।
(सबको छोटे आकार में बनाया गया है)।



चित्र 140 क्रो-मैग्नन मानव औज़ार बनाते हुए हैं फोरेस्टियर, 1931 के आधार पर



चित्र 14.1 मध्याश्मी युग के मानव जंगली घोड़ों का शिकार करते हुए
मानवशास्त्र के संग्रहालय के अभिलेखागार, साभार राजकीय विश्वविद्यालय से।



चित्र 142. मध्यकाली युग के प्रारम्भिक चरण अंग्रेज़ी सेना का शिकार करने भूसर को नदी के किनारे … कर रहे हैं
पान्स्रो हिकेनिका का नवीन किला (गूम की महानत नदी) से दो किलोमीटर के फासले पर डोनेत्स कोलो में।
मार्ग निकोलस्की 1953 द्वारा पुनर्निर्माण।

(कैल्सीफाई) हो गई थी और अत्यन्त अच्छी अवस्था में थी। यह कंकाल अत्यन्त प्राचीन काल का है। जो औजार उसके साथ मिले थे उनके आधार पर देखने से मालूम होता है कि कोम्ब-कापेल मानव प्रारम्भिक ऑरिग्नसी युग (early aurignacian epoch) में हुआ था। उसका कद 160 सेण्टीमीटर से थोड़ा ही ऊँचा था। कपाल का सम्बा अक्ष बहुत लम्बा था (मूर्धांक 65.7)। जर्मन मानवशास्त्री हरमन क्लात्श ने उसे ऑरिग्नेसी मानव (aurignacian man) का नाम दे दिया था। कुछ विद्वानों का मत है कि आधुनिक किस्म के अन्य प्रतिनिधियों की ही तरह जैसे कि फ्रांस में केविलान कन्दरा (चित्र 143) में मिले लोगों की तरह ऑरिग्नेसी मानव को क्रो-मैग्नन मानव कहा जा सकता है।

1938 में सोवियत संघ में वोरोनेज़ गाँव (वसलभोवा जिला क्राइमिया) के समीप कोरनाया नदी के बाएँ तट पर स्थित मुरसाक-कोबा की कन्दरा में क्रो-मैग्नन किस्म के लोगों के अवशेष प्राप्त हुए थे। उनमें एक साथ दफनाए गए एक नर और औरत के कंकाल थे (एस. एन. बीबीकोव 1940, वाई॰ वी॰ जिरोव 1940)। नर-कंकाल (जो आंशिक रूप से नष्ट हो गया था) की लम्बाई 180 सेण्टीमीटर थी। मादा कंकाल अच्छी हालत में था और उसकी लम्बाई 160 सेण्टीमीटर थी। ये कंकाल मध्य-पाषाण काल (mesolithic epoch) के थे।

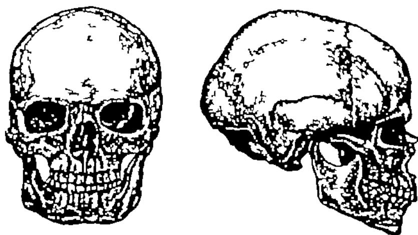
एस. एन. बीबीकोव तथा एस॰ ए॰ बुनोवा ने (जिन्होंने इन्हें खोज निकाला था) इनसे पहले उसी युग के एक अन्य नर कंकाल को कोरनाया नदी की ओर जाते हुए एक नाले में फातिमा कोबा नामक एक ऊँची चट्टान के नीचे प्राप्त किया था। इस कंकाल की लम्बाई 168 सेण्टीमीटर थी। उसका नाक उभरा हुआ मानव-प्रदेश तथा अन्य कुछ विशेषताएँ जाहिर करती थीं कि उसमें नियाण्डर जाति के तत्त्व भी मौजूद थे (एम॰ एम॰ गिरासिमोव 1966)।



चित्र 143. दक्षिण फ्रांस में केविलान की कन्दरा में क्रो-मैग्नन के कंकाल का चित्रण। के मेसमर्टी, 1924 के आधार पर।

इस तरह की अस्थियों से काली और श्वेत नस्लों के एक ही उत्पत्ति-स्रोत का विचार उत्पन्न होता है। सोवियत वैज्ञानिकों ने हाल में जो एक खोज की है वह भी इसी दृष्टिकोण का समर्थन करती प्रतीत होती है। मानव शास्त्री ए० एन० रोगाचोव को वोरोनेज़ के दक्षिण में लगभग 40 किलोमीटर के फ़ासले पर, दोन नदी के तट पर कोस्तेन्की नामक गाँव में खुदाई करते समय पड़ाव के कोस्तेन्की XIV नामक स्थल पर प्रारम्भिक पूर्व पाषाण काल के शुरू के ज़माने की एक कब्रिस्तान मिल गई थी। कोस्तेन्की XIV के इस स्थल को मारकीना गोरा कहा जाता है।

इस कब्रिस्तान में लगभग 30 वर्ष की अवस्था के एक नौजवान का पूरा कंकाल करवट की स्थिति में पड़ा हुआ मिला था। मानवशास्त्री जी० एफ० देबेत्स ने जब उसके कपाल (चित्र 144) का अध्ययन किया तो उसका ध्यान उसके चौड़े नासिका-द्वार तथा बाहर निकले हुए (उद्धत) हनुओं की ओर गया। ये विशेषताएँ चूँकि निग्रोसम जाति के कपालों में खासतौर से मिलती हैं। इसलिए देबेत्स ने कहा कि यह कंकाल इस बात का प्रमाण है कि दक्षिण के किस्म के लोग सम्भवतः एशिया माइनर की तरफ़ से आगे बढ़ते हुए उत्तर की तरफ़ पहुँच गए थे।



चित्र 144 कोस्तेन्की-XIV का कपाल जो वोरोनेज़ के दक्षिण में 45 किलोमीटर के फ़ासले पर, कोस्तेन्की ग्राम के निकट, मारकीना गोरा के प्रारम्भिक पूर्व पाषाण काल के शुरू ज़माने के पड़ाव डालने के स्थान पर मिला था।
एम० गिरासिमोव द्वारा पुनर्निर्मित। आकार असल का $\frac{1}{2}$।
जी० देबेत्स 1955 के आधार पर।

दूसरी तरफ़ मिश्रित निग्रोसम तथा यूरोपीय लक्षणों वाला यह कपाल ग्रिमाल्डी से प्राप्त हुए कपाल से मिलता है। और काली और श्वेत जातियों के आदि-इतिहासीय

उद्गम की धारणा का समर्थन करता है। और इसलिए, वह मानव जाति की एकता के उस सिद्धान्त का भी समर्थन करता है जो मानव-प्रजनन की भौतिकवादी धारणा से निकलता है।

ए० एन रोगाचोव तथा पी० भाई० बोरिस्कोव्स्की ने कास्टेन्की में जीवाश्म मानव के अन्य कंकालों को भी खोज निकाला था (जी० एफ० डबिटस 1955, वी० पी० याकीमोव 1957)।

क्रा-मैगनन तथा कोम्ब-कापेल से निकले कंकालों के अलावा उनसे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित अन्य प्रकार के मानव भी मिले हैं, उदाहरण के लिए, ग्रिमाल्डी जन प्रारम्भिक पूर्व पाषाण काल के बिलकुल आरम्भ के समय यूरोप में रहते थे। इन लोगों के अवशेष फ्रान्स और इटली के सीमान्तों पर मेन्टन के समीप ला ग्रोत्ते द माफ्रं (भयानक कन्दरा) में मिले थे। इन कंकालों में से एक 16 17 वर्ष के एक युवक का था और दूसरा 30-40 वर्ष की अवस्था की एक औरत का। ये छोटे कद के लोग थे। (157 और 155 सेंटी मीटर) और उनमें निग्रोसम जाति के कुछ लक्षण मौजूद थे (चित्र 145)।

सम्भवतः ग्रिमाल्डी की क़िस्म का मानव इस बात का सूचक है कि नियोसम जाति के तत्त्व अफ्रीका से यूरोप पहुँच गए थे। उस जमाने में विभिन्न नस्लों के लोग अफ्रीका से यूरोप और वहाँ से वापस अफ्रीका आ-जा सकते थे। अभी तक ग्रिमाल्डी के कंकाल अपनी तरह के अकेले कंकाल हैं और निग्रोसम तत्त्वों का अफ्रीका से यूरोप को जाना बहुत सीमित था। निग्रोसम जाति का उस युग में कितना विकास हुआ था यह चीज असेलर में प्राप्त हुए नर-कंकाल से स्पष्ट है। असेलर सहारा के रेगिस्तान में टिम्बकटू के उत्तर-पूर्व की ओर 40 किलोमीटर और अल्-मवरूक के दक्षिण-पूर्व में 20 किलोमीटर के फ़ासले पर स्थित एक स्थान है (चित्र 146)।

सोल्युत्री युग में यूरोप में ब्रुन्न जाति (Brunn race) के लोग रहते थे। इस जाति के एक प्रतिनिधि का कर्परीय गुम्मज (चाप-छत) 1871 में चैकोस्लोवाकिया में ब्रुन्न नाम के कस्बे के समीप प्राप्त हुआ था और 1891 में इस जाति के एक दूसरे प्रतिनिधि का कंकाल चैकोस्लोवाकिया में ही ब्रुन्न (ब्रोनो) के समीप मिला था। इस जाति के लोगों के कपाल बहुत लम्बे थे जिनमें से एक का सूचकांक 68·2 था और उसकी अक्षि-नेत्रगुहा चापें सुदृढ़ रूप से विकसित थीं। अन्य लक्षणों के साथ-साथ यह लक्षण भी ब्रुन्न की क़िस्म के मानव को निनडरथल मानव के नजदीक पहुँचा देता है। परन्तु इसका कर्परीय गुम्मज (चाप-छत) निनडरथल क़िस्म के मानव के कपाल के कर्परीय गुम्मज से ऊँचा होता है और उसके एक हड्डी है जो ग्रिमाल्डी-जनों के कपालों की तरह अथवा कोम्ब-कापेल से मिले औरिग्नेसी कपाल की भाँति ब्रुन्न कपाल को आमतौर से, आधुनिक प्रकार के मानव के कपाल के नजदीक ला रही है।

कुछ मानवशास्त्रियों का विचार है कि चैकोस्लोवाकिया में प्रैडमोस्ट में 1880 के आरम्भ से जिन 14 कंकालों के अवशेष मिले हैं वे ब्रुन्न जाति के हैं। जे० मेटियका



चित्र 145 क्रो-मैग्ननों के कंकाल
युवक (दाहिनी तरफ) तथा स्त्री। दोनों में निग्रोइडों की कुछ विशेषताएँ मौजूद हैं।
मेन्टन, फ्रान्स की ग्रिमाल्डी कन्दरा से प्राप्त।
आर. वर्नो, 1906 के आधार पर।



चित्र 146. प्रस्लावर, मोरावा उत्तरी मर्कोम से प्राप्त कपाल।
आकार असल का $\frac{1}{4}$।
फ़ॉन आइक्स्टेड्ट, 1939 के आधार पर।

(1935) द्वारा प्रस्तुत किये गए आंकड़ों के अनुसार, इस शृंखला के कपालों की कपालीय धारिता बड़ी है: कपाल III (नर) 1,608 घन सेंटीमीटर, कपाल IV (मादा) 1,518 घन सेंटीमीटर, कपाल-IX (नर-युवक) 1,555 सेंटीमीटर, कपाल X (मादा युवती) 1,462 घन सेंटीमीटर। सुदृढ़ रूप से विकसित अक्षि-नेत्रगुहा चापें तथा ढलावदार माथा (चित्र 147)—इनके विशिष्ट लक्षण हैं। मेटिएका का मत था कि आकृति शास्त्र के दृष्टिकोण से इन कपालों का स्थान प्रारम्भिक चतुर्थ कालीन क़िस्मों (early quaternary types) के मानव तथा आधुनिक मानव के बीच आता है।

ब्रुन में मिले क्रो-मैगनन क़िस्म के लोगों के अलावा अन्य कई प्रकार के लोगों में भी निएण्डरथलों के लक्षण मिलते हैं, यद्यपि सदा से इतने स्पष्ट नहीं होते। बोन (जर्मनी) के समीप 1914 में मिले ओबरकासेल कंकालों में भी इनमें से कुछ लक्षण मिलते हैं। इन कंकालों में एक लगभग 20 वर्ष की औरत का है और दूसरा 40-50 वर्ष की उम्र के एक मर्द का। ये क्रो-मैगनन क़िस्म के लोग हैं। इनकी अक्षि-नेत्रगुहा चापें भारी हैं और गण्डास्थियों (cheek bones) के बीच चेहरा बहुत चौड़ा है (चित्र 148-149)।

चोइकाला टिक्सबरी में तथा अन्य स्थानों में पाए गए तमाम क्रो मैगनन कपालों में

कुछ निअण्डरथल लक्षण मौजूद हैं।

सोवियत संघ की भूमि पर मिले बीच की क़िस्म के लक्षण रखने वाले कर्परीय गुम्मजों का एक विशेष स्थान है। ये पोडकुमोक स्खोदनिया ख्वालिम्स्क, सेवर्सकाया तथा केविसामी क़िस्म के हैं।

इनमें से पहला प्याटीगोर्स्क के नज़दीक पोडकुमोक नदी के किनारे की खुदाई के समय 1918 में मिला था। उसका विवरण एम ए० ग्रेमियात्स्की ने 1922 में प्रस्तुत किया था। कपाल का उन्होंने जो अध्ययन किया था उससे पता चला था कि उभरे हुए अक्षि-नेत्रगुहा के अस्थिमय प्रवर्ध पीछे की ओर सीधा अक्षि-नेत्र मुहाकूट ढलावदार माथा तथा ऐसे ही दूसरे लक्षण जो उसमें मिले थे वे निअण्डरथल-सम लोगों की तरह के लक्षण थे। उसके आकृति तत्त्व सम्बन्धी सदृशता के पूरे योग के आधार पर कुछ विद्वान कहते हैं कि पोडकुमोक कपाल आधुनिक प्रकार के एक मानव का कपाल है यही बीच स्खोदनिया तथा ख्वालिम्स्क के कर्परीय गुम्मजों के सम्बन्ध में भी सही मालूम होती है (मो०एल बेडर, 1936 1940 एम ए ग्रेमियात्स्की 1948)।

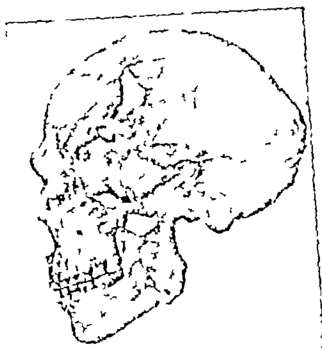
1936 में स्खोदनिया नदी के तट पर मास्को के समीप एक कर्परीय गुम्मज मिला था। यह स्पष्ट रूप से आधुनिक प्रकार के किसी मानव का था परन्तु उसमें निअण्डरथलों के भी कुछ लक्षण मौजूद थे। प्रो एम० बेडर (1936) ने उसकी मौलिक स्थिति में ही उसका विवरण दिया था और इसके बारे में संक्षेप में बतलाया था इस विवरण में उसके पोडकुमोक कपालों के बीच जो कुछ समानताएँ हैं उनको उसने बतलाया है। स्खोदनिया कपाल को निअण्डरथल और आधुनिक प्रकार के कपालों के बीच संक्रमण-कालीन स्वरूपों में से एक वह मानता है।

तीसरा कर्परीय गुम्मज बहुत पहले 1927 में मिला था। वह बोरोवस्की द्वीप पर, ख्वालिम्स्क के कस्बे के समीप मिला था (प्रो एल० बेडर, 1940) परन्तु उसका विस्तृत विवरण आज तक भी नहीं दिया गया है। ए वी० बोग्दियास्की ने नीप्रोपैट्रोव्स्क (एम एन कारमोव 1949) के समीप ललाटकीय अस्थियों के जिन नमूनों की खोज की थी उनका विवरण टी एस० कोन्दुक्तुरोवा (1952) ने दिया है।[1]

डब्ल्यू मुडेलिस तथा एस पाविलोनिस (1952) ने रिपोर्ट दी है कि लिथुआनिया में उन्हें एक ऐसा अपूर्ण कर्परीय गुम्मज मिला है जिसमें संक्रमण-कालीन लक्षण मौजूद हैं। 1950 में क्लेपिडा क्षेत्र के केवेसियामी ग्राम के समीप बजरी की एक खान से एक मानवी ललाटकीय अस्थि निकली थी। इस ललाटकीय अस्थि में सबास्थियों के छोटे छोटे टुकड़े जुड़े हुए थे। उसकी अक्षि-नेत्रगुहा की चापें सुवृद्ध रूप से स्पष्ट हैं माथा ढलुआ और सकरा है। इन तथा कुछ अन्य लक्षणों को ऊपर बताये गए लेखक स्खोदनिया गुम्मज के लक्षणों से मिलते-जुलते लक्षण मानते हैं। उनके निअण्डरथल लक्षणों का उल्लेख

---

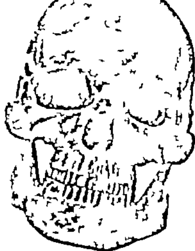
1 ये तमाम नमूने मास्को के मानव-शास्त्रीय संस्थान में मौजूद हैं।

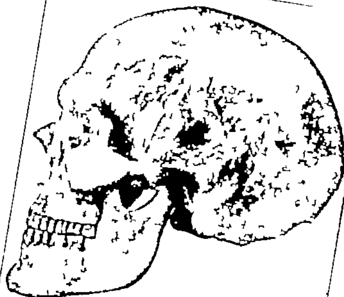


चित्र 147 प्रेझमोस्त चेकोस्लोवाकिया से प्राप्त आधुनिक प्रकार के आदिम मानव का कपाल III (नर)। आकार मूल का लगभग $\frac{1}{3}$।
जे० मत्येका, 1935 के आधार पर।

करते हुए भी इस व्यक्ति (उम्र 30-35 वर्ष) को वे आधुनिक प्रकार का मानव मानते हैं। उसका कर्परीय गुम्बज बहुत ज्यादा प्राचीन नहीं है। लिथुआनिया की भू-वैज्ञानिक दैनिकी के अनुसार इस कर्परीय गुम्बज का सम्बन्ध समुद्रतटीय काल (littoral period) (3 000—4 000 वर्ष ईसा पूर्व) से है। इस काल का मध्य पाषाण काल अथवा उत्तर पाषाण काल (neolithic) के प्रारम्भिक समय से सम्बन्ध है। एक अन्य मनोरंजक नमूना एक बच्चे के कपाल की थी। यह स्टारोसेलिए, क्रीमिया में मिला था (सोवियत्स्काया एंथ्रोपोलोजिया 1954 अंक 1)।

इन मध्यमात्मक लक्षणों के कपाल कभी-कभी आधुनिक कपालों के समूहों में मिल जाते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि क्रो-मैग्नन किस्म के मानवों तथा आम आधुनिक मानवों की उत्पत्ति निअंडरथाल किस्म के लोगों से हुई है। क्रो-मैग्नन की जाति पूर्णतया खत्म नहीं हो गई है—कहीं-कहीं यह आज भी स्पष्ट रूप से दिखलाई दे जाती है, जैसे कि फ्रांस के कुछ भागों के लोगों के शारीरिक रूप पर उसकी स्पष्ट छाप दिखलाई देती है (जी० एच० वलियस 1930)।





चित्र 148 ओबर कैसेल पश्चिमी जर्मनी में मिला नर कपाल
आकार प्रकार का कपाल है।
एम. मोलियों 1924 (1) तथा ई. वर्ने, 1929 (2) के आधार पर।

इस बात के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अलग-अलग प्रकार की आपत्तियाँ की है कि निअन्डरथलों की जाति से ही आधुनिक मानव की शुरुआत होती है। उदाहरण के लिए, अपनी बात के समर्थन म उनके दाँतों की रचना के अन्तर की ओर ये लोग इशारा करते हैं। यह अन्तर, विशेषतौर से निअन्डरथलों के चबाने वाले दाँतों की बड़ी दन्त-गुहा के रूप में दिखलाई देता है। यह दन्त-गुहा लम्बी और छोटी जड़ों के लगभग एकदम आखिर तक फैली रहती है। जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं इस प्रकार के दाँत को वृष-दन्त कहा जाता है। आधुनिक मानव के सम-दन्त से जिसकी जड़ें लम्बी और गुहा छोटी होती है यह भिन्न होता है (कीथ 1933)। परन्तु वृष-दन्त यदा-कदा आधुनिक लोगों में भी मिल जाता है—कुछ मानवी समूहों मे तो उनके 20-30 प्रतिशत व्यक्तियों तक में यह मिलता है।

निअन्डरथल किस्म के लोग जिस मात्रा में समस्त पुरानी दुनिया में चारो तरफ फैल गए थे उससे जाहिर होता है कि होमिनियाइयों (मानव-बंशियों) की इस जाति म जीवित रहने की महान् क्षमता है। उससे यह भी जाहिर होता है कि तरह-तरह की भौगोलिक परिस्थितियों जिनमें हिमयुग द्वारा प्रस्तुत की गई कठिन परिस्थितियाँ भी थीं इस जाति के लोग कितनी सफलता के साथ अपना अनुकूलन कर लेते थे।

एंगेल्सने लिखा था जिस तरह मनुष्य ने हर खाद्य चीज को खाना सीख लिया था उसी तरह हर जलवायु में रहना भी उसने सीख लिया था। तमाम रहने योग्य दुनिया में वह फैल गया। वह अकेला ऐसा प्राणी था जिसमें स्वयं अपने-आप ऐसा करने की शक्ति थी। दूसरे प्राणी—पालतू जानवर तथा कीड़े-मकोड़े जो हर प्रकार की जलवायु के अभ्यस्त बन गए हैं स्वतबरूप से अपने-आप उसके अभ्यस्त नहीं हुए थे बल्कि मनुष्य के पीछे-पीछे चलकर ही अपने को उन्होंने उसका अभ्यस्त बनाया था। और जब अपने मौलिक निवास-स्थान की जलवायु से, जो सदा गर्म रहती थी, ऐसे अधिक शीत प्रदेशों में मानव आया जहाँ वर्ष गर्मी और जाड़े में बटा रहता था तब नई आवश्यकताएँ पैदा हो गईं—य थीं शीत और नमी से बचने के लिए आश्रय और तन ढकने की अम के नए क्षेत्रों की ओर, इसलिए, क्रियाशीलता के नये स्वरूपो की आवश्यकताएँ इन्होंने मानव को पशु से और भी अलग कर दिया।"[1]

चतुर्थ काल मे मानव के तीव्र विकास, उत्पादन के विकास तथा स्वयं मानव के शारीरिक संगठन के विकास का एक कारण यह था कि जलवायु सम्बन्धी तरह-तरह के परिवर्तनों के साथ उसने अपना अनुकूलन स्थापित कर लिया था। प्रारम्भिक पूर्व पाषाण काल के शुरू होते-होते तक निअन्डरथलों का उद्योग तथा शारीरिक स्वरूप को-मैगनन मानवों के उद्योग तथा शारीरिक स्वरूप में रूपान्तरित हो गया था।

---

1 एफ एंगेल्स, प्रकृति में द्वन्द्ववाद, मास्को, 1954, पृष्ठ 237।

सामाजिक सम्बन्धों का भी गठन हो गया था। इन परिस्थितियों में वे ही समुदाय सबसे अधिक जीवित रहने योग्य सिद्ध हुए थे जिन्होंने जीवन की नई परिस्थितियों के साथ अधिक अच्छी तरह से अनुकूलन प्राप्त कर लिया था और जिनका सामाजिक संगठन अधिक प्रगतिशील था।

यह भी सम्भव है कि इस समय तक प्राकृतिक वरण का महत्व इतना अधिक नहीं रह गया था जितना मानव-निर्माण के मुख्य काल में था क्योंकि मनुष्य अब के सीमित अर्थ में अब पूर्णरूप से विकसित हो चुका था। हाथ और पैर विकास के उच्चस्तर पर पहुँच गए थे श्रोणि (pelvis) ने क्षैतिज के साथ 60 का कोण बना लिया था मस्तक ने आखिरकार अपनी मानवी अवस्था प्राप्त कर ली थी ग्रीवा ने अपनी विशिष्ट आकृति अर्जित कर ली थी सिर अब सीधे-सीधे रीढ़ के ऊपर टिक गया था और उसके ऊपर अच्छी तरह से समन्वित था तथा मानव जाति के तमाम प्रतिनिधियों के अन्दर मस्तिष्क का विकास अत्यन्त उच्च अवस्था म पहुँच गया था। अधिक आदिम निअण्डरथलों के अपेक्षाकृत कम विशेषीकृत स्वरूप के अन्दर से एक नया प्राणी निकल आया था एक ऐसा प्राणी जिसे सही मानों में होमो सेपियन्स (मेधावी-मानवों) की जाति का प्राणी तर्कशील मानव कहा जा सकता था। दूसरे जीवित प्राणियों से अलग करने के लिए लिनायस ने मानव को जब यह नाम दिया था तो उसने उसे एक विशेष महत्ता दी थी। मानवी बुद्धि को वह ईश्वरीय आत्मा का एक अंश मानता था। लिनायस द्वारा दिये गए नाम को हम कायम रखे रह सकते हैं क्योंकि विज्ञान में उसकी जड़ें मजबूती से जम गई हैं परन्तु जरूरी है कि हम उसे एक नया अर्थ प्रदान कर तर्क का अर्थ सोचने की मुख्य रूप से भौतिक क्षमता हम लगाना चाहिए। आधुनिक मानव म इस क्षमता का सर्वाधिक विकास चालिसों हजार वर्ष पहले हो गया था।

उत्तर हिमानी युग लगभग 15 हजार वर्ष चला था। पश्चिमी यूरोप में प्रारम्भिक उत्तर पाषाण काल का अन्त लगभग 10 000–12 000 वर्ष पहले हो गया था। उस समय के बाद से हिमयुग की समाप्ति के कारण जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों म और भी परिवर्तन हो गया था।

प्रारम्भिक पूर्व पाषाण काल का अन्त होते-होते मनुष्य हिरन का शिकार करने लगा था और बहुधा मीमगज का भी वह शिकार कर लेता था। मछली मारने का काम भी उसने शुरू कर दिया था। उसकी वजह से कई नये विशेष औजारों का आविष्कार हुआ था। इन लोगों के समूह अब भी गुफाओं में रहते थे क्योंकि जलवायु अब भी बहुत ठण्डी थी। क्रो-मैगनन प्रकार के उन लोगों के साथ-साथ जो पहले रहते थे अब नए प्रकार के लोग भी पैदा हो गए—न केवल दीर्घमुखी (लम्बे कपाल वाले) बल्कि गोलमुखी (गोल कपाल वाले) लोग भी। उत्तर पाषाण काल के मानव का भौतिक स्वरूप आज के मानवों के शरीरों से घनिष्ठ रूप से मिलता था। आधुनिक मानव के जीवित और जीवाश्म प्रतिनिधियों के बीच सबसे विलक्षण अन्तर सम्भवतः उनके दाँतों और हड्डियों की रचना में

मिलता है। सिम्स यह इसका कारण उनके भोजन में हो गया परिवर्तन है। अतीत काल में इस भोजन का स्वरूप अपेक्षाकृत रूप से कहीं अधिक मोटा था। इन भेदों का सार कीथ (1933) निम्न प्रकार प्रस्तुत करता है मानव की तमाम जीवाश्म जातियों के प्रज्ञा-दन्त ऐसे थे जिनके आकार और विकास में कुछ कमी आ गई थी, दाँतों के घिसकर पूरी तरह से घिसकर जर्जर हो गए थे कीड़ा लगे दाँत बहुत ही कम मिलते थे। आधुनिक मनुष्य के प्रज्ञा-दन्त, कभी-कभी तो उनके सब काफी उम्र बीत जाने के बाद निकलते हैं और किन्हीं-किन्हीं लोगों के तो वे बिलकुल ही नहीं निकलते दाँतों का घर्षण उस बहुत नहीं घिसा है और कीड़ा लगे दाँत उसके अन्दर आमतौर से मिलते हैं।

प्रारम्भिक पूर्व पाषाण काल के अन्त में जिस संस्कृति का प्राधान्य था उसे फ्रांस में मिले दो डेरों के नामों पर आज़िल-तारदेनोयस संस्कृति (Azil Tardenoise Culture) का नाम दे दिया गया है। इन डेरों में आज़िल का डेरा (जो पायरनीज़ की गिरि पीठ में मिला था) अधिक पुराना था। वहाँ पर मछली मारने के चपटे भाले (flat harpoons) और गुटिकाएँ (pebbles) मिली थीं इन्हें रंगीन प्रतीकों से सजाया गया था। बाद की संस्कृति की जिसके चिह्न तारदेनोयस (उत्तरी फ्रांस) में मिले थे, विशिष्टता थी भिन्न भिन्न आकृतियों के विषम कोणवाले चतुर्भुजों तथा चक्रों के टुकड़े से मिलते-जुलते अणु पेंसों के औज़ार। इस संस्कृति को मध्य पाषाण कालीन (mesolithic) संस्कृति भी कहा जा सकता है क्योंकि यह पूर्व पाषाण काल (palaeolithic) तथा उत्तर पाषाण काल (neolithic) के बीच की संस्कृति है। उसे उपरि-पूर्व पाषाण काल की (epipalaeolithic) संस्कृति भी कहा गया है (एम० बी० कोसेवोस्की 1934, 1950, 1952)। धनुष का आविष्कार इसी काल में हुआ था और इसी काल में कुत्ते को पालतू बनाया गया था।

असली उत्तर पाषाण काल अथवा नव-प्रस्तर काल (new stone age) की पहचान यह है कि उसमें पत्थर के पालिश किये हुए तथा बाँधे गए औज़ारों का आविर्भाव हुआ था मिट्टी के बर्तनों का इस्तेमाल शुरू हो गया था बस्तियों के घर बनने लगे थे और भिन्न-भिन्न पशुओं का पालना और घर में रखना प्रारम्भ हो गया था। सबसे पहले मनुष्य ने स्तनधारियों को पाला था। इनमें जैसा कि हमने ऊपर कहा है, सबसे पुराना कुत्ता है। उसके बाद सुअर, घोड़े, गाय और भेड़ों की बारी आई थी।

ये भिन्न-भिन्न प्रकार की तथा कल्याणकारी सांस्कृतिक उपलब्धियाँ मानव के सामुदायिक समूहों आदिम समुदायों के उत्तरोत्तर विकास के आधार पर ही सम्भव हो सकती थीं। वन्य पशुओं का शिकार चलता रहा। इसके चित्र, यद्यपि अधिकतर युक्ति बद्ध रूप में, चट्टानों और गुफाओं की भित्तियों पर बने हुए हैं।

उत्तर पाषाण काल में गुफा मनुष्य के रहने की स्थायी जगह नहीं रह गई थी। पशु पालन सम्बन्धी कार्यों के साथ-साथ ज़मीन का जोतना भी शुरू हो गया था। ज़मीन को जोतने के कार्य में समुदाय की स्त्रियाँ प्रमुख भाग लेती थीं। वनस्पतियों के उपयोगी गुणों की

खोज ने मानव की अर्थ-व्यवस्था में एक नई मोड़ का सूत्र-पात कर दिया था। फिर अपने भावी सामाजिक विकास में मानव ने धातु कर्म विज्ञान का रचनात्मक उपयोग के साथ उपयोग किया (कांस्य युग लौह युग) था।

3 आधुनिक मानव की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मिथ्या परिकल्पनाएं तथा उनकी आलोचना

आधुनिक मानव की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक परिकल्पनाएँ की गई हैं परन्तु प्रारम्भ में हम केवल उन्हीं कुछ की परीक्षा करेंगे जो यह कहती हैं कि आधुनिक प्रकार का मानव शाश्वत काल से अस्तित्व में चला आया है। ओस्वाल्ड स्पेंगलर (1933) ने कहा था कि मनुष्य के कोई पूर्वज न इसके बारे में हमें कुछ नहीं मालूम और मनुष्य तो सदा से ही ऐसा रहा है जैसा वह आज है। उसका कहना है कि निअंडरथल मानव को आज भी किसी भी सार्वजनिक सभा में देखा जा सकता है। स्पष्ट है कि उसके इस कथन में जनता के प्रति घृणा की भावना भरी हुई है। उसका यह कथन निअंडरथल मानव तथा आधुनिक मानव के कंकालों से सम्बन्धित समस्त ज्ञात वैज्ञानिक तथ्यों के विरुद्ध है। आधुनिक प्रकार का मानव समय के प्रारम्भ से (आदि काल से) बराबर चला आया है—इस बात को सिद्ध करने का यह एक कमजोर प्रयास है। स्पेंगलर जैसे प्रतिक्रिया वादियों के विचारों का दृढ़ता के साथ खण्डन किया जाना चाहिए।

इतनी ही अस्वीकार करने योग्य कासीमीर स्टोलीहो (1937) द्वारा प्रस्तुत की गई वह परिकल्पना है जिसमें कहा गया है कि निअंडरथलों की एक मानव-जाति थी वे होमो सेपियन्सों (मेधावी-मानवों) की एक किस्म थे मुस्तेरी युग में मानवों का वही विशिष्ट रूप था। कासीमीर स्टोलीहो का यह विश्वास है कि निअंडरथल किस्म के लोग अब भी आधुनिक मानवों के बीच इधर-उधर मिल जाते हैं।

अधिक प्राचीन होमिनिडाई (मानव-वंशी) जिनका अक्षि-नेत्र कुहाकूट दृढ़ रूप से आगे निकला होता है कर्परीय गुम्बज (खोपड़ा) नीचा होता है और ठुड्डी जिनके होती ही नहीं स्टोलीहो के अनुसार पूर्व निअंडरथल-समों के धन प्रजातियों (plus varieties) के हैं, और वे जिनका उभार अधिक नियमित है तथा कर्परीय गुम्बज ऊँचे हैं उत्तर निअंडरथल-समों की ऋण प्रजातियों (minus varieties) के हैं। उत्तर निअंडरथल-समों के अधिकांश को निअंडरथलों और आधुनिक मानवों की वर्ण-संकर सन्तान वह मानता है और उनको जिनके कंकाल अधिक भारी-भरकम हैं वह निअंडरथलों के असली वंशज मानता है। परन्तु स्टोलीहो की कोई भी बात क्रमिक विकास (stadial development) के सिद्धान्त का खण्डन नहीं कर सकती और न जीवाश्म होमिनिडाइयों (मानव-वंशियों) के भौतिक रूप तथा आधुनिक मानव-जाति के अन्दर निअंडरथल-सम लोगों के समूहों की अनुपस्थिति से प्राप्त इस साक्षी का ही खण्डन वह कर सकती है कि मानव-जाति के वंशानुक्रम की एक नियमित शृंखला है। स्टोलीहो की परिकल्पना के लिए आवश्यक है कि आधुनिक आस्ट्रेलियनों को

निनडरथलों जैसा मान लिया जाए परन्तु यह बात प्रमाणित रूप से मिथ्या है क्योंकि अपनी शारीरिक रचना की दृष्टि से आस्ट्रेलियाई स्पष्टरूप से आधुनिक मानव जैसे होते हैं वे आधुनिक किस्म के लोग हैं उनके अधि-नेत्रगुहा चापें हैं, कूट नहीं हैं। इसके अतिरिक्त वे आधुनिक मानव तथा निनडरथलों के संकरण का परिणाम नहीं हैं।

आधुनिक मानव की उत्पत्ति निनडरथल किस्म के मानव से हुई है इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में जो एक दूसरी आपत्ति है उसके अनुसार आधुनिक मानव न केवल बाद के निनडरथलों के साथ-साथ मौजूद रहा है (यह बात तो कुछ उदाहरणों के सम्बन्ध में मान ली जा सकती थी) बल्कि वह बहुत पहले से भी मौजूद रहा है, अर्थात् सबसे प्रारम्भिक निनडरथलों और यहाँ तक कि वानर-मानवों के समय से ही वह मौजूद रहा है। इतनी महान् प्राचीनता की बात इयोन्थ्रोपस (Eoanthropus) अथवा ऊषा मानव के सम्बन्ध में कही गई थी। मानवशास्त्रीय साहित्य में ऊषा मानव से सब लोग परिचित हैं। 1911 में चार्ल्स डॉसन ने एलान किया कि लन्दन के दक्षिण में लगभग 70 किलोमीटर के फासले पर पिल्टडाउन में एक अत्यन्त प्राचीन मानव का नीचे का हनु तथा उसके कर्परीय गुम्बज (चापछद) के कुछ अंश प्राप्त हुए हैं। बाद में डॉसन ने बताया कि उसी स्थान पर उसी प्रकार के एक कपाल के छोटे-छोटे टुकड़े और नीचे का एक दंत-रन्त मिला है।

नीचे के हनु का रद दन्त दूसरे दाँतों से काफी आगे तक निकला हुआ था देखने में अत्यधिक मात्रा में वह बर्बर-वानरी मालूम होता था कपाल की अस्थियों के साथ उसका जरा भी मेल नहीं बैठता था। इसके बावजूद ब्रिटिश मानवशास्त्रियों ने घोषित कर दिया कि वह कर्परीय गुम्बज और अधोहनु जीवाश्म प्रकार के मानव के एक ही कपाल के थे। प्रख्यात शरीर-विद् तथा मानवशास्त्री सर आर्थर कीथ ने इन अस्थियों के आधार पर भिन्न-भिन्न प्रकार की बातें गढ़ डालीं।

सोवियत वैज्ञानिकों को पिल्टडाउन की अस्थि के सम्बन्ध में हमेशा ही सन्देह था। 1954 में उसकी अप्रामाणिकता का भेद खुल गया। सिद्ध हो गया कि वह अधोहनु एक आधुनिक चिम्पैंजी की थी प्राचीनता का रंग चढ़ाने के लिए उसे पोटेशियम के बाइक्रोमेट में रक्खा गया था (एम० ए० ग्रेमियात्स्की 1954)।

इयोन्थ्रोपस (ऊषा-मानव) से सम्बन्धित अस्थियों के विश्लेषण ने स्पष्ट कर दिया कि पूँजीवादी वैज्ञानिकों का यह सिद्ध करने का प्रयत्न व्यर्थ हुआ था कि आधुनिक मानव निनडरथलों से यानी पूर्ववर्तियों से अधिक प्राचीन है।

1935 में टेम्स नदी (इंग्लैंड) के तट पर स्वान्सकोम्ब में मानव कपाल का एक भग्नांश मिला था। हाल में इस इयोन्थ्रोपस (ऊषा-मानव) के कपाल के साथ सम्बद्ध करने का प्रयास किया गया है। उसके साथ मिले अश्यूलियन (Acheulian) काल के पत्थर के औजारों की वजह से इस भग्नांश को बहुत पुराना कहा गया है परन्तु उसकी

भू-वैज्ञानिक प्राचीनता के सम्बन्ध में सन्देहों की गुंजाइश है (जी॰ आई॰ पैट्रोव 1030)।

प्राप्त हुए अवशेष को देखने से मालूम होता है कि कपाल की लम्बाई 185 मिलीमीटर और चौड़ाई 144 मिलीमीटर रही होगी। अनुमान लगाया गया है कि उसकी कर्परीय धारिता लगभग 1 350 घन सेंटीमीटर रही होगी। उसका कर्परीय गुम्बज (चापधर) नीचा है।

वाई॰ वाई॰ रोगिन्स्की (1047) ने इस अवशेष का विशेष रूप से अध्ययन किया है। उसने पक्के तौर से प्रमाणित कर दिया था कि स्वान्सकोम्बे मानव की पश्च-कपालीय अस्थि में निअण्डरथल-समों की विशिष्ट विशेषताएँ मौजूद हैं।

ओल्डोवे के कंकाल की जिस गलत ढंग से व्याख्या की गई थी वह इस बात का एक शिक्षाप्रद उदाहरण है कि आधुनिक मानव को अत्यधिक प्राचीन बताने के प्रयत्न किस प्रकार किए जाते हैं। उक्त कंकाल जर्मन भू-वैज्ञानिक हान्स रेक को 1013 में पूर्वी अफ्रीका में किलीमंजारो नाम के ज्वालामुखी के पश्चिम में ओल्डोवे नामक स्थान पर मिला था। कंकाल बहुत अच्छी हालत में था। तल से बहुत अधिक गहराई पर नहीं वह मिला था। वह आधुनिक मसाई (masaai) एक अफ्रीकी जाति की बहुत याद दिलाता था। दाँत रेती से घिस डाले गए थे जैसा कि कुछ अफ्रीकी कबीलों में होता है। कंकाल पेट के बल जमीन पर टिका हुआ था और मालूम यह होता था कि दफ्न करने से पहले उसे मजबूती से बाँध दिया गया था। (एम॰ एफ॰ नैस्तुख 1033)। प्राचीन जीवाश्म प्राणी समूह भी इसी स्तर पर मिले थे। हान्स रेक ने इसके आधार पर यह मत व्यक्त किया कि ओल्डोवे मानव दो लाख पचास हजार वर्ष पहले हुआ था।

दूसरे विद्वानों की सम्मति थी कि ओल्डोवे कंकाल एक आधुनिक अफ्रीकी का था उसे केवल पृथ्वी के ऐसे स्तर में गाड़ दिया गया था जिसमें प्राचीन प्राणियों की जीवाश्म अस्थियाँ भी थीं।

1032 में कंकाल की जाँच-पड़ताल करने के लिए एक अभियान संगठित किया गया। इसमें हान्स रेक के अलावा दो और वैज्ञानिक थे। उन्होंने अत्यन्त प्राचीन पत्थर के औजार तथा तृतीय काल के स्तनधारी प्राणियों के जीवाश्म अवशेष प्राप्त किये। परन्तु कंकाल की वास्तविक प्राचीनता न साबित हो सकी। उसकी अस्थियों में लगी मिट्टी के अध्ययन से पता चला कि उसमें तल की तहों की अर्थात् कम भू-वैज्ञानिक अवस्था की तहों की मिट्टी मिली हुई थी। इसके आधार पर सी एफ॰ कूपर तथा डी॰ एम एस वाटसन (1032) की राय थी कि उक्त अफ्रीकी को अपेक्षाकृत हाल में दफ़नाया गया था। आधुनिक मानव के अवशेषों को इस तरह से अत्यन्त प्राचीन बताने के रेक के निराधार प्रयत्न का बिलकुल भेद खुल गया।

इस भाँति आधुनिक मानव के एक प्राचीन प्रतिनिधि के अफ्रीका में मिलने की कहानी बिलकुल गलत साबित हुई। इस कहानी का आविष्कार उन वैज्ञानिकों ने किया था जो

यह सिद्ध करना चाहते थे कि आधुनिक मानव निनडरथल किस्म के मानव से अधिक प्राचीन है और उसका अस्तित्व लगभग पूरे चतुर्थकाल में रहा है। इसके समर्थक भी ऐसे ही वैज्ञानिक थे। परन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं उत्तर तृतीय काल के प्रधानकों तथा चतुर्थ काल के होमिनियाइयों (मानव-वंशियों) के विकास का क्रम इस दृष्टिकोण का खण्डन करता है। अनेक वैज्ञानिकों ने प्रास्दोवे मानव की कपोल-कल्पना का अब विश्वास नहीं किया था तो ऐसा न करने के लिए उनके पास अच्छा-खासा आधार था। फिर 1932 में लन्दन में हुई मानवशास्त्रियों की विश्व-कांग्रेस में इस गप का पूर्णतया पर्दाफाश हो गया था।

उसी प्रकार की एक खोज अभी हाल में हुई थी। 1948 में चारेन्त विभे (फ्रांस) में फोन्टेश-वादे की गुफा (Fontechevade cave) में जी० एच० मार्तिन को एक कपाल मिल गया था। उन्होंने ऐलान कर दिया कि उन्हें जो कपाल मिला था वह निनडरथलों के अवशेषों से भी अधिक प्राचीन था। इस दावे के गलत रूप का भेद वाई० वाई० रोगिन्स्की (1950) ने खोल दिया। रोगिन्स्की ने फोन्टेश-वाद कपाल निनडरथल कपालों, आधुनिक कपालों तथा मध्यम-कालीन किस्म के कपालों का तुलनात्मक अध्ययन किया। उनके विश्लेषण ने साफ-साफ दिखला दिया कि फ्रांसीसी महिला वैज्ञानिक, जी० एच० मार्तिन तथा अमेरिकी मानवशास्त्री लारेन्स आइजले ने जिस कपाल को होमो सेपियन्सों (अबाधी-मानवों) की जाति के एक प्रतिनिधि का कपाल बताया था वह वास्तव में निनडरथल किस्म के ही किसी मानव का कपाल था।

जर्मन वैज्ञानिक जीवशास्त्री ओट्टो क्लीन्श्मिट भी जो 'जैविक चक्रों' (biological circles) के अपने भाववादी सिद्धान्त के लिए काफी प्रसिद्ध हैं इस भ्रान्तिपूर्ण विचार का समर्थन करता है कि आधुनिक मानव शाश्वत काल से चला आया है। उसकी परिकल्पना के अनुसार प्रत्येक जाति प्रजातियों तथा अन्य छोटी-छोटी उपजातियों (tiny subspecies) के एक स्वतन्त्र पुंज के रूप में विकसित होती है दूसरे स्वरूपों के चक्रों के साथ उसका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता। क्लीन्श्मिट को इस बात में कोई दिलचस्पी नहीं है कि स्वरूपों के जिस विशेष चक्र के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है उसके पूर्वज थे या नहीं।

क्लीन्श्मिट के लिए इस तरह की स्थापनाएँ करना आवश्यक था कि इनके बिना जैविक जगत् के विकास क्रम में परिवेश के निर्मायी (formative) प्रभाव के साथ-साथ प्राकृतिक वरण के डार्विन के भौतिकवादी सिद्धान्त का निराकरण वह नहीं कर सकता था। इस तरह की नकारात्मक चीजों को आधार बनाकर क्लीन्श्मिट मानव चक्र (या वृत्त) को सबसे अलग कर लेता है और मानव-सम वानरों के साथ मनुष्य के सम्बन्ध की बात को एकदम अस्वीकार कर देता है। वह कहता है कि पिथकैन्थ्रोपस (वानर-मानव) से लेकर, तमाम जीवाश्म होमिनियाई (मानव-वंशी) स्वरूप तर्कशील प्राणियों के वृत्त (चक्र) में आते हैं। इस तरह क्लीन्श्मिट, स्पेमन तथा अन्य प्रतिक्रियावादी वैज्ञानिकों

की श्रेणी में सम्मिलित हो जाता है।

होमो सेपियन्सों (मेधावी मानवों) की जाति के आविर्भाव से परिवर्तन में चले आने के झूठे-वैज्ञानिक सिद्धान्त का वास्तविक अर्थ विकास की बात से इनकार करना होता है। यह सिद्धान्त धर्म के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। वास्तव में यह आदम और हौवा की चमत्कारिक (नैसर्गिक) सृष्टि से सम्बन्धित इंजील (बाइबिल) की कथा का वैज्ञानिक रूप देने का एक छद्म प्रयास है।

भ्रान्तिपूर्ण परिकल्पनाओं का एक और दल है जो मानव के निर्माण की व्याख्या मात्र जैविक आधार पर करता है। इन परिकल्पनाओं का कहना है कि मानव का निर्माण सामाजिक प्रभावों से स्वतन्त्र है। विपरीत स्वभावी के रूप में मानव की ये केवल पशि-मतवादी धारणाएँ हैं।

ऐसी ही परिकल्पनाओं का एक दल अन्तःस्रावी तन्त्र (endocrine system) के ऊपर विशेष बल देता है और मानव के व्यक्तिगत विकास की लम्बी क्रिया के महत्त्व को जान-बूझकर बढ़ा-चढ़ाकर पेश करता है। इस देर को अनेक पृष्ठवंशी तथा अपृष्ठ-वंशी प्राणियों के गर्भीकरण की एक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता बताया जाता है। मतवादी वैज्ञानिक निअण्डरथल मानव से आधुनिक प्रकार के मानव के संक्रमण की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि यह पशुओं के गर्भीकरण के सदृश है।

उदाहरण के लिए, बक्सटन तथा जी० आर० डे बियर (1932) इस बात को लेकर चलते हैं कि आधुनिक बच्चे के कपाल की एक वयस्क फ़िलिस्तीनी आदमी के कपाल के साथ सादृश्यता की तुलना में फ़िलिस्तीन के निअण्डरथल बच्चे का कपाल—स्खूल I, एक वयस्क आधुनिक मनुष्य के कपाल के साथ कहीं अधिक सादृश्यता रखता है। वे यह मान लेते हैं कि आधुनिक मानव के कपाल का निर्माण उसी तरह के कपाल से हुआ था जिस तरह का फ़िलिस्तीन के बच्चे का है। यह एक ऐसी विकास-क्रिया के परिणामस्वरूप हुआ था जो व्यक्तिगत विकास की प्रारम्भिक अवस्था में ही जीवों के विकास को मन्द कर देती है, अर्थात्, शिशु-गुणता की (pedomorphosis) क्रिया के परिणामस्वरूप। यह क्रिया प्रायः गर्भीकरण की क्रिया के ही समान होती है।

इस दृष्टिकोण को हम स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि यह सर्वथा असम्भव है कि मानव के निर्माण की लम्बी ऐतिहासिक प्रतिक्रिया को शुद्ध रूप से जीवशास्त्रीय (जैविक) प्रवर्गों (biological categories) में सीमित कर दिया जाए। उदाहरण के लिए, मस्तिष्क का जो इतना विशाल विस्तार हुआ है काफ़ी मात्रा में उसका कारण मनुष्य का सामाजिक विकास है। फिर इसके परिणामस्वरूप उसके कर्पर का काफ़ी विस्तार हो गया है। इसकी वजह से मानवी कपाल बाहरी तौर से एक शिशु के कपाल जैसा हो गया है, फिर चाहे वह आधुनिक शिशु हो अथवा फ़िलिस्तीनी निअण्डरथल शिशु।

बक्सटन और डे बियर का मत दुई बोल्क की धारणाओं से बहुत मिलता है। दुई बोल्क एक डच शरीर-विज्ञ तथा मानव की उत्पत्ति के सम्बन्ध में गर्भीकरण (foetali-

sation) अथवा विमन्दन (retardation) के सिद्धान्त का संस्थापक था। उसका विचार है कि वयस्क व्यक्ति को शारीरिक रचना में बहुतेरी ऐसी विषमताएँ मिलती हैं जिनका कारण शरीर के अंगों की विकास-क्रिया में देरी अथवा विमन्दन का होना है। इन शरीरांगों में कुछ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग भी शामिल हैं।

मानवीय विभाजन की तुलना में ऊपर के विशाल आकार के रूप में कपाल की उपर्युक्त सादृश्यता के अतिरिक्त बोल्क इन विशेषताओं में शरीर के बाल की कुछ विचित्रताओं जैसी 'बचपनी' विशेषताओं को भी शामिल करता है। बाह्य सादृश्यता के ऐसे प्रभाव के वास्तविक कारणों को बोल्क नहीं बतलाता वह तो मनुष्य के व्यक्ति-इतिहास तथा जाति-इतिहास सम्बन्धी विकास में (incretory) ग्रन्थियों की असाधारण भूमिका की ओर अत्यन्त असन्तोषप्रद ढंग से संकेत करके ही खामोश हो जाता है।

अन्य स्तनधारी प्राणियों के समान ही मनुष्य के भी ऐसी ग्रन्थियाँ होती हैं जो अपने स्रावों (secretions) को बाहर निकालती हैं। स्वेदकी (perspiratory) स्नेहसा की (sebaceous) तथा स्तन की (mammary) ग्रन्थियाँ ऐसी ही ग्रन्थियाँ हैं। परन्तु, दूसरी ऐसी भी ग्रन्थियाँ हैं जो अपने स्राव या हारमोनों (न्यासर्गों) को रुधिर प्रवाह के अंदर डालती हैं। इनमें अस्थि सिर (epiphysis) पोषकाय (hypophysis) थाइरोयड (गल-ग्रन्थि) पैरा-थाइरोयड (उपगल-ग्रन्थि) अधि-वृक्कपिण्ड तथा लिंग की ग्रन्थियाँ आती हैं।

किन्हीं भी अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की कोशिकाओं द्वारा निकाली गई हारमोनें (न्यासग) ग्रन्थि के अन्दर भारी संख्या में मौजूद केशिका (capillary) रुधिर तथा लसीका की (lymphatic) नन्ही-नन्ही वाहिकाओं की भित्तियों के अन्दर प्रवेश कर जाती है। हारमोनें रुधिर-प्रवाह के अन्दर घुल-मिल जाती है और इस प्रकार जीव के दूर-दूर तक के भागों तक पहुँच जाती है और उसके विकास पर काफ़ी प्रभाव डालती हैं। उसके तन्त्रिका तंत्र (nervous system) के विकास पर खास तौर से उनका प्रभाव पड़ता है।

इस विषय में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता कि मानव-शरीर तथा उसके विभिन्न अंगों के विकास की मात्रा एक भारी मात्रा में उसकी अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के ठीक से काम करते जाने पर निर्भर करती है। विकास (evolution) में इन ग्रन्थियों ने एक निश्चित भूमिका की होगी यद्यपि अधिक सम्भावना यही है कि उनकी भूमिका सीमित रही होगी। बोल्क ग्रन्थियों के महत्त्व को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करता है। इस बीच में वह कीथ (1920) से सहमत है। कीथ गोरिल्ला के किस्म की शारीरिक रचना के बारे में कहता है कि उसमें महागता की विशेषताएँ (acromegalic features) होती हैं। इसके बाद वह इस आधार-हीन बात का सहारा लेता है कि इन विचित्रताओं का कारण गोरिल्ला के पोषकाय (hypophysis) की अधिक तीव्र क्रियाशीलता है।

मानव की पोषकाय सम्बन्धी बीमारियाँ महांगता पैदा कर देती हैं इनसे चहरे, अंगुलियों तथा पैर की अँगुलियों के ऊतकों (tissues) के आकार में वृद्धि हो जाती है।

यह चीज प्रमाणित की जा चुकी है कि गोरिल्ला का पोषकाय मनुष्य के पोषकाय से बड़ा नहीं बल्कि उससे छोटा है। इसलिए कीथ को ऐसी कोई चीज नहीं मिल सकी जिसे अपनी परिकल्पना में वह जोड़ दे सिवा इसके कि यद्यपि गोरिल्ला का पोषकाय छोटा है, उसका स्राव जरूर ऐसा होगा जो अधिक सक्रिय हो। इस कथन का प्रतिवाद इस चीज से हो जाता है कि महाग्रता के रोगी मनुष्य का पोषकाय आकार में काफी बड़ा हो जाता है। यह (कीथ और बोल्क द्वारा बताई गई) इस बात के विपरीत है कि मानव किस्म की जो विचित्रताएं उसमें मिलती हैं उनका मुख्य कारण इन्क्रीटरी तंत्र (incretory system) तथा उसके कार्य हैं।

गर्भीकरण के माध्यम से जाति-इतिहास क्रिया की व्याख्या करते समय बोल्क इस निराधार चीज को मान लेता है कि अन्तःस्रावी तंत्र में होने वाले परिवर्तनों का कारण जैव जगत् (organic world) के नैदेशिक विकास (directive evolution) के किसी विशेष सिद्धान्त की चेष्टा होती है।

बोल्क की परिकल्पना ऋजु-जनन (orthogenesis) के सिद्धान्त के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। जीवशास्त्र के क्षेत्र में यह एक भाववादी प्रवृत्ति है जो डार्विनवाद का विरोध करती है। केवल अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के विकास की विचित्रताओं के आधार पर की जाने वाली मनुष्य के विकास की व्याख्या कभी भी सन्तोषजनक नहीं मानी जा सकती। यह विचार बहुत संकुचित और एकपक्षी है। वह गलत है यह बात इतनी स्पष्ट है कि और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती (वाई. वाई. रोगिन्स्की 1933)।

न केवल मनुष्य के बल्कि किसी भी पृष्ठवंशी प्राणी के विकास की व्याख्या अंगों के किसी भी एक तंत्र के आधार पर नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त मानव के अति रिक्त मानव के सम्बन्ध में गर्भीकरण के सिद्धान्त को लागू करने का अर्थ उसके विशिष्ट विकासवादी पक्ष को 'जैविकीयन' (biologize) करने का प्रयत्न करना है। असल बात तो यह है कि मनुष्य के व्यक्ति-इतिहासीय विकास क्रम में स्वयं कुछ परिवर्तन हो गए थे। इन परिवर्तनों का कारण था खास तौर से उसके मस्तिष्क का तीव्र विकास उसके अन्दर नए शारीरिक समानुपातों का आविर्भाव तथा उन अन्य विशिष्टताओं की उत्पत्ति जिनका विकास मानव-निर्माण के क्रम में श्रम तथा अन्य कारकों के प्रभाव के फलस्वरूप हुआ था।

विकास की शिशु-अवस्था से सादृश्यता रखने वाली बाह्य विशेषताएं अर्थात् गर्भीकरण की कुछ विशेषताएं मनुष्य के विशिष्ट विकासवादी पक्ष के परिणामस्वरूप ऐसे समय प्रकट हुई थीं जिस समय कि सीधे खड़े होकर चलने लगने की वजह से अभावात्मक पेशियां तथा अस्थिमय कटकों से सिर मुक्त हो गया था। अच्छी तरह विकसित अंग से सीधे खड़े होकर चलने लगना स्वयं जो आधुनिक मानव की विशिष्टता है, श्रम के दीर्घ-कालीन प्रभाव का परिणाम था।

मानव मस्तिष्क का विकास शैशवावस्था में नहीं रुक जाता और न वयस्क का

मस्तिष्क शिशु के मस्तिष्क का केवल बड़ा स्वरूप होता है। इसके विपरीत, उसके आकार तथा संश्लिष्टता की वृद्धि में जो दीर्घ काल लगता है वह स्वयं अन्य स्तनधारी प्राणियों के मस्तिष्क के विकास के जल्दी ही पूरे हो जाने (maturation) के आम नियम का एक अपवाद है। *अन्य स्तनधारियों के मस्तिष्कों की वृद्धि छोटी अवस्था में ही पूरी हो जाती है* क्योंकि वे जल्दी ही प्रौढ़ हो जाते हैं। केवल उसके आकार तथा आकृति के आधार पर वयस्क मस्तिष्क के गर्भीय स्वरूप की बात हम नहीं कर सकते।

मनुष्य के तात्कालिक बबर-वानरी पूर्वजों के पास चूंकि एक ऐसा मस्तिष्क था जो विकास की काफ़ी ऊँची अवस्था में पहुँच चुका था इसीलिए अत्यन्त सूक्ष्म मानवी मस्तिष्क का निर्माण सम्भव हो सका है। परन्तु, शारीरिक तथा जैविक दृष्टि से अत्यन्त संश्लिष्ट मानवी मस्तिष्क के अस्तित्व का इससे भी अधिक कारण है—श्रम-क्रियाओं तथा साफ़ बोली सहित *मनुष्य का सामाजिक जीवन। इन्हीं कारणों में मांस के भोजन* के प्रभाव को भी जोड़ दिया जाना चाहिए (एफ़ एंगेल्स)। आदिम मानव के निर्माण काल में जो सामाजिक सम्बन्ध उत्पन्न हुए थे वे ज्यों-ज्यों अधिक जटिल बनते गए त्यों त्यों केवल उन्हीं लोगों के जीवित रह सकने की सम्भावना अधिकाधिक बढ़ती गई जिनके सबसे अधिक विकसित मस्तिष्क थे। परन्तु बोल्क तो मनुष्य को अमरीकी उभयचरी प्राणी एम्ब्लीस्टोमा (Amblystoma) के एक चिर डिम्भित डिम्भ' (neoteinic larva) की तरह की कोई चीज़ समझता है। स्मरण होगा कि एम्ब्लीस्टोमा एक *ऐसा प्राणी है जो डिम्भावस्था (larval stage) में ही सन्तानोत्पत्ति* करता है। उस समय उसे डिम्भ सरटक (axolotl) कहा जाता है। मानव प्रजनन के सम्बन्ध में बोल्क की व्याख्या का अर्थ मानव के निर्माण के सम्पूर्ण इतिहास को दृष्टि से ओझल कर देना है (एम॰ ए॰ अमियास्की 1930)।

इससे स्पष्ट है कि प्रिलिस्टीन के बच्चे तथा आधुनिक वयस्क के कपालों की सादृश्यता के सम्बन्ध में बबयटन और डे बियर ने जो व्याख्या प्रस्तुत की है वह भी स्वीकार नहीं की जा सकती। बोल्क की परिकल्पना का खण्डन करते हुए वाई॰ वाई॰ रागिन्स्की (1933) बतलाते हैं कि भ्रूणीय (embryonic) विकास के काल में मनुष्य के जैव विकास क्रम में केवल देरी ही नहीं होती बल्कि तेज़ी भी आ जाती है परन्तु मनुष्य के निर्माण काल में जो क्रियाएँ घटित होती हैं उनकी दिशा का वर्णन करने के लिए देरी और तेज़ी की ये संकल्पनाएँ अपर्याप्त हैं। इसके अतिरिक्त शरीर की संरचना तथा परिवेश के बीच के समस्त सम्बन्ध को जो अवहेलना बोल्क की परिकल्पना में मौजूद है उसे भी कभी मंजूर नहीं किया जा सकता। *गर्भीकरण का सिद्धान्त रूप (form) को* उसके कार्य (function) से बिलकुल अलग (alienates) कर देता है। वाई॰ वाई॰ रोगिन्स्की ठीक ही कहते हैं कि मानव विकास के एक सिद्धान्त का जिसमें न पूर्वज है, न कोई वास-स्थान है, न सीधे खड़े होकर चलने की बात है, और न काम करने के औज़ारों की चर्चा है—किसी भी प्रकार से सन्तोषजनक नहीं माना जा सकता।

मानव प्रजनन के सम्बन्ध में बाल्क के विचारों को यदि साफ-साफ कहा जा सके अन्दर से जैविकीकरण की क्रिया (biologization from within) कहा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त दूसरे वैज्ञानिक ऐसे हैं जिनके मानव की उत्पत्ति की व्याख्या करने के प्रयत्न 'बाहर से जैविकीकरण की क्रिया' का रूप ले लेते हैं अर्थात् वे कहते हैं कि मानव केवल एक जैविक प्राणी है। उसके ऐतिहासिक विकास के लम्बे काल का मुख्य कारण उसकी सामाजिक और आर्थिक प्रगति नहीं है बल्कि यह क्रम है जिसमें उसके प्राकृतिक परिवेश में परिवर्तन हुआ था।

इन विचारों को अस्थायी तौर से हम मानव प्रजनन की भौगोलिक संकल्पना की संज्ञा दे देते हैं। दूसरे देशों के मानवशास्त्रियों तथा अन्य वैज्ञानिकों में ये विचार बहुत फैले हुए हैं। इस प्रकार की परिकल्पनाओं का अपराध बिलकुल स्पष्ट है प्राकृतिक और सामाजिक कारकों का जान-बूझकर घोल-मेल कर दिया गया है और मानव-जाति को चीटियों का एक तिला अथवा मधु-मक्खियों का छत्ता अथवा बया चिड़िया की तरह के एक साथ में रहने वाले प्राणियों का कोई उपनिवेश अथवा बाँधों और मकानों वाली उत्त बिलावों की एक बस्ती बना दिया गया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि संस्कृति मन की प्रविधियों तथा समाज और स्वयं मनुष्य के शारीरिक स्वरूप के विकास पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि यह प्रभाव कितना व्यापक और गहरा होता है? यह कैसे पड़ता है और क्या मानव के निर्माण की सभी अवस्थाओं में यह एक समान सबल रहा है? क्या प्राकृतिक परिस्थितियाँ वानर-मानवों के ऊपर भी इसी तरह से प्रभाव डाल सकती थीं जिस तरह आधुनिक मानव के ऊपर वे डालती हैं? उस सामाजिक परिपार्श्व के महत्त्व को कम करके कोई कैसे बता सकता है जो खासतौर से मनुष्य के मामले में तो उसकी दूसरी प्रकृति के समान है और, जिसके बाहर, वह जीवित ही नहीं रह सकता? आदिम मानव-समाज का विकास औज़ारों के उत्पादन के आधार पर हुआ था। एक हद तक इन औज़ारों को कृत्रिम इन्द्रियाँ (या कृत्रिम अंग) माना जा सकता है। मनुष्य के निर्माण में एक तरफ तो बाह्य प्रभावों का हाथ था और, दूसरी तरफ था अतुलनीय रूप से कहीं अधिक मात्रा में स्वयं समाज के विशिष्ट विकास क्रम का। इस विशिष्ट विकास क्रम की सबसे पहली विशेषता थी उसकी श्रम-क्रियाओं की उत्तरोत्तर प्रगति तथा उत्पादन के वे सम्बन्ध जो इस प्रगति के फलस्वरूप उस आदिम समुदाय के अन्दर उत्पन्न हो गए थे।

उन आन्तरिक अन्तर्विरोधों के कारण जो आदिम समुदाय तथा प्रकृति के बीच के निरन्तर परिवर्तित होते सम्बन्धों के कारण बराबर पैदा हो रहे थे और उक्त समुदाय द्वारा हल किए जा रहे थे सामाजिक विकास की क्रिया स्वयं चालित बन गई थी। उदाहरण के लिए बड़े स्तनधारी प्राणियों का शिकार करना प्रारंभिक विकास की एक

निश्चित मंज़िल में ही सम्भव हो सकता था। विकास की उस पिछली अवस्था की तुलना में, जिसमें जीवन-यापन के साधनों को अर्जित करने के सम्बन्ध में मर्दों और औरतों के बीच का भेद कहीं कम महत्त्वपूर्ण था यह एक प्रगतिपूर्ण कदम था। बड़े पशुओं का शिकार करके भोजन प्राप्त करने के तरीका का इस्तेमाल अधिकांशतया मर्द ही कर सकते थे। इसके विपरीत इससे पहले छोटे-छोटे जानवरों को पकड़ने तथा कन्दों और फलों (बेरों) को भोजन के लिए इकट्ठा करने के काम मुख्यतया औरतों के काम माने जाते थे। मझोले तथा बड़े-बड़े जानवरों के शिकार से अनुभव मिला तथा युक्ति-कुशलता को एक विशेष महत्त्व प्राप्त हो गया क्योंकि ज़रा-सी भी असावधानी होने पर न सिर्फ़ यह ख़तरा रहता था कि पशु भाग जाएगा बल्कि यह भी भय रहता था कि हाथी के दाँतों के शिकार बन कर अथवा उसके पैरों के नीचे कुचल जाकर स्वयं शिकारियों की कपाल-क्रिया हो जाए।

भौगोलिक तथा अन्य प्राकृतिक परिस्थितियों को उनका उचित महत्त्व देने के साथ साथ इस बात को भी स्मरण रखना आवश्यक है कि आदिम मानव के ऊपर अपना प्रभाव ये परिस्थितियाँ समाज के माध्यम से डालती थीं। यह सामाजिक माध्यम चाहे कमज़ोर रहा हो परन्तु किसी भी अन्य माध्यम से गुणात्मक रूप से वह भिन्न था। हांस वाइनर्ट की तरह के वे वैज्ञानिक भारी भ्रम में हैं जो यह मानते हैं कि हिमयुग द्वारा जलवायु में लाए गए परिवर्तनों से उत्पन्न चतुर्थकाल की कठिन परिस्थितियाँ ही मनुष्य के उच्च स्तरीय विकास का मुख्य कारण थीं क्योंकि इन्हीं परिस्थितियों के कारण आग और आवरण के लाभों को वह पहचान सका था।

हांस वाइनर्ट (1935) कहता था कि मनुष्य का निर्माण हिम युग ने किया है। यह प्रश्न को ग़लत ढंग से प्रस्तुत करने का एक उदाहरण है क्योंकि मानव विकास के कारकों को एकदम यांत्रिक ढंग से वह बाह्य माध्यमों के प्रभाव तक सीमित कर देता है (ए० एन० यूज़ेफ़ोविच, 1937)।

वास्तव में वाइनर्ट विकासवादी मारित्ज़ वैगनर (1813-1887) के पुराने विचारों की ही पुनरावृत्ति कर रहा है। वैगनर का विश्वास था कि मानव-सभों से मानव की पैदाइश का कारण हिमयुग का प्रभाव था (यद्यपि हम यह भी बता देना चाहते हैं कि 1871 में इस वैज्ञानिक ने मानव-प्रजनन की प्रक्रिया में औज़ारों के कृत्रिम निर्माण की महत्त्वपूर्ण भूमिका का भी संकेत किया था)।

वाइनर्ट आग के उपयोग को मानव स्वभाव का अभिन्न अंग मानता है। वह कहता है कि इस स्वभाव का प्रथम स्थान दिया जाना चाहिए। यद्यपि आग का सम्बन्ध ख़ास तौर से आदिम मानव (यहाँ तक कि चीन-मानव) से है परन्तु उससे केवल वही आदिम लोग परिचित नहीं थे जो ठंडी जलवायुओं में रहते थे बल्कि वे लोग भी परिचित थे जिनके वास-स्थान ऐसे गर्म प्रदेशों में थे जिनमें अनेक जगहों पर रात में नमी रहती है और वर्षा ऋतु में बहुधा ठंड पड़ती है। इस चीज़ को मानने का कोई कारण नहीं है कि आदिम मानवों ने केवल हिम युग के परिणामस्वरूप ही आग की खोज कर ली थी। म

कोई इस बात से ही इनकार कर सकता है कि उन प्रदेशों में जहाँ उनके प्रभाव का वह अनुभव करता था मानव के विकास के लिए हिम युग द्वारा उत्पन्न की गई परिस्थितियाँ एक सशक्त उद्दीपन का काम करती थीं। सम्भव है कि मानवों के कुछ समूह ठंड को बर्दाश्त करने में असमर्थ साबित हुए हों और नष्ट हो गए हों।

भौगोलिक परिस्थितियों की भूमिका को जी॰ वी॰ प्लेखानोव (1856-1918) ने भी आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया था। उनका विश्वास था कि भौगोलिक परिवेश की परिस्थितियों के ही कारण हमारे नर रूपी पूर्वज बौद्धिक विकास के उच्च स्तर पर पहुँच सके थे जो औजार बनाने वाले प्राणियों में उनके बदल जाने के लिए आवश्यक था।

प्लेखानोव ने भौगोलिक परिस्थितियों के महत्त्व को किस हद तक बढ़ा-चढ़ाकर आँका था इसका अनुमान हमें इस बात से हो सकता है कि वे समझते थे कि जिन उत्पादक शक्तियों के भावी विकास पर आर्थिक तथा अन्य तमाम सामाजिक सम्बन्ध निर्भर करते हैं उनकी प्रगति को सर्वप्रथम और सर्वाधिक अधिक यह परिवेश ही निर्धारित करता है। उनका विश्वास था कि अन्तिम विश्लेषण में सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों का विकास भौगोलिक परिवेश के स्वरूप से ही निर्धारित होता है।

यह भौतिक परिस्थितियों के महत्त्व को अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर आँकने का एक उदाहरण है मानव प्रजनन की प्रक्रिया को मानव के पूर्वजों द्वारा केवल बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव अनुकूल बनाने की क्रिया तक यांत्रिक रूप से सीमित कर देने का एक उदाहरण है। दूसरे शब्दों में भौगोलिक कारकों को प्रमुख महत्त्व देने से सामाजिक प्रभावों की भूमिका एकदम कम हो जाती है।

जर्मन विचारधारा (German Ideology) नाम की अपनी रचना में मार्क्स इस प्रश्न को सही-सही ढंग से रखते हैं

'समस्त मानव-इतिहास के लिए प्रथम आवश्यकता स्वाभाविक तौर से यह है कि जीवित मानवों का अस्तित्व हो। इसलिए सबसे पहली चीज जो तय करनी है वह यह है कि इन व्यक्तियों का शारीरिक संगठन मौजूद था। साथ ही साथ यह बताना जरूरी है कि उन तमाम प्राकृतिक शक्तियों के साथ जिनको यह शारीरिक संगठन प्रभावित करता है उसका क्या सम्बन्ध था। कहने की जरूरत नहीं कि यहाँ पर हम स्वयं मनुष्य की शारीरिक विशेषताओं के सम्बन्ध में विचार नहीं कर सकते न उन प्राकृतिक भू-वैज्ञानिक गिरि-जलवर्णना सम्बन्धी (oro-hydrographic) जलवायु सम्बन्धी तथा अन्य प्राकृतिक परिस्थितियों की उस स्थिति के ही सम्बन्ध में विचार कर सकते हैं जिसमें मनुष्य ने उन्हें पाया था। समस्त इतिहास का आरम्भ इन्हीं प्राकृतिक मूलाधारों से तथा उन परिवर्तनों से होना चाहिए जो इतिहास के क्रम में, मनुष्य की क्रियाशीलता के कारण उनमें उत्पन्न हुए थे।'

अपने इस कथन में प्रमुख महत्त्व मार्क्स मनुष्य की उन कारवाइयों को देते हैं जिन्होंने प्राकृतिक परिस्थितियों में तथा स्वयं मनुष्य की शारीरिक विशिष्टताओं में परिवर्तन उत्पन्न कर दिए थे। प्राविक शक्तियों की उत्पादकता के भिन्न-भिन्न स्तरों पर वही भौगोलिक परिस्थितियाँ एकदम अलग-अलग भूमिका करती हैं सागर पहले लोगों को अलग रखने का काम करते थे और उनके विकास के मार्ग में एक बाधा होते थे परन्तु नौ-चालन (navigation) की प्रगति के साथ-साथ वही मानव-जाति को एकता-बद्ध करने का तथा उसके सामाजिक और आर्थिक विकास में सहायता पहुँचाने का काम करने लगे हैं।

अस्तु, मानव-विकास में भौगोलिक परिस्थितियों के महत्त्व को अनावश्यक रूप से बढ़ाकर नहीं बताया जाना चाहिए, मानव प्रजनन की प्रेरक शक्तियों का विश्लेषण करते समय उनको उचित गौण स्थान दिया जाना चाहिए। प्राकृतिक परिस्थितियों के बाह्य प्रभाव को स्वयं समाज के विकासोन्मुख कारकों के साथ मिलाकर देखा जाना चाहिए। पिछले कुछ सहस्रों वर्षों में तथा वर्तमान ऐतिहासिक युग में मानव-जाति ने जो तीव्र प्रगति की है वह इस बात का निश्चित प्रमाण है कि बाह्य परिवेश तथा स्वयं मानवी शरीर के लगभग एक ही अपरिवर्तित स्थिति में बने रहने पर भी समाज में अनेक उग्र परिवर्तन हो सकते हैं। इन चीजों में कोई परिवर्तन अगर हुए भी हैं तो उन जबरदस्त रूपान्तरणों की तुलना में जो सामाजिक विकास के क्षेत्र में हुए हैं वे एकदम अकिंचन हैं।

इसके विपरीत विकास की प्रारम्भिकतम अवस्थाओं में प्राविम समुदाय की संरचना में यदि अपेक्षाकृत छोटे परिवर्तन भी हो जाते थे तो मानव-शरीर में कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन वे पैदा कर देते थे। इसका कारण यह था कि मानव-शरीर के पुनर्निर्माण के ढंग पर सामाजिक श्रम की सम्पूर्णतया नई परिस्थितियों का प्रत्यक्ष और निर्णायक प्रभाव पड़ता था। मानव-शरीर अभी तक काफी बड़ी हद तक बर्बर वानरी अवस्था में था उन श्रम-क्रियाओं के अनुकूल वह अभी तक बहुत कम बन पाया था जो निरन्तर नित नये रूप ग्रहण करती जा रही थीं।

मानव के निर्माण के सम्बन्ध में अन्य पूँजीवादी संकल्पनाओं के अन्दर ब्यौरे में जाए बिना ही हम कह सकते हैं कि जैसा कि एंगेल्स ने लिखा था डार्विनवादी मत के भौतिकवादी दृष्टिकोण रखने वाले वैज्ञानिक भी भाववादी दर्शन के हजारों वर्षों के प्रभाव के कारण श्रम की निर्णायक भूमिका को यदि न देख सके थे तो फिर इसमें क्या आश्चर्य है कि विदेशों के जीवशास्त्रियों तथा मानवशास्त्रियों की एक बहुत बड़ी संख्या के ग्रन्थ भाववाद की भावना से ओत प्रोत हैं! इसके अतिरिक्त यह भी कहना आवश्यक है कि मानव-प्रजनन की इस प्रकार की समस्त संकल्पनाओं का विशेषरूप से उन संकल्पनाओं का जो औपचारिक रूप से जननिक (genetic) हैं अनिवार्य परिणाम-मानव जाति तथा मानव जाति की नस्लों के सम्बन्ध में नस्लवादी (racist) विचार होते हैं।

मानव-निर्माण के सम्बन्ध में जिन चीजों ने भूमिका अदा की है उनमें मुख्य स्थान

चलने के देहांगों, वाणी के उपकरण तथा मस्तिष्क को स्थापित देते हैं। मानव प्रजनन की समस्या के दृष्टिकोण से इस विषय में उनके विचार अत्यन्त उपयोगी हैं।

वानर यदि हमेशा अपने चारों देहांगों पर ही चलता रहता वह यदि कभी सीधा न खड़ा होता तो उसका वंशज—मानव—अपने फेफड़ों तथा स्वर रज्जुओं (vocal chords) का मुक्त रूप से इस्तेमाल न कर पाता और इसीलिए वह बात भी न पाता और, इसकी वजह से उसकी चेतना का विकास भी बुनियादी तौर से विलम्बित हो जाता। अथवा इसी बात को दूसरे ढंग से कहा जाए तो वानर यदि अपने पिछले पैरों पर न खड़ा हो गया होता तो उसका वंशज-मानव सदैव अपने चारों देहांगों पर चलने के लिए नीचे की ओर देखते रहने के लिए और अपनी धारणाओं को वहीं से बनाने के लिए बाध्य रहता, ऊपर की ओर और अपने चारों तरफ देखने में वह असमर्थ रहता और, इसलिए, उसके मस्तिष्क में किसी चौपाये के मस्तिष्क से अधिक असर (impressions) न पड़ पाते। इन सबके कारण मानव चेतना का विकास बुनियादी रूप से विलम्बित हो जाता।

इसलिए स्पष्ट है कि चेतना के विकास के लिए जीव की एक विशिष्ट प्रकार की संरचना की तथा उसके तंत्रिका-तंत्र के विकास की आवश्यकता होती है।[1]

बहुत सम्भव है कि श्रम की क्रियाशीलता का श्रीगणेश मानव के उत्तर तृतीय कालीन बर्बर-वानरी पूर्वजों जैसे उच्च रूप से विकसित मानव-सम्मों में ही हो गया हो, उनके चलने का तरीका अर्द्ध-चतुष्पदीय रहा हो तब भी ऐसा हो गया हो। उदाहरण के लिए, हम जानते हैं कि जावा के छोटे बन्दर, केकड़े खाने वाले बन्दर केकड़ों तथा कोमदार मछली को उनके खोल से निकालने के लिए पत्थरों का इस्तेमाल करते हैं। वे पेड़ों से नीचे उतर आते हैं और औज़ारों के रूप में इस्तेमाल करने के लिए समुद्र के किनारे अथवा नदी के तट पर छोटे-छोटे पत्थर उठा लेते हैं और इस्तेमाल कर चुकने के बाद उन्हें फिर फेंक देते हैं। यही वे कार्य हैं जिन्हें मार्क्स ने श्रम का भ्रूणीय-स्वरूप' (an embryonic form of labour) कहा था।

इस बात की आसानी से कल्पना की जा सकती है कि आस्ट्रेलोपिथेकस किस्म के मानव-सम वानर, अथवा वे प्राग्-होमिनिडाई (प्राग्-मानव-वंशी) लोग जो खुले मैदानों अथवा उष्ण-कटिबन्धीय घास के मैदानों में भोजन खोजने के लिए बाध्य थे उसे प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न उपायों का उपयोग करते रहे होंगे। इनमें जावा के बन्दरों की तरह पत्थरों के उपयोग का ढंग भी अवश्य ही शामिल रहा होगा। मानव-सम का मस्तिष्क अपेक्षाकृत चूंकि कहीं अधिक उच्च रूप से विकसित होता है इसलिए आवश्यक परिस्थितियाँ मिल जाने पर श्रम के इन प्राग्-मानवी स्वरूपों का और आगे विकास हो जाने की पूरी

1 जे० वी० स्तालिन—ग्रन्थावली, खण्ड 1, मास्को, 1952, पृष्ठ 316।

सम्भावना थी।

हाल में साइबेरिया की एक रिपोर्ट छपी है जिसमें एक ऐसे नर चिम्पांज़ी की कहानी बताई गई है जो ताड़ के फलों के गुच्छे को एक चट्टान के पास ले आया था और वहाँ उसके काष्ठफलों को पत्थर से तोड़-तोड़कर उसने निकाल लिया था।

यह भी सम्भव था कि भूमि पर चलने वाले कुछ प्राचीन आधे चतुष्पदीय और आधे द्विपदीय मानव-सम वानर आदिम औज़ारों को तैयार करने का काम नियमित रूप से प्रारम्भ कर देते। ऐसा होता तो विकसित होकर वे वानर-मानव बन जाते और सम्भवतः वर्तमान काल तक भी एकदम निम्नतम सांस्कृतिक स्तर पर ही बने रहते। परन्तु, श्रम के साथ-साथ यदि सीधे खड़े होकर चलने की ओर भी उनका संक्रमण हो जाता तो फिर सामूहिक रूप से श्रम-कार्य करने की आवश्यकता के माध्यम से स्पष्ट वाणी तथा मानव चेतना का भी उनमें विकास हो जाता। क्योंकि जैसा कि एंगेल्स ने बतलाया था सीधे खड़े होकर चलने की ओर होने वाला संक्रमण वानर के मानवीकरण की दिशा में एक निर्णायक कदम था। सीधे खड़े होकर चलने के बिना पृथ्वी पर केवल वानर-मानव की किस्म के प्राणी ही पैदा हो सकते थे। वे किसी उच्चतर अवस्था में कभी न पहुँच सकते इसलिए, सोवियत मानवशास्त्र के सम्मुख एक सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि मानव के पूर्वजों के अन्दर, अर्थात् बनते हुए मानवों के अन्दर और आधुनिक मानव के अन्दर, सीधे खड़े होकर चलने वाली के उपकरण तथा मस्तिष्क के विकास की क्रिया का वह गहरा अध्ययन करे।

3. मानव जाति की नस्लें

संसार में बसने वालों की संख्या आज लगभग 2 अरब 80 करोड़ है। अपने बाह्य स्वरूप तथा आन्तरिक संरचना की प्राथमिक तथा परवर्ती विशेषताओं में ये सब लोग एक-दूसरे से बहुत मिलते हैं। इसी कारण सम्पूर्ण मानव जाति को जीवशास्त्रीय दृष्टिकोण से अधिकांश वैज्ञानिक होमो सेपियन्स (मेधावी मानवों) की एक ही जाति में रखते हैं।

मानव जाति ने अब लगभग सम्पूर्ण भूख प्रदेश पर यहाँ तक कि दक्षिण ध्रुवीय प्रदेश पर भी अधिकार कर लिया है (चित्र 150)। पर मानव-जाति सम-जात नहीं है उसमें लोगों के समूह मिलते हैं जिन्हें बहुत दिनों से नस्लों का नाम दे दिया गया है। मानव शास्त्र में यह नाम रूढ़ हो गया है।

मानव-जाति की नस्ल एस लोगों का एक जीवशास्त्रीय समूह होती है जो प्राणि विज्ञान के वर्गीकरण (zoological classification) के अन्तर्गत उसके उपजातीय समूह के साथ सम्रूप्ति (analogous) तो रखती है, परन्तु समजात (homologous) नहीं होती। प्रत्येक नस्ल का एक सामान्य उत्पत्ति-स्रोत है और उसका प्रादुर्भाव एक निश्चित प्रदेश में उसके मूल वास-स्थान में हुआ था। प्रत्येक नस्ल की कुछ अपनी शारीरिक विशिष्टताएँ होती हैं। इन विशिष्टताओं का सम्बन्ध उस नस्ल के लोगों के अधिकांशतया बाह्य स्वरूप आकृति-तत्त्व तथा अन्य रचना (anatomy) से होता है।

पाने के देहांगों वाणी के उपकरण तथा मस्तिष्क को स्थापित करते हैं। मानव प्रजनन की समस्या के दृष्टिकोण से इस विषय में उनके विचार अत्यन्त उपयोगी हैं।

वानर यदि हमेशा अपने चारों देहांगों पर ही चलता रहता वह यदि कभी सीधा न खड़ा होता तो उसका वंशज—मानव—अपने फेफड़ों तथा स्वर रज्जुओं (vocal chords) का मुक्त रूप से इस्तेमाल न कर पाता और इसीलिए बह बोल भी न पाता और, इसकी वजह से उसकी चेतना का विकास भी बुनियादी तौर से विलम्बित हो जाता। अथवा इसी बात को दूसरे ढंग से कहा जाए तो वानर यदि अपने पिछले पैरों पर न खड़ा हो गया होता तो उसका वंशज-मानव सर्वदा अपने चारों देहांगों पर चलने के लिए नीचे की ओर देखते रहने के लिए और अपनी धारणाओं को वहीं से बनाने के लिए बाध्य रहता ऊपर की ओर और अपने चारों तरफ देखने में वह असमर्थ रहता और इसलिए, उसके मस्तिष्क में किसी चौपाये के मस्तिष्क से अधिक असर (impressions) न पड़ पाते। इन सबके कारण मानव चेतना का विकास बुनियादी रूप से विलम्बित हो जाता।

इसलिए स्पष्ट है कि चेतना के विकास के लिए जीव को एक विशिष्ट प्रकार की संरचना की तथा उसके तंत्रिका-तंत्र के विकास की आवश्यकता होती है।[1]

बहुत सम्भव है कि श्रम की क्रियाशीलता का श्रीगणेश मानव के उत्तर तृतीय कालीन बर्बर-वानरी पूर्वजों जैसे उच्च रूप से विकसित मानव-सभों में ही हो गया हो उनके चलने का तरीका अर्द्ध-चतुष्पदीय रहा हो तब भी ऐसा हो गया हो। उदाहरण के लिए, हम जानते हैं कि जावा के छोटे बन्दर, केकड़े खाने वाले बन्दर, केकड़े तथा घोंसवार मछली को उनके खोल से निकालने के लिए पत्थरों का इस्तेमाल करते हैं। वे पेड़ों से नीचे उतर आते हैं और औजारों के रूप में इस्तेमाल करने के लिए समुद्र के किनारे अथवा नदी के तट पर छोटे-छोटे पत्थर उठा लेते हैं और इस्तेमाल कर लेने के बाद उन्हें फिर फेंक देते हैं। यही वे कार्य हैं जिन्हें मार्क्स ने 'श्रम का भ्रूणीय-स्वरूप' (an embryonic form of labour) कहा था।

इस बात की आसानी से कल्पना की जा सकती है कि आस्ट्रेलोपिथेकस किस्म के मानव-सम वानर, अथवा वे प्राक्-होमिनिमाई (प्राक्-मानव-वंशी) लोग जो खुले मैदानों अथवा उष्ण-कटिबन्धीय घास के मैदानों में भोजन खोजने के लिए बाध्य थे उसे प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न उपायों का उपयोग करते रहे होंगे। इनमें जावा के बन्दरों की तरह पत्थरों के उपयोग का ढंग भी अवश्य ही शामिल रहा होगा। मानव-सम का मस्तिष्क अपेक्षाकृत चूँकि कहीं अधिक उच्च रूप से विकसित होता है इसलिए आवश्यक परिस्थितियाँ मिल जाने पर श्रम के इन प्राग्-मानवी स्वरूपों का और आगे विकास हो जाने की पूरी

---

1 जे बी एस हाल्डेन—ग्रन्थावली खण्ड 1, मास्को, 1952, पृष्ठ 316।

सम्भावना की।

हाल में माइबेरिया की एक रिपोर्ट छपी है जिसमें एक ऐसे नर चिम्पांजी की कहानी बताई गई है जो ताड़ के फलों के गुच्छे को एक चट्टान के पास से लाया था और वहाँ उसके फलों को पत्थर से तोड़-तोड़कर उसने निकाल लिया था।

यह भी सम्भव था कि भूमि पर चलने वाले कुछ प्राचीन प्राय चतुष्पदीय और आधे द्विपदीय मानव-सम वानर आदिम औजारों को तैयार करने का काम नियमित रूप से आरम्भ कर देते। ऐसा होता तो विकसित होकर वे वानर-मानव बन जाते और सम्भवतः वर्तमान काल तक भी एकदम निम्नतम सांस्कृतिक स्तर पर ही बने रहते। परन्तु, श्रम के साथ-साथ यदि सीधे खड़े होकर चलने की ओर भी उनका संक्रमण हो जाता तो फिर सामूहिक रूप से श्रम-कार्य करने की आवश्यकता के माध्यम से स्पष्ट वाणी तथा मानव चेतना का भी उनमें विकास हो जाता। क्योंकि जैसा कि एंगेल्स ने बतलाया था सीधे खड़े होकर चलने की ओर हुआ वाला संक्रमण वानर के मानवीकरण की दिशा में एक निर्णायक कदम था। सीधे खड़े होकर चलने के बिना पृथ्वी पर केवल वानर-मानव की किस्म के प्राणी ही पैदा हो सकते थे। वे किसी उच्चतर अवस्था में कभी न पहुँच सकते इसलिए, सोवियत मानवशास्त्र के सम्मुख एक सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि मानव के पूर्वजों के अन्दर, अर्थात् बनते हुए मानवों के अन्दर और आधुनिक मानव के अन्दर, सीधे खड़े होकर चलने, वाणी के उपकरण तथा मस्तिष्क के विकास की क्रिया का वह गहरा अध्ययन करे।

3 मानव-जाति की नस्लें

संसार में बसने वालों की संख्या आज लगभग 2 अरब 80 करोड़ है। अपने बाह्य स्वरूप तथा आन्तरिक संरचना की प्रारम्भिक तथा परवर्ती विशेषताओं में ये सब लोग एक-दूसरे से बहुत मिलते हैं। इसी कारण सम्पूर्ण मानव जाति को जीवशास्त्रीय दृष्टिकोण से अधिकांश वैज्ञानिक होमो सेपियन्स (मेधावी मानवों) की एक ही जाति में रखते हैं।

मानव जाति ने अब लगभग सम्पूर्ण भू-प्रदेश पर यहाँ तक कि दक्षिण ध्रुवीय प्रदेश पर भी, अधिकार कर लिया है (चित्र 150)। पर मानव-जाति सम-जात नहीं है, उसमें लोगों के समूह मिलते हैं जिन्हें बहुत दिनों से नस्लों का नाम दे दिया गया है। मानव-शास्त्र में यह नाम रूढ़ हो गया है।

मानव-जाति की नस्ल ऐसे लोगों का एक जीवशास्त्रीय समूह होती है जो प्राणि विज्ञान के वर्गीकरण (zoological classification) के अन्तर्गत उसके उपजातीय समूह के साथ सम्वृत्ति (analogous) तो रखती है, परन्तु समजात (homologous) नहीं होती। प्रत्येक नस्ल का एक सामान्य उत्पत्ति-स्रोत है और उसका प्रादुर्भाव एक निश्चित प्रदेश में उसके मूल वास-स्थान में हुआ था। प्रत्येक नस्ल की कुछ अपनी शारीरिक विशिष्टताएँ होती हैं। इन विशिष्टताओं का सम्बन्ध उस नस्ल के लोगों के अधिकांशतया बाह्य स्वरूप आकृति-तत्त्व तथा अन्तः रचना (anatomy) से होता है।



चित्र 150. मानवी नस्लों
वर्ग रोगिन्स्की तथा एम॰ लेविन

नस्ल की पहचान जिन मुख्य चीजों से होती है वे हैं सिर के बालों का स्वरूप चेहरे के बालों (दाढ़ी मूँछें) तथा शरीर के बालों का स्वरूप तथा विकास बालों त्वचा आँख की पुतली का रंग पलकों नाक तथा होंठों की आकृति सिर और चेहरे की आकृति तथा शरीर की लम्बाई अथवा मनुष्य का क़द।

मानव-जाति की नस्लें विशिष्ट मानव-शास्त्रीय अध्ययन का विषय हैं। अनेक सोवियत मानवशास्त्रियों के मतानुसार मानव-जाति में महान् नस्लें हैं। इन नस्लों में से प्रत्येक कई-कई छोटी छोटी नस्लों में बँटी हुई हैं। ये छोटी-छोटी नस्लें फिर एक ही जैसे मानवशास्त्रीय प्रकार के लोगों के समूहों में बँटी हुई हैं। मानवशास्त्रीय वर्गी-



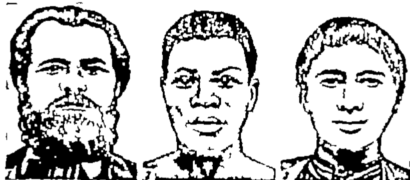
का वितरण
1955 के आधार पर।

कारकी (Systematics) में ये समूह ही मूल इकाई होते हैं (ब्लास्सारोव 1961)।

मानव-जाति की किसी भी नस्ल में ऐसे व्यक्ति मिल जाएँगे जो अधिक प्रारूपिक (typical) होते हैं और ऐसे भी जो कम प्रारूपिक होते हैं। ऐसी भी नस्लें हैं जो अधिक लाक्षणिक (characteristic) हैं अधिक स्पष्ट रूप से सुगठित हैं और ऐसी भी जो दूसरी नस्लों से बहुत ही कम भिन्न हैं। कुछ नस्लों का बीच का चरित्र है।

निग्रोयड-आस्ट्रेलोयड लोगों की (काली) पूरी महान् नस्ल में विशेषताओं का एक निश्चित समूह मिलता है। इस समूह की विशेषताएँ सबसे पूर्णरूप से सूडान के नीग्रो लोगों में दिखलाई पड़ती हैं। यही विशेषताएँ इस नस्ल को दूसरी लोगों

योरोपीय-सर्मों (Europeoid) तथा मंगोल-सर्मों (Mongoloid) से भिन्न बनाती है (चित्र 151)। निग्रोयड (निग्रोसम) नस्ल की जातीय विशेषताओं में भिन्न चीजें हैं— काले घुंघराले अथवा लहरियादार बाल, गहरी भूरी अथवा लगभग एकदम काली (परन्तु कभी-कभी पीली भूरी) त्वचा, भूरी आँखें, कुछ चपटी एक ऐसी नाक जो आगे की तरफ अधिक नहीं निकली होती जिसकी कटक नीची होती है और नासा रन्ध्र चौड़े होते हैं (नस्ल की कुछ किस्मों की नाकें सीधी अधिक संकरी होती हैं) अधिकांश के होंठ मोटे होते हैं, बहुतों के सिर लम्बे होते हैं, ठुड्डी मामूली तौर से विकसित होती है उत्तर-हनु तथा अधोहनु के वे भाग जिनमें दाँत होते हैं आगे निकले प्रतीत होते हैं।



चित्र 151 मानव-जाति की नस्लों के प्रतिनिधि
1 यूरोपिअन-सम 2- निग्रो-सम 3 मंगोल-सम। मानवशास्त्र के संस्थान का अभिलेखागार, मास्को राजकीय विश्वविद्यालय।

निग्रोयड-आस्ट्रलोयड नस्ल का जो भौगोलिक वितरण है उसके कारण कभी-कभी इस भू-मध्यवर्ती (Equatorial) अथवा अफ्रीकी आस्ट्रेलेशियाई (Afro-Austra lasion) नस्ल कहा जाता है। यह नस्ल प्राकृतिक रूप से छोटी-छोटी नस्लों में बंटी हुई है—(1) पश्चिमी अथवा अफ्रीकी नस्ल जिसे निग्रोसम नस्ल भी कहा जाता है, और (2) पूर्वी महासागरीय (Oceanic) अथवा आस्ट्रेलायड नस्ल।

विशेषताओं का एक दूसरा समुच्चय विशाल यूरोपियाई-एशियाई अथवा यूरोपीय सम (श्वेत) नस्ल के प्रतिनिधियों में मिलता है। इसकी विशेषताएँ ये हैं रुधिर वाहिकाओं के इसके अन्दर से दिखाई पड़ने के कारण गुलाबी-सी त्वचा कुछ की त्वचा गोरी होती है कुछ की त्वचा अधिक गहरे रंग की अनेकों के बाल भूरे और आँखें हल्के रंग की होती हैं, बाल घुंघराले अथवा सीधे होते हैं और चेहरे तथा शरीर पर उनकी मात्रा साधारण अथवा काफ़ी अधिक होती है, उनके होंठों की मोटाई मध्यम होती है नाक पतली होती है और चेहरे से आगे की ओर स्पष्ट निकली होती है, नासिका

सेतु ऊँचा होता है पलकों की तहें कम विकसित होती हैं हनु तथा चेहरे का ऊपरी भाग आगे की ओर बहुत नहीं निकले होते और ठुड्डी साधारण तौर से अथवा पूर्णतः से बाहर की ओर निकली हुई होती है, आमतौर से चेहरा बहुत चौड़ा नहीं होता।

यूरोपीय-समों की महान् नस्ल (श्वेत) के अन्दर तीन छोटी नस्लें होती हैं। इनका निर्धारण बालों और आँखों के रंग से होता है। उनमें स्पष्टरूप से भिन्न उत्तरी (गोरी) तथा दक्षिणी (गन्दमी रंग की) तथा कुछ कम स्पष्ट रूप से अलग, बीच के रंग वाली मध्य-यूरोपीय छोटी नस्लें होती हैं। रूसियों का काफ़ी बड़ा भाग श्वेत सागर—बाल्टिक सागर की किस्म की उत्तर की छोटी नस्ल से सम्बन्धित है। रूसियों की खास पहचान उनके भूरे अथवा गौरवर्ण बाल, नीली अथवा धूसर वर्णी आँखें तथा उनकी अत्यन्त गोरी त्वचा होती है। इसके अतिरिक्त, उनकी नाक बहुधा ऊपर की ओर मुड़ी (retrousse) होती है और उसका सेतु इतना ऊँचा नहीं होता। उनकी नाक उत्तर पश्चिमी यूरोपीय-सम लोगों एटलांटिक-बाल्टिक समूह के लोगों की नाक की आकृति से भिन्न होती है। इस दूसरे समूह के लोग अधिकांशतया उत्तर यूरोप के देशों में मिलते हैं। श्वेत सागर—बाल्टिक सागर के समूह के लोगों की अनेक विशेषताएँ इस समूह के लोगों की विशेषताओं से मिलती हैं। ये दोनों मिलकर उत्तरी यूरोप की छोटी नस्ल का निर्माण करते हैं।

दक्षिणी यूरोपियन-समों के गन्दमी वाले समूह (brunette group) में स्पेन फ्रांस इटली स्विटजरलैंड दक्षिण जर्मनी तथा बाल्कन के देशों के अधिकांश निवासी आते हैं।

मंगोल-सम अथवा एशियाई-अमेरिकी महानस्ल (पीली) की अपनी विशेषताएँ होती हैं जो निग्रोयड-आस्ट्रेलायड (निग्रोसम-आस्ट्रेलियाई-सम) तथा यूरोपियायड (योरोपियन-सम) नस्लों से उसे अलग करती हैं। इस नस्ल के अधिकांश प्रतिनिधियों की त्वचा कृष्ण वर्ण की अथवा पीलापन लिए हुए होती है आँखें काली भूरी होती हैं, सिर के बाल काले, सीधे और कड़े होते हैं दाढ़ी और मूँछ आम तौर से होती ही नहीं शरीर पर बहुत थोड़े बाल होते हैं, मंगोल-समों की एक खास विशेषता उनके उपरि अपांगों (epicanthus) की अथवा पलकों की तहों की विचित्र बनावट है—ये तहें आँख के अन्दर के कोण अथवा अपांग (canthus) को ढक लेती हैं जिससे कि वह तिरछा लगने लगता है चेहरा सपाट सा होता है गण्डास्थियाँ (cheek bones) काफ़ी दूर दूर पर होती हैं, ठुड्डी तथा हनु बहुत आगे निकले हुए नहीं होते नाक आम तौर से सीधी होती है परन्तु उसका सेतु नीचा होता है, होंठों की मोटाई मध्यम होती है, अधिकांश का कद औसत से कम होता है।

ये सारी विशेषताएँ बहुधा उत्तर के चीनियों में मिलती हैं। ये पक्के मंगोल-सम होते हैं परन्तु कद में उनसे ऊँचे होते हैं। मंगोल-समों के दूसरे समूहों के लोगों के होंठ अधिक मोटे या अधिक पतले होते हैं, उनके बाल इतने कड़े नहीं होते और उनका कद औसत से

कम होता है। अमेरिका के रेड-इंडियनों का एक विशेष स्थान है, क्योंकि उनमें कई ऐसी विशेषताएँ मिलती हैं जो उन्हें यूरोपियनों-सभों की महा नस्ल के समीप पहुँचा देती हैं।

मानवी नस्ल के अन्दर मिश्रित मूल (उद्गम) के समूह भी मौजूद हैं। इनमें से एक लाप्पाम्स-यूराल लोगों का समूह है। पीली-पीली त्वचा तथा मुलायम कृष्ण वर्ण बालों वाले लाप्प लोग (Lapps) इसी समूह में आते हैं। यूरोप के सुदूर उत्तर के इन निवासियों में यूरोपियन-सम तथा मंगोल-सम नस्लों की शारीरिक विशेषताओं का योग मिलता है।

ऐसे भी लोगों के समूह हैं जो दूसरी दोनों स्पष्ट रूप से भिन्न-भिन्न, नस्लों के साथ जबरदस्त सादृश्यता रखते हैं। इस सादृश्यता का कारण संकरण (crossing) इतना नहीं है कि जितनी कि उनकी प्राचीन रिश्तेदारी। इसका एक उदाहरण ईथोपियाई समूह (Ethiopiae group) है। इनमें निग्रोसम तथा यूरोपीय-सम नस्लों की विशेषताओं का संमिश्रण मिलता है। उनका रूप एक बीच की किस्म का रूप है। ईथोपियाई समूह स्पष्टतया एक बहुत पुराना समूह है। इस समूह में दो महा नस्लों के संमिश्रण का मिलना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि बहुत पहले सुदूर के अतीत में वे दोनों महा नस्लें एक ही इकाई थीं। अबीसीनिया के अनेक निवासी ईथोपियाई समूह में ही आते हैं।

मोटे तौर से मानव-जाति 25 से 30 एक जैसे लोगों के समूहों में बँटी हुई है। इसके बावजूद मानव-जाति की एक ही इकाई है, क्योंकि इसकी महा नस्लों के बीच मानव शास्त्रीय किस्मों के बीच के (संक्रमणात्मक) अथवा मिश्रित समूह मौजूद हैं।

मानव जाति की अधिकांश नस्लें तथा एक-जैसे लोगों के समूह, अलग अलग एक निश्चित सामान्य प्रदेश में रहते हैं। ये प्रदेश वही हैं जिनमें मानवता के इन भागों का आविर्भाव हुआ था और वे ऐतिहासिक रूप से विकसित हुए थे।

ऐसे भी अनेक उदाहरण मिलते हैं जो बताते हैं कि उस समय की ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण किसी विशेष नस्ल का कोई भाग पड़ोस के अथवा दूर के देशों में देशान्तर गमन कर गया था। कुछ ऐसे उदाहरण भी हैं जिनमें नस्लों का अपने मूल निवास-स्थान के साथ पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद हो गया है, अथवा उसका काफ़ी भाग नष्ट हो गया है।

जैसा कि हमने देखा, किसी भी नस्ल के अधिकांश प्रतिनिधियों के बाह्य स्वरूप में लगभग एक ही जैसी वंशागत (inherited) शारीरिक विशेषताएँ पाई जाती हैं। परन्तु, यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि व्यक्तिगत विकास तथा ग्राम विकास दोनों के दौरान में नस्ली विशेषताएँ बदल जाती हैं।

अपनी उत्पत्ति के सामान्य मूल स्रोत के कारण किसी भी मानव-जाति के प्रतिनिधि दूसरी जातियों के प्रतिनिधियों की अपेक्षा, एक-दूसरे के साथ अधिक समानता रखते हैं।

नस्ली समूह के सदस्यों में वैयक्तिकता की बहुत बड़ी मात्रा होती है और विभिन्न नस्लों के बीच की विभाजक सीमाएँ सामान्यतया बहुत स्पष्ट नहीं होतीं। इस प्रकार

अनेक अपुरुस्य सक्रमणात्मक रूपों के द्वारा एक नस्ल दूसरी नस्ल के साथ सम्बद्ध रहती है। बहुत-से मामलों में तो किसी देश की जनसंख्या अथवा जनसंख्या के पूरे-पूरे दल का नस्ली रूप बताना कठिन होता है।

नस्ली विशिष्टताओं तथा उनके वैयक्तिक विभेदों का पता विभिन्न औजारों की सहायता से तथा मानवशास्त्रियों द्वारा निकाले गए तरीकों से लगाया जाता है। आम तौर से जिस नस्ली समूह का अध्ययन किया जा रहा हो उसके सैकड़ों और यहाँ तक कि हजारों प्रतिनिधियों की नाप-जोख की जाती है और उनका परीक्षण होता है। इस तरीके से किसी कौम के नस्ली स्वरूप (संघटना) की काफ़ी सही तस्वीर मिल जाती है उसकी शुद्धता अथवा मिश्रित होने की मात्रा मालूम हो जाती है परन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिन्हें किन्हीं निश्चित नस्ल का बताना सम्भव नहीं होता। ऐसा इसलिए होता है कि सम्भावित व्यक्तियों के नस्ली लक्षण कमजोर होते हैं अथवा व व्यक्ति किसी संकरण का परिणाम होते हैं (यानी वे वर्ण-संकर होते हैं अनु०)।

एसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें एक ही जीवन-काल म भी नस्ली लक्षण बदल जाते हैं। कभी-कभी नस्ली उप-विभाजनों की विशिष्ट विशेषताएँ थोड़े ही समय के अन्दर परिवर्तित हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, पिछले कुछ 100 सालों के अन्दर अनेक मानवी समूहों के सिरों की आकृति बदल गई है। प्रमुख प्रगतिशील अमरिकी मानवशास्त्री फ्रैंज बोआस (Franz Boas) ने प्रमाणित कर दिया है कि नस्ली समूहों के अन्दर कपाल की आकृति अपेक्षाकृत बहुत कम समय में तबदील हो जाती है—यदि उदाहरण के लिए, वे दुनिया के एक भाग से दूसरे भाग में देशान्तर गमन कर जाए। यूरोप से अमेरिका जाने वाले लोगों के मामले में ऐसा ही हुआ था।

नस्ली परिवर्तन के वैयक्तिक तथा सामान्य स्वरूप अभिन्न रूप से परस्पर सम्बद्ध होते हैं। उनके कारण मानव जाति के नस्ली समूहों का निरन्तर, चाहे वह दिखलाई न देता हो ईषत् परिवर्तन (modification) होता रहता है। यद्यपि नस्लों की वंशागत संघटना (hereditary composition) काफ़ी स्थायी होती है फिर भी उसमें अनवरत रूप से परिवर्तन होते रहते हैं।

अभी तक नस्लों के भेदों के ही विषय में अधिक बात हमने की है उनकी सादृश्यताओं के बारे में कम। परन्तु पाठक को हम याद दिला दें कि नस्लों के भेद तभी स्पष्ट रूप से सामने आते हैं जब कि उनके पूरे-के-पूरे योग की तुलना की जाती है। यदि नस्ली लक्षणों म से हरेक की अलग-अलग परीक्षा की जाए, तो हम पाएँगे कि उनमें से बहुत कम ऐसे हैं जो न्यूनाधिक मात्रा में भी विश्वसनीय रूप से इस बात का प्रमाण प्रस्तुत कर सकें कि अमुक व्यक्ति अमुक नस्ल का है। इस दृष्टि से सम्भवतः अभिजातत सबसे मुख्य नस्ली लक्षण असली नीग्रो लोगों में मिलने वाले बने बल हुए उनके काले घुंघराले बाल होते हैं।

बहुत-से मामलों में यह बताना एकदम सम्भव होता है कि अमुक व्यक्ति किस नस्ल

का है। मध्यम ऊँचाई के सैल तथा मध्यम चौड़ाई के नासिका-रन्ध्रों वाली काफी बड़ (बुक जैसी) नासिका तीनों ही महा नस्लों के कुछ समूहों में पाई जाती है, यही चीज अन्य अनेक नस्ली लक्षणों के सम्बन्ध में सही है। यह चीज इस बात पर जरा भी नहीं निर्भर करती कि जिस व्यक्ति की जाँच की जा रही है वह दो नस्लों के प्रतिनिधियों के विवाह सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ था अथवा नहीं।

नस्ली विशेषताओं का यह मिला-जुला स्वरूप इस बात का एक प्रमाण है कि नस्लों की उत्पत्ति एक ही सामान्य स्रोत से हुई है और उनमें रुधिर का पारस्परिक सम्बन्ध है।

नस्ली भेद आमतौर से मनुष्य की शारीरिक रचना में गौण अथवा तृतीय स्थान तक रखते हैं। कुछ नस्ली लक्षण जैसे कि त्वचा का रंग अपनी परिवेश के साथ मानवी शरीर के अनुकूलन की प्राचीन क्रिया के परिणामस्वरूप पैदा हो गए हैं। इन लक्षणों का विकास मानव-जाति के ऐतिहासिक विकास के दौरान में हुआ था परन्तु अब बहुत बड़ी हद तक उनका जैविक महत्त्व खत्म हो गया है। इस दृष्टि से मानव-जाति की नस्लों की पशु जगत् की उपजातियों के साथ किसी तरह की सादृश्यता नहीं है।

वन्य पशुओं में नस्ली भेद उस समय पैदा होते और विकास करते हैं जिस समय कि प्राकृतिक वरण (natural selection) के दौरान में उत्परिवर्तन (mutation) तथा आनुवंशिकता (heredity) के बीच के संघर्ष के दौरान में उनके शरीर अपने को प्राकृतिक परिवेश के अनुकूल बनाने का उपक्रम करते हैं। लम्बे अथवा तीव्र जैविक विकास के क्रम में विकसित होकर, वन्य पशुओं की उप-जातियाँ जातियों का रूप ले सकती हैं और ले भी लेती हैं। उप-जातियों की विशिष्टताएँ वन्य पशुओं के जीवन के लिए आवश्यक होती हैं क्योंकि उनमें अनुकूलन के गुण मौजूद होते हैं।

पालतू पशुओं की अच्छी नस्लें कृत्रिम वरण (artificial selection) के द्वारा पैदा की जाती हैं उनके गोल (herd) की नील डालने के लिए सबसे उपयोगी अथवा अथवा सबसे सुन्दर पशुओं को चुना जाता है। आई० वी० मिचुरिन के सिद्धान्तों के आधार पर नई नस्लों की पौध बहुत थोड़े समय के अन्दर पैदा कर ली जाती है—कुछ ही पीढ़ियों के अन्दर। साथ-ही-साथ यदि उन्हें भोजन भी सही दिया जाए तो यह कार्य खास तौर से थोड़े समय के अन्दर ही सम्भव हो जाता है।

मानव-जाति की आधुनिक नस्लों के निर्माण में कृत्रिम वरण का किंचित् भी हाथ नहीं है। प्राकृतिक वरण का उनके लिए केवल गौण महत्त्व था और जमाना बीत गया जब से उसका यह गौण महत्त्व भी नहीं रह गया है। साफ है कि मानव जाति की नस्लों की उत्पत्ति और विकास के क्रम में और पालतू पशुओं की नस्लों के विकास-क्रम में बहुत बड़ा अन्तर है। इस सम्बन्ध में कृत्रिम रूप से पैदा किए गए पौधों के साथ उसका जो भारी अन्तर है उसके बारे में तो कुछ कहने की जरूरत ही नहीं है।

मानव-जाति की नस्लों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वैज्ञानिक संकल्पना का आधार जैविक दृष्टि से (biological standpoint), सर्वप्रथम चार्ल्स डार्विन ने निर्धारित

किया था। मानव-जाति की नस्लों का उन्होंने विशद अध्ययन किया था। इस अध्ययन के आधार पर उन्होंने सिद्ध किया था कि प्रत्येक मूलभूत लक्षणों की दृष्टि से उनके बीच अत्यधिक सादृश्यता है। उन्होंने उनके रुधिर के नजदीकी सम्बन्ध को भी स्पष्ट किया था। डार्विन ने कहा था कि ये बातें इस बात का प्रमाण हैं कि तमाम नस्लें एक ही सामान्य स्कन्ध (मूल उद्गम=common trunk) से निकली हैं और उनके पूर्वज अलग-अलग नहीं थे। विज्ञान की जो प्रगति हुई है उसने इस दृष्टिकोण को पूर्णतया सही सिद्ध कर दिया है। यह दृष्टिकोण ही एकजातवाद (monogenesis) का आधार है। इसलिए, कई भिन्न भिन्न वानरों से मानव-जाति के उत्पन्न होने का सिद्धान्त अर्थात् बहु-जातवाद (polygenesis) का सिद्धान्त निराधार है। इस तरह, नस्लवाद का एक मुख्य आधार ही खत्म हो जाता है। (वाई वाई० रोगिन्स्की एम जी० लेविन 1955)।

होमो सेपियन्सों के (मेधावी मानवों के) वे कौन-से विशिष्ट लक्षण हैं जो मानव जाति की तमाम नस्लों में निरपवाद रूप से मिलते हैं? ये मूलभूत प्राथमिक लक्षण निम्न हैं —एक बड़ा सुविकसित मस्तिष्क जिसके प्रमस्तिष्कार्धों के तल पर भारी संख्या में बलि-काएँ (convolutions) तथा गहरी रेखाएँ (furrows) होती हैं तथा मानवी हाथ जो एंगेल्स के कथनानुसार श्रम का औजार भी है और उसकी पैदावार (फल) भी। मानवी पैर भी उसका एक खास लक्षण है इसमें अनुदैर्ध्य चाप होती है और इस बात की सामर्थ्य होती है कि वह या बसत समय शरीर को सम्भाले रहे।

आधुनिक मानव के अन्य महत्त्वपूर्ण विशिष्ट लक्षण हैं एक मेरुदण्ड जिसमें चार वक्रताएँ (curvatures) होती हैं—इनमें सबसे विशिष्ट कटि की वह वक्रता होती है जो सीधे खड़े होकर चलने के परिणामस्वरूप पैदा हुई है एक कपाल जिसका बाह्य भाग काफी चिकना होता है जिसमें उच्चस्तर से विकसित एक कर्पर अथवा मस्तिष्क-पेटिका होती है और एक कम विकसित प्राननीय ककाल होता है जिसके ऊपर के ललाटकीय और पार्श्विक प्रदेश ऊँचे होते हैं सबसे रूप से विकसित नितम्बिका-पेशियाँ (gluteal muscles) तथा मजबूत और्विक (femoral) और अन्तर्जंघिका (tibial) की पेशियाँ शरीर पर अल्प रूप से विकसित बाल तथा भौंहों मूँछों और दाढ़ी में प्रसमभूमों अथवा अभिमर्शों का पूर्ण अभाव।

ये लक्षण मानव जाति की समस्त वर्तमान नस्लों में मिलते हैं और इन समस्त नस्लों के शारीरिक संगठन का एक ही जैसा उच्च स्तर है। यद्यपि ये तमाम जातीय विशिष्टताएँ तमाम नस्लों में एक समान विकसित नहीं पाई जाती यद्यपि उनमें से कुछ सबसे रूप से विकसित पाई जाती हैं और कुछ मयंक दिखलाई पड़ती हैं परन्तु उनके बीच कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं है। तमाम नस्लों में आधुनिक मानव के तमाम लक्षण मौजूद हैं। ऐसी नस्ल एक भी नहीं है जिसे निअण्डरथल-सम कहा जा सके। मनुष्य की एक भी नस्ल ऐसी नहीं जिसे जैविक रूप से दूसरी किसी नस्ल से श्रेष्ठ बताया जा सके।

इसके बावजूद पूँजीवादी प्रतिक्रियावादी वैज्ञानिक तथा प्रचारक मानवी नस्लों की

असमानता की रट लगाये हुए हैं अधिकांशतया ये लोग कहते हैं कि कुछ नस्लों के, जिन्हें ये 'नीची नस्ल' बताते हैं मस्तिष्क दूसरी 'ऊँची' नस्लों के मुकाबले में अधिक वानर जैसे हैं। यह एकदम झूठी बात है। सोवियत मानवशास्त्रियों के अध्ययनों ने स्पष्ट कर दिया है कि विभिन्न नस्लों के प्रतिनिधियों के मस्तिष्क की रचना में कोई खास फर्क नहीं है। (कार्ड ओ० एडयेरको 1950)। नस्लवादी सिद्धान्तों का इस बात से भी खण्डन होता है कि सीधे खड़े होकर चलने तथा श्रम करने की दृष्टि से मनुष्य की सारी नस्लों में एक ही जैसी समता है। नस्लों के बीच सादृश्यता के इन तमाम लक्षणों के मौजूद रहने के बाद इस कथन के लिए कोई आधार नहीं रह जाता कि कोई भी नस्ल अन्य नस्लों की अपेक्षा वानर के अधिक समीप है (एम० एफ० नैस्तुर्ख 1958)।

मनुष्य की आधुनिक नस्लों में बहुत-से वे बर्बर-वानरी लक्षण खत्म हो गए हैं जो निआण्डरथलों तक के अन्दर पाए जाते थे। इन नस्लों ने होमो सेपियन्सों (मेधावी मानवों) के लक्षण उपार्जित कर लिए हैं। अस्तु, किसी भी आधुनिक नस्ल को दूसरों की अपेक्षा बर्बर वानरी अथवा अधिक आदिम नहीं माना जा सकता है।

जो लोग ऊँची और नीची नस्लों के झूठे सिद्धान्त का समर्थन करते हैं वे कहते हैं कि नीग्रो लोग यूरोपियनों की अपेक्षा अधिक बर्बर-वानरी हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से यह सर्वथा असत्य है। नीग्रो लोगों के घने घुंघराले बाल होते हैं मोटे होंठ होते हैं उनका माथा सीधा या आगे की ओर निकला हुआ होता है, उनके चेहरे अथवा शरीर पर तृतीयक (tertiary) बाल नहीं होते और धड़ की तुलना में उनकी टाँगें बहुत लम्बी होती हैं। ये सब ऐसे लक्षण हैं जो जाहिर करते हैं कि नीग्रो लोग यूरोपियनों की भी तुलना में चिम्पैंजी से अधिक दूर हैं। परन्तु यूरोपियन स्वयं भी अपने हल्के रंग की त्वचा तथा अन्य लक्षणों के कारण वानरों से बहुत भिन्न होता है। प्राचीन मानव-सम वानर की एक ही जाति से मानव की उत्पत्ति के डारविन के सिद्धान्त से तथा एंगेल्स के इस सिद्धान्त से कि वानर का मानव में संक्रमण सामाजिक श्रम के प्रभाव के अन्तर्गत हुआ था, मनुष्य की नस्लों की समस्या को और भी स्पष्ट रूप से समझने में हमें सहायता मिलती है। वैज्ञानिक तथ्यों (data) के आधार पर केवल एक ही सही परिणाम निकाला जा सकता है और वह यह है कि जैविक तथा सामाजिक नियमों के संयुक्त प्रभाव के अन्तर्गत समस्त आधुनिक इन्सानी नस्लें एक ही वृन्त (stem) से निकली हैं।

चतुर्थकाल के प्रारम्भ से दस लाख के करीब जो वर्ष बीते हैं उन सबके दौरान उसके हिमानी तथा अन्तर्हिमानी युगों के दौरान और उसके उत्तर हिमानी युग तक, वर्तमान युग तक आदिम मानव पृथ्वी के ऊपर दूर-दूर तक निरन्तर फैलता गया है। मानवों के समूहों का विकास अक्सर भिन्न-भिन्न एक-दूसरे से अलग प्रदेशों में हुआ है। वहाँ उनका विकास स्थानीय प्राकृतिक परिस्थितियों के प्रभाव के अन्तर्गत होता रहा है। यहाँ पर यह बात बताना आवश्यक है कि आदिम मानव के निर्माण में प्राकृतिक तथा लैंगिकवरण (sexual selection) की क्या भूमिका थी। सबसे प्राचीन मानव निआण्डरथल बन गए थे

और फिर इन्होंने क्रो-मैग्नन जनों का रूप ले लिया था। नस्लें न सिर्फ बराबर पैदा हो रही थीं बल्कि उनके भेद भी बराबर मिटते जा रहे थे। जिन भौगोलिक परिस्थितियों में वे रहती थीं उनके कारण उनमें आपस में भेद होते थे, परन्तु श्रम संस्कृति के विकास तथा अन्य विविध कारकों के प्रभाव के कारण इन नस्लों की पारस्परिक सादृश्यता अधिकाधिक बढ़ती जाती थी। उन सबमें आधुनिक प्रकार के मनुष्य के आम लक्षण उत्पन्न होते जा रहे थे। मानवी नस्लों के विकास का मार्ग गुणात्मक रूप से भिन्न था इसलिए पशु जगत् की उपजातियों के साथ उनका गुणात्मक अन्तर अधिकाधिक बढ़ता गया।

पुरानी दुनिया के निअंडरथल तथा आधुनिक प्रकार के जीवाश्म मानवों की अस्थियों के अवशेषों के अध्ययन से कुछ वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि लगभग एक लाख वर्ष पहले आधुनिक मानव के अन्दर दो महान् नस्ली विभाजनों के लक्षण मौजूद थे (वाई० वाई० रोगिन्स्की 1941 1956)।

एक बड़े आदिम नस्ली समूह का जन्म एशिया के उत्तरी-पश्चिमी भाग में हिमालय के उत्तर और पूर्व की ओर हुआ था। यह आद्य एशियाइयों अथवा आद्य मंगोल-सभों की यह महान् नस्ल थी जिसमें से अनेक मंगोल-सम छोटी-छोटी नस्लें तथा मानवशास्त्रीय समूह पैदा हुए थे।

मंगोल-समों की नस्ल का यह समूह इसी आदिम मंगोल-सम महान् नस्ल की एक शाखा था जिसने बहुत बाद में आज से 25 हजार, 30 हजार वर्ष पूर्व उस समय जो एक स्थल समावक था उसे तथा एल्युशियन द्वीपों को पार किया था और अमेरिका की ओर चला गया था। यह समूह निरन्तर दक्षिण की ओर दूर-दूर तक फैलता गया था। कालान्तर में उसने रेड-इण्डियनों का अथवा अमेरिका की छोटी नस्ल का स्वरूप ग्रहण कर लिया था। इस छोटी नस्ल को वैज्ञानिक लोग आमतौर से मानवशास्त्रीय महत्त्व के कई समूहों में विभाजित करते हैं।

मानवी नस्ल की दूसरी बड़ी शाखा वह थी जो दक्षिण-पश्चिम में थी। यह दो प्राथमिक महान् नस्ली समूहों में बंट गई थी—यूरेशियाई अथवा यूरोपियन-समों के नस्ली समूह में तथा भूमध्यवर्ती अथवा नीग्रोसम-आस्ट्रेलायड नस्ली समूह में।

इन दो महान् दक्षिण-पश्चिमी नस्लों की एक सबसे महत्त्वपूर्ण पहचान उनकी त्वचा का रंग है। यह रंग विभिन्न दिशाओं में उनके विकास के क्रम में पैदा हो गया था। आज नीग्रो-आस्ट्रेलायड नस्ल के प्रतिनिधियों का तथा उन यूरोपियन-सम नस्लों का रंग ज्यादा गहरा (काला) है जो दक्षिण के अपेक्षाकृत अधिक गर्म देशों में रहती हैं। उन यूरोपियन-सम समूहों की जो अधिक उत्तर के देशों में रहते हैं त्वचा क्रमशः हल्के रंग की हो गई है। विश्वास किया जाता है कि पहले उनकी त्वचा गोरी हुई थी, उसके बाद उनकी आँखों का रंग हल्का हुआ और अन्त में उनके बालों का रंग भी हल्का हो गया था।

एक-दूसरे से अलग रहने की बात ने (उनके अलगाव ने) आदिम मानव की नस्लों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। पृथ्वी पर जिस समय इधर-उधर वे फैल

रही थी उस समय शारीरिक रूप से एक ही जैसे लोगों के छोटे-छोटे समूह उन प्रदेशों में पहुँच गए जिनकी प्राकृतिक परिस्थितियाँ एकदम भिन्न-भिन्न थीं। जब वे अपने क्षेत्र में बहुत दिनों के लिए बस गए तो अन्य समूहों के साथ उनका सम्पर्क टूट गया। फिर हजारों और दसियों हजारों वर्षों के अलग अलग अस्तित्व के दौरान में स्थानीय प्राकृतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव के अन्तर्गत इन समूहों की शारीरिक तथा दैहिक विशिष्टताएँ भिन्न भिन्न हो गईं। यह बात सर्वथा स्वाभाविक थी। फिर इन परिस्थितियों के अन्तर्गत एक ही दिशा में होने वाले उनकी शारीरिक रचना के छोटे-छोटे परिवर्तन भी पीढ़ी दर पीढ़ी संचित और सुदृढ़ होते गए। विभिन्न समूह एक-दूसरे से और भी अधिक तीव्रता के साथ भिन्न होते गए। ये भेद मुख्यतया कुछ बाहरी लक्षणों में परिलक्षित हुए थे। कबीलाई रिश्तेदारी के सन्दर्भ में परिचय चिह्नों के रूप में इन बाह्य भेदों ने भी काफी महत्त्व प्राप्त कर लिया।

संसार के कुछ भागों में अब भी प्राकृतिक अलगाव के प्रभाव के अन्तर्गत बसनेवाली नस्ली निर्माण की क्रिया को आधुनिक मानव-जाति के अन्दर भी देखा जा सकता है। मनुष्य की आबादियों के क्षेत्रों के सीमान्तों पर यूनानी ओईक्यूमीन (oecumene) के बाहरी भागों में मानवशास्त्रीय लोगों की जो किस्में तथा उनके जो समूह बन पाते हैं उनका भी स्पष्टतया यही कारण है। इन लोगों की नस्ली विशेषताएँ तमाम दूसरे लोगों से इन्हें स्पष्ट रूप से अलग कर देती हैं। इस तरह के नस्ली समूहों के उदाहरण हैं— उत्तरी यूरोप के लाप लोग (Lapps) एशिया और अमेरिका के धुर उत्तर के एस्किमो (Eskimos) दक्षिण अमेरिका धुर के दक्षिण में टियरा डेल फ्यूगो के निवासी आस्ट्रेलिया के आदिवासी न्यूगिनी के पापुआन (Papuans) कालाहारी तथा नमीब के रेगिस्तानों के बुशमेन (Bushmen) तथा वहाँ के घने उष्णकटिबन्धीय जंगलों के बौने (नेग्रिटो पिग्मी)।

परन्तु, अत्यन्त सुदूर काल में मानव-समाज का उत्तरोत्तर विकास होता गया था। यह विकास यद्यपि अभी तक बहुत धीमा था फिर भी उसके दौरान उत्पादक शक्तियों की वृद्धि हुई थी मानव प्राणियों के समूह संख्या की दृष्टि से अधिक शक्तिशाली बन गए थे और कुछ नस्लें अन्य नस्लों के साथ अधिक जल्दी-जल्दी सम्पर्क कायम करने लगी थीं। मानवी समूह अब अधिक मुक्त रूप से एक-दूसरे से मिलने लगे थे। फिर अलगाव का स्थान संकरण ने ले लिया और यही नई नस्लों के आविर्भाव का निर्णायक कारक बन गया। परन्तु इस कारक के प्रभाव से अधिकतर मिश्रित नस्ली समूहों का ही निर्माण हुआ है और आज भी ऐसे ही मिश्रित समूहों को यह जन्म दे रहा है।

नस्ली संकरण की इस क्रिया का प्रारम्भ ठीक उसी समय हुआ था जिस समय मानव के निर्माण की मूल क्रिया अपनी चरम अवस्था में पहुँच रही थी अर्थात् आधुनिक किस्म के मानवों का आविर्भाव हो रहा था। मानवी शरीर श्रम की क्रियाशीलता के बहुत अधिक अनुकूल बन गया था। शारीरिक रूप से एक ही किस्म के आधुनिक मानव के

आविर्भाव में इससे मदद मिली थी तथा नस्ली भेदों को मिटाने का कार्य भी आसान बन गया था।

कालान्तर में विभिन्न नस्लें काफ़ी मात्रा में एक-दूसरे में मिल गई हैं (चित्र 152) नस्ली संकरण की यह क्रिया पिछले 10,000–15 000 वर्षों में खासतौर से बहुत तेज



चित्र 152. मानव-जाति की नस्लों का संकरण
1 यूरोपियन-सम नीग्रोइड-रूप 2 यूरोपियन-सम-मंगोल-रूप, 3 नीग्रोइड मंगोल-रूप।
ई. फिशर, 1913 के आधार पर (1) तथा (2,3) मानवशास्त्र संस्थान के अभिलेखागार, मास्को राजकीय विश्वविद्यालय से।

हो गई है। क्रिस्टोफर कोलम्बस द्वारा 1492 में की गई अमरीका की खोज के बाद से संकरण ने बहुत व्यापक रूप ले लिया है। परिणामस्वरूप अब शुद्ध नस्लों जैसी किसी चीज का कहीं अस्तित्व नहीं है। सम्पूर्ण मानव-जाति न्यूनाधिक मात्रा में मिश्रित नस्ल की है। दुनिया में आज करोड़ों ऐसे लोग हैं जिनके बारे में निश्चित रूप से यह नहीं बताया जा सकता कि वे किस मूल नस्ल के हैं।

संकरण के परिणामस्वरूप लोगों के बीच जो रुधिर सम्बन्ध बने हैं उन्होंने उनके बीच शारीरिक अन्तरों को बहुत बड़ी मात्रा में घटा दिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मानव जाति के विकास में नस्लों के संकरण ने एक बड़ी सकारात्मक भूमिका अदा की है। उसने मानव को एक जैविक बिरादरी (biological entity) में संयुक्त कर दिया है। यह बिरादरी उच्चतर मानव-सभों की उस जाति से गुणात्मक रूप से बहुत भिन्न है जिसने प्रथम प्रथम मानवों के पूर्वज का काम किया था।

हमने जो कुछ कहा है वह मार्क्स और एंगेल्स द्वारा प्रतिपादित की गई इस स्थापना को सही साबित कर देता है कि मानव के ऐतिहासिक विकास के क्रम में नस्ली भेदों का मिट जाना अनिवार्य है और वे अवश्य ही मिट जाएँगे।

(Oceania) के अन्य लोगों से घनिष्ठ रूप से परिचित था इस बात पर अत्यधिक जोर
दिया था कि उनकी मनोधातु (मानस) की मुख्य विशेषताएं मूलतः वही हैं जो यूरोपि
यनों की हैं (एन एन मिक्लूखो-मकलाई 1950-1954)।

इन वास्तविक वैज्ञानिक तथ्यों को देखते हुए यह बात बिलकुल साफ है कि नस्ल
वादियों का यह दावा है कि आर्य जाति (नस्ल) अन्य तमाम नस्लों की तुलना में मना
वैज्ञानिक रूप से श्रेष्ठ है एकदम निराधार है।

किसी क़ौम की संस्कृति के स्तर का उसके नस्ली स्वरूप से कोई सम्बन्ध नहीं है।
संस्कृति का स्तर क़ौमों तथा राज्यों तथा उनके सहयोगियों के ऐतिहासिक विकास की
सामाजिक तथा प्राकृतिक परिस्थितियों के पूर्ण योग पर निर्भर करता है।

वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित तथ्य तथा प्रति दिन का अनुभव इस नस्लवादी दावे का
खण्डन करते हैं कि यूरोपियन क़ौमों की संस्कृति तथा उनकी भाषाओं का जन्म आर्यों
की नस्ली भावना में से हुआ है। यह बात सर्वविदित है कि भाषाओं के अनुसार लोगों
का विभाजन उनके नस्ली विभाजन के साथ मेल नहीं खाता। भाषाएं और नस्लें अलग
अलग एक दूसरे से स्वतन्त्र रूप में विकसित होती रहती हैं।

नस्लवादी सिद्धान्त की इस स्थापना को कि नस्ल और भाषा के बीच सम्बन्ध है
सोवियत संघ की क़ौमों के जीवन से प्राप्त हुई सामग्री भी अप्रमाणित करती है।
हमारे देश में अनेक जातियां (राष्ट्रीय क़ौमें) तथा क़बीले ऐसे हैं जो ऐसी भाषाएं बोलते
हैं जिनका तुर्की से सम्बन्ध है। उनमें से कुछ यूरोपीय-सम नस्ली जाति के हैं (जैसे
अजरबैजानी) कुछ मंगोल-सम जाति के हैं (जैसे कज़ाक किरगिज़ तथा याकूती लोग)
एक तीसरी नस्ली जाति के लोग यूरोपियन-समों तथा मंगोल-समों के सम्मिश्रण से बने
हैं (जैसे ओर्टजी बश्कीरी तातार)।

यह भी सच है कि 'नस्ल' और 'राष्ट्र' (राष्ट्रीय क़ौम) की धारणाएं बिलकुल
भिन्न हैं। हर व्यक्ति जानता है कि अंग्रेज़ी राष्ट्र (क़ौम) में विभिन्न यूरोपियन-सम
नस्लों के प्रतिनिधि मौजूद हैं। जर्मन राष्ट्र (क़ौम) में कम-से-कम पांच नस्ली समूहों के
प्रतिनिधि सम्मिलित हैं। अमेरिका की जनसंख्या तो यूरोप अफ्रीका और एशिया से
आए हुए अत्यन्त भिन्न-भिन्न नस्लों के लोगों का ही जोड़ है। इन चीज़ों का कारण मा
है कि 'नस्ल' तथा राष्ट्र (क़ौम) बिलकुल भिन्न-भिन्न चीज़ें हैं वे दोनों कहीं पर एक
ही हों तो यह एक अपवाद की चीज़ होगा आम तौर से ये दोनों चीज़ें एक नहीं होतीं।

इसलिए अंग्रेज़ जर्मन फ्रांसीसी अथवा स्लाव नस्लों के नस्लवादी जिस ढंग से
अक्सर बात करते हैं वह ग़लत है। आर्य नस्ल की बात करना तो और भी ग़लत है
क्योंकि 'आर्य' शब्द भाषा-शास्त्र के क्षेत्र से लिया गया है और वह भाषाओं के एक
विशेष दल का संकेत करता है। नस्लों के स्वयं अपने नाम हैं और उन्हें भाषाओं के नामों
के साथ नहीं मिलाया जाना चाहिए।

नस्लों के बीच संघर्ष के सिद्धान्त के आधार पर इतिहास की व्याख्या करते हुए,

प्रसार, नस्लवादी यूरोपियनों के लिए पीले अथवा काले खतरे की बात करते हैं। परन्तु आक्रामक होना किसी खास नस्ल का गुण नहीं होता। आक्रामक साम्राज्यी सरकार अथवा साम्राज्यी सरकारों का एक समूह ही हो सकता है। जो लोग इन भिन्न-भिन्न मकसलनाओं को मिलाने की कोशिश करते हैं उनको, अपने जमाने में लेनिन ने सख्त जवाब दिया था। यह जवाब अत्यन्त शिक्षाप्रद है।

वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में विदेशी पूँजीपतियों के विरुद्ध चीनी जनता ने अपने प्रसिद्ध ई-हे-तुआन ('बक्सर') विद्रोह का समठन किया था। उस समय यूरोपियन संस्कृति और सभ्यता के लिए पीले खतरे की कहानियों से 'जंगली पीली नस्ल' के सम्बन्ध में लेखों से तथा स्वेत नस्ल के प्रति पीले लोगों की घृणा के किस्सों से पूँजीवादी पत्रों के स्तम्भ पाट दिये गए थे। चीन के जन-विद्रोह तथा विदेशी सेनाओं द्वारा उसके दमन की कहानी का विश्लेषण करते समय लेनिन ने क़ौमों के बीच में कृत्रिम रूप से शत्रुता पैदा करने के प्रयत्नों के वर्ग स्वरूप को उघाड़कर रख दिया था।

लेनिन ने लिखा था "हाँ! चीनी लोग यूरोपियनों से अवश्य नफरत करते हैं परन्तु किन यूरोपियनों से और किसलिए? यूरोप की जनता से वे नफ़रत नहीं करते—उनके साथ उनकी कोई लड़ाई नहीं हुई, वे यूरोप के पूँजीवादियों और उनकी गुलाम सरकारों से नफ़रत करते हैं।[1]

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दो विश्व युद्ध हो चुके हैं। इन युद्धों का कारण नए उपनिवेशों पर कब्जा करने तथा पड़ौसी राज्यों के क्षेत्रों को जीतने की जर्मन साम्राज्यवाद द्वारा की गई कोशिशें थीं। जर्मन साम्राज्यवाद की एक खास विशेषता उसकी नस्ली नीति उसकी मानव-द्रोही विचार-धारा थी।

फासिस्ट जर्मनी ने घोषणा की थी कि उत्तरी यूरोपियनों की नस्ल नात्सी सिद्धान्तकारों की शब्दावली में 'आर्यों की नस्ल' थी ऊँची नस्ल थी। उसने यह घोषणा कर दी थी यद्यपि जर्मनी में इस नस्ल के प्रतिनिधियों के रूप में केवल एक छोटा-सा समूह ही है। आस-पास के देशों की जनसंख्या में यदि जर्मनी से अधिक नहीं तो उतने ही ऐसे आदमी तो अवश्य हैं जिनके बाल और आँखें सुन्दर हैं। 'आर्य लोग' ऊँची नस्ल के हैं—इस घोषणा का उसके विज्ञान के अन्दर कोई आधार नहीं है और राजनीतिक रूप से यह एक अत्यन्त प्रतिक्रियावादी बात है (एम० एल० ग्लीसेट्स्की 1955 एम० एफ नेस्तुर्ख 1942 1954 वाई वाई रोगिन्सकी एम० जी० लेविन 1955)।

नस्लवाद के इस वैज्ञानिक रूप से फरेबी झण्डे के नीचे मानव जाति को गुलाम बनाने की अपनी अति-साम्राज्यी योजनाओं का नात्सियों ने प्रचार किया था और समस्त संसार को जीतने के स्वप्न देखे थे। नस्लवाद उनके लिए अपनी साम्राज्यी नीति पर पर्दा डालने का केवल एक आवरण था। गैर-जर्मन क़ौमों के शोषण तथा विनाश के कार्यक्रम

1 वी० आई० लेनिन—चीना युद्ध दक्षिण पूर्व का राष्ट्रीय मुक्त आन्दोलन मास्को, 1957 पृष्ठ 4।

में उनके लिए वह एक सैद्धान्तिक आधार का काम करता था।

नस्लों और राष्ट्रों की समानता का सिद्धान्त सोवियत राज्य की नैतिक शक्ति तथा उसके बल का एक सबसे बड़ा आधार है। वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर सोवियत मानवशास्त्र बताता है कि विभिन्न देशों के लोगों की नस्ली बनावट कैसी है और उनकी उत्पत्ति का क्या इतिहास है। वह इस एक मात्र सही धारणा का विकास करता है कि मानव-जाति की तमाम नस्लें जैविक रूप से बराबर हैं। नस्लवाद के विरुद्ध संघर्ष में मानव उसके अतीत वर्तमान तथा भविष्य के सम्बन्ध में समस्त भाववादी रहस्यवादी धारणाओं के विरुद्ध संघर्ष में मानव तथा नस्लों की उत्पत्ति की सच्ची भौतिकवादी धारणा हमारी सहायता करती है।

●